ISSN : 2455-4219
(UGC-Care Listed)

विचार
चिंतन
शोध सृजन

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed
Research Journal of Humanities

वर्ष-6 अंक-22 अप्रैल - जून, 2021

प्रधान-संपादक
डॉ० सुनील कुमार मानस

संपादक
डॉ० योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक
श्री सुधीर कुमार तिवारी

ISSN : 2455-4219
(UGC-Care Listed)

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal of Humanities

वर्ष - 6 अंक - 22 अप्रैल-जून, 2021

Year - 06 Volome - 22 April-June, 2021

प्रधान-संपादक
डॉ० सुनील कुमार मानस

संपादक
डॉ० योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक
श्री सुधीर कुमार तिवारी

© **प्रकाशक :**
संपादकीय / प्रकाशकीय पता :–
आलोचन दृष्टि प्रकाशन,
आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद–फतेहपुर,
उ0प्र0–212635
ई–मेल : aalochan.p@gmail.com
दूरभाष : 9451949951 / 7376267327

मुद्रण :– जय ग्राफिक्स एण्ड कान्सट्रक्सन,
आई0टी0आई0 रोड़, फतेहपुर–212601।

सदस्यता शुल्क	एक अंक	वार्षिक	आजीवन
व्यक्तिगत	300	1200	10,000
संस्थागत	400	1500	15,000

संरक्षक एवं सलाहकार मंडल

- **प्रो0 गिरीश्वर मिश्र,** शिक्षाविद् एवं पूर्व कुलपति, म. गां. अं. हिं. वि., वर्धा, (महाराष्ट्र)।
- **प्रो0 चितरंजन मिश्र,** पूर्व प्रोफेसर, पं. दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय (उ0प्र0)।
- **प्रो0 नंदकिशोर आचार्य,** सुथारों की बड़ी गुवाड़, बीकानेर, राजस्थान–252028।
- **प्रो0 सदानंद गुप्त,** निदेशक, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, (उ0प्र0)।
- **प्रो0 कृपाशंकर चौबे,** महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, (महाराष्ट्र)।
- **प्रो0 माधवेन्द्र पाण्डेय,** हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालयए शिलांग, मेघालय।
- **प्रो0 प्रेमशंकर त्रिपाठी,** आशीर्वाद अपार्टमेन्ट, सी. ए. 5/10, देशबन्धु नगर, कलकत्ता।
- **प्रो0 दिलीप सिंह,** इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.)।
- **प्रो0 आर0 एस0 सर्राजू,** हैदराबाद विश्वविद्यालय, (तेलंगाना)।
- **प्रो0 उमापति दीक्षित,** केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा (उ0प्र0)।
- **प्रो0 एस0 वी0 एस0 एस0 नारायण राजू,** तमिलनाडु केन्द्रीय विश्वविद्यालय, तमिलनाडु।
- **Shri. Tejendra Sharma,** Harrow & Weealdstone, Middlesex HA3 7AN (U.K.)
- **Mrs. Archana Painyuly,** Islevhusvej, 72 B, 2700, Bronshoj, Copenhagen, Denmark.

संपादक-मंडल

- **डॉ. उदयन मिश्र,** हरिश्चन्द्र पी. जी. कॉलेज, वाराणसी, (उ0प्र0)।
- **डॉ. बलराम शुक्ल,** संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- **डॉ. दण्डिभोट्ला नागेश्वर राव,** सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, श्री चंदशेखरेंद्र सरस्वती विश्वविद्यालय, एनात्तूर–कांचीपुरम्, तमिलनाडु।
- **डॉ. शशिभूषण भट्ट,** संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, (उ0प्र0)।
- **डॉ. अमित दूबे,** आर्य महिला पी. जी. वाराणसी।
- **श्री राम कुमार मानिक,** शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, (उ0प्र0)।

विधि-परामर्शदाता

श्री **उमाशंकर त्रिपाठी** (एडवोकेट), सिविल कोर्ट, फतेहपुर उ0प्र0–212601।

नोट : सभी पद अवैतनिक एवं अव्यावसायिक हैं। प्रकाशित शोध–लेखों एवं उसमें दिये गये उद्धरणों के वाद–विवाद संबंधी किसी भी कार्यवाही का शोधकर्ता (लेखक) स्वयं जिम्मेदार होगा। इस तरह के किसी भी विवाद में संपादक, प्रकाशक एवं 'आलोचन दृष्टि' परिवार के किसी भी सदस्य की कोई जिम्मेंदारी नहीं होगी और किसी भी प्रकार के विवाद का समाधान फतेहपुर न्यायालय में होगा।

संपादकीय

'आलोचना' एक प्रत्यय भी है और प्रतिमान भी; जिसका कोई स्वतंत्र एवं एकल वृत्त नहीं होता, वह हमेशा आलोचक की मानसिक और बौद्धिक वृत्ति के आधार पर अपना आकार–प्रकार निर्धारित करती रहती है, जिसे आलोचक युग, स्थान एवं समय के अनुरूप ही व्याख्यायित करता है– यह हमारी एक सुचिंतित परंपरा भी रही है और व्यवस्था का नियामक भी; किंतु अब कई प्रकार की वैचारिक, सैद्धांतिक एवं शाब्दिक परंपराएँ हैं, जिसके अन्तर्गत 'पाश्चात्य के नवनिर्मित विचारों, सिद्धांतों और शब्दों की भरमार'; 'परम्परा, संस्कृति और आदर्श की जड़वादी–मानसिकता' और 'समय, संदर्भ और स्वानुभूति की मनमानी व्याख्या' देखने को विशेष रूप से मिलती है, जिसमें अति–यथार्थवाद, अजनबीपन, विडंबना, संत्रास, अंतर्विरोध जैसे तमाम शब्दों से लेकर थोथी–स्थूलवादी मानसिकता की सड़ास भी है और खटास भी।

हम भले ही 'पाश्चात्य की वृत्तिक परंपरा की दृष्टि' और 'अपने–पराये की भावना' से ऊपर उठकर आलोचना की प्रक्रिया अपना ले, किन्तु युग, स्थान एवं समय को दरकिनार नहीं कर सकते और न ही परवरिश–वृत्ति को। आलोचना से समग्रता की अवधारणा ही– गायब होती जा रही है क्योंकि हमारी आलोचना– कहानी, उपन्यास, नाटक, संस्करण, निबंध... आदि से लेकर विविध विमर्शों तक की कालक्रमानुरूप में बॅटती जा रही है और अब आलोचक इन खाचों में से किसी एक कालखण्ड के ही– विशेषज्ञ बनते जा रहे हैं। यही वर्तमान की आलोचना और आलोचक की सबसे बड़ी कठिनाई है और सच्चाई भी। इसके बावजूद भी ये खॉचाई आलोचक किसी भी विषय पर लिखने, बोलने एवं पढ़ाने–समझाने तक में पीछे नहीं रहते ; और अब एक ऐसी पीढ़ी आ रही है जो आलोचना की परंपरा की– किसी किताब को छुये बगैर ही, गूगल गुरु के माध्यम से जानकारी हासिल करके अपनी मनमर्जी के अनुसार कुछ भी बोल देना, लिख देना या पढ़ा देना– ही सर्वोत्तम समझने लगी है। यहाँ एक अंग्रेजी शब्द उधार लेना चाहता हूं जिसका नाम है Irony (आयरनी) अर्थात् विडंबना। यह Irony अब हमारे साहित्य की भी है, समाज की भी है और आलोचना की भी।

ऐसे में चिंता यह है कि इससे बचा कैसे जाए? ये जो वर्तमान के समय की विडंबना है, उससे बाहर कैसे निकला न जाए? अथवा जो पूँजी या पूँजीवाद का आतंक है, उससे निजात कैसे पाया जाए? कैसे हम अपने समय और समाज को इस आवारगी से बचाएं? किसी भी कीमत पर पैसे आने चाहिए– की बात से जब हमारा पूरा समाज प्रभावित हो गया है, तब कैसे इसका समाधान किया जायं? ये प्रश्न भी हैं और चुनौती भी। पर, हर एक समस्या का समाधान कहीं न कहीं भविष्य के गर्भ में छिपा रहता है जो एक दिन फलित होकर ही रहता है। अस्तु, चिंता छोड़कर कार्य या प्रयास करने की जरुरत है।

अप्रैल और मई में कोविड–19 की जो दूसरी लहर आई उसके तांडव में बहुत से परिवारों ने क्षति उठायी है। शायद् ऐसा कोई भी परिवार न रहा होगा, जो कोविड–19 की चपेट में न आया हो। बहुत से लोगों ने इस त्रासदी को नजदीक से देखा भी है। हर तरफ 'एक भयभीत व्यक्ति या समाज' दिख रहा था। नदियों एवं घाटों में लाशें बिखरी पड़ी थी जिनके पास जाने से लोग डर रहे थे। यह लहर, पहली लहर की अपेक्षा बहुत भयानक रही। हर एक परिवार ने अपना सगा–संबंधी खोया है। इसी कोविड–19 की वजह से 'आलोचन दृष्टि' पत्रिका ने अपने 'संरक्षक और सलाहकार मंडल' के सदस्य **प्रो. राम सजन पांडेय** सर को हमेशा के लिए खो दिया है।.... इसी में हमने राष्ट्रीय संपदा के रूप में उपस्थित रहे फ्लाइंग सिख **मिल्खा सिंह** को भी खोया है।... हमें अब यह स्वीकार कर लेने में

गुऱ़ेज नहीं होना चाहिए कि हमसे कहीं–न–कहीं लापरवाही हुई है.... पर, उन बातों को दोहराने से अब कोई फायदा नहीं है... लेकिन मैं यह जोर देकर कहना चाहता हूँ कि भविष्य के प्रति हमें दूरदर्शी एवं सचेत रहना चाहिए। खासतौर से, स्वास्थ्य, शिक्षा और सुरक्षा के क्षेत्र में विशेष रूप से।

पत्रिका–संपादन की अपनी निजता होती है, तथा वह अपने 'संरक्षक एवं सलाहकार मंडल' और 'संपादक मंडल' के सदस्यों के परामर्श के अनुसार ही निर्णयित होता है। यही निर्णय पत्रिका के संपादन हेतु मान्य रहता है। पत्रिका में बहुत से लेखकों के लेख नहीं छप पाते या सबको छाप पाना संभव ही नहीं हैं। पर, कुछ ऐसे भी लोग (जिनका लेख पत्रिका में नहीं छप पाता) मिल जाते हैं, जो तमाम तरह की अनर्गल बातें भी करते हैं, कुछ तो धमकियाँ तक दे डालते हैं। मेरा ऐसे वैचारिक तत्वों से निवेदन है कि पहले वे बातचीत करने की तहजीब अपने अंदर विकसित करें। इसके बाद ही 'आलोचन दृष्टि परिवार' के किसी भी सदस्य को कॉल या बात करें, वह भी धैर्य और शांति के साथ, निर्धारित समय में ही। 'आलोचन दृष्टि परिवार' का हर एक मनोनीत सदस्य अकादमिक जगत के सम्मानित, प्रतिष्ठित पदों से जुड़े विद्वान हैं, जो निःस्वार्थ सेवा दे रहे हैं। इसलिए मुझे किसी भी सदस्य से यह सुनने को न मिले कि किसी व्यक्ति ने उनसे गलत लहजे/तहजीब में बात की है। हमारी हर एक लेख पर गहरी नजर रहती है लेकिन हमारे कुछ नियम है और कुछ निर्देश भी; जिनको ध्यान में रखकर ही हमें कार्य करना पड़ता है। विद्वानों के निर्देशानुसार प्रस्तुत अंक से पत्रिका के मुख्य पृष्ठ पर UGC-Care Listed टंकित करा दिया गया है, जिसके लिए मैं पहले सहमत नहीं हो पा रहा था, या मेरे कुछ तर्क थे।

हमारी एक आगामी योजना **सृजनश्री न्यास** की स्थापना करने की है, जिसका पंजीकरण आजाद नगर, बिंदकी–फतेहपुर में कराना है। इसके लिए हम प्रयासरत भी हैं। आने वाले समय में जल्द ही इस न्यास के पंजीकरण (रजिस्ट्रेशन) आदि से जुड़े सभी कार्यों को पूर्ण कर लेगे का प्रयास भी है। फिर **आलोचन दृष्टि** पत्रिका को इसी न्यास से जोड़ देने, और अग्रिम अंको के प्रकाशन का कार्य न्यास को सौंप देने का विचार है।

प्रस्तुत अंक में 61 शोध–पत्रों का प्रकाशन किया जा रहा है जिसमें 28 हिंदी भाषा के हैं और 33 अंग्रेजी भाषा के। ये शोध–पत्र भारतीय चिंतनधारा के वर्तमान का शैक्षणिक प्रतिनिधित्व करने वाले हैं। इन लेखों में अतीत से लेकर वर्तमान तक की वैचारिकी परिलक्षित है, जो भविष्य के प्रति सजग होने की दृष्टि को भी– निरूपित करती है, जिसमें कुछ का पता सीधे–सीधे चल जाता है और कुछ सांकेतिक रूप से ही। खैर, इसके विषय में ज्यादा मैं क्या कहूँ ? आप सभी सुधी–जन इसे पढ़ें और जैसा लगे उस पर अपनी प्रतिक्रिया भी 'ई–मेल आदि के माध्यम' दें। हमें आपके सुचिंतित विचारों को जानने की जिज्ञासा रहेगी।

अंत में, मैं सभी शोध–लेखकों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिनके सहयोग से ही पत्रिका अपना यह कलेवर ग्रहण कर रही है। पत्रिका के इस कलेवर को निर्धारित करने वाले 'आलोचन दृष्टि परिवार' के सदस्यों और सुधी–पाठकों के प्रति भी मैं अनुगृहीत हूँ, जिन्होंने अपने सहयोग, सलाह एवं अपनत्व से पत्रिका को निकालने का एक वैचारिक संबल प्रदान किया है।

शेष फिर...।

30 जून, 2021।

विषयानुक्रमणिका

1.	आधुनिक-भावबोध का नाटकीय-सन्दर्भ और 'ययाति' *डॉ. सुनील कुमार मानस*	1-3
2.	जनजातीय-जीवन में अस्तित्व का संघर्ष और उसकी औपन्यासिक-अभिव्यक्ति *डॉ. उमेश कुमार पाण्डेय*	4-8
3.	साहित्य में किसान की लोक-भावभूमि (धरती तोरे अंचरा मा बीज ला बिखेरन) *डॉ. मीता शर्मा*	9-13
4.	साठोत्तरी हिंदी कविता में अलगाव एवं संत्रास *डॉ. मंजुनाथ एन. अंबिग*	14-18
5.	हिंदी लघुकथा में मानव जीवन के विविध संदर्भ डॉ. नवनाथ गाड़ेकर	19-21
6.	विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों के संदर्भ में राष्ट्रीय पाठचक्रम की रूपरेखा... *सुधीर कुमार तिवारी*	22-25
7.	महादेवी के काव्य की प्रणय चेतना(संयोग पक्ष के संदर्भ में) *चिन्मयी मिश्र*	26-30
8.	भारत में इच्छामृत्यु का विश्लेषणात्मक अध्ययन *वैभव भण्डारी*	31-35
9.	योग-दर्शन में ईश्वर की अवधारणा एवं समाधि-लाभ *पूनम गुप्ता एवं डॉ. बी. आर. शर्मा*	36-39
10.	कोविड-19 महामारी के दौरान भारत में प्रवासी संकट : एक विश्लेषण *डॉ. ऋतेष भारद्वाज एवं डॉ. पिंकी पुनिया*	40-43
11.	इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता का स्वर *डॉ. शत्रुघ्न कुमार मिश्र*	44-46
12.	वीरेन्द्र मिश्र के गीतों में संवेदनात्मक-अवधारणा *मोहन बैरागी*	47-51
13.	लोकजीवन की भावसंगति दुनिया को उकेरता 'छ्करबाज़ नाच'(लौंडा नाच) *डॉ. सुनील कुमार शॉ*	52-54
14.	'हलाला' नारी-स्वतंत्रता के लिए एक चुनौती *जानी तुषार चंदुलाल*	55-58
15.	महिला शिक्षा : पर्यावरणीय संचेतना *मानसी पाण्डेय*	59-62
16.	तुलसी का समाज-दर्शन *डॉ. अर्चना पाण्डेय*	63-65

17. मृदुला गर्ग के आठवें दशक की कहानियों में भारतीय-नारी 66-69
मनोज कुमार सिंह

18. रीतियुगीन मुस्लिम कवियों की शृंगार-भावना 70-73
डॉ. अनुपम गुप्ता

19. हिन्दी उपन्यासों में थर्ड-जेंडर की सामाजिक चुनौतियाँ 74-77
अंकिता देवी

20. दलित साहित्य : आशय, अवधारणा और मुक्ति 78-81
किरण असवाल

21. रमेशचन्द्र शाह के उपन्यासों में धार्मिक एवं ऐतिहासिक वर्णन की प्रासंगिकता 82-85
कृपा शंकर

22. प्रेमचन्द के उपन्यासों में स्त्री-जीवन 86-89
शिप्रा श्रीवास्तव

23. योग-दर्शन में मन की अवधारणा 90-94
हिमांशु परिदा एवं डॉ. अंजला देवी

24. प्रेमचंद की दलित-जीवन से जुड़ी कहानियों का सांदर्भिक-विवेचन 95-98
डॉ. रमेश यादव

25. हानूश : एक कलाकार की मर्मांतक पीड़ा 99-100
मिथिलेश कुमार मिश्र

26. अशोक का धम्म 101-103
डॉ. अमित दूबे

27. गुर्जर-प्रतिहार अभिलेखों में वर्णित मंदिर-स्थापत्य 104-106
प्रवीण पाण्डेय

28. निजी क्षेत्र में कार्यरत ग्रामीण तथा शहरी महिला कर्मचारियों के कार्य-संतोष... 107-109
डॉ. अनामिका लिंका

29. **Analysing the Deteriorating Conditions of Prisons And Prisoners...** 110-113
Chaitanya Pant

30. **Transgressing the Boundaries: Resistance in *The Autobiography of a...*** 114-117
Dr. Anju K.N.

31. **Quest For Freedom In Mark Twain's Select Novels - A Pragmatic Study** 118-121
Chappali Vijaya Kumar & Dr. V. Ravi Naidu

32. **Psychological Distress : Origin and Expression** 122-125
Salvi Singh & Dr. Seema Singh

33. **Topic of Research Paper: The Plight of the Marginalised and....'Tara'** 126-128
Subhadeep Talukder

34. **Adverse Effects of Covid-19 : A Psychological Pandemic on the Way** 129-132
Dr. Anil Kumar Teotia

35. **Githa Hariharan's Female Protagonists in The Thousand Faces of Night...** 133-137
Dr. Naveen K. Mehta & Soumya Tiwari

36. **Role of ICT in Secondary Teacher Training Program with....** 138-142
Dr. Anita Joshi & Dr. Maya Joshi

37. **Challenges and impact of online Education during Covid19** 143-146
Dr. G. Sowbhagya

38. **Caste in a Foreign Land : Changing Aspects of an Indian Cultural...** 147-150
Kiran Jha

39. **Environment and Development : A Theoretical Study** 151-154
Kumar Prashant

40. **Mother as Oppressed Oppressor : Conceptualizing Internalized...** 155-158
Mariyam Parveen

41. **Reflection of Artistic Thoughts and Moral Vision in Iris Murdoch's...** 159-162
Dr. Naveen K. Mehta & Muskan Solanki

42. **An Analysis of Fake news on social media and its impact during covid...** 163-165
Ravi Shankar Maurya & Dr. Tasha Singh Parihar

43. **Criminology in Literature : Exploring the Subtle Crimes in Shakespeare...** 166-169
S. Jenosha Prislin & Dr. J. Santhosh Priyaa,

44. **Attitudes of U.G. Studeants Towards Social Media in Education** 170-173
Dr. Samir Kumar Lenka

45. **Spiritual Intelligence in the realm of Education : A Study on General...** 174-177
Mr. Sandip Sutradhar & Prof. Nil Ratan Roy

46. **Social Media Use and Its Impact on School Going Children** 178-181
Dr. Sapna Kashyap & Aarti

47. **Role of yoga for the mental and emotional well being** 182-185
Kaushal Kumar

48. **Reviewing the status of Psychological behavior and food security in...** 186-189
ILMA Rizvi, Ateeqa Ansari & Prof. Shahid Ashraf

49. **Cultural Archetypes in select novels of Achebe, Mohanty and Ngugi...** 190-192
Dr. B. S. Selina

50. **G. K. Mhatre : Revolutionary sculptor of Pre-Independence India** 193-195
Binoy Paul

51. **Are we actually riding on the learning wave in an ocean of Webinars...** 196-199
Dr. Ashish Mathur & Dr. Sona Vikas

52. **Role of the Mauzadars in the British-Nyishi Relations** 200-204
Dr. Tade Sangdo

53. **Contextualizing Jyotiprasad Agarwala's Political Ideology of Beauty...** 205-209
Dr. Umakanta Hazarika

54. **Study of Attitude of Arts And Science D.El.Ed Trainees Towards...** 210-214
Swati Pant Lohni & Dr. Maya Joshi

55. **Resistance through Persistence : A critical study of *The Vegetarian*** 215-218
Dr. Anju E. A.

56. **Accessibility of Assistive Technology for Inclusion of Differently Abled...** 219-222
Amit Shanker & Ravi Kant

57. **Justice delayed is justice denied : Prison and Multitudinal Traumatic...** 223-225
Smitha Mary Sebastian

58. **Gandhi's Concept of Religion** 226-228
Tinku Khatri

59. **Spatial Inequalities in the Distribution of Critical Household...** 229-233
Rambooshan Tiwari & Prashant Tiwari

60. **The New Future Of Event Management in Post COVID Era** 234-236
Anup M. Gajjar & Dr. Bhaveshkumar J. Parmar

61. **Students' Perception About Celebrity Endorsement : A Study of....** 237-241
Amit Kumar Pahwa & Dr. Ekta Mahajan

आधुनिक-भावबोध का नाटकीय-सन्दर्भ और 'ययाति'

डॉ. सुनील कुमार मानस*

आधुनिक भारतीय भाषाओं में आधुनिक नाटकों के लेखन की शुरुआत 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हो जाती है, जिसमें भारतीय स्वाधीनता के बीज–भाव भरने से लेकर सामाजिक, पारिवारिक, सांस्कृतिक जीवन के उत्कर्ष की अलख जगाई जाती है। साथ ही इन नाटकों में सामाजिक एवं व्यक्तिक स्वाधीनता का भावबोध भी सन्निहित रहता है, जिसके विविध परिप्रेक्ष्य एवं परिदृश्य हैं। यह क्रम लगभग स्वाधीन भारत तक चलता रहता है, लेकिन स्वाधीनता के बाद आधुनिक भाव–बोध के नाटकीय–लेखन की प्रारम्भ होता है जिसका प्रतिनिधित्व बंगला–भाषा के नाटककार बादल सरकार, कन्नड़–भाषा के नाटककार गिरीश कर्नाड, हिंदी–भाषा के नाटककार मोहन राकेश और मराठी–भाषा के नाटककार विजय तेंदुलकर करते हैं। इनके प्रतिनिधित्व में ही भारतीय नाटकीय लेखन और रंगमंच की दिशा और दशा बदल जाती है। इस दौर में पौराणिक मिथकों से लेकर समसामयिक नगरीय–जीवन के विविध परिप्रेक्ष्य एवं परिदृश्य को लेकर तमाम आधुनिक भाव–बोध के नाटक लिखे गए है, जिसकी एक विस्तृत भावधारा एवं विचारभूति हमें देखने को मिलती है।

भारतीय ज्ञानपीठ, पद्मश्री एवं पद्मभूषण पुरस्कारों से सम्मानित एवं विभूषित नाटककार गिरीश कर्नाड पौराणिक एवं ऐतिहासिक आख्यानों के माध्यम से आधुनिक भावबोध वाले स्त्री–पुरुष के संबंधों, राजसत्ता एवं लोकप्रियता के प्रति राजाओं और महाराजाओं की आसक्ति का निरूपण यथार्थवादी संवेदना के साथ करते हैं। यह संवेदना स्वाधीन भारत के राजनीतिक स्वरूप एवं उसकी स्थिति–अवस्थिति को भली–भांति व्याख्यायित करती है, तथा इस दौर के बदलते हुए स्त्री–पुरुष के संबंधों को विशेष रूप से केंद्र में रखती है, जो खासतौर से हमारे नगरीय–बोध के स्त्री–पुरुष के मानसिक–दैहिक समीकरण के रूप में उपस्थित हुआ है और यह विगत को गत के संदर्भ में विवेचित भी करता है। यही गिरीश कर्नाड के नाटकों– 'ययाति', 'तुगलक' एवं 'हयवदन' में क्रमशः दिखलाई पड़ता है। उनके नाटकों एवं विचारों की यह त्रयी भी है।

'ययाति' उनका पहला नाटक है, जो कन्नड़ भाषा में 1960–61 में प्रकाशित हुआ, जिसका पहला मंचन 1966 में ओम शिवपुरी के निर्देशन में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय रंगमंडल, दिल्ली द्वारा किया गया। इस नाटक का हिंदी–अनुवाद बी. आर. नारायण ने किया, जो राधाकृष्ण प्रकाशन द्वारा 1979 में प्रकाशित हुआ। यह नाटक एक प्रकार से इस संसारिक–जीवन के मोह और उसके यथार्थपरक काल्पनिक सत्य की तलाश करता है, और अंत में एक विडंबनात्मक वर्तमान में लाकर खड़ा कर देता है, साथ ही टूटे मन से सब स्वीकृत कर लेने के बाद भविष्य के लिए अकेला छोड़ देता है। इस नाटक में सारे पात्र अन्ततः अकेले ही पड़ जाते हैं। इसके अतिरिक्त यह नाटक स्त्री–पुरुष के संबंधों का एक नया संसार, आधुनिक भावबोध के आधार पर निरूपित करता है, जहाँ डर है, आशंका है, पीड़ा है, प्रताड़ना है, उपेक्षा है, जो अन्तर्विरोध के साथ विड़म्बनात्मक अनुगूँज या अन्तर्नाद करता है।

प्रस्तुत नाटक के विषय में कई बार यह भी कहा गया है कि इसें एक तरफ पुरानी पीढ़ी का लोभ है और दूसरी तरफ नई पीढ़ी का त्याग, और इन दोनों के बीच में एक स्त्री का मानसिक उद्देग है, और जिसके चलते ही, दूर जाती हुई स्त्री के रूप में देवयानी, मरती–खपती स्त्री के रूप में स्वर्णलता, दाय एवं बदला लेती हुई स्त्री के रूप में शर्मिष्ठा तथा अपने अधिकार से वंचित हो जाने पर हमेशा के लिए संसार को छोड़ देने वाली स्त्री के रूप में चित्रलेखा का चित्रण हुआ है। यह चित्रण आधुनिक भावबोध के स्त्री–पुरुष के संबंधों का वर्तमान समुच्चय उपस्थित कर देता है, जो हमारे समय में यत्र, तत्र और कमोवेश सर्वत्र विद्यमान दिखाई देता है।

*** प्रधान–संपादक–आलोचन दृष्टि, एवं प्राध्यापक– हिन्दी, बहाउद्दीन आर्ट्स कालेज, जूनागढ़ (गुजरात)**

नाटक की शुरुआत सूत्रधार के आत्माभिव्यक्ति से होती है। सूत्रधार एक प्रकार से नाटक की भूमिका को भी स्पष्ट करता है कि जो विगत है, उसकी गत समय में एक प्रतिध्वनि सुनाई देती है। इस प्रतिध्वनि की अनुगूँज इस नाटक की मूल अवधारणा एवं संवेदना है। एक तरफ हम सभी कहीं न कहीं स्वप्नजीवी होते हैं और यही स्वप्न–जीविता एक विचित्र किस्म का वैश्विक बिंब उपस्थित करता है, जिसको सत्य के रूप में स्वीकार करने पर आनंद भी है और रसिकता भी, किन्तु यह रसिकता और आनंद सत्य की गहरी संवेदना में हमें डुबोते हैं, जिसके भार से न रसिक बच पाते हैं और न ही विद्वान, अर्थात् कहीं न कहीं हर व्यक्ति गत के सामने विगत की प्रतिध्वनि सुनता है और उसकी इस आहट में अपने को या तो मजबूर पाता है या फिर कमजोर। ययाति पुरु के जिस यौवन को पाकर अपने को मजबूत बनाने की जहाँ कोशिश करता है वहीं वह इसी यौवन के चलते चित्रलेखा के सामने सबसे ज्यादा कमजोर और आत्मपीड़ित–लाचारी महसूस करता है और पुरु भी जिस त्याग के चलते अपने यौवन का सर्वस्व अपने पिता को प्रदान करता या लूटाता है, वह भी कहीं न कहीं भविष्य या वर्तमान के प्रति अकिंचित होकर यह कहने के लिए अभिशप्त हो जाता है कि– 'इन सबका अर्थ क्या है भगवान, इसका अर्थ क्या है ?[1] जिसे सूत्रधार सत्य की एक परिभाषा देते हुए स्पष्ट करता है कि 'कभी–कभी रास्ते में दूर तक चलते समय, दो रास्ते निकल नहीं आते? हम केवल एक को चुन सकते हैं। उसपर चलते समय हमें हमारा सही उद्देश्य भी दिखाई देता है। पर हमारे पीछे कानों से न सुनी हुई एक ध्वनि प्रवेश करती है; उस दूसरे रास्ते में जाते तो क्या होता? बहुत कुछ हो सकता था। पर...'[2] और इसी को सांकेतिक भाषा में वह कहता है कि 'आगे की बात मैं कैसे कह सकता हूँ? मैं केवल एक सूत्रधार हूँ। मेरी उंगलियों से चलायमान अदृश्य सूत्र मुझे भी दिखाई नहीं देते, पात्र भी दिखाई नहीं देते। दिव्य–चक्षु हो तो आप देख सकते हैं, यदि न दिखे तो भी चल सकता है। पात्र अभिनय करते हैं, अनुभव करते हैं...'[3] और यहीं से नाटक प्रारंभ हो जाता है जिसकी ओर इशारा देते हुए सूत्रधार कहता भी है 'अपने–अपने पाप–पुण्य कि गठरियों को खोलकर, थोड़ी देर के लिए, वर्तमान में विश्राम करने के लिए वे पात्र आए हैं। उन्हें देख–भर लेना हमारा काम है, यही हमारा काम है।'[4] शायद, नाटक का यही दृष्टांत है जो सूत्रधार द्वारा दिये गये कथन से स्पष्ट होता है कि इसे देख लेना ही अपने लक्ष्य के प्रति सजग हो जाना है या अपना भवितव्य बनाना है। और हम सभी भी, कहीं न कहीं इस सांसारिक रंगमंच के पात्र है, जो अभिनय भी करते हैं और अनुभव भी, साथ ही इन दोनों का द्वन्द्व भी हमारे अंदर चलता ही है।

नाटक की शुरुआत देवयानी और स्वर्णलता के आपसी वार्तालाप से होती है। स्वर्णलता की पीड़ा है कि शर्मिष्ठा लगातार उसका अपमान करती रहती है। देवयानी महाराज ययाति की पत्नी है और शुक्राचार्य की बेटी भी। स्वर्णलता दासी ही है; पर, शर्मिष्ठा बचपन की उसकी सखी है और वर्तमान की दासी। शर्मिष्ठा असुर जाति की कन्या है। इसी के चलते वह आर्यकुल में दासी होने के लिए अभिशप्त हो जाती है। ययाति से वह एक अंतरंगता रखती है। पर, जब देवयानी से उसका विवाह हो जाता है तो उसकी यह अंतरंगता दासत्व में बदल जाती है। असुर जाति की यह कन्या, चंद्रवंश के लिए विषकन्या का रूप धारण करती है और अपने दासत्व से ही पूरे राजमहल में विष घोलती रहती है और जिस विष से वह अपनी आत्महत्या करना चाहती है, वह विष ही अंततः राजमहल के आंतरिक भवितव्य तथा चित्रलेखा की मृत्यु का कारक बनता या बन जाता है।

एक प्रश्न यह बनता है कि अगर शर्मिष्ठा विष की अपनी डिबिया न निकालती, तो महाराज ययाति से उसका संसर्ग न होता, और यदि महाराज ययाति से उसका संसर्ग न होता तो शुक्राचार्य का अभिशाप भी उन्हे न मिलता, और अगर यह अभिशाप न मिलता तो उन्हें यौवन की आवश्यकता नहीं पड़ती, और यदि पुरु अपने यौवन का त्याग न करता तो तो उसकी (पुरु की)पत्नी आत्महत्या न करती। इन सारे प्रसंगों में कहीं न कहीं एक स्त्री (शर्मिष्ठा) के अतृप्त तन–मन की कुंठा या ईर्ष्या का भाव ही है। अगर ये सब न होता तो, दिन प्रतिदिन की मानसिक यातना से न तो देवयानी को गुजरना पड़ता, और न ही चित्रलेखा को। तब शायद सारी स्थिति सामान्य सी रहती और महाराज ययाति के नंदनवन के निर्माण का स्वप्न भी पूरा हो जाता, देवयानी उनका साथ छोड़ करके न जाती और न ही शुक्राचार्य का उन्हें अभिशाप मिलता। पर, चंद्रवंश की प्रसिद्धि में शर्मिष्ठा राहु की तरह प्रवेश करती है और उसके संपूर्ण वर्तमान और भविष्य को ग्रस लेती है। एक महत्वपूर्ण बात यह भी नाटक में ध्वनित होती है कि इन सारे प्रसंगों के बाद भी महाराज ययाति के अंत का सहारा शर्मिष्ठा ही बनती या दिखाई देती है। यहाँ एक प्रश्न हमारे मन में गूँजता रहता है कि इस बात का भवितव्य क्या होगा या क्या रहा होगा ?

एक बात यह भी ध्यान देने की जरूरत है कि पुरु भले ही ययाति का पुत्र हो किंतु वह भी एक असुर माता की संतान है, जो हमेशा के लिए ययाति को छोड़कर के चली जाती है, जिसकी सूचना पुरु को शुरू में ययाति नहीं देता। अभिशापित होने के बाद बताता है कि 'तुम्हारी धमनियों में राक्षस कुल का रक्त भी है।'[5] लेकिन यह रक्त भी चंद्रवंश का कर्ज़ अपने यौवन का त्याग करके अदा कर देता है। कितनी रोचक बात है कि जिस प्रजा को महाराज ययाति अपने पुत्र जैसा स्नेह देकर संरक्षण देते हैं, उस प्रजा का कोई भी सदस्य पुरु के तमाम प्रयासों और प्रलोभनो के बाद भी, अपने यौवन का त्याग नहीं करता या करना चाहता। ययाति आश्चर्य प्रकट करता है कि 'मैंने बच्चों की भांति जिस प्रजा को पाला, उस प्रजा ने? उनके लिए मैंने सौ–सौ बार युद्धों में प्राणों की बाजी लगाई है। उनमें से एक भी तैयार नहीं ?'[6] जिसका उत्तर पुरु स्वयं देता है कि 'कोई देवता होता तो आपके बुढ़ापे को आनंद से स्वीकार कर लेता। यह मानव हैं। एक ओर मृत विश्व है, दूसरी ओर अज्ञात युग है। इन दोनों के बीच का त्रिशंकु नरक उन्हें नहीं चाहिए।'[7] पर, इस नरक का भागी पुरु स्वयं बनकर देवत्व धारण करना चाहता है, पर सफल नहीं होता। इसका कारण शायद्, अपनी ही पत्नी के नजरों में उपेक्षित रहना या अपने पिता के स्वप्निल आकांक्षा को पूर्ण करने के सद्भाव है, जिसके चलते चंद्रवंश में उसकी पहचान बनती है ! इस संदर्भ में सबकी अपनी–अपनी अवधारणा हो सकती है, पर ध्यान से देखा जाए तो एक बात यह भी सांकेतिक रूप से मालूम पड़ती है कि पुरु को कहीं न कहीं अपने पर विश्वास की कमी महसूस होती है। वह अपने पिता और वंश के नाम के कारण कहीं भी अपनी पहचान नहीं बना पाता या उसकी जो भी पहचान बनती है, वह चंद्रवंश के कारण ही। उसका स्वतंत्र कोई अस्तित्व ही नहीं बन पाता। यहाँ तक उसकी पत्नी के मन भी इस बात की गहरी पीड़ा है कि अगर वह चंद्रवंश का न होता तो शायद मेरे स्वयंबर का प्रस्ताव न बदला जाता। ययाति के स्वप्निल भवितव्य को बचाने के लिए पुरु अपना यौवन त्याग देता है। पर इस भवितव्य के चलते चंद्रवंश का भवितव्य ही विदीर्ण एवं दिशाहीन हो जाता है, जिसकी सूचना से हम सांकेतिक रूप से परिचित हो जाते हैं और हमारे मन में कहीं न कहीं गहरा आघात लगता है, जो जिज्ञासा के रूप में प्रवहमान हो जाती है।

एक बात पुरु की बार–बार ध्यान आकर्षित करती है कि 'मेरे लिए बुढ़ापे का दर्द तो मिल गया पर परिपक्वता नहीं मिली।'[8] इसी मानसिक–अपरिपक्वता की ओर ययाति भी ध्यान आकर्षित करता है। शायद्, परिपक्वता का अभाव हमारे अतीत, वर्तमान एवं भविष्य को हमेशा ही अखरता है या रहा है, जिसे हम सभी कहीं न कहीं महसूस करते हैं। नाटककार गिरीश कर्नाड इस तरह परिपक्व होने या करने की ओर– हमें ले जाना चाहते हैं क्योंकि इसी परिपक्वता के अभाव में सबसे पहले शर्मिष्ठा टूटती है, स्वर्णलता टूटती है, देवयानी टूटती है, और फिर चित्रलेखा भी टूट जाती है और उसके साथ भविष्य का स्वप्न भी टूट जाता है। शायद् इसी स्वप्न के साथ ही ययाति टूटता है और फिर अंततः पुरु भी टूट ही जाता है; और कहीं न कहीं एक गहरे वैचारिक आघात–प्रतिघात के साथ, पाठक या दर्शक का मन भी टूटता है और यह टूटना ही, आधुनिक भावबोध की एक गहरी बिडम्बना है, जिसके लिए हम सभी कहीं–न–कहीं, आंशिक या पूर्ण रूप से अब अभिशप्त ही, हो चुके हैं।

सन्दर्भ–सूची :–

1. ययाति–गिरीश कर्नाड, अनुवादक– बी. आर. नारायण, सरस्वती विहार प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली 1980, पृ. 83।
2. वही, पृ. 9।
3. वहीं।
4. वही, पृ. 10।
5. वही, पृ. 47।
6. वही, पृ. 54।
7. वही, पृ. 56।
8. वही, पृ. 68।

जनजातीय-जीवन में अस्तित्व का संघर्ष और उसकी औपन्यासिक-अभिव्यक्ति

डॉ. उमेश कुमार पाण्डेय *

शोध–सारांश :– बाजारीकरण और भूमंडलीकरण के वर्तमान युग में आदिवासियों के समक्ष अपनी कला, संस्कृति, सामाजिक व्यवस्था, रीति–रिवाज और परंपराओं को बचाने का बहुत बड़ा संकट खड़ा हो गया है। जनजातियों के समक्ष आज दोहरी समस्या है। एक तरफ वे अत्यंत अविकसित अवस्था में हैं और जीवन के सर्वांगीण विकास हेतु प्रयासरत हैं, वहीं दूसरी तरफ उन्हें अपनी मौलिक पहचान को बनाये रखने के लिए भी लड़ाई लड़नी पड़ रही है। गरीबी और लगातार हो रहे शोषण के चलते आदिवासी समाज शेष समाज की मुख्य–धारा से नहीं जुड़ पाया है। आदिवासी और तथाकथित सभ्य समाज के बीच इस वैषम्य ने उनके अंदर विद्रोह और अलगाववाद की भावना को जन्म दिया है। छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, ओड़िशा, झारखण्ड, तेलंगाना इत्यादि राज्यों के अनेक जिलों में 'नक्सली समस्या' को भी हताशा और उपेक्षा से उपजी कार्यवाही बताया जा सकता है। नक्सली गतिविधियाँ जहाँ देश के लिए चुनौती हैं वहीं इनसे आम आदिवासी भी बुरी तरह प्रभावित हुआ है। आज हमें आदिवासी संस्कृति की रक्षा, भूख से मुक्ति और विस्थापन के बाद उनके पुनर्वास पर विषेष ध्यान देना होगा साथ ही उनके लिए रोजगार के नये अवसर सृजित करने होंगे। भेदभाव रहित और समतामूलक समाज के लिए हमें आदिवासी विकास की रणनीति में व्यापक परिवर्तन करना होगा।

कूट शब्द :- शोषण, अलगाव, उपेक्षा, विद्रोह, पीड़ा, विवशता, संघर्ष, बाजारवाद, भूमण्डलीकरण, अस्तित्व, समाज।

शताब्दियों से आदिवासी समाज अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहा है। औपनिवेशिक युग में शोषकों की एक पूरी फौज ने उनका सामाजिक–आर्थिक शोषण किया और तत्कालीन सरकार ने उनके अलगाव की नीति जारी रखी। देश की स्वतंत्रता के बाद हालांकि तमाम सरकारों ने उन्हें मुख्यधारा में लाने के प्रयास किये हैं लेकिन इसके बावजूद अभी भी वे शोषण, घुटन और अलगाव से पीड़ित हैं और अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे हैं। बाजारीकरण और भूमंडलीकरण के वर्तमान युग में आदिवासियों के समक्ष अपनी कला, संस्कृति, सामाजिक व्यवस्था, रीति–रिवाज और परंपराओं को बचाने का बहुत बड़ा संकट खड़ा हो गया है। जनजातियों के समक्ष आज दोहरी समस्या है। एक तरफ वे अत्यंत अविकसित अवस्था में हैं और जीवन के सर्वांगीण विकास हेतु प्रयासरत हैं वहीं दूसरी तरफ उन्हें अपनी मौलिक पहचान को बनाये रखने के लिए भी लड़ाई लड़नी पड़ रही है।

वर्तमान समय में आर्थिक संपन्नता सामाजिक प्रस्थिति का निर्धारक कारक बन गयी है। ऐसे में अपनी गरीबी और लगातार हो रहे शोषण के चलते आदिवासी समाज शेष समाज की मुख्य–धारा से नहीं जुड़ पाया है। आदिवासी और तथाकथित सभ्य समाज के बीच इस वैषम्य ने उनके अंदर विद्रोह और अलगाववाद की धारणा को जन्म दिया है। छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, ओड़िशा, झारखण्ड, तेलंगाना इत्यादि राज्यों के अनेक जिलों में 'नक्सली समस्या' को भी हताशा और उपेक्षा से उपजी कार्यवाही बताया जा सकता है। नक्सली गतिविधियाँ जहाँ देश के लिए चुनौती हैं वहीं इनसे आम आदिवासी भी बुरी तरह प्रभावित हुआ है। ''एक गैर सरकारी संगठन की रिपोर्ट के मुताबिक, देश के विभिन्न हिस्सों में जारी नक्सली गतिविधियों के कारण चार लाख से ज्यादा आदिवासी बेघर हो चुके हैं। एशियन इंडेजिनस एंड ट्राइबल्स पीपल्स नेटवर्क के मुताबिक ये विस्थापित लोग भोजन, पानी, छत, इलाज और आजीविका के साधनों के अभाव में मुश्किल से गुजर–बसर कर रहे हैं।''[1] इसके अतिरिक्त कई क्षेत्रों में हो रहे असमान विकास ने भी

***सहायक प्राध्यापक हिन्दी, शासकीय महाविद्यालय बलरामपुर, जिला– बलरामपुर–च्रामानुजगंज (छ0ग0)– पिन–497119।**

आदिवासियों के बीच विद्रोह की भावना को मुखर किया है। जनजातियों की कला और संस्कृति को संरक्षित करने की कोई ठोस नीति सरकार ने नहीं बनाई है। संरक्षण के अभाव में जनजातियों की बहुत सी ललित कलायें आज दम तोड़ रही हैं। देश की तमाम छोटी–छोटी जनजातियाँ भी आज लुप्त होने के कगार पर हैं। आदिवासियों के समक्ष आये इस संकट को हिन्दी के लेखकों ने गहरी संवेदना के साथ व्यक्त किया है, कई उपन्यासों में इस संकट के मूल कारणों की पड़ताल की गई है और उन परिस्थितियों को भी दर्शाया गया है जिसके चलते आज आदिवासियों का वजूद खतरे में है। 'शैलूष' उपन्यास में लेखक आदिवासियों के जीवन पर आये इस संकट को औद्योगीकरण से जोड़कर देखता है। उपन्यास में सब्बो, जुड़ावन नट से कहती है–''तुम लोगों की सबसे बड़ी कमजोरी है कि तुम लोग आगे के बारे में कुछ सोचते ही नहीं। अब वह सब जिसे तुम धरती मइया कहते थे, जहाँ तुम्हारा कबीला डेरा डालता था, जहाँ तुम्हारी छोकरियां नहाती–धोती थीं, जहाँ तुम्हारे गदेले गुल्ली–डंडा खेलते थे, जहाँ तुम्हारी भैंसें चरती–चोंथती थीं, जहाँ तुम्हारे मुर्गी–मुर्गियाँ दाना चुगती थीं, वह सब छिन जायेगा। तुम सोचते हो कि सोन पहड़ा पीली चट्टानों का ढेर है, पन्ना की पहाड़ियाँ हरे रंग की साड़ी में लिपटी सोनवां या उसी तरह की खूबसूरत परियाँ हैं जिसे तुम खून की होली खेलकर उठा लाओगे, जैसे तुम्हारे पूर्वज आल्हा–ऊदल ने किया था। तुम लोग देख नहीं पा रहे हो, मूरखचंदो, कि यह सारा इलाका किस तरह बदल रहा है कि सीमेंट, चूना, कोयला, जस्ता, अलुमुनियम के लिए ऐसी खुदाई होगी कि तुम्हारे जैसे आदिवासियों को पैर रखने की जगह नहीं मिलेगी।''[2]

'जंगल जहाँ शुरू होता है' में संजीव आदिवासियों के अस्तित्व पर आये इस संकट को पूरे परिवेश के साथ चित्रित करते हैं। उपन्यास के केन्द्र में बिहार के पश्चिमी चंपारण की थारू जनजाति की कथा है। लेखक डाकुओं की समस्या को एक सामाजिक समस्या के रूप में चित्रित करता है। कहीं न कहीं इस समस्या के लिए हम खुद जिम्मेदार हैं। दरअसल हम दूर बैठकर यह मान लेते हैं कि डकैतों का सफाया होना चाहिए लेकिन हम डकैत बनने की परिस्थितियों को नहीं देखते। हर आदमी अपने जीवन में सम्मान चाहता है और जब चाहकर भी उसे शोषण से मुक्ति नहीं मिलती तो वो बंदूक उठा लेता है। यह उपन्यास राजनीति, समाज और धर्म में आई गिरावट को भी रेखांकित करता है। आज भी थारू जनजाति अभाव, पिछड़ापन, शोषण, यंत्रणा, उत्पीड़न, विस्थापन, भूख जैसी समस्याओं से त्रस्त है। उन्हें एक ओर तो सेठ–साहूकार शोषित करते हैं वहीं दूसरी ओर पुलिस भी अत्याचार करती है। ऐसा लगता है कि सारा कानून गरीबों के लिए है। उपन्यास में मलारी अपने भतीजे काली से अपने जीवन की व्यथा व्यक्त करती है–''काहे को गरीब घर में जनम दिये हे भगवान? ई कैसी जिनगानी है वीरन, तुम राम की नाईं जंगल–जंगल भटक रहे हो। तुम्हारा भाई नहीं, बाप था बिसराम, दशरथ की तरह क्लेश से तड़प–तड़प के मरा, माटी की गति करने वाला भी कोई नहीं, जैसे वह किसी माँ की कोख से नहीं खोंढर में पैदा हुआ था। तुम्हारी सीता जैसी दुलहिन को कौन 'रवनवा' हर ले गया। उसको कोढ़ भी नहीं फूटता। अभी भी ई कठकरेज हम–तुम जिंदा ही हैं, हे भगवान।''[3] 'पठार पर कोहरा' उपन्यास में लेखक मुख्यतः विकास और औद्योगीकरण को आदिवासियों के जीवन में आये संकट का कारण मानता है। हालांकि समस्या तब शुरू होती है जब विकास में हिस्सेदारी के बावजूद आदिवासियों को उपेक्षित कर दिया जाता है, शताब्दियों से जिन संसाधनों पर उनका अधिकार चला आ रहा है विकास के नाम पर वे उससे बेदखल किये जा रहे हैं। लेखक इस पर चिंता प्रकट करता है–''आधुनिक विकास के नारों की उल्टियाँ करती चिमनियाँ आदिवासियों के जंगल, जमीन और पारंपरिक रोजगार तक छीनती गयी हैं। संजीव को लगता है, स्वतंत्र भारत के राष्ट्रीय विकास की जितनी बड़ी कीमत आदिवासी समाज ने चुकायी है उतनी शायद किसी समाज ने अकेले दम नहीं चुकायी।''[4]

धर्म की आड़ में आदिवासियों के शोषण की समस्या को 'गगन घटा घहरानी' उपन्यास में मनमोहन पाठक उठाते हैं। अपने परंपरागत धर्म को छोड़कर दूसरे धर्म को अपनाने से जहाँ आदिवासियों में सांस्कृतिक समस्याएं बढ़ी हैं वहीं धर्म के वर्चस्व की राजनीति ने उनके अंदर धार्मिक हीनता, पराजय बोध और अलगाव की भावना पैदा की है। नये और पुराने के द्वंद्व में फंसकर आदिवासी अपने आपको वैचारिक स्तर पर भी ठगा हुआ महसूस करता है। अनावश्यक धार्मिक हस्तक्षेप उनके दैनिक क्रियाकलापों को प्रभावित

करता है। उपन्यास में धार्मिक शोषण से आहत सोनाराम, टूना उराँव से कहता है–''लेकिन उनका धर्म तो हमें सजा दे रहा है, दादा! उनका धर्म, उनका समाज तो हमारे समाजों को, गाँवों को लीलता जा रहा है। दादा! हमारा धर्म, हमारे देवता क्या इतने कमजोर हैं कि वे अपने लोगों को बचा नहीं सकते? उनके फैलाए गए प्रपंच से गाँव के गाँव उजड़ते चले जा रहे हैं। जब हमारे लोग, हमारी जाति, हमारा समाज ही नहीं रहेगा तो हमारा धर्म किसके लिए होगा?''[5] वस्तुतः धर्मांतरण से परंपरागत आदिवासी संस्कृति नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार धार्मिक वर्चस्व की लड़ाई में अंततः नुकसान आम आदिवासी का ही होता है। धर्म के ठेकेदार केवल अपनी रोटी सेंकते हैं।

अस्मिता के लिए आदिवासियों के संघर्ष की समस्या को रांगेय राघव ने 'कब तक पुकारूँ' उपन्यास में यथार्थ और मार्मिक तरीके से प्रस्तुत किया है। उपन्यासकार करनटों की निर्धनता, खानाबदोशी, जीवटता, जरायमपेशा जाति के रूप में जीवन जीने की विवशता, पुलिसिया अत्याचार और उनकी स्त्रियों के यौन शोषण की समस्या को पूरी संवेदना के साथ चित्रित करता है। उपन्यास का मुख्य पात्र सुखराम तरह–तरह के शोषण का शिकार होता है, उसकी विवशता यह है कि उसके पास शोषित होने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं है। वह अपनी वेदना व्यक्त करता है–''हम जरायमपेशा हैं। हमारी कोई इज्जत नहीं है। कोई आसरा नहीं है, कोई हमारा मददगार नहीं। हमारे पास जमीन नहीं, कुछ नहीं। आसमान के नीचे सोते हैं, धरती हमारी माता है। हम घास की तरह पैदा होते हैं। रौंदे जाते हैं। हमारी औरतों को पुलिस के सिपाही दूब समझकर चर जाते हैं।''[6] सुखराम उपन्यास का ऐसा पात्र है जो लगातार अत्याचार सहता है। नट जाति को समाज में अत्यंत हेय दृष्टि से देखा जाता है और कई बार केवल इसी आधार पर उन्हें प्रताड़ित किया जाता है। जातीय अत्याचार की पीड़ा से व्यथित होकर वह कजरी से कहता है– 'नहीं कजरी, नहीं कहने से तो काम नहीं चल जाता! तू थोड़ा गाँव की ओर देख। किसान होता है? गरीब है, भूखा है, पर उसे भी बौहरा उधार देता है, उसकी भी इज्जत है। हम सबसे गए–बीते, कुत्तों से भी बदतर हैं। हम नट क्यों हैं कजरी?'

'क्योंकि हमने नटनी के पेट से जनम लिया है।'

'हमने ऊँची जाति में जनम क्यों न लिया?'

'यह तो भाग की बात है।'

'मानुस देह पाई है हमने, तो फिर हम पर इतने जुलम क्यों होते हैं?''[7]

समाज के तथाकथित ठेकेदारों द्वारा आदिवासी स्त्रियों के दैहिक शोषण को भी उपन्यासकार चित्रित करता है। जातीय अभिमान के चलते उच्च जाति के लोग आदिवासियों का बेखौफ शोषण करते हैं। विचार और व्यवहार दोनों से सामंती प्रवृत्ति के लोग समाज में मौजूद हैं जिनके लिए निम्न जाति की स्त्रियाँ केवल शारीरिक भूख मिटाने के लिए हैं। स्त्रियों के शोषण के मामले में छुआछूत और जातीय श्रेष्ठता के दंभ धरे के धरे रह जाते हैं। ठाकुरों के द्वारा करनट स्त्रियों के निर्मम शोषण पर सुखराम की भाभी कहती है–

'राधा की बहू कुएं में डूब मरी।'

'क्यों?'

'ठाकुरों ने उसे कहीं का न रखा।'

सुखराम ने दोनों हाथ उठाकर कहा : 'तू देख रहा है? यह है तेरी दुनिया! यह है तेरा न्याय! और कहने को हम कमीन हैं। ये लोग जाति के बल पर, डंडे के बल पर गरीबों की खाल खैंचते हैं। इनका घमंड सबको कुचलकर रखता है। यह नफरत के बल पर जीते हैं, ताकि दूसरों का घर बरबाद कर सकें।' वह कह नहीं सका। उसका गला रूंध गया। फिर रुककर कहा : 'और कह भाभी!' 'उन्होंने', स्त्री ने कहाः 'बुद्धा, हीरा और पंगा को नंगा करके बेतों से पीटा और उनकी औरतों के मिर्च भर दी।' सुखराम के रोंगटे खड़े हो गए। उसकी आँखें भय से निकल आईं। स्त्री ने कहाः 'पंगा की बहू के पेट में था। गिर गया। वह मर गई।''[8] सुखराम उच्च जातियों के इस निर्मम और घृणित अत्याचार से बहुत गहरी वेदना से गुजरता है। वह सोचता है, यह दुनिया ईश्वर ने आखिर क्यों बनायी है कि साधारण लोगों को जीवन जीने का भी अधिकार नहीं है। यहाँ गरीब हमेशा असहाय रहता है, जो ही पाता है वह उन सबका शोषण करता है। वह भगवान से पूछता है–''ये दुनिया नरक है। हम गन्दे कीड़े हैं। तूने यह संसार ऐसा क्यों बनाया है जहाँ

आदमी कटता है तो उसके लिए दर्द नहीं होता? ... वे बड़े लोग क्यों करते हैं ऐसा? क्या वे अपने धन और हुकूमत के लिए आदमी पर अत्याचार करने से नहीं कांपते? तू चुप है, तू जवाब नहीं देती? नट की छोरी पर जवानी आती है और गन्दे आदमी उसे बेइज्जत करते हैं, फिर भी वह रंडी की तरह जिए जाती है। जिए जाती है। मर क्यों नहीं जाती? हम सब मर क्यों नहीं जाते?''[9] कहना न होगा कि आदिवासियों की यह पीड़ा उनकी नियति बन गई है। वे बेवश और लाचार हैं।

आदिवासियों के जीवन पर आये संकट को 'अल्मा कबूतरी' में लेखिका बहुत संजीदगी के साथ उठाती हैं। बुंदेलखण्ड की कबूतरा जनजाति भी नटों की भांति ही खानाबदोश है और तथाकथित सभ्य समाज के लोग (कज्जा) उन पर तरह–तरह के अत्याचार करते हैं। कबूतरा जनजाति के संबंध में गोपाल राय लिखते हैं–''भारत में आज भी कुछ ऐसी अभागी जनजातियाँ हैं जो आजादी का अर्थ नहीं जानतीं। उनके पास न अपनी जमीन है, न ठिकाने का घर बार। औपनिवेशिक शासन ने इन्हें 'जरायमपेशा' जाति घोषित कर न केवल तथाकथित 'सभ्य' समाज की नजरों में उपेक्षा और घृणा का पात्र वरन् पुलिस के अत्याचार का सबसे नरम चारा भी बना दिया था। यद्यपि देश के आजाद होने के बाद इन जातियों को समान नागरिकता का अधिकार प्राप्त हो गया है, पर जीविकोपार्जन का कोई सम्मानजनक साधन न उपलब्ध होने के कारण इनके पुरुष अपराधकर्म और स्त्रियां देह–व्यापार के लिए विवश होती हैं।''[10]

'अल्मा कबूतरी' में लेखिका अस्तित्व के लिए आदिवासियों के संघर्ष को गहरी संवेदना के साथ चित्रित करती हैं। देश के सरकारी महकमें में आदिवासियों को अभी भी भेदभाव का शिकार होना पड़ता है। स्थिति यह है कि यदि कोई आदिवासी अपने परिश्रम से किसी पद को प्राप्त कर लेता है तब भी उससे दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाता है। सरकारी कार्यालयों में अभी भी मध्ययुगीन संस्कार हावी हैं। उपन्यास का पात्र रामसिंह पढ़–लिखकर मास्टर हो गया है लेकिन उसे तब भी स्वतंत्रतापूर्वक जीने का अधिकार नहीं है। पुलिस के अत्याचार और बाबुओं की मनमानी से वह रोज अपमानित और प्रताड़ित होता है। आफिस का चपरासी तक उसे घृणा की नजरों से देखता है। रामसिंह और आफिस के बड़े बाबू के बीच कहा–सुनी पर चपरासी कहता है– ''साले ऊँची जाति के लड़कों के हकों को हड़पकर चोर–उचक्कों से मास्टर–फास्टर बन गए। अब तक अम्मा लहँगा उठाए फिरती थी। बेटा कुर्सी पर क्या बैठा अम्मा सती–सावित्री हो गई। सिपाही अब तक होंठ चाटते हैं–बूढ़ी हो गई तो क्या औरत नहीं रही? और यह अपनी माँ का भडुआ, तुम्हें अपनी हैसियत समझा रहा है।''[11] उपन्यास में लेखिका दिखाती हैं कि किस तरह जाति के कारण उन पर अत्याचार होता है। देश की पूरी व्यवस्था भी शोषकों के पक्ष में ही खड़ी होती है और संघर्ष करने के बावजूद अंततः कबूतरा ही पराजित होते हैं। उपन्यास में रामसिंह माँ के अपमान के प्रतिशोध में चपरासी से झगड़ा कर लेता है। हालांकि उसकी कोई गलती नहीं है फिर भी व्यवस्था के चरित्र को देखकर उसे लगता है कि अंततः बलि का बकरा उसे ही बनना पड़ेगा। रामसिंह को अफसोस है कि उसकी माँ का सपना पूरा नहीं हो पाएगा। शोषकों के अत्याचार की पीड़ा और विवशता में रामसिंह को लगता है–''कैसा सपना देखा माँ ने, जो इस तरह कुचला गया। नौकरी निभाना बेखौफ जीना नहीं हो सकता। अपने लोगों को जगाने की बात सोची थी, वह भी बेकार है। सुख हमारी तकदीर में नहीं। नौकरी छूटने लायक अपराध कर आया। अब हथकड़ियों की बारी है। खुशी उनके लिए तो और भी नहीं, जो इंसान की तरह खुशी की छाया छूने को मरते हैं। माँ ने अपनी जिंदगी चुकाकर ऐसा ही सुख चाहा था, कितनी जल्दी दुख में बदल गया। इन लोगों को पता नहीं कि माँ अब इस दुनिया में नहीं। होती तो इन आतताइयों को पूरी बर्बरता के साथ जाँघों में भींचकर मार डालने का मौका ढूँढ़ती।''[12] पढ़–लिखकर समाज के लिए कुछ करने की चाह और सम्मान की जिंदगी जीने की अभिलाषा शोषकों के दमन से अधूरी ही रह जाती है। रामसिंह चाहकर भी जिंदगी की लड़ाई हार जाता है। वेदना के क्षणों में वह सोचता है–''माँ का कैसा कलेजा था! अन्याय सहन करके न्याय की राह बुहारती रही! मैं बेईमानों के बीच से ईमानदारी निकाल नहीं पा रहा! इनका बोया जहर का पेड़ बड़ा मजबूत है। उसकी जड़ें सैकड़ों वर्ष पुरानी हैं। पूरी तरह धरती में फैल गई हैं।''[13]

निश्चित रूप से आदिवासी समाज के समक्ष 21वीं सदी में भी गंभीर चुनौतियाँ हैं। भारत सरकार के साथ–साथ राज्य सरकारों ने भी आदिवासियों के उत्थान के लिए विभिन्न प्रयास किये हैं। संवैधानिक स्तर पर भी आदिवासी हितों की रक्षा की गई है लेकिन केवल योजना निर्माण और अधिकार देने से ही आदिवासियों की समस्या हल हो जायेगी ऐसा संभव नही है। हमें समाज की उस मानसिकता में भी परिवर्तन लाना होगा जिसके कारण आदिवासी आज भी हमसे कटे हुए हैं। आदिवासियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। विशेषतः महिला साक्षरता की क्योंकि इनकी स्थिति बहुत ही चिंताजनक है। प्राकृतिक संसाधनों पर आदिवासियों के हक को समझने की जरूरत है क्योंकि ये उनकी मिट्टी से जुड़ा मामला है। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू कहा करते थे कि ''आदिवासी कोई म्युजियम की वस्तु नही हैं। हमें उनको विकास की मुख्य धारा में शामिल करना है।'' कहना न होगा कि अब हम आदिवासियों को उनके हाल पर नही छोड़ सकते, हमें हाथ आगे बढ़ाना ही होगा। हमें आदिवासी संस्कृति की रक्षा, भूख से मुक्ति और विस्थापन के बाद उनके पुनर्वास पर विशेष ध्यान देना होगा। साथ ही उनके लिए रोजगार के नये अवसर सृजित करने होंगे। भेदभाव रहित और समतामूलक समाज के लिए हमें आदिवासी विकास की रणनीति में व्यापक परिवर्तन करना होगा, तभी हमारा एक भारत, श्रेष्ठ भारत का स्वप्न साकार होगा।

संदर्भ–सूची :–

1. नवभारत टाइम्स (दिल्ली संस्करण), 25 मई 2009।
2. सिंह, शिवप्रसाद, शैलूश, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ0 90, प्रथम संस्करण 1989।
3. संजीव, जंगल जहाँ शुरू होता है, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0, 201, प्रथम संस्करण 2000।
4. सिंह, राकेश कुमार, पठार पर कोहरा, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृ 155, द्वितीय संस्करण 2005।
5. पाठक, मनमोहन, गगन घटा घहरानी, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 85, द्वितीय संस्करण 2000।
6. राघव, रांगेय, कब तक पुकारूँ, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली, पृ0 117, संस्करण 2002।
7. वही, पृ0 147।
8. वही, पृ0 267।
9. वही, पृ0 268।
10. राय, प्रो. गोपाल, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 389, प्रथम संस्करण 2002।
11. पुष्पा, मैत्रेयी, अल्मा कबूतरी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 102, प्रथम पेपरबैक संस्करण 2004।
12. वही, पृ0 102।
13. वही, पृ0 103।

साहित्य में किसान की लोक-भावभूमि
(धरती तोरे अंचरा मा बीज ला बिखेरन)

डॉ. मीता शर्मा*

साहित्य के क्षेत्र में रचनाकार के लिए परम्परा का ज्ञान आवश्यक है। परम्परा और रूढि में अन्तर होता है। रूढ़ि जड़ होती है और परम्परा निरन्तर विकासशील। अतीत पहले का वर्तमान है अतः अतीत और वर्तमान के दोहरे अस्तित्व की ऐतिहासिक चेतना से ही विकास की परम्परा का ज्ञान होता है। साहित्य में किसान की परम्परा को इसी दृष्टि से देखने–समझने की आवश्यकता है। परम्परा की यह विकासशील यात्रा आधुनिकता के बिना पूर्ण नहीं होती क्योंकि आधुनिकता उसे नए मूल्यों के प्रति सचेत करती है। किसान के जीवन को आधुनिक भाव बोध ने भी प्रभावित किया है। साहित्य में किसान की चेतना, उसका यथार्थ, परम्परागत जीवन शैली के साथ–साथ उसका आधुनिक बोध किस प्रकार अभिव्यक्त हुआ है, विचारणीय है।

भारत कृषि प्रधान देश है एवं कृषि हमारा मुख्य कार्य रहा है। न केवल खान–पान बल्कि हमारे यज्ञानुष्ठान भी कृषि से जुड़े हुए है। पर्व–उत्सव, संस्कार, अभिषेक या उपहार तक में किसी न किसी धान्य की उपस्थिति अनिवार्य रूप से रहती हैं। उदाहरण स्वरूप हिन्दू समाज में भादौ की पंचमी को 'ऋषि पंचमी' के रूप में मनाया जाता है। इस दिन कश्यप, अत्रि, भारद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और वसिष्ठ इत्यादि सप्त ऋषियों की पूजा होती है। इस दिन व्रत करने वाली महिलाएं अपने घर के आसपास खड़ी वनस्पति को खोजने जाती हैं। सांवा, मलीचि, अपामार्ग, दूर्वा आदि को खोजती है और उखाड़कर ले आती है। घर पर उनको पीले परिधान या धागों में लपेटती हैं और ऋषि बनाकर पूजा करती हैं। व्रतवार्ता तो महाभारत के प्रसंग की करती हैं ही... मगर इसमें कहीं न कहीं कृषि की परम्परा का भी निहित है; जो हमारे धर्म व संस्कृति से जुड़ी हुई है।

'काश्यपीय कृषि पद्धति' की भूमिका में श्री कृष्ण जुगनू लिखते है– ''वैसे हमारे यहां देवियों का नामकरण भी इसी कृषि.वनस्पति के कारण हुआ है। जैसा कि मार्कण्डेय पुराण में कुष्मांडा व शाकम्भरी के लिए कहा गया है और यही मत बाद में शिवपुराण में भी लिया गया है कि शाक.सब्जियां उगाने के कारण देवी का नाम शाकम्भरी हुआ। आत्मदेह समुद्भूतैः शाकैर्लोका भृता यतः। शाकम्भरीति विख्यातं तत्ते नाम भविष्यति।। (शिवपुराण उमासंहिता 50, 35)''[1]

धरती के आँचल में बीज को बिखेर कर धरती माँ को ऊर्वर, जीवनदायी और प्राणवान बनाने वाले कर्मवीर किसान की भूमिका देश के विकास में महत्वपूर्ण है। किसान सदियों से हल बैल और अब आधुनिक संसाधन लेकर खेत की जुताई करता रहा है। वह हमारा अन्न दाता है, अनुपजाऊ व ऊबड़ खाबड़ भूमि को अपने परिश्रम से उपजाऊ समतल और सुरम्य बनाता है। यह कार्य विश्व के सभी देशों में होता रहा है, लेकिन उस किसान का वर्णन इतिहास ग्रंथों और रचनाकारों के यहाँ कितना मिलता है, यह जानना भी रोचक और उपयोगी है। प्रस्तुत शोध लेख में वेदों से लेकर आधुनिक रचनाकारों की कलम एंव लोक साहित्य में कृषि और कृषि कार्य करने वाले किसान और उसके परिवार/सदस्य व पशुधन से संबंधित भावबोध का विश्लेषण किया गया है।

वेद यथार्थ में ज्ञान के पर्याय है। इससे जुड़ी अनेक विद्याओं में 'कृषि विद्या' का महत्व भी सर्वविदित हैं। 'जीवन निर्वाह के दस हेतुओं में कृषि एक है। मनुस्मृति में लिखा है– ''विद्या शिल्पं भूतिः सेवा गोरक्ष्यं विपणिः कृषिः। धृतिभैर्क्ष्यं कुसीदं च दश जीवन हेतवः।।'' (मनुस्मृति 10, 116) विद्या, शिल्प, भमिनिर्माण (ठेकेदार–कारीगर), गोरक्षा (पशुपालन), व्यापार, कृषि, कलाकार, भिक्षा और कसीदाकारी इन दस हेतुओं में कृषि को मानव जीवन–यापन का महत्वपूर्ण हेतु वैदिक काल से ही माना गया है।

*** सह आचार्य, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।**

ऋग्वेद का 'कीनाश' ही आज का किसान है। 'किसान' को ऋग्वेद में' 'कीनाश' कहा गया है। कीनाश' शब्द खेती और खेती करने वाले किसान की महत्ता व गरिमा का परिचायक हैं। 'कुत्सितः नाशयति' इति 'की नाशः' अर्थात् अन्न का उत्पादन करके कुत्सित (दुरवस्था हीनदशा एवं बुराई) का नाश करने वाला ही कीनाश अथवा किसान है। ऋग्वेद में कहा गया है कि देवताओ ंने जल से युक्त उत्तम भूमि में मधुर अन्न जौ, चावल आदि की खेती की, उस समय इन्द्र हलों का रक्षक (सीर पति) था और– उत्तमदाता महतगण 'कीनाश' (किसान) थे।

अन्न उत्पादन द्वारा अभाव तथा दारिद्रय को दूर करके राष्ट्र व समाज की समृद्धि प्रदान करने के कारण ही हमारे वेद में कृषक को अन्नपति और क्षेत्रपति कहकर स्तुति की गई है– 'अन्नां पतये नमः क्षेत्राणां पतये नमः।' वेद में कहा गया है– सत्ताशासक को कृषकों की सदैव सहायता करनी चाहिए–और कृषक को भी खेती स्वहित हेतु नहीं अपितु प्रजाहित को ध्यान में रखकर करनी चाहिए। किसान पालक होकर अपनी बाते करें तो उसका प्रभाव दीर्घकालिक रहता है। ऋग्वेद में कृषि कार्य करने वाले किसान का वर्णन किया गया है– 'यून ऊ षु नविष्ठया वृष्ण : पावकाँ अभि सोभरे गिरा।

गाय गा इव चर्कृषत।'[2] अर्थात् – हे सोभरि ऋषे ! जिस प्रकार कृषक कृषि कार्य करते समय अपने वृषभों को रिझाने के लिए गीत गाते हैं, उसी प्रकार आप उन शक्तिशाली पवित्र तथा नव (युवक) वीर मरुतों के लिए नवीन स्तोत्रों का पाठ करें। इसी प्रकार संस्कृत साहित्य में कृषक का वर्णन मिलता है जहाँ उसके दुर्भाग्य को रेखांकित किया गया है– ''कृषीवलः बीजच्छलेन स्वयौवनं क्षेत्रे निक्षिपति तथापि/तस्य–कोष्ठागारे सन्ति वञ्चनायुक्ता निराशाः।।''[3] अर्थात् कृषक बीज के व्याज से अपने यौवन को सींचता है तथापि उसके कोष्ठागार में रहती है वंचनायुक्त निराशायें।

वाल्मीकि रामायण में हेमन्त ऋतु वर्णन में रबी की फसल का वर्णन मिलता है– ''नीहारपरुषो लोकः पृथिवी सस्यमालिनी। जलान्यनुपभोग्यानि सुभगो हव्यवाहनः।।''[4] भावार्थ यह है कि इस ऋतु में अधिक ठण्डक या पाले के कारण लोगों का शरीर रूखा हो जाता है। पृथ्वी पर रबी की खेती लहलहाने लगती है। जल अधिक शीतल होने के कारण पीने के योग्य नहीं रहता है आग बड़ी प्रिय लगती है। कवि ने आगे वर्णन किया है– ''बाष्पच्छन्नान्यरण्यानि यवगोधूमवन्ति च। शोभन्तेऽभ्युदिते सूर्ये नदद्भिः कौच्चसारसैः।।''[5] अर्थात् : जौ और गेहूँ के खेतों से युक्त ये बहुसंख्यक वन भाप से ढँके हुए हैं तथा क्रौंच और सारस इनमें कलरव कर रहे हैं। सूर्योदय काल में इन वनों की बड़ी शोभा हो रही है। ''लोकं सुवृष्टया परितोषयित्वा, नदीस्तटाकानि च पूरयित्वा। निष्पन्नसस्यां वसुधं च कृत्वा, त्यक्त्वा नभस्तोयधराः प्रणष्टाः।।''[6] अर्थात् – अच्छी वर्षा से लोगों को संतुष्ट करके, नदियों और तालाबों को पानी से भरकर तथा भूतल को परिपक्व धान की खेती से सम्पन्न करके बादल आकाश छोड़कर अदृश्य हो गये। महाकवि कालिदास ने ईख के खेत का वर्णन किया है– ''इक्षुच्छायानिषादिन्यस्तस्य गोप्तुर्गुणोदयम्/आकुमार कथोद्घातं शालिगोप्यो जगुर्यशः।।''[7]

ईख की छाया में बैठी हुई साठी आदि धान की रखवाली करने वाली किसानों की स्त्रियों ने रक्षा करने वाले उन रघु महाराज के शूरता उदारता आदि गुणों से प्रकट हुए बालकों तक से तारीफ किये गये यश का गान किया। इसी तरह प्राकृत साहित्य में तो किसान को राजा से भी श्रेष्ठ माना गया है। 'जयसेण कहा' में वर्णन मिलता है– ''वारि हलिओ वि हु भत्ता अनन्नभज्जो गुणेहि रहिओ वि।/ मा सगुणो बहुभज्जो जइराया चक्कवट्टी वि।।''[8] अर्थात् – अनेक पत्नी वाले सर्वगुण सम्पन्न चक्रवर्ती राजा की अपेक्षा गुणविहीन एक पत्नी वाला किसान कहीं श्रेष्ठ है। अपभ्रंश साहित्य में भी किसान की सम्पन्नता का वर्णन है– ''च्यारि बइल्ला धेनु दुइ, मिट्ठा बुल्ली नारि।/काहुँ मुंज कुडंवियाहँ गयवर बज्झइ वारि।।''[9] अर्थात् – जिसके घर चार बैल, दो गायें और मीठा बोलने वाली स्त्री हो, उस कुटुम्बी (किसान) को अपने घर पर हाथी बाँधने की क्या जरूरत हैं। प्रसिद्ध प्रेमाख्यान ''ढोला मारू रा दूहा'' में नायिका कह रही है– ''ढाढ़ी एक सँदेसड़उ, ढोलइ लगि लइ जाइ। कण पाकड, करसण हुअउ, भोग लियउ घरि आइ।।''[10] हे ढाढी ! एक संदेशा ढोला तक ले जाओ – खेती हो गई, अन्न पक गया, तुम घर आकर अपना भोग लो। इसी तरह जब अन्नकण पककर गिरने लगे हैं पृथ्वी जल के कारण शीतल हो गई है तो वह प्रियतम को अपने साथ ही रहने का

आग्रह करती है– मेह बरसने से अन्न बहुत हो गया है। पृथ्वी जल के कारण शीतल हो गई है। खेती पक गई अन्नकण पककर गिरने लगे बताओ ऐसे समय में कौन गमन करेगा।

हिंदी साहित्य के आदिकाल में अब्दुल रहमान ने 'संदेशरासक' में व चंदबरदाई ने 'पृथ्वीराजरासो' में किसान वर्ग और अमीर वर्ग के खान–पान के अंतर का वर्णन किया है– ''पय सक्करी सुभत्तौ, एकत्तौ कनय राय भोयंति।/ कर कंसी गुज्जरीय, रब्बरियं नैव जीवंति।।''11 यदि दूध–शक्कर और भात मिलाकर (बड़े घरों की) तन्दुल खीर बनाया जाता है तो गरीब लोग क्या कण–भूसी मिलाकर मट्ठे की रबड़ी न डभकाएँ?)। महाकवि सूर की दृष्टि में किसान 'बापुरो' है– ''जैसे बसन कुसुँभ संग मिलि कै नेकु चटकपुनि सेत।/ जैसे करनि किसान बापुरो नौ नौ बाहैं देत।।''[12] तुलसी ने युग की पीड़ा को पहचाना और युगीन यथार्थ का वर्णन कवितावली में किया है– ''खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि/बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।/जीविका बिहीन लोग सीद्यमान सोच बस,/कहै एक एकन सों, कहाँ जाई, का करी?''[13]

रीतिकाल में किसान की दशा कैसी रही होगी हम समकालीन परिस्थितियों के अध्ययन से पता लगा सकते हैं। कवियों की वाणी इस दिशा में मौन है परंतु आधुनिक काल के भारतेंदु युग में किसानों के शोषण पर बालमुकुन्द गुप्त की 'कृषक क्रन्दन' कविता मिलती है जिसमें किसान की दशा का मार्मिक वर्णन है– ''जिनके कारण सब सुख पावे, जिनका बोया सब जग खावे।/हाय ! हाय ! उनके बालक नित भूखों के मारे चिल्लाएँ।।/काल सर्प की सी फुफकारें, लुएँ भयानक चलती हैं।/धरती की सातों परतें, जिसमें तवा सी जलती है।/तभी खुले मैदानों में, वे कठिन किसानी करते हैं।/ जब अनाज उत्पन्न होय, सब तब उठा ले जाय लगान।।''[14]

प्रयोगवादी कवि केदारनाथ अग्रवाल ने किसानों का वर्णन किया है– ''आसमान की ओढनी ओढे/धानी पहने फसल घँघरिया/राधा बन कर धरती नाची/नाचे हँसमुख कृषक संवरिया।।''[15]

भवानीप्रसाद मिश्र ने किसानों का वर्णन किया है जिसमें भोर होते ही वे हल बैल लेकर खेत जोतने चले जाते हैं–

''जोतना है खेत हल के साथ निकले/बीज बोना है कि दल के साथ निकले
सुबह की ठंडी हवा कपड़े नहीं हैं,/पैर रखते हैं कहीं पड़ते कहीं हैं।।''[16]

कवि नागार्जुन ने अपने खेत में हल चलाने का वर्णन किया है– ''अपने खेत में हल चला रहा हूँ/इन दिनों बुआई चल रही है/इर्द गिर्द की घटनाएँ ही/मेरे लिए बीज जुटाती हैं/हां, बीज में घुन लगा हो तो/ अंकुर कैसे निकलेंगे।।''[17] इसीलिए बाबा नागार्जुन को स्वस्थ बीज की चिंता है। रेखांकित पंक्तियों की व्यंजना भी उल्लेखनीय है। प्रेमचंद ने गोदान में होरी के माध्यम से किसान की दशा का वर्णन किया है– ''मैंने नहीं जाना जेठ की लू कैसी होती है और माघ की वर्षा कैसी होती है। इस देह को चीरकर देखों, इसमें कितना प्राण रह गया है कितना जखमों से चूर, कितना ठोकरों से कुचला हुआ। उससे पूछो, कभी तूने विश्राम के दर्शन किए, कभी तू छाँह में बैठा? उस पर यह अपमान! और वह अब भी जीता है, कायर लोभी, अधम। उसका सारा विश्वास जो अगाध होकर स्थूल और अन्धा हो गया था मानो टूक–टूक उड़ गया है।''[18] 'पूस की रात' में मुन्नी हल्कू से कहती है 'मैं कहती हूँ, तुम क्यों नहीं खेती छोड़ देते हो? मर–मर काम करो, उपज हो तो बाकी दे दो... बाकी चुकाने के लिए ही तो हमारा जनम हुआ है।''[19] भारतीय किसान की यही स्थिति है। हमारे यहाँ कृषि कार्य करना भी कुछ जातियों के जिम्मे रहा है 'कलम का सिपाही' में अमृतराय लिखते हैं ''खेती किसानी कुर्मियों का काम है कायस्थों की शान में इससे बट्टा लगता है।''[20]

देश की आजादी के पश्चात् आये अन्न के संकट को जहाँ किसान ने दूर किया और सीमा पर आये संकट को जवान ने। लाल बहादुर शास्त्री का नारा था 'जय जवान जय किसान' और भारत अन्न का उत्पादक बना। फणीश्वरनाथ रेणु ने 'मैला आंचल' में किसान का वर्णन इस प्रकार किया है– ''गाय–बैल, बाछा–बाछी और भैंस के पाड़ा की बिक्री धड़ा धड़ हो रही है। दूने सूद पर भी रुपया कर्ज लेकर जमीन

मिल जाए तो फायदा है। पाट का भाव पंद्रह रुपया है, ऊपर पचास भी जा सकता है। सौ भी हो सकता है। धान सोने के भाव बिक रहा है। जिसके पास जमीन नहीं, वह आदमी नहीं, जानवर है। जानवर घास खाता है, लेकिन आदमी तो घास खाकर नहीं रह सकता।''[21] यथार्थ चिनतन है किसान का, फिर भी किसान अपनी गरीबी, अभावों, चिन्ताओं को लोक के पर्व, परम्पराओं व गीतों की सरसता में बहा देता है। यही लोक संस्कृति की ताकत है।

लोक ने सदैव श्रम का स्वागत किया है। वह उत्साह के साथ कार्य सम्पादित करता है। लोक जीवन में श्रम और संगीत का अपना महत्त्व है। घर–घर में गूंजती घट्टी, बजते ऊँखळ और मूसळ चरखा सभी भारत वर्ष के श्रम प्रधान जीवन और पुरूषार्थ के प्रतीक चिह्न है। कृषि संस्कृति में सामूहिक श्रम की महत्ता हमेशा रही है और गीत–संगीत के साथ श्रम करने का आनन्द ही कुछ और है। लोक–मानस की सुख–दुखात्मक अनुभूतियों को समेटे किसानों के श्रम सम्बन्धित लोकगीत हिन्दी की सभी प्रमुख बोलियों (ब्रज, मैथिली भगही, भोजपुरी–राजस्थानी, बुंदेलखण्डी, बज्जिका, नेपाल, अवधि, हरियाणवी इत्यादि) में अत्यन्त हृदय स्पर्शी होते हैं। लोक के कृषक जीवन में स्त्री–पुरूषों के खेत में फसल बोते हुए, निराई, गुड़ाई, पशुचारन, फसल, काटते हुए, चरखा और घट्टी चलाते हुए ऐसे कई गीत हैं। कृषक समुदाय के भाव–अभाव, हर्ष–शोक, राग–विराग, सुख–दुख, जय–पराजय की अभिव्यक्ति लोक गीतों में बखूबी मिलती है।

श्रम की साधना और प्रकृति की आराधना में रत 'राम भणत' गोचारण', 'रामा रे' या 'रमेटरा', 'बिलवारी', 'भगत' 'ददरिया' 'रूमणी' और 'जँतसार' लोकगीत अत्यन्त लोकप्रिय हैं। खेतों में घण्टों होने वाले कमरतोड़ श्रम, नीरस किन्तु उत्पादक क्रियाओं को भी ये मधुर आशावादी गीत सरस बना देते हैं। अस्तगामी सूर्य की लाली धरती पर बिखरने लगती है। खेतों में काम करने वाली स्त्रियो को अपने बच्चों की याद सताने लगती है। दिनभर से छूटे बच्चे उनके लिए रो रहे होंगे। सांझ के सन्नाटे को भेदने वाली इस गीत की पंक्तियाँ अत्यन्त ही सुन्दर है– 'दिन डूबे पै धरा दई लम्बी मांग/किसान भैया बेरा तो भई घर जावे की/मोरे लरका रोइत हूँ हैं दोर/ किसान भैया बेरा तो भई घर जावै।[22]

श्रम लोकगीतों में हिमाचल प्रदेश के रोपाई गीत 'रूमणी' अत्यन्त सरस है। लोक साहित्य के अध्येयता डॉ. महीपाल सिंह राठौड़ ने राजस्थानी लोकगीत में कंधे पर हसिया रखा हुआ जवान (किसान) का मनोरम चित्र प्रस्तुत किया– ''खां दे जी दाँतलियो जवान, /बेटी ओ जाटा री जवान, /गाड़ी ओ जोतो रे जवान, / धोरा में हालां ला जवान, /थूंई म्हारी जोड़ी रो जवान।''[23]

कंधे पर हसिया रखा जवान हैं, जाटों की बेटी भी जवान हैं, गाड़ी को जोत लो जवान और चलो टीबे वाले खेत पर। जवान! तू मेरी जोड़ी का है। यहाँ जीवन का कर्मप्रधान रागात्मक सौन्दर्य अभिव्यक्त हुआ है। इस गीत में फसल काटने का उत्साह है, यहाँ जीवटता है, अभिलाषा है। इसी तरह गोंड जनजाति के गीतों में फसल की बुवाई, उसकी निराई, गुड़ाई के उत्सव सदृश उत्साह को ''हाय बैला रेंगय चलैयआर, काँधा में जुआड़ी बैला रेंगय चलो रे, आगू आगू बैला चलेय, पाछूले जौतेया, कांधा का नांदा बैयनारी पाछले निदैया बैला रेंगय चलैय आर।''[24] गीत के माध्यम से स्पष्ट किया है।

किसान साहित्य का वर्णन करते हुए देवेन्द्र सत्यार्थी ने सुखी किसान का सुन्दर बिम्ब प्रसतु किया है– बीघा बायर होय बांध जो होय बंधाये/भरा भुसौला होय बबुर जो होय बुवाये/बढ़ई बसे समीप बसूला बाढ़ धराये/परिखन होय सुजान बिया बोउनिहा बनाये/बरद बगौधा होय हारदिया चतुर सुहाये/बेटवा होय सपूत कहे बिन करे कराये[25] भावार्थ यह है कि 'सारा खेत एक चक हो। खेत के इर्द–गिर्द सिंचाई के लिए मेड़ बनी हुई हो। भूसे का कोठा भूसे से भरा हो, बबूल के पेड़ हों। तेज बसूले वाला बढ़ई पास हो। पत्नी समझदार हो ओर बीज बोने योग्य तैयारी कर रखती हो बैल बगौधा नस्ल का हो। हलवाहा होशियार और नेक हो। बेटा सपूत हो जो बिना हुक्म से ही सब काम करता–कराता हो।'

वस्तुतः वैदिक संस्कृति में किसान और कृषि कर्म का जो महत्त्व था लोक संस्कृति में उसका जो चित्रण है वह आधुनिक युग के आज के समय परिवेश के अनुसार बदला है। **किसान!** यह शब्द सामने आते ही जेहन में एक तस्वीर उभरती है– खेत में हल चलाते और ट्रैक्टर चलाते पुरुष की। इस तस्वीर में महिलाएं कहां हैं? भारत में कृषि क्षेत्र में स्त्रियों के महत्त्वपूर्ण योगदान के बावजूद उन्हें एक किसान के तौर पर पहचान नहीं मिलती। किसान मतलब पुरुष किसान ही क्यों? अगर बाजारवाद की आंधी में गांव तबाह हुए हैं, किसानी समाज के दुख–दर्द सघन हुए हैं, और वह जीवन संघर्षों से जूझ रहा है; तब सवाल उठता है कि ऐसे समय में साहित्य की क्या उपादेयता होनी चाहिए? किसान साहित्य में ऐसी रचनाओं की कमी नहीं है, जो अत्यन्त प्रभावकारिणी, रसमयी और प्रेम के भाव से ओत–प्रोत हैं ओर उनका अपना निराला महत्त्व है। हमारे साहित्य–सेवियों को किसान साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। इससे वे किसानों से अच्छी तरह परिचित हो सकेंगे और किसानों के लिए उपयोगी साहित्य की सृष्टि कर सकेंगे।

किसानों को साहित्य–क्षेत्र के साथ–साथ समाज, राजनीति और सिनेमा में भी अलग से सम्माननीय दर्जा दिया जाए। वैश्विक ग्राम के इस युग में हर विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय के पाठयक्रमों में किसान–साहित्य और किसान विमर्श को सम्मिलित करने की आवश्यकता है। क्योंकि किसान के बिना ये दुनिया नहीं चल सकती। कृषक संस्कृति शाश्वत–सनातन है और हमारे जीवन का मूलाधार भी। किसान समपूर्ण विश्व में प्राणीमात्र को प्राणवान बनाए रखने के लिए प्रार्थना करता है– धरती तोरे अंचरा मा बीज ला बिखेरन/कि सुआ हो..../रखि ले वे लजिया हमार कि सुआ हो/आये....। हे धरती माता! आपके चरणों में हमने बीज बो दिया है, हमारी लाज रखना और हम अच्छी फसल होने की कामना करते हैं ताकि आने वाला समय सुहावना हो। धन्य है किसान और उसका श्रम। अन्नां पतये नमः क्षेत्राणां पतये नमः।

संदर्भ–सूची :–

1. सस्यवेद, सम्पादक डॉ. श्री कृष्ण 'जुगनू': चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, प्र.सं, 2018, पृ.सं. 5–6 (भूमिका)।
2. ऋग्वेद संहिता, सम्पादक वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ब्रह्मवर्चस् शान्तिकुन्ज, हरिद्वार (उत्तरांचल), षष्ठ आवृति, संवत् 2061, सूक्त 20, पृ.सं. 56।
3. श्रीधरदासकृत–सदुक्तिकर्णामृत, राधावल्लभ त्रिपाठी (हिन्दी अनुवाद) साहित्य अकादेमी नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2007, पृ.सं. 99।
4. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, प्रथम भाग, गीता प्रेस गोरखपुर, चतुर्थ संस्करण, सम्वत् 2040 क्रमशः पृ.सं. 528, व 763।
5. वही, पृ.सं. 29।
6. वही, पृ.सं. 763।
7. महाकवि कालिदास विरचित 'रघुवंश' महाकाव्यम् चतुर्थ सर्ग, पं. हरगोविन्द शास्त्री चौखम्बा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, वि.सं. 2059, श्लोक 20 पृ.सं. 109।
8. प्राकृत साहित्य का इतिहास; डॉ. जगदीश चन्द्र जैन, चौखम्बा, विद्याभवन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण 1985, पृ.सं. 385।
9. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योगदान, नामवरसिंह, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, सन् 1997, पृ.सं. 302।
10. ढोला मारू रा दूहा, नरोत्तमदास स्वामी, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर संशोधित द्वितीय संस्करण 2001, पृ.सं. 103।
11. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, सन् 2000, पृ.सं. 94।
12. भ्रमरगीत सार, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं. 2049, पृ. 118।
13. कवितावली, तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर, सत्तावनवाँ सं 2073, संस्करण पृ.सं. 116।
14. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, गणपतिचन्द्र गुप्त, द्वितीय खण्ड, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, सन् 1994, पृ.सं. 35।
15. आधुनिक काव्य संग्रह, सं.–रामवीरसिंह, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, सन् 1994, पृ.सं. 251, 257।
16. वही, पृ.सं. 257।
17. नागार्जुन, सं.–मैनेजर पांडेय, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, चौथी आवृत्ति, सन् 2017, पृ.सं. 147।
18. गोदान, मुंशी प्रेमचंद, साहित्यागार, जयपुर, सन् 1991, पृ.सं. 398।
19. प्रेमचन्द 'पूस की रात', कहानी एकादशी, सं.–विजयलक्ष्मी, प्रगति संस्थान दिल्ली, सन् 2017, पृ.सं. 33
20. प्रेमचंद 'कलम का सिपाही', अमृतराय, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् 1992, पृ.सं. 5।
21. मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु, राजकमल प्रकाशन (पेपर बैक्स) नई दिल्ली सन् 1996, पृ.सं. 175।
22. मैथिली लोक–साहित्यः स्वरूप और सौन्दर्य, डॉ. सुधा गुप्ता, मिथिला रिसर्च सोसायटी, लहेरियासराय, दरभंगा, 2002 पृ.सं. 52।
23. 'लूर' श्रम लोक गीत विशेषांक, (डॉ. महीपाल सिंह राठौड़ कृत 'श्रम लोकगीतो का सौदंर्य लेख से उद्धृत) संपा. डॉ. जयपाल सिंह राठौड़ चौपासनी, जोधपुर प्र.सं. वर्ष 8, अंक 15–16, जनवरी–दिसम्बर 2010, पृ.सं. 43।
24. वही, पृ.सं. 36–37।
25. बेला फूले आधी रात, देवेन्द्र सत्यार्थी, राजहंस प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1948, पृ.सं. 369।

साठोत्तरी हिंदी कविता में अलगाव एवं संत्रास

डॉ. मंजुनाथ एन. अंबिग*

साठोत्तरी हिन्दी कहानी में सृजनात्मक धरातल पर अभिव्यक्त अलगाव एवं संत्रास संबंधी अनुभूतियों पर अस्तित्ववाद, मार्क्सवाद एवं आधुनिकता बोध का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। वैसे अलगाव और संत्रास के मूल में सामूहिकीकरण, औद्योगिकीकरण एवं महायुद्ध की विभीषिका अधिक सक्रिय रही है। यूँ तो अकेलापन, अजनबीपन, निर्वासन, व्यर्थता बोध, ऊब, मृत्यु और संत्रास 'नयी कहानी' और 'अकहानी' का केन्द्रीय तत्त्व रहा है। लेकिन आधुनिकता के प्रभावाधीन कुछ लेखकों ने अलगाव एवं संत्रास से संबंधित अनुभूतियों पर फार्मूलाबद्ध कहानियाँ लिखी हैं। अस्तित्ववाद से प्रभावित 'नयी कहानी' अनुभूति की प्रामाणिकता पर बल देती है। अनुभूति की प्रामाणिकता बाह्य वातावरण का यथातथ्य चित्रण न होकर, व्यक्ति के परिवेश में व्यक्ति को ही खोजने का प्रयास है। मूल्यों एवं मानवीय संबंधों का विघटन अकेलेपन का प्रधान कारण है।

भारत ने महायुद्धों की भारत–पाक विभाजन की त्रासदी एवं नर–संहार को सहा है। इस विभाजन ने सीमाओं के विघटन के साथ–साथ लाखों व्यक्तियों को अपने ही देश में निर्वासन जीवन–जीने को विवश कर दिया था। इस संबंध में कमलेश्वर ने सही लिखा था, "विभाजन में कत्ल, बलात्कार और अत्याचार ही नहीं हुए थे, बल्कि ऊपर से साबित दिखाई पड़ने वाला आदमी भी भीतर से पूरी तरह चटख गया था और उसके सारे विश्वास और मूल्य बर्बरता की आँधी से उड़ गए थे।" 'नयी कहानी' और 'समान्तर कहानी' युग में मार्क्स के उत्पादनात्मक अलगाव से संबंधित कहानियाँ भी लिखी गई। जहाँ इस अलगाव को संवेदनात्मक धरातल पर प्रस्तुत किया गया है, वहीं यह भाव प्रभावशाली ढंग से भी व्यक्त हुआ है। इसके अतिरिक्त हिन्दी के मध्यवर्गीय कहानीकारों का गाँव–कस्बों से महानगरों की ओर प्रस्थान भी साठोत्तरी हिन्दी कहानी में अलगाव–संत्रास को लाने का उत्तरदायी कारक रहा है। यह सच है कि शहरी सभ्यता अपनाने के बावजूद व्यक्ति के संस्कार एकदम नहीं बदलते। "संस्कार के धरातल पर अर्जित आदर्शों और स्थितियों द्वारा निर्मित विदूप यथार्थ के बीच एक गहरी खाई है, जो सतह से देखने पर दिखाई नहीं देती, किन्तु आन्तरिक रूप से अन्तर्विरोधों को जन्म देती है" हिन्दी का कस्बाती और मध्यवर्गीय कहानी लेखक भी इस अन्तर्विरोध का शिकार हो गया। उसे महानगर की विसंगति और संवेदनहीन यथार्थ का बोध गहराई से होने लगा। कहना न होगा कि अलगाव–संत्रास की सृजनात्मक अभिव्यक्ति के मूल में अस्तित्ववादी–मार्क्सवादी चिन्तन, महानगरीय प्रभाव, मोहभंग एवं विभाजन संबंधी कारण मुख्य रूप से कार्यरत रहे हैं।

असल में, अकेलापन समाज से संपर्कहीन होने की स्थिति है। इसके मूल में क्षोभ निहित रहता है। यह परिस्थितिजन्य विवशता भी है और स्वभावगत विशेषता भी। परिस्थितिजन्य अकेलेपन के मूल में संबंधों के विघटन की स्थिति है। साठोत्तरी कहानी में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से उभरकर सामने आई है। घर बनाने और टूटने की पीड़ा का चित्रण कहानी का मुख्य कथ्य बना और राष्ट्र निर्माण से विमुख अलगाया कुंठित व्यक्ति साठोत्तरी कहानी का केन्द्रीय पात्र बना। संबंधों के विघटन का मुख्य कारण मूल्य–संक्रमण की स्थिति है। इस विघटन को दाम्पत्य स्तर, पारिवारिक स्तर एवं मानवीय स्तर पर विश्लेषित किया जा सकता है। दाम्पत्य विघटन के विशिष्ट कारण व्यक्ति की अहमन्यता, मानसिक स्तर अथवा रुचि का अन्तर एवं पारस्परिक विश्वास का अभाव है। बदलते मूल्यों के दबाव के अन्तर्गत अहंनिष्ठ व्यक्ति–संबंधों में टकराहट एवं विघटन आना स्वाभाविक है। मोहन राकेश की 'एक और ज़िन्दगी' का पात्र प्रकाश अहं की दो स्थितियों के बीच फँसा हुआ किसी एक से भी समझौता नहीं कर पाता। पहली पत्नी बीना आर्थिक एवं शारीरिक दृष्टि से अपेक्षाकृत सुदृढ़ होने के कारण अहंवादी है और दूसरी पत्नी निर्मला उन्मादग्रस्त एवं अहंविहीन है। "निर्मला कभी भी बिना बात के हँसना शुरू कर देती ओर देर तक हँसती रहती.... वह उसे डाँट देता, तो भी वह उसी आकस्मिक ढंग से बिस्तर पर लेटकर हाथ–पैर पटकती हुई रोने लगती ।" एक ओर पुरुषोचित संस्कार प्रकाश को बीना के सम्मुख झुकने की अनुमति नहीं देते, तो दूसरी ओर अर्धविक्षिप्त निर्मला का

*** प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, चेन्नई।**

प्रलाप उसे जड़ बना देता है। अहंनिष्ठ प्रकाश ज़िंदगी के नए सिरे से शुरू करने के दोनों प्रयासों में बुरी तरह असफल होता है। उसका टूटे हुए संपर्क–सूत्रों को जोड़ने में उदासीनता न दिखाना परिस्थितिजन्य अकेलेपन से निकलने की छटपटाहट का द्योतक है। 'छोटे–छोटे ताजमहल' के देव राका का दाम्पत्य विघटन से उपजा अकेलापन भी अहंनिष्ठ होने का परिणाम है। निर्मल वर्मा की कहानी 'धागे' के रूनी, मीनू, केशी तीनों पात्र रूचियों की असमानता के कारण अपनी–अपनी अकेली ज़िदगी जीने को अभिशप्त हैं। रूनी पति से टूटकर केशी और निखिल के प्रति कोमल है। जबकि मीनू को अपने पति का उसी कमरे में बैठकर 'पीना' पसंद नहीं। केशी की आँखों में बसी रिक्तता समझे न जाने की पीड़ा की सूचक है। देर रात तक अकेले कमरे में पीना और रिकार्ड सुनते रहना, जिंदगी के सूनेपन के परिचायक हैं। इस दृष्टि से काशीनाथ सिंह की 'कस्बा', 'जंगल' और 'साहब की पत्नी' तथा उषा प्रियवंदा की 'स्वीकृति' कहानियों को भी देखा जा सकता है।

मुद्राराक्षस की कहानी 'काक्रोच' में पति–पत्नी के बीच पारस्परिक अविश्वास की झलक है। इस परस्पर अविश्वास के भाव से दबे देव और केशी असहज–अकेला जीवन जीते हैं। केशी के दुःस्वप्न एवं गर्भपात कराने का निर्णय अविश्वास के बोझ की अनुभूति एवं उससे मुक्त होने की छटपटाहट है। कुत्ते की मौत पर देव का प्रलाप अजन्मे बेटे की मृत्यु पर हुई वेदना का सूचक है। पति–पत्नी दोनों मानवीय संवेदना के बावजूद अपने–अपने अविश्चासों से घिरे हुए अकेलेपन का जीवन जीने को बाधित हैं। कमलेश्वर की 'तलाश' कहानी में पारिवारिक संबंधों का विघटन इतनी बुरी तरह से हुआ है कि माँ बेटी बन गयी है और बेटी माँ। बेटी से अलग होकर माँ और भी अकेली पड़ गई है। इसी संदर्भ में ज्ञानरंजन की 'संबध' और दूधनाथ सिंह की 'रक्तपात' कहानियों को भी देखा जा सकता है। महीप सिंह की 'कील' कहानी का पिता वृद्धावस्था जनित अकेलेपन को तोड़ने के लिए युवा बेटी में अद्वितीय आकांक्षा पालकर उसे आजीवन–अविवाहित बनाए रखना चाहता है। इससे स्वरित होता है कि वृद्धावस्था जनित अकेलेपन को तोड़ने के लिए व्यक्ति घोर स्वार्थी बनकर किसी के जीवन से भी खेल सकता है। रमेश बक्षी की कहानी 'दिल्ली में एक मौत' का महानगरीय व्यक्ति अपने चारों ओर की घटनाओं के प्रति इतना उदासीन हो गया है कि मौत जैसी भयानक घटना भी उसे चौंकाने का प्रभाव खो चुकी है। किसी परिचित की शवयात्रा में सम्मिलित होना उसे समय का अपव्यय लगता है।

उल्लेखनीय है कि अकेलेपन की भावना में क्षोभ निहित है तो अजनबीपन की पीड़ा का बिन्दु पहचान खोने का भाव है। इसका प्रमुख कारण महानगर का व्यस्त एवं आरोपित जीवन है। महानगर में गुमनाम होने की अनुभूति हिन्दी के मध्यवर्गीय कस्बाती लेखक की स्वानुभूति है। सुदर्शन चोपड़ा की 'जड़ें' कहानी में शहर का आत्मकेन्द्रित व्यक्ति अपनी ही नज़रों में अजनबी हो गया है। अपना ही नाम उसे दुविधा में डाल देता है। उसे उपनाम की ज़रूरत पुरानी ज़िंदगी को भूलने का उपक्रम मात्र मालूम होती है। भीष्म साहनी की 'पटरियाँ' कहानी का केशोराम भी गुमनाम होने की पीड़ा से क्षुब्ध पात्र है। सतीश जमाली की 'जीव' कहानी का केन्द्रीय पात्र कहता है, "यह शहर मेरा कभी नहीं हो सकता, कभी भी नहीं। यह शहर केवल हो सकता है कारों का, स्कूटरों का, बड़ी–बड़ी कोठियों–बंगलों का, रेस्तराओं का। निस्संदेह, यह कथन अजनबीपन को मुरखरित करता है"। उनकी 'थके हारे', कहानी भी आरोपित व्यवहार से संबद्ध अजनबी व्यक्ति की कहानी है। इन कहानियों का अजनबीपन भारतीय परिवेश में अनुभूत अजनबीपन की पीड़ा को उच्च सीमा पर अभिव्यक्त करता है।

निर्वासन अलगाव संबंधी संकल्पना है, जो परिवेश में आरोपित होने की अनुभूति से संबद्ध हैं। यह नए परिवेश में असमंजित अनुभव करने एवं स्थिति परिवर्तन के कारण केन्द्रीय सत्ता से अलग होने से उत्पन्न होता है। उषा प्रियवंदा की 'जाले' कहानी में नए संबंधों के बनने एवं पुराने परिवेश के टूटने की स्थिति का मार्मिक चित्रण है। प्रौढ़ावस्था में वैवाहिक जीवन में जकड़े जाने के बाद प्रो० राजेश्वर सिंह अपने ही घर में स्वयं को बाहरी आदमी समझने लगते हैं। वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता की कहानी 'कानवैन्ट' में निर्वासन से संबंधित सांस्कृतिक अलगाव का प्रभावी चित्रण है। कानवैन्ट स्कूलों में पढ़ने वाले भारतीय बच्चे अपनी संस्कृति–सभ्यता से ही विमुख नहीं होते, बल्कि कम पढ़े–लिखे माता–पिता के प्रति भी उपेक्षा भाव रखने लगते हैं। कहानी की अशिक्षित माँ का बच्चों के आने की प्रतीक्षा में छुट्टियों के दिन गिनना और उनकी उपस्थिति में अपने ही घर में अपरिचित हो जाना, उसके निर्वासन की असहनीय स्थिति है। वृद्धावस्था अथवा बेकारी

आदि कारणों से व्यक्ति का केन्द्रीय स्थिति से विस्थापित होना भी परिवेश के प्रति वितृष्णा भाव उत्पन्न करता है। अपनी धुरी से कटा हुआ व्यक्ति अभ्यस्त परिवेश न पाने के कारण वितृष्णा से भर उठता है। उषा प्रियंवदा की 'वापसी' कहानी में गजाधर बाबू की वापसी परिवर्तित परिवेश में स्थिति के छिन जाने के क्षोभ का परिणाम है। हँसते–खेलते बेटे–बेटियों का उनकी उपस्थिति में गंभीर अथवा औपचारिक हो जाना, उन्हें परिवार में अपने अपरिचित होने का बोध दिलाता है। इसी तरह सूर्यबाला की 'निर्वासित' कहानी के वृद्ध दम्पत्ति, दूधनाथ सिंह की 'सब ठीक हो जाएगा' का मिश्रा, श्रीलाल शुक्ल की 'यह घर मेरा नहीं' का लड़का एवं वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता की 'अनावश्यक पात्र' कहानी का ज्ञान बाबू केन्द्रीय स्थिति से च्युत होने पर पलायनवादी बनने की अपेक्षा असामाजिक प्राणी बन जाते है।

इसी संदर्भ में व्यर्थता बोध फालतू होने का अहसास है। उससे विक्षुब्ध व्यक्ति जीवन की अर्थहीनता से आहत होकर स्थिति को स्वीकार कर लेता है। ज़ाहिर है कि जीवन की अर्थहीनता नियति संबंधी प्रश्न भी है और महत्वपूर्ण भूमिका न निभा पाने की पीड़ा से संबद्ध अनुभूति भी। व्यक्ति का वस्तु के रूप में रूपान्तरण होकर दूसरे के उपयोग की वस्तु बनना इसका एक अन्य पक्ष है। असल में, जीवन की सार्थकता का प्रश्न तब उत्पन्न होता है, जब व्यक्ति सोचने को विवश हो जाता है कि वह क्यों और किस लिए है? इस प्रश्न के समुचित उत्तर के अभाव में व्यक्ति व्यर्थताबोध के दंश से घायल होता है। 'एक पंखयुक्त ट्रैजिडी' कहानी में नियति की क्रूरता के सम्मुख व्यक्ति की हास्यास्पद एवं असहाय स्थिति का प्रतीकात्मक चित्रण है । कमलेश्वर की 'फालतू आदमी', राजेन्द्र यादव की 'अभिमन्यु की आत्महत्या' आदि कहानियाँ जीवन की सार्थकता पर गहरा प्रश्न चिह्न लगाती हैं। यह भी कि महत्वपूर्ण भूमिका न निभा पाने की पीड़ा का संबंध भी जीवन की अर्थहीन स्थिति से जुड़ा हुआ है। प्रतिभा के उपयुक्त सही स्थान न मिलने पर व्यक्ति असंतुष्ट, क्रुद्ध अथवा पराजित अनुभव करता है। समाज के विशाल यंत्र से एक फालतू पुर्जे की तरह अलग जा पड़ने की अनुभूति उसे व्यर्थता बोध से घायल कर देती है।

पूँजीवादी व्यवस्था में दूसरों द्वारा उपयोग किए जाने की अनुभूति व्यक्ति की निजता को समाप्त कर उसे 'वस्तु' बना देती है। व्यक्ति का 'वस्तु' में रूपान्तरण उसके चयन की स्वतंत्रता को नष्ट करके उसमें व्यर्थता बोध जागृत करता है। इस संदर्भ में मोहन राकेश की 'आखिरी समान' और 'फौलाद का आकाश', मणि मधुकर की 'मरी हुई पहचान' और प्रयाग शुक्ल की 'रेत' कहानियों को देखा जा सकता है। 'रेत' कहानी का नरेश अपने ही खेतों में पैदा हुए अनाज के भरे बोरों के ऊपर बैठा हुआ भी भूखा है। वह स्वयं को व्यक्ति की वस्तु की तरह अनुभव करता है। 'रिश्ते' कहानी के अजुध्या बाबू का स्वाभिमान इस सीमा तक संवेदनशील है कि बेटे द्वारा माँ के श्राद्ध पर एक ही जगह पाँच बाह्मणों को न्योता देने की अपव्ययता पर क्षुब्ध होकर वे घर छोड़ने तक को तत्पर हो उठते हैं।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ऊब अलगाव से संबंधित मनःस्थिति है, जिसमें व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति अथवा वस्तु की अपेक्षा अपने से ही ऊब कर विरक्त जीवन जीने लगता है। ऊब रुचि एवं विशिष्ट उद्देश्य के अभाव की सूचक स्थिति है और यह यांत्रिक युग की देन है। हिन्दी में ऊब से संबंधित अधिकांश कहानियाँ 'अकहानी' युग में लिखी गई हैं। हिन्दी कहानी में ऊब का चित्रण निष्क्रियता जनित ऊब एवं दैनंदिन ज़िंदगी की एकरसता से संबद्ध ऊब के रूप में किया गया है। ऊब से संबंधित प्रमुख कहानियाँ हैं– हृदयेश की 'वक्त कटी', महेन्द्र, भल्ला की 'कुत्तेगीरी', गंगा प्रसाद विमल की 'उसका साथ' आदि। निर्मल वर्मा की 'अमालिया', रवीन्द्र कालिया की 'सिर्फ एक दिन', श्रीकान्त वर्मा की 'कल', मणि मधुकर की 'रणक्षेत्र', अवध नारायण सिंह की 'आत्मीय', सुदर्शन चोपड़ा की 'ऊब', रामकुमार की 'बारिश' और सतीश जमाली की 'अर्थतन्त्र' कहानियों में दैनंदिन ज़िन्दगी की ऊब को देखा जा सकता है। 'परिणय' कहानी का 'वह' ज़िन्दगी से ऊबा हुआ खंडित व्यक्तित्व है, जिसकी इच्छाओं एवं क्रियाओं में कोई तर्कसंगत संबंध दिखाई नहीं देता। 'तीन घंटे' एवं 'उत्तरार्ध' कहानियों में आन्तरिक लगाव के अभाव में शारीरिक संबंधों की व्यर्थता एवं उससे उत्पन्न ऊब का चित्रण है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि साठोत्तरी हिन्दी कहानी में संत्रास एवं मृत्यु बोध का व्यापक स्तर पर चित्रण हुआ है। संत्रास एवं मृत्युबोध असुरक्षित अनुभव करने से संबद्ध अस्तित्ववादी धारणाएँ हैं। संत्रास, भय के स्थायी रूप धारण कर लेने का परिणाम है। भ्रष्ट राजनैतिक व्यवस्था में ऊपर से नीचे तक फैले आतंक के कारण सामान्य आदमी असुरक्षित है। मोहन राकेश की 'एक ठहरा हुआ चाकू' , रवीन्द्र कालिया की

'काला रजिस्टर' और काशीनाथ सिंह की 'लोग बिस्तर पर' कहानियाँ भ्रष्ट तंत्र में व्याप्त संत्रास की कहानियाँ हैं। आर्थिक विषमता एवं बेकारी भी व्यक्ति को भविष्य के प्रति आशंकित करके असुरक्षा बोध से भर देती है। कर्ज़ के नीचे दबा आदमी हर दम संत्रस्त रहता है। आर्थिक विषमता से संबंधित प्रमुख कहानियाँ प्रेमचंद सहज बाला की 'सूर्योदय', राजेन्द्र यादव की 'भय' और शैलेश मटियानी की 'प्यास' हैं। 'सूर्योदय' कहानी में कर्ज़े का आतंक घर प्रत्येक प्राणी पर छाया रहता है। आठ वर्षीय मधु की छोटी बहन शालू के छीन जाने के भयंकर स्वप्नों से आतंकित रहती है।

महानगरीय संत्रास महानगर की भीड़ में गुमनाम होने, बेगानापन अनुभव करने एवं आर्थिक विषमताजन्य जीवन व्यतीत करने की त्रासद स्थितियों से जुड़ा हुआ है। रवीन्द्र कालिया की 'तफ़रीह' और निर्मल वर्मा की 'लन्दन की एक रात' कहानियाँ महानगरीय संत्रास के विविध पक्षों को चित्रित करती हैं। 'तफ़रीह' कहानी में महानगरीय व्यक्ति के आर्थिक विवशतावश गुमनाम होने का चित्रण है। गरीब व्यक्ति के लिए महानगर में रहने की पहली शर्त अपनी निजता को खोना है। व्यक्ति अपने घर में पराया बनकर रहने को विवश है। 'लन्दन की एक रात' कहानी में यह संत्रास रंग–भेद की नीति पर आधारित व्यवस्था,आर्थिक विषमता के परिणामस्वरूप बेरोज़गारी की समस्या एवं महानगरीय बेगानेपन की अनुभूति से जुड़ा हुआ है। पारिवारिक परिस्थितिवश अकेला और असहाय अनुभव करने की प्रतीति भी व्यक्ति मन को असुरक्षा भाव से भर देती है। असुरक्षा के मूल में शैशवावस्था का प्रेमविहीन, प्रतिकूल परिवेश है। अकेला पड़ने की दहशत एवं अतीत की भयंकर स्मृतियों से संबद्ध प्रमुख, कहानियाँ माहेश्वर की 'पेशाब' विष्णु प्रभाकर की 'नागफाँस', निर्मल वर्मा की 'दो घर', कृष्ण बलदेव वैद की 'मेरा दुश्मन', रमेश बक्षी की 'अक्स' एवं प्रयाग शुक्ल की 'अनहोनी' हैं। 'नागफाँस' कहानी की अकेले पड़ जाने की आशंका से संत्रस्त माँ अपने लड़के को आँखों से दूर करने की अपेक्षा उसे स्थायी रूप से बीमार बनाए रखने में अपना हित देखती है। 'मेरा दुश्मन' कहानी का 'मैं' विरासत में मिली अतीत की भयंकर स्मृतियों से संत्रस्त है। द्वन्द्व की स्थिति में वह कर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है कि दोनों ज़िन्दगियों में से किसी एक का चुनाव करना उसके सम्मुख समस्या बन जाता है रमेश बक्षी की 'अक्स' कहानी में एक साथ दो युगों में जीने की विवशता है, निर्मल वर्मा की 'डेढ़ इंच ऊपर', 'बीच बहस में', 'अन्धेरे में', और 'खोज', से. रा. यात्री की 'अभयदान', सुदर्शन चोपड़ा की 'स्वीकारान्त', विनोद शाही की 'श्रवण कुमार की खोपड़ी' और भीष्म साहनी की 'नया मकान' अकेलेपन की दहशत और अतीत की स्मृतियों से संबद्ध संत्रास को गहराई में चित्रित करती हैं।

साठोत्तरी हिन्दी कहानी में मृत्यु बोध भी संत्रास का एक हिस्सा बनकर उभरा है। देखा जाए तो संत्रास की तुलना में मृत्युबोध एक सीमित संकल्पना है। यह शारीरिक मृत्यु से भिन्न मानसिक अनुभूति है। महानगरीय जीवन के तीव्र गति से भागते जीवन में पिस जाने का आंतक, आत्म केन्द्रित व्यक्ति का आसन्न मृत्यु को लेकर हाहाकार, रोगग्रस्त व्यक्ति का मृत्यु से साक्षात्कार एवं युद्ध जनित मृत्यु बोध इसके विभिन्न पक्ष हैं। महीप सिंह की 'पारदर्शक' कहानी में दफ्तर जाते पति को विदा करती पत्नी मृत्यु संत्रास से ग्रस्त महसूस करती है। राजेन्द्र अवस्थी की कहानी 'भूचाल' का आशंकित पात्र दिन में सैंकड़ों मौतें मरता है। इसी प्रकार निर्मल वर्मा की 'कुत्ते की मौत' कहानी अकेलेपन से पीड़ित आत्म–केन्द्रित पात्रों की मर्मान्तक यंत्रणाओं का चित्रण है। गंगा प्रसाद विमल की 'दूसरे दिनों का इंतज़ार', भीष्म साहनी की' अमृतसर आ गया है', महीप सिंह की 'युद्धमन' और कमलेश्वर की 'युद्ध' कहानियाँ युद्ध एवं दंगों से संबद्ध संत्रास को चित्रित करती है।

निष्कर्षतः अलगाव और संत्रास विषयक उपर्युक्त विवेचन विश्लेषण इस तथ्य को ध्वनित करता है कि साठोत्तरी हिन्दी कहानी भारतीय परिवेश जनित संत्रास एवं अलगाव को ही अभिव्यक्त करती है। इनमें न तो आरोपित फैशन है और न ही पश्चिम की नकल। भ्रष्ट व्यवस्था, आर्थिक–विषमता, पारिवारिक विघटन महानगरीय व्यस्त जीवन, लंबी रोगग्रस्त अवस्था, युद्ध–दंगे आदि संत्रास और मृत्यु –बोध से संबंधित विविध स्थितियाँ हैं। इसका कारण साठोत्तरी कहानी का अस्तित्ववाद, मार्क्सवाद और आधुनिकता बोध से संपन्न होना है। अलगाव, अकेलापन, अजनबीपन, निर्वासन व्यर्थता बोध, ऊब आदि मनः स्थितियों के रूप में इन कहानियों में सशक्तता से अभिव्यक्त हुआ है। साठोत्तरी हिन्दी कहानी में अकेलापन परिस्थितिजन्य विवशता के रूप में तथा स्वभावगत अकेलेपन के रूप में चित्रित हुआ है। स्वभावगत अकेलेपन का चित्रण महानगरीय जीवन की उदासीनता को अभिव्यक्त करता है। निर्वासन परिवेश में आरोपित होने की अनुभूति से संबद्ध

वितृष्णा का भाव है। परिस्थितिजन्य अकेलापन, अजनबीपन निर्वासन तथा व्यर्थता बोध साठोत्तरी कहानी के प्रमुख कथ्य रहे हैं। संत्रास एवं मृत्यु बोध परिवेश में असुरक्षित अनुभव करने की भावना से संबंधित धारणाएँ हैं। संत्रास व्यवस्था, आर्थिक विषमता तथा महानगरीय व्यक्ति के बेगानापन अनुभव करने की स्थिति की उपज है। इस प्रकार साठोत्तरी हिन्दी कहानी में अलगाव एवं संत्रास अपने विभिन्न रूपों एवं परिवेशगत स्थितियों में अत्यंत प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त हुआ है।

संदर्भ–सूची :–

1. कमलेश्वर, 'नयी कहानी की भूमिका', अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, 1969, पृ०69।
2. श्याम सुन्दर मिश्र, 'अस्तित्ववाद और द्वितीय समरोत्तर हिन्दी साहित्य', विद्या प्रकाशन मंदिर, दिल्ली,1971, पृ० 270।
3. मोहन राकेश, 'रोयें रेशे', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1968, पृ० 96।
4. वही, पृ० 97।
5. राजेन्द्र यादव, 'भेरी प्रिय कहानियाँ', राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, 1976, पृ० 50।
6. निर्मल वर्मा, 'पिछली गर्मियों में', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1965, पृ० 76।
7. कमलेश्वर, 'मांस का दरिया' शब्दकार, दिल्ली, 1977, पृ० 25।
8. महीप सिंह, 'मेरी प्रिय कहानियाँ', राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, 1973 , पृ० 78।
9. रमेश बक्षी, 'एक अमूर्त तकलीफ', नीलाम प्रकाशन इलाहाबाद, 1972, पृ०।
10. सुदर्शन चोपड़ा, 'सड़क दुर्घटना', 1980, पृ० 77।
11. सतीश जमाली 'प्रथम पुरूष', पृ० 39।
12. उषा प्रियंवदा 'जिंदगी और गुलाब के फूल', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली,1971, पृ० 39।
13. वही, पृ० 45।
14. मोहन राकेश, 'पहचान', पृ० 71।
15. प्रयाग शुक्ल, 'इसके बाद, अमिताभ प्रकाशन, कलकत्ता, 1973, पृ० 35।
16. पानू खोलिया, 'एक किश्ती और', सुषमा पुस्तकालय, दिल्ली, 1967, पृ० 79।
17. हृदयेश, 'सारिका', जुलाई, 1971, पृ० 67।
18. श्रीकान्त वर्मा, 'झाड़ी', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 1966, पृ० 79।
19. अवधनारायण सिंह, 'आत्मीय', रूपाम्बरा प्रकाशन, कलकत्ता, 1969, 45।
20. मणि मधुकर, 'भरतमुनि के बाद', पृ० 107।
21. मोहन राकेश, 'पहचान', पृ० 21।
22. रवीन्द्र कालिया, 'काला रजिस्टर', रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1972, पृ०37।
23. काशीनाथ सिंह, 'लोग बिस्तरों पर', पृ०31।
24. प्रेमचंद सहज बाला, 'सदमा', यूनाईटेड बुक हाउस, दिल्ली, 1975, पृ० 9।
25. रवीन्द्र कालिया, 'काला रजिस्टर', रचना प्रकाशन इलाहाबाद, 1972, पृ० 40।
26. निर्मल वर्मा, 'जलती झाड़ी', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली,1975, पृ०112।
27. विष्णु प्रभाकर 'धरती अब भी घूम रही है', राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, 1972, पृ०51।
28. कृष्ण बलदेव वैद 'नई कहानियाँ' पत्रिका, 1965, पृ० 76।

हिंदी लघुकथा में मानव जीवन के विविध संदर्भ

डॉ. नवनाथ गाड़ेकर*

शोध सारांश :– हिंदी साहित्य में अन्य विधाओं की तरह लघुकथा भी आधुनिक काल में एक नई विधा के रूप में विकसित हुई है। लघुकथा में मानव जीवन के किसी घटना, प्रसंग, प्रभावित स्थिति या क्षण की अभिव्यक्ति होती है। हिंदी लघुकथा आकार से लघु होती है, परंतु उसमें 'गागर में सागर' समाने की क्षमता होती है। आकार से भले ही वह लघु हो परंतु मानव जीवन के विविध पहलू का चित्रण करने में वह सक्षम होती है। आधुनिक काल के डॉ. शंकर पुणतांबेकर, हरिशंकर परसाई, रघुवीर सहाय, माखनलाल चतुर्वेदी, कन्हैयालाल मिश्र, विष्णु प्रभाकर, अमरीक सिंह दीप, ब्रजेश शर्मा आदि कई साहित्यकारों ने मानव जीवन के विविध पहलू का चित्रण लघुकथा में किया है। जाति–पाँति, धार्मिक, राजनैतिक, शैक्षिक, स्त्री–पुरूष संबंध, भोगवादी दृष्टिकोण, सांप्रदायिक भेदभाव, नैतिक मूल्य आदि का चित्रण लघुकथा में सहजता के साथ लघुकथाकारों ने किया है। इसीकरण हिंदी लघुकथा के संदर्भ में यह कहने में संकोच नहीं लगता कि वर्तमान और आनेवाला समय लघुकथा का ही रहेगा।

बीज शब्द :– लघुकथा, मानव, जीवन, विधा, स्त्री–पुरूष संबंध, सांप्रदायिक, भावबोध, व्यंग्य, नैतिक मूल्य, राजनीति आदि।

भूमिका :– हिंदी साहित्य के आधुनिकाल में लघुकथा एक नविनतम् विधा के रूप में विकसित हुई है। साहित्य की अन्य विधाओं की तरह यह भी एक महत्वपूर्ण विधा है। हिंदी साहित्य की अन्य विधाओं में जिस तरह मानव जीवन के विविध पहलू का चित्रण हुआ हैं, उसी तरह लघुकथा में भी मानव जीवन के विविध पहलू का चित्रण होता है। अतः लघुकथा मनुष्य जीवन के सभी भावों को व्यक्त करने में सक्षम है। लघुकथा आकार से लघु होती है। परंतु उसमें किसी भी विषय की अभिव्यक्ति सहजता के साथ होती है। लघुकथा के संदर्भ में 'गागर में सागर' यह उक्ति उचित लगती है। संक्षेप में लघुकथा में मानव जीवन का विस्तृत चित्रण नहीं होता बल्कि उसके जीवन की कोई घटना या प्रसंग को बड़ी सहजता से चित्रित किया जाता है।

लघुकथा यह शब्द दो शब्दों के योग से बना है। एक लघु और दूसरा कथा अर्थात जो कथा आकार से लघु होती है। जिसमें कथा पूर्णतः विद्यमान हो उसे लघुकथा कहा जाता है। लघुकथा को परिभाषित करते हुए डॉ. शंकुतला किरण कहती है, ''लघुकथा लघु आकरीय गद्य कथात्मक रूप में जीवन के किसी प्रभावित क्षण, स्थिति या विचार घटना की वह अपनी अभिव्यक्ति जो अनेक प्रकार से पाठकों को प्रभावित कर उनकी चेतना को उदिप्त कर सके। तथा उन्हें कोई भी गंभीर चिंतन सौंप सके।''[1] डॉ. शंकर पुणतांबेकर लघुकथा को अपने शब्दों में परिभाषित करते हुए कहते हैं, ''लघुकथा कम–से–कम शब्दों का वह रूप विधान है, जिसके परिवेश से जुड़ी सघन अर्थवत्ता हमारी चेतना को एकदम झकझोर कर रख देती है।''[2] इस प्रकार विविध विद्वानों ने अपनी–अपनी दृष्टि से लघुकथा को परिभाषित करने का प्रयास किया है। माखनलाल चतुर्वेदी, कन्हैयालाल मिश्र, विष्णु प्रभाकर, हरिशंकर परसाई, रघुवीर सहाय, शंकर पुणतांबेकर, अमरीक सिंह दीप, ब्रजेश परसाई आदि ने अन्य विधा की तरह लघुकथा को जीवंत और अधिक सामर्थ्यवान बनाने का महत्वपूर्ण काम किया है।

हिंदी लघुकथाओं में जहाँ राष्ट्रीय एकता विश्वबंधुत्व का चित्रण बड़ी सशक्तता से हुआ है, वहाँ साम्प्रदायिक ताकतों का भेद खोलने का चित्रण भी हुआ है। समकालीन लघुकथाकार देश की राष्ट्रीय एकता और साम्प्रदायिक दंगो के पीछे रहे मानवीय कारणों पर भी खुलकर लिख रहें हैं। हिंदी लघुकथा उन सभी कारणों को चित्रित कर रही है, जिनसे राष्ट्र की राष्ट्रीय एकता मजबूत होती है। हिंदी और राष्ट्रीय एकता के

***सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, भारत महाविद्यालय, जेऊर (म.रेल) तहसील–करमाळा, जिला–सोलापुर (महाराष्ट्र) 413202।**

विचार को लेकर सुभाषचंद्र बोस ने जो कहा है, ''देश की एकता के लिए एक भाषा का होना जितना आवश्यक है, उससे अधिक आवश्यक है देश भर के लोगों में देश के प्रति विशुध्द प्रेम तथा अपनापन होना। अगर आज हिंदी भाषा मान ली गई है, तो इसलिए नहीं कि वह किसी प्रांत विशेष की भाषा है, बल्कि इसलिए कि वह अपनी सरलता व्यापकता तथा क्षमता के कारण सारे देश की भाषा हो सकती है, और सारे देश के लोग उसे अपना सकते हैं।''[3] इस प्रकार हिंदी लघुकथाओं में राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रीय भावना का चित्रण कई लघुकथाकारों ने किया है।

अमरीक सिंह दीप ने 'आजादी की फसल' इस लघुकथा में राजनीति पर करारा व्यंग्य किया है। गरीब जनता हमेशा अपने देश के प्रति सजग रहती है। देश के लिए अपनी जान दाँव पर लगाती है। परंतु अमीर और राजनेता लोग गरीबों का खून, पसीना एक करके आजादी की फसल लाता है। गरीबों के कमर में लाथ मार कर खेत के बाहर खदेड़ देता है। सभी फसल अकेला अपने घर में भर लेता है, ''जैसे गरीबों ने हल जोते, आजादी के बीज छींटे, उन्हें अपने खून पसीने से सींचा इस कार्य के दौरान गरीब बार–बार अमीरों के पास–जाकर उनसे सहयोग का अनुरोध करते हैं, परंतु उनके द्वारा उसे एक ही उत्तर मिलता तू चल मैं आता हूँ। चुपड़ी रोटी खाता हूँ। ठंठा पानी पीता हूँ। हरी–डाल पर बैठा हूँ।''[4] 'राजनीति' इस लघुकथा में नेता लोग दोगले प्रवृत्ति के होते हैं, इसका चित्रण किया है। राजधानी के पाँच सितारोंवाला होटल में प्रमुख पार्टी के दो नेता अर्थात एक सत्ताधारी और दूसरा विरोधी पक्ष नेता एक साथ बैठते हैं। उनकी सेवा में शराब, कबाब सब कुछ होता है। जनता के सामने यह सभी प्रकार आते ही हमेशा एक दूसरे को गलत साबित करने का एक भी मौका वे गँवाते नहीं। मैं ही कैसे अच्छा हूँ, मैं जनता के प्रश्न कैसे छोड़ता हूँ, गरीबों का प्रश्न मैं कैसे छोड़ता हूँ यही वे शोर मचाकर जोर–जोर से कहते हैं। इतना ही नहीं वे दोनों देश में सांम्प्रदायिक दंगे जनता को अंधेरे में रखकर कैसे करते हैं, वे दोनों सत्ता का बँटवारा कर लेते हैं। पाँच साल एक पार्टी दंगा करती है, तो दूसरी पार्टी सद्भावना रॅली निकालकर सत्ता का बँटवारा सही मात्रा में बराबर कर लेते है जैसे, ''ठीक हैं पिछली–बार मैंने दंगा करवाया था और मेरे दंगाग्रस्त प्रदेश की सद्भावना यात्रा तुमने की थी। इस बार सद्भावना यात्रा की मेरी बारी है।''[5] इस प्रकार अमरीक सिंह दीप ने अपनी लघुकथा के माध्यम से देश में चल रहे राजनेता के वर्तन का वर्णन किया है। वर्तमानकालीन राजनेता भी इसी प्रकार मिलीभगत करके गरीब जनता के साथ धोखाधड़ी करते हुए दिखाई देते हैं।

समाज में दहेज की बुरी प्रथा तेजी से चल रही है। इसके कारण कई नव वधुओं को अपने प्राण गँवाने पड़ रहे हैं। दहेज के कारण ससुराल के लोग अपनी बहु को परेशान करते हैं, उसे अपने माता–पिता से सोना, पैसा माँगते हैं। इसी प्रश्न को 'तीसरा प्रश्न' इस लघुकथा में ब्रजेश परसाई ने उठाया है, वे कहते हैं, ''एक मंच से एक बुजुर्ग ने अपने भाषण के बीच एक सवाल सामने बैठे हुए सज्जनों से किया कि जो लोग दहेज विरोधी है वे अपना हाथ उठाएँ। सैकड़ों हाथ उठ गये। उन्होंने उत्साहित होकर दूसरा प्रश्न पूछा कि अब कृपया वे सज्जन हाथ उठायें जो दहेज समर्थक है। सभाग्रह में किसी ने भी हाथ नहीं उठाया। वे बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने तीसरा प्रश्न पूछा तब क्या मैं आशा करूँ कि आप में से कोई सज्जन मेरी विवाह योग्य सुंदर कन्या को बगैर दहेज अपनी बहु बना लेंगे ?''[6] यह सवाल सुनते ही सारे लोग चुप हो जाते हैं। कुछ ही क्षणों में सभाग्रह खाली हो गया। समाज में केवल दूसरों को बताने के लिए दहेज नहीं लेते परंतु जब बारी आती है तब दहेज लेने के लिए तैयार हो जाते हैं। बड़ी मजाक की बात यह है कि सभी लोग अंदर से देहज लेना चाहते हैं, परंतु देना कोई नहीं चाहता। इस प्रकार ब्रजेश परसाई ने दहेज प्रथा कैसे बुरी है इसका चित्रण इस लघुकथा में किया है।

हिंदी लघुकथाओं में व्यंग्य का चित्रण किया हुआ दिखाई देता है। व्यंग्य के माध्यम से समाज में फैले विविध प्रश्नों पर उन्होंने व्यंग्य किया है। डॉ. बालेंद्रशेखर तिवारी इस संदर्भ में कहते हैं, ''वस्तुतः लघुकथा को एक ऐसी त्रि–आयामी रचना कहा जा सकता है। जिसमें एक ओर व्यक्ति तथा समाज के द्वंद्व की संक्षिप्त अभिव्यक्ति रहती है। दूसरी और आत्मा की अनुभूति है तथा तीसरी–और मानव मूल्यों की संकल्पना को वाणी–देने का सतत प्रयत्न रहता है। इसीलिए कुछ लघुकथाएँ गांभीर्य का बाना पहनकर बोध कथाएँ बन जाती है, और कुछ व्यंग्य गर्भित रहती है।''[7]

हिंदी लघुकथाओं में नैतिक भावबोध का भी चित्रण किया गया है। 'शैशव की ज्यामिति–तीन कोण' में विष्णु प्रभाकर ने नैतिक भावबोध का चित्रण किया है। इस लघुकथा में तीन पात्र है। माँ, बाप और बेटा टिंकू। माँ अपने चार वर्ष के टिंकू से हमेशा परेशान रहती है। दिन–ब–दिन टिंकू की शरारते बढ़ती जाती है। उसे एक दिन रहा नहीं जाता वह अपने पति के पास बेटे टिंकू की शिकायत करते हुए कहती है। टिंकू बिघड़ता जा रहा है उसे जरा संभालिए। टिंकू के पिता उस समय किसी कारण त्रस्त थे उन्होंने बिना सोचे टिंकू को एक तमाचा मारा। टिंकू की नजर अपने पापा के हाथ पर जाती है, अपने पापा के हाथ से उसे खून आता हुआ दिखाई देता है। वह अपने पापा से कहता है आप मुझे हाथ से ना मारो मुझे डंडे से मारो। देश में आए दिन दंगे फसाद होते रहते हैं। सामान्य मनुष्य दो वक्त की रोटी कमाने के पिछे पड़ा हुआ होता हैं। परंतु देश की सांप्रदायिक स्थिति बिछड़ने के कारण वह परेशान रहता है। हिंदू–मुस्लीम के नारे लगाकर नेता लोग आम जनता को आपस में बाँटकर अपनी–अपनी रोटी सेंकते हैं। हिंदू लोगों को मुस्लीमों के इलाकों में रहने से डर लगता है। मुस्लीमों को हिंदू लोगों की सोसायटी में घर नहीं मिल रहा इसका चित्रण रमेश बतरा की एक लघुकथा में हुआ है, जो आम आदमी की बेबसी को व्यक्त करती है। इस लघुकथा का नायक एक आम आदमी है, वह एक ऑफीस में काम करता है। बाहर वह जिस इलाके में रहता है उस इलाके में हिंदू और मुस्लीमों में दंगे फसाद शुरू हुए हैं। उसके पास रिक्शा को देने के लिए पैसा नहीं है। फिर भी वह रिक्शा पकड़कर घर जाता है। दंगो का फायदा उठाकर बिना पैसे दिए ही भागता है, तब रिक्शावाला उसे दुआ देते हुए कहता है, ''स्साला हिंदू है तो मुसलमानों के हाथ लगे और मुसलमान है तो हिंदुओं में जा फँसे''[8] हस प्रकार आम आदमी को दंगे फसाद से कोई लेना देना नहीं होता वे अपनी जान बचाना चाहते हैं। इस प्रकार हिंदू–मुस्लीम के संघर्ष के कारण सामान्य मनुष्य को जीवन जीना कैसे मुश्कील हो जाता है, इसका चित्रण उन्होंने अपनी लघुकथा में किया है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के रूप में हिंदी लघुकथा के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि भले ही लघुकथा आकार से लघु हो परंतु उसमें किसी प्रसंग या घटना का चित्रण बड़ी सहजता के साथ किया जाता है। वर्तमानकालीन कई जीवंत प्रश्नों को लघुकथा में चित्रित किया गया है। धार्मिक, जाति–पाँति, राजनैतिक, शैक्षिक, स्त्री–पुरूष संबंध, भोगवादी दृष्टिकोण, सांप्रदायिक भेदभाव, नैतिक मूल्य आदि. का चित्रण हिंदी लघुकथा में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। लघुकथा में किसी प्रसंग या घटना को व्यक्त करने के लिए कम शब्दों में अधिक प्रस्तुत करना पड़ता है। इस संदर्भ में हिंदी लघुकथा उपर्युक्त प्रश्नों का चित्रण करने में पूरी तरह से सफल हुई है। यह कहने में भी संकोच नहीं लगता कि वर्तमान और आनेवाला समय लघुकथा का ही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. शकुंतला किरण, हिंदी लघुकथा, संकेत प्रकाशन, अजमेर, संस्करण, 2010, पृ.21.
2. डॉ. शंकर पुणतांबेकर, श्रेष्ठ लघुकथायें, पुस्तक संस्थान, कानपुर, संस्करण, 1977, पृ.6.
3. मधुदीप, समय का पहिया, दिशा प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, 2015, पृ.78.
4. अमरीक सिंह दीप, आजादी की फसल, विकास प्रकाशन कानपुर, संस्करण, 2009, पृ.11.
5. अमरीक सिंह दीप, आजादी की फसल, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण, 2009, पृ.98.
6. ब्रजेश परसाई, तीसरा प्रश्न, सारिका (पत्रिका) 16 नवंबर, 1979 पृ.16.
7. डॉ. शंकर पुणतांबेकर, व्यंग्य आमकोश, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, संस्करण, 1994, पृ.4.
8. डॉ.बलराम अग्रवाल, हिंदी लघुकथा का मनोविज्ञान, राही प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, 2017, पृ.112.

विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों के संदर्भ में राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा का विवेचनात्मक अध्ययन

सुधीर कुमार तिवारी*

सार :– समावेशन शब्द का अपने आप में कोई विशेष अर्थ नहीं होता है। समावेशन के चारों ओर जो वैचारिक दार्शनिक सामाजिक और शैक्षिक ढांचा होता है, वही समावेशन को परिभाषित करता है। समावेशन की प्रक्रिया में बालकों को न केवल लोकतंत्र की भागीदारी के लिए सक्षम बनाया जा सकता है, बल्कि इस माध्यम से विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों को सीखने हेतु भी सक्षम बनाया जा सकता है। यह लोकतंत्र को बनाए रखने के लिए, दूसरों के साथ अंतक्रिया करने में अपनी महती भूमिका का निर्वहन करता है। समावेशन नीति को प्रत्येक विद्यालय एवं संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था के अनुरूप बनाए जाने की जरूरत है, जिससे विद्यालय में सभी बालकों की भागीदारी को सुनिश्चित किया जा सके। इस प्रकार समावेशी शिक्षा मूलतः विविधताओं की स्वीकृति का एक सकारात्मक दृष्टिकोण है।

प्रस्तावना :– व्यक्ति का व्यवहार उसके वातावरण (सांस्कृतिक, सामाजिक, पारिवारिक, भौगोलिक) के द्वारा प्रभावित होता है। यदि यह प्रभाव सकारात्मक हो तो बालक का विकास भी सामान्य रूप से गतिशील रहता है किन्तु यदि यह प्रभाव नकारात्मक हो तो बालक का विकास भी बाधित हो जाता है (शुक्ला, एस. के. 2015)। अर्थात विकलांगता शारीरिक रूप में लोंगों से उतना नहीं छीनती, जितना सामाजिक और मनोवैज्ञानिक रूप से वह उन्हें प्रभावित करती है। विकलांग व्यक्तियों के लिए भेदभाव मुक्त और समान जीवन का स्वप्न साकार करने के लिए संस्थागत प्रबंधों और कानूनी प्रावधानों में व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता है लेकिन सबसे बड़ी आवश्यकता विकलांग व्यक्तियों के बारे में हमारी सोच में बदलाव की है (कुमारी, 2013)। विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थियों में समावेशित शिक्षा पद्धति द्वारा उनके आत्मविश्वास तथा आत्म–सम्मान की भावना मजबूत होती हैं, और बच्चों में समुदायिक भावना का विकास होता है (सिंह, ए. के. 2008)। समाज का विकास उसमें निहित सम्पूर्ण मानवीय क्षमता का कुशलतापूर्वक उपभोग पर निर्भर करता है। इस प्रक्रिया में शिक्षक का उत्तरदायित्व एवं भूमिका का महत्वपूर्ण स्थान होता है।

वर्तमान समय में समावेशी शिक्षा विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों की शिक्षा के लिए एक नवीन उभरती अवधरणा है। यह अवधरणा अनेक परिवर्तनों जैसे– एकीकृत शिक्षा, विकलांगों की शिक्षा एवं विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा के बाद एक नए स्तर पर पहुँच चुकी है, जो प्राथमिक तौर पर स्कूली संस्कृति, नीतियों, व्यवहार एवं विद्यार्थियों से सीधे जुड़ी है। इस प्रकार समावेशी शिक्षा छात्रों की भागीदारी की निरंतरता को सशक्त बनाने का अभियान है, जिसमें निःशक्त बच्चे भी शामिल हैं। विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों की शिक्षा से संबंधित वर्तमान स्थिति विभिन्न विकलांगता युक्त बालकों की शिक्षा के लिए एक नई खोजपूर्ण प्रणाली है, जो अनेकानेक परिवर्तनों के पश्चात समावेशी स्तर पर पहुँची है। शिक्षा के परिवेश में समावेशन के आयाम हैं– पहुँच, स्वीकारिता, प्रतिभागिता और उपलब्धि। प्रत्येक छात्र की अपनी योग्यता होती है। उनकी योग्यता को पहचानना महत्वपूर्ण है और उनकी योग्यता के आधार पर कार्यों का क्रियान्वयन किया जाना आवश्यक है। प्रस्तुत चित्र में सभी जानवर की अपनी–अपनी क्षमता और योग्यता एवं विशिष्टता है लेकिन उनका मूल्यांकन उनकी योग्यता और क्षमता के आधार पर नहीं है–

विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों का वर्गीकरण :–

1. शारीरिक रूप से विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चे– दृष्टिबाधित, अल्प दृष्टिदोष, श्रवण बाधित, वाणी बाधित, बहु–विकलांगता, अस्थि–विकार।
2. बौद्धिक रूप से विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चे– (अ) धनात्मक– प्रतिभाशाली, सृजनशील, (ब) ऋणात्मक– बौद्धिक अक्षम, स्वलीनता, ध्यानाभाव अति सक्रियता विकार।

*** पी–डीएच. शोध छात्र, शिक्षा विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)।**

3. शैक्षिक रूप से विशिष्ट आवश्यकता वाले बालक– अधिगम अक्षमता, पिछड़े बालक।
4. सामाजिक रूप से विशिष्ट आवश्यकता वाले बालक– समस्यात्मक बालक, वंचित समूह, किशोर अपराधी, कुसमायोजित।

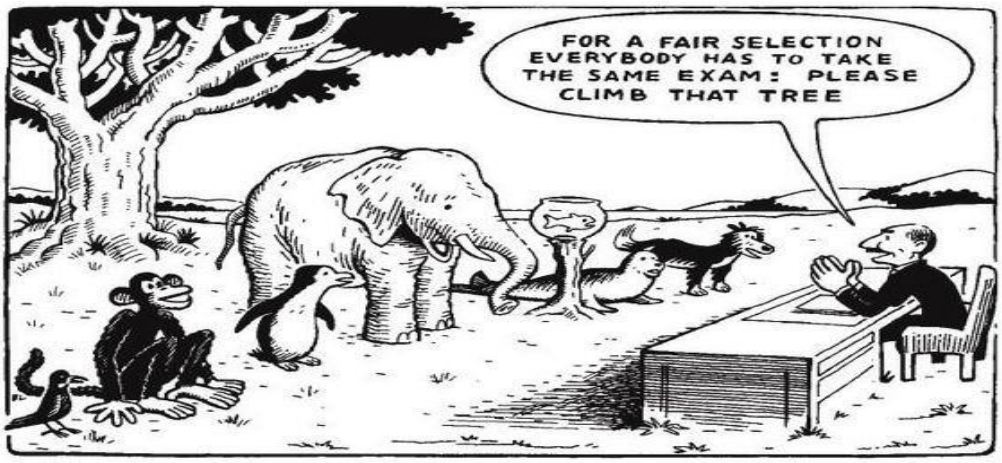

विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों की रुचि, योग्यता, चिंतन, भाषा–विकास, इच्छाएं, मूल–प्रवृत्ति सामान्य बालकों की तरह ही होती हैं। वो सामान्य बालकों से भिन्न नहीं होते वरन् उनकी आवश्यकताएं भिन्न होती हैं। वैयक्तिक भिन्नता के कारण ही प्रत्येक बालक की अपनी क्षमता होती है और उनकी क्षमता की पहचान करना शिक्षक की ज़िम्मेदारी है।

राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा (2000) :– राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) ने सन् 2000 में विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा प्रकाशित की, जिसमें समावेशी विद्यालय को मंजूरी दी गयी। राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा (2000) ने माना कि प्रथककरण की नीति न तो विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थियों के लिए लाभकारी है और न ही सामान्य विद्यार्थियों के लिए। इसलिए विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थियों को समावेशी विद्यालयों में पढ़ाया जाए, जो कम खर्चीला एवं प्रभावी होता है।

पूर्व में विकलांगता को सिर्फ चिकित्सा संबंधी समस्या ही समझा जाता रहा लेकिन धीरे–धीरे समय के साथ महान कवि मिल्टन, सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक हॉकिन्स जैसे विकलांगताग्रस्त व्यक्तियों द्वारा जिस तरह से सफलता के नए मुकाम हासिल किए गए, उन्होंने समाज की विकलांगता संबंधी उक्त धारणा में बदलाव लाने का काम किया। इसका कुछ प्रतिबिंबन पाठ्यचर्या 2000 में भी मिलता है। इस दस्तावेज़ ने विशेष आवश्यकता वाले सभी विद्यार्थियों के वैयक्तिक भिन्नता के सिद्धांत व्यक्तिगत शिक्षण के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए कहा गया है कि पाठ्यचर्या योजना के अंतर्गत कक्षा–सेवाएं, विशेष सहायता सेवाएं, सेवाकर्मी और पाठ्यचर्यागत गतिविधियों के मध्य अन्तर्सम्बन्ध स्थापित किया जाना चाहिए, जो विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों के लिए प्रभावी कार्यक्रमों को सृजित करने की सिफारिश करता है। विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के लिए व्यक्तिगत अभिरुचि, उपर्युक्त शिक्षण विधि एवं माता–पिता को भागीदारी को महत्त्वपूर्ण कारक मानता है। स्कूल शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा ने सामग्री, प्रस्तुति की रणनीतियों में उचित संशोधन करके, शिक्षकों को तैयार करने और सीखने के अनुकूल शिक्षण प्रक्रियाओं को विकसित करके विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं वाले शिक्षार्थियों के लिए समावेशी स्कूलों की सिफारिश की है।

राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा (2005) :– राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा के अनुसार सावर्जनिक स्थल के रूप में विद्यालयों में समानता, सामाजिक विविधता और बहुलता के प्रति सम्मान एवं बालकों के अधिकारों के प्रति सजगता का बोध होना चाहिए। इसका मुख्य उद्देश्य जीवन एवं ज्ञान के मध्य की दूरी को कम करना था। इस प्रक्रिया में बच्चों के विद्यालय जीवन को बाहरी जीवन से जोड़ना चाहिए। पाठ्यचर्या 2005 भी समावेशी एवं अर्थपूर्ण शिक्षा को पाठ्यचर्या विकास का एक समसामयिक सरोकार मानती है। विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए एनसीईआरटी फोकस ग्रुप द्वारा निर्मित आधार–पत्रा 2005

मानता है कि समावेशी पाठ्यचर्या, सामाजिक न्याय तथा शिक्षा में भागीदारी के सिद्धान्त पर चलते हुए लैंगिक, नृजातीयता, स्थानीय समूह, समाजिक–आर्थिक स्थिति, समर्थता एवं 'विकलांगता' के आधार पर विषमतामूलक न होकर सभी को शैक्षिक अनुभव देने की संभावना वाला होगा। अतः ऐसी पाठ्यचर्या बनाए जाने बल दिया गया है जो विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थी सहित सभी के लिए प्रासंगिक हो।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (NCERT) ने समान अवसरों के मुद्दों को संबोधित करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) तैयार की थी। राज्यों ने बाद में इन पाठ्यचर्या संबंधी दिशा–निर्देशों को अपनाया या अपनाया है, ताकि वे अपनी विस्तृत पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्य सामग्री को विकसित कर सकें। विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थियों के लिए पाठ्यक्रम कि रूपरेखा के कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु इस प्रकार हैं –

- पाठ्यक्रम का निर्माण सभी विद्यार्थियों कि आवश्यकता को केंद्र में रखते हुए करना चाहिए। शिक्षण–अधिगम द्वारा सभी विद्यार्थियों की विविध आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रयास किया जाना चाहिए। विशिष्ट आवश्यता वाले विद्यार्थियों के अधिगम हेतु शिक्षकों द्वारा विभिन्न रणनीतियों का निर्माण किया जाना चाहिए, जिससे पाठ्यक्रम का निर्माण के उद्देश्यों को प्रभावी रूप से प्राप्त किया जा सकता है।
- शिक्षकों को विद्यार्थियों कि व्यक्तिगत आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए कक्षा कक्ष की गतिविधियों का संचालन करना चाहिए। पाठ्यक्रम से पता चलता है कि कक्षा की कार्यवाही को समृद्ध करने के लिए सभी विद्यार्थियों को कक्षा की योजना में सक्रिय रूप से शामिल किया जाना चाहिए।
- खेल के मैदान, शिक्षण उपकरण और स्कूल के नियमों में कुछ सरल अनुकूलन सभी बच्चों को शिक्षा सुलभ बनाने के लिए किए जा सकते हैं।
- अलग–अलग सीखने की क्षमता वाले विद्यार्थियों को उनकी जरूरतों के आधार पर विभिन्न विकल्पों जैसे साइन लैंग्वेज, ब्रेल... इत्यादि के साथ शिक्षण प्रदान करना चाहिए।
- सभी विद्यार्थियों की सीखने की शैली अलग–अलग होती है, इसलिए सभी विद्यार्थियों को उनकी आवश्यकतानुसार सीखने का अनुभव प्रदान करना चाहिए।

उपरोक्त विवरण यह मानने का पर्याप्त आधार देता है कि पाठ्यचर्या 2005 विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों को लेकर संजीदा है। उपरोक्त विवरणों के आधार पर यह वैध अपेक्षा की जा सकती है कि जब पाठ्यचर्या 2000 एवं 2005 के आधार पर पाठ्यपुस्तकें बन रही हों तो उनमें यह ध्यान रखा जाए कि वे विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों को लेकर समावेशी रुख़ का प्रदर्शन करें।

इस प्रकार स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय शिक्षा प्रणाली विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों की पहुँच को सामान्य विद्यालयों में सुनिश्चित करने हेतु ऊर्ध्वगामी दिशा में विकास किया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1968), एकीकृत शिक्षा (1974), नई शिक्षा नीति (1986), आपरेशन ब्लैक बोर्ड (1987), साक्षरता अभियान (जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम 1995, सर्वशिक्षा अभियान 2001, राष्ट्रीय साक्षारता मिशन 2009) संविधान के 86वें संशोधन (मौलिक अधिकार) एवं निःशुल्क, अनिवार्य शिक्षा के अधिकार, राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) आदि के प्रयासो के प्रयासों के परिणाम स्वरूप भारत में प्रारंभिक शिक्षा, उच्च प्राथमिक शिक्षा, में शिक्षक संस्थाओं तक विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों की पहुँच को सुनिश्चित करने और समता मूलक शिक्षा के लक्ष्य को पूरा करने का प्रयास किया गया।

किसी भी समाज के भविष्य का निर्धारण उसकी वर्तमान शिक्षा पद्धति की प्रासंगिकता पर केंद्रित होता है। समावेशी शिक्षा की प्रासंगिकता का सबसे महत्वपूर्ण कारण समानता का सामाजिक मूल्य है। कई शोधों से ज्ञात होता है कि समावेशी शिक्षा का प्रभाव दूरगामी होता है। समावेशी शिक्षा हाल ही में भारतीय शिक्षण–अधिगम प्रणाली से जुड़ा है। समावेशी शिक्षा के संप्रेषण माड्यूल के जरिये चलाये जा रहे सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम, मूल्यांकन के अधिकांश पैमाने पर खरा उतरा है। इसके अधिकांश प्रशिक्षण माड्यूल गुणवत्तापूर्ण हैं। आवश्यक है केवल इसके क्रियान्वित रणनीतियों में सुधार लाने की जिससे प्रशिक्षण कार्यक्रम को और अधिक बेहतर बनाया जा सके (संजीव, के. और सिंह एस. पी. 2008)। इस बात के

अनेकानेक प्रमाण हैं कि विकलांगता अयोग्यता की निशानी नहीं है। आज अनेक क्षेत्रों एवं प्रतियोगिताओं में विकलांग व्यक्तियों ने जो प्रदर्शन कर दिखाया है, वह सामान्य व्यक्तियों की योग्यता पर प्रश्न चिन्ह लगाता है (कुमार, एस. (2017)।

निष्कर्ष :– समावेशी शिक्षा विभिन्न आवश्यकताओं वाले विद्यार्थियों की शिक्षा प्रक्रिया के रूप में अपनी अनिवर्यता को सुनिश्चित करती है, जो शिक्षा के क्षेत्र में एक नया उपक्रम है और जिसमें विकलांग बच्चों को गैर–विकलांग बच्चों के साथ शिक्षण और प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। किसी भी समाज के भविष्य का निर्धारण उसकी वर्तमान शिक्षा पद्धति की प्रासंगिकता पर केंद्रित होता है। समावेशी शिक्षा की प्रासंगिकता का सबसे महत्वपूर्ण कारण समानता का सामाजिक मूल्य है। यह एक ही कक्षा में सभी बच्चों की जरूरतों को पूरा करते हुए रेखांकित करता है कि सभी बच्चे समान हैं और उनकी योग्यता या अक्षमता की परवाह किए बिना उन्हें शिक्षा प्रदान की जाए। इस प्रकार समावेशी शिक्षा विभिन्न आवश्यकताओं वाले विद्यार्थियों की शिक्षा प्रक्रिया के रूप में अपनी अनिवर्यता को सुनिश्चित करती है, जो शिक्षा के क्षेत्र में एक नया उपक्रम है और जिसमें विकलांग बच्चों को एक ही शारीरिक, सामाजिक, भावनात्मक और शैक्षिक वातावरण में गैर–विकलांग साथियों के साथ शिक्षा और प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। शिक्षक एक शिक्षा प्रणाली के आवश्यक स्तंभ हैं। यह उनकी जिम्मेदारी है कि वे सभी शिक्षार्थियों को उनकी आवश्यकताओं का सम्मान करते हुए शिक्षा की गुणवत्ता प्रदान करें।

संदर्भ–सूची :–

1. कुमार, एस. (2017). दिव्यांग बच्चों के प्रति शिक्षामित्रों का दृष्टिकोण. *परिप्रेक्ष्य,* राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा), 24 *(2).* 67–74।
2. कुमारी, आर. (2013) : *विकलांगता विशेषांक, योजना,* अप्रैल, 04 (57), नई दिल्ली, 05।
3. शुक्ला, एस. के. (2015). सामान्य एवं अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन परिप्रेक्ष्य राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा), 22 *(2).* 91–102।
4. संजीव, के. और सिंह एस. पी. (2008) सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत सेवाकालीन प्रशिक्षण पा रहे स्कूली शिक्षकों के समावेशी प्रशिक्षण कार्यक्रम का मूल्यांकन. परिप्रेक्ष्य राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा), 15*(3).* 75–80।
5. सिंह, ए. के. (2008). भारत में समावेशित शिक्षा का स्वरूप. *परिप्रेक्ष्य,* राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा), 15*(1).* 81–86।
6. National Curriculum Framework for School Education, NCERT, 2005. http://www.ncert.nic.in/rightside/links/pdf/framework/english/nf2005.pdf.
7. National Curriculum Framework for School Education, NCERT, 2000 http://www.ncert.nic.in/html/pdf/schoolcurriculum/ncfsc/ncfsc.pdf.

महादेवी के काव्य की प्रणय चेतना
(संयोग पक्ष के संदर्भ में)

चिन्मयी मिश्र*

सारांश :– अपने समस्त काव्य में प्रिय–प्रिय की रट लगानेवाली महादेवी वर्मा की प्रणय चेतना का संयोग पक्ष अँधेरे के घेरे में है। यहाँ प्रणय है किंतु संयोग पक्ष धूमिल है। संयोग पक्ष की लगभग सारी पहलुओं पर जैसे प्रणयानुभूति, पुलक, बेचैनी, रोमांच, प्रेमाश्रु, हर्ष, स्वप्न, आलिंगन, चुम्बन आदि की परोक्ष चर्चाएँ (प्रकृति एवं कल्पना के माध्यम से) खुब की गई है। लेकिन प्रत्यक्ष वर्णन कहीं पर भी नहीं है। यदि संयोग पक्ष के बिना प्रणय संम्भव है, तब परोक्ष रूप में भी उसकी चर्चा ही क्यों है ? पुनश्च जो प्रिय 'स्मृति बन कर मानस में, खटका करते हैं निशिदिन', ऐसे प्रेमी से कवयित्री सवाल करती है कि 'कौन तुम मेरे हृदय में ?'। जिससे परिचय नहीं है उसकी स्मृति मन में कैसे आ सकती है ? फिर प्रियतम से उनका मिलन कब होगा वह नहीं जानती है और असंतोष व्यक्त करती है कि उसने प्रलय के साथ प्रेम –सम्पर्क जोडा है। उनकी प्रणयानुभूति के अनुसार सबसे पहले प्रणय निवेदन उनके प्रियतम की तरफ से हुआ था और बाद में उनके प्रति महादेवी जी का आकर्षण पनपने लगा। इस संदर्भ में ज्यादातर आलोचक मतव्यक्त करते हैं कि उनका प्रणय ईश्वर से था। धार्मिक दृष्टि से देखे तो वे हिंदू धर्म को माननेवाली थीं। हिंदू धर्म के शास्त्र, पुराणों तथा इतिहास की आलोचना करें तो मिलेगा ईश्वर को पाने के लिये गोपी–भावना और भक्ति जरूरी है। ईश्वर से प्रेम करनेवाली प्रेयसी हमेशा प्रणय निवेदन सबसे पहले खुद करती है। पार्वती जी, सीता जी,राधाजी, मीरा जी इन सब के मन में सबसे पहलेअपने प्रेमी के प्रति प्रेम का संचार हुआ था। कहीं पर ईश्वर की तरफ से प्रणय–निवेदन पहले होने की नजर नहीं मिलती है। लेकिन यहाँ गँगा जी उल्टी बह रही है। एक इंसान यदि ईश्वर से प्रेम करे, यह तो धार्मिक एवं सामाजिक दृष्टि से ग्राह्य है। किस डर से उनके नाम को छुपाया जा रहा है ? छायावाद का अन्यतम स्तम्भ माने जानेवाली महादेवी, जिन्होंने अपने वाद को प्रतिष्ठित करने के लिए अपने सारे काव्य की भूमिकाओं में लम्बे–लम्बे स्पष्टिकरण दिये हैं; अपनी प्रणय चेतना के संयोग पक्ष में 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह' तो नहीं कर रही हैं ? फिर 'छिपाये से फिरते क्यों आज, किसी मधुमय पीडा का न्यास', अथवा 'मैं कण–कण में डाल रही अलि आँसू के मिस प्यार किसी का' जैसे वक्तव्य उनकी कथनी और करनी में अंतर तो नहीं बना रही है ?)

मूल शब्द :– महादेवी, काव्य, प्रणय चेतना, संयोग पक्ष, हिन्दी।

प्रस्तावना :– प्रसिद्ध हिंदी कवयित्री तथा 'छायावाद' की प्रतिबद्धताओं को प्रतिष्ठित करने में महत्वपुर्ण योगदान देनेवाली महादेवी वर्मा का जन्म 24 मार्च 1907 को फर्रुखावाद, उत्तरप्रदेश में हुआ था। बहुमुखी प्रतिभा के धनी महादेवी को सबसे अधिक ख्याति अपनी कवि–प्रतिभा के लिए मिली। उनकी निम्नलिखित साहित्यिक कृतियाँ हैं– नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सांध्यगीत', 'दीपशिखा', 'यामा', 'सप्तपर्णा', 'बँगदर्शन', 'हिमालय', 'संधिनी', 'आधुनिक कवि', 'मेरी प्रिय कविताएँ', 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ', 'श्रृंखला की कडियाँ', 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध', 'पथ के साथी', 'क्षणदा' 'मेरा परिवार', 'संम्भाषण', 'मेरे प्रिय संम्भाषण', 'संकल्पिता', 'मेरे प्रिय निबंध'।

अध्ययन क्षेत्र :– हिंदी साहित्य में महादेवी के काव्य की भिन्न– भिन्न पहलुओं पर संख्याधिक शोध कार्य हो चुके हैं जैसे महादेवी के काव्य में रहस्य–भावना, छायावाद, काव्य की भूमिका, सुधारवादी दृष्टिकोण, विरह वर्णन, प्रकृति चित्रण, उनके गद्य और काव्य की प्रवृत्यात्मक–विश्लेषण आदि। कवयित्री के काव्य की प्रणय चेतना के संयोग पक्ष पर कहीं–कुछ छिटपुट के उल्लेख तो मिल जाते हैं, लेकिन इस पर किसी शोधार्थी का शोधपरक लेख अब तक हमारी नजर के सामने नहीं आया है। सीमित कलेवर के दायरे में हम महादेवी की प्रणय चेतना के संयोग पक्ष के ऊपर अध्ययन प्रस्तुत करना चाहते हैं।

---

* **शोधार्थी, हिंन्दी विभाग, रेवेशॉ विश्वविद्यालय, कटक, ओडिशा** ।

'नीहार' की प्रथम कविता में अपने प्रिय के साथ साक्षात्कार का रोचक तथा भावपूर्ण प्रसंग सांकेतिक रूप से दिया गया है। प्रकृति में से दो उपादनों को कवयित्री लेती है। एक 'कली' दूसरा 'मधुमास'। यहाँ जैसे कली खुद कवयित्री हैं और मधुमास उनका प्रियतम हैं। जिस समय मधुमास कली से मधु का क्या मोल पूछता था उसी समय जीवन का संगीत सुनाने के लिये कवयित्री के पास उनका प्रिय आये थेः 'कली से कहता था मधुमास/बता दो मधु मधिरा का मोल, .../झटक जाता था पागल बात/धूलि में तुहिन कणों के हार,/सिखाने जीवन का संगीत/तभी तुम आये थे इस पार।'[1] महदेवी के प्रणय का सूर्योदय तब शुरु होता है जब उनका प्रेमी (जिनका खुलासा उन्होंने नहीं किया है) प्रणय का सुनहला प्याला उन्हें सौंप जाता है। यहाँ प्रणय– निवेदन सबसे पहले प्रियतम की तरफ से होता है। उस अज्ञात प्रियतम के प्रणय–निवेदन को स्वीकारती हुई कवयित्री उषा की लालिमा को सिंदुर बना कर अपनी माँग में पहन लेती हैं अर्थात उनको अपने पति के रूप में स्वीकार कर लेती हैः 'ढुलकते आँसू सा सुकुमार/बिखरते सपनों का अज्ञात,/चुराकर उषा का सिंदुर/मुस्कराया जब मेरा प्रात,/छिपाकर लाली में चुपचाप/सुनहला प्याला लाया कौन ?'[2] जैसे जनक जी की बाटिका में पहली बार राम जी का दर्शन कर लेने के बाद सीताजी में भावांतर पैदा हो रहे थे, प्रणय की शुरुआती दौर में उसी प्रकार की स्थिति महादेवी की हो गई है। प्रिय के दर्शनजनित भावनाओं की वजह से आँख में श्रवण की शक्ति आ गई है और कान में देखने की शक्ति। इंद्रियों की इस प्रकार शक्ति में इजाफा होना केवल प्रेम के ही कारण सम्भव हो सका है। उसके साथ–साथ शरीर में रोमांच भी पैदा हो रहे थेः 'नयन श्रवणमय श्रवण नयनमय आज हो रहे कैसी उलझन/रोम– रोम में होता री सखी एक नया उर का सा स्पन्दन।'[3] अब तक जिन भावों का प्रकाश कवयित्री ने नहीं किया था उन्हें सार्वजनिन कर देने की वासना मन में आती है–'गा गा उठते चिर मूक भाव'–यामा–पृ०– 72। यहाँ कवयित्री प्रगल्भ बन जाती हैं। यह प्रेम के संयोग–पक्ष की उद्दामता है जो कवयित्री को प्रगल्भ बन जाने को मजबूर बना देती है। प्रियतम से सम्बन्धित इतनी सारी भावनायें पनप रही हैं कि उन्हें जब तक दूसरों से नहीं बताती हैं, तब तक कवयित्री को चैन नहीं मिलता है। अपने काव्य में कोयल से केवल प्रिय का नाम सुनना महादेवी जी चाहती हैः 'प्राणपिक प्रिय–नाम रे कह'4। प्रिय, अलि, पाहुन, तुम, उनके' आदि सम्भाषणों को असंख्य बार अपने प्रियपात्र के लिए महादेवी लगाती हैं। प्रियपात्र से मिलन के लिए तडपती हैं। अपने हृदय में प्रियपात्र को महसूस करके सवाल पुछ रही हैं कि 'कौन तुम मेरे हृदय में ?'[5]। फिर प्रियपात्र को पाने की उत्कण्ठा जब चरम सीमा में पहुँच जाती है तब व्याकुलता के साथ सवाल करती हैं– 'अलि कैसे उनको पाऊँ ?'[6]।

1– बेचैनी :– जो प्रेयसी अपने प्रिय के स्नेहसिक्त नयन को हमेशा देखना चाहती है, प्रिय से पल भर का विच्छेद भला वह कैसे बरदास्त कर सकेगी ? छोटी से छोटी वाधा जो उसको प्रिय के दर्शन से वंचित करे, उसकी बेचैनी की वजह बन जाती है। आकाश के सितारें उसकी बेचैनी का कारण बन रहे हैं क्योंकि उनकी वजह से रात में आलोक फैलता है जो उसके प्रिय को पसंद नहीं है । इसलिये वह सितारों से विनती कर रही हैं कि वे पल भर के लिए बुझ जायें ताकि कवयित्री को आसानी से प्रियतम का दर्शन हो जाये– 'करुणामय को भाता है/तम के परदों में आना/हे नभ के दीपावलियो !/तुम पल भर को बुझ जाना।'[7]

2– संयोग–स्मृति :– प्रिय की अनुपस्थिति में प्रेयसी को संयोग–स्मृतियाँ तड़पाती हैं । महादेवी ने संयोग–स्मृति को 'सुप्त व्यथाओं का उन्मीलन' कहा है[8] । जो बीच–बीच में आकर कवयित्री के ध्यान को प्रियतम की तरफ आकर्षित करती हैं। कवयित्री का तर्क यह है कि उनका प्रिय खुद स्मृतियों के रूप में आते हैं और उसे तडपाते हैं। आजकल तो क्या रात क्या दिन वे स्मृतियों के रूप में कवयित्री को तडपाते रहते हैंः 'वे स्मृति बन कर मानस में/खटका करते हैं निशिदिन/उनकी इस निष्ठुरता को /जिसमें मैं भूल न पाऊँ !'[9] अतः कवयित्री का प्रियतम खुद स्मृति के रूप में आते हैं और अपनी प्रेयसी को तडपाते हैं।

3– पुलक :– प्रियतम का दीदार तो दूर की बात है, प्रिय की पद–चाप सुनकर महादेवी इतनी खुश हो जाती हैं कि उन्हें लगता है उनके प्रियतम के आने के प्रभाव से सारी पृथ्वी पर खुशियां छा जाती है। नदियों के उर में सिहरण पैदा होते हैं। कलियाँ खिल उठती हैं और उनमें मकरंद भर जाते हैं। आनंद के मारे समय मचल–मचल कर आता है। सारी अवनी पुलकित हो उठती हैः 'सिहर–सिहर उठता सरिता–उर/खुल–खुल पडते सुमन सुधा–भर/मचल–मचल आते पल फिर–फिर/सुन प्रिय की पद–चाप हो गयी/पुलकित यह अवनी।'[10]

अतः महादेवी का पुलक अपने प्रियतम से सम्बंन्धित है। किसी भी तरीके से प्रियतम के आने की सूचना से वह पुलकित हो उठती है।

4– प्रेयसी का प्रणय निवेदन :– महादेवी का प्रणय निवेदन भाषिक नहीं है, अपितु वह आंगिक है। अपने प्रियतम को अपनी तरफ आकर्षित करने के लिए वह अभिनव श्रृंगार की रचना करती है। इसके लिए प्रकृति के उपादानों का सहारा वह लेती है। सुंदर, मनमोहक रूप–विन्यास के साथ वह प्रियतम के सामने खडी हो जाती है ताकि प्रियतम उस पर लट्टु हो जायेः 'शशि के दर्पण में देख–देख/मैंने सुलझाये तिमिर–केश/गूँथे चुन तारक–पारिजात/अवगुण्ठन कर किरणें–अशेष/क्यों आज रिझा पाया उसको/मेरा अभिनव श्रृंगार नहीं ?'[11] यह प्रेयसी का परोक्ष प्रेम–निवेदन है। जब आंगिक प्रणय निवेदन करके निराश हो जाती है तब घनानंद की काव्य– प्रेयसी की भाँति वह अपने प्रियतम को हिदायत तक दे देती है कि : 'फिरता अलि भूल कहाँ भटका, यह प्रेम के देश की राह नहीं।'[12]

5– आँसू :– संयोगं पक्ष में भी आँसू देखे जाते हैं। लेकिन यह आँसू आनंद के होते हैं। प्रेयसी का हृदय कोमल होता है। प्रिय की हँसी–मजाक कभी– कभी उसे रुला देती है। छोटी–छोटी बात पर वह भावुक बन जाती हैः 'मैं फूलों में रोती वे/बालारुण में मुस्काते/मैं पथ में बिछ जाती हूँ/वे सौरभ में उड जाते।'[13] यहाँ प्रेयसी जानती है कि उसका प्रेमी उसके आसपास हैं और सबकुछ जान बुझ कर उसके साथ मजाक कर रहे हैं फिर भी प्रेयसी की रुलाई दर्शाती है कि ये अभिमान से निकले हुए आनंद मिश्रित आँसू हैं।

6–प्रलाप :– मन में छुपे भावों का उदविघ्नता के साथ असलग्न तथा अवास्तव परिप्रकाश ही प्रलाप है। यह कल्पना से प्रसूत होता है। मन की कमजोरी की अवस्था में ये भाव उद्दिप्त बन प्रलाप का रूप ले लेते हैं। प्रिय के अवर्त्तमान में प्रेयसी प्रलाप करती है कि यदि उसका प्रिय अब आ जाते तो उसके आद्र नयन हँस उठते, जीवन में वसंत छा जाता एवं मन के सारे विराग दूर हो जाते : 'जो तुम आ जाते एक बार ..../ हँस उठते पल में आद्र नयन/..../छा जाता जीवन में वसंत/लुट जाता चिर संचित विराग।'[14] फिर कभी पुरानी स्मृतियों को याद करके प्रलाप करती है कि 'किस पर रिझूँ किस से रूठूँ'।[15]

7–रोमांच :– प्रिय के आगमन के आभास मात्र से कवयित्री के रोंगटे खडे हो जाते हैं। हृदय पुलकित हो उठता है। आँखों में नींद नहीं आती है। कोयल की पँचम तान सुनने से मन उन्मना बन जाता है। सेज को फूलों से सजाने का मन करता है। आनंद के आधिक्य से आँखें भर आती हैं : 'पुलक–पुलक उर/ सिहर सिहर मन/आज नयन आते क्यों भर–भर।'[16] हृदय में प्रेम– भावनाएँ ढाँवा–ढोल मचा रही है तो शरीर पर उसका प्रभाव पडना सुनिश्चित है। प्रेम से शरीर पर पडनेवाले प्रभाव को रोकने की कोशिश की जाय तो वह व्यर्थ ही जाता है। प्रिय से मिलने की उत्कण्ठा से तथा उनकी स्मृतियों से आँखें सजल हो आती हैं; रोगटें खडे हो जाते हैं; साँसें रफ्तार पकड लेती हैंः 'घेरे लोचन बाँधे स्पंदन/रोमों से उलझाये बंधन।'[17] अतः किसी न किसी रूप में प्रियतम की सुधी आने से कवयित्री में रोमांच दीखता है।

8–हर्ष :– हर्ष को लेकर कवयित्री की धारणा कुछ अलग प्रकार की है। लगता है यह धारणा उन्हें बौद्ध दर्शन से मिली हो। उनका कहना है कि जिसका पतन अवस्म्भावी है वह इस दुनियाँ में क्यों हँसे ? फूल मुरझा जाता है; अतः उसे हँसना नहीं चाहिये। सितारें बुझ जाते हैं; अतः उन्हें जगमगाना नहीं चाहिये। नीहार में कवयित्री ने लिखा हैः 'वे मुस्काते फूल नहीं–/जिनको आता है मुरझाना,/वे तारों के दीप नहीं/जिनको भाता है बुझ जाना।'[18] इस धारणा से शायद महादेवी ने हर्ष की चर्चा की ही नहीं। लेकिन अपने प्रियतम की अनुपस्थिति में उनकी सोच में डूबी महादेवी बौद्ध–दर्शन से बाहर निकल आती है और बोलती है यदि प्रिय इस वक्त आ जायेंगे तब पल भर में उनकी सजीली आँखें हँसने लगेगीं : 'हँस उठते पल भर में आद्र नयन/धुल जाता ओंठों से विषाद ।'[19] अतः उनको प्रियतम की उपस्थिति से पल भर में खुशी मिलेगी जिसकी झाँकी उनकी आँखों में हँसी के रूप में निखरेगी। यह तो विरोधाभास है। मिलन के बाद विरह अवश्य आता है। थोडे ही समय के लिये क्यों न हो; अब तो महादेवी विरह में है। इसे भुगते हुए हँसी के आ जाने की चर्चा कैसे कर सकती हैं ? लगता है महादेवी के विचार कुछ है; परंतु उनकी भावनाएँ अलग प्रकार की हैं। वे कुछ छुपा रही है। उनकी हँसी प्रियतम पर अवलम्बित है ; इसमें दो राय नहीं है।

9– मोह :– अपने को अखण्ड सुहागिनी माननेवाली महादेवी में अपने प्रिय के प्रति इतनी आसक्ति है कि उनके क्षण भर का वियोग सहन नहीं कर सकती है क्योंकि वे खुद को उनसे अलग नहीं मानती हैं। भले ही

दोनों का शरीर भिन्न हो, वे दोनों मानसिक स्तर पर एक हैं। महादेवी एक विकल बुलबुल है जो अपने हृदय में प्रिय के प्रति कोमल–भावनाएँ छुपाये हुए चलती हैं और उनका इंतजार भी करती हैं : 'फूल को उर में छिपाये विकल बुलबुल हूँ/एक होकर दूर तन से छाँह वह चल हूँ/दूर तुमसे हूँ अखण्ड सुहागिनि हूँ।'[20] यहाँ कवयित्री बोलती है कि प्रिय से वे अलग नहीं हैं। मानसिक स्तर पर वे दोनों समान हैं। लगता है केवल प्रियतम से अत्यधिक मोह के कारण महादेवी जी ऐसा कह रही हैं। नहीं तो हर काव्य में प्रिय के विरह में इतना क्यों तडपतीं ? 'नीरजा' की चालिसवीं कविता में क्यों बोलती 'तुम मुझमें अपना सुख देखो, मैं तुममें अपना दुःख प्रियतम।'[21] यहाँ दोनों की मानसिकता में विरोध क्यों ? दोनों को या तो सुख, नहीं तो दु;ख देखना चाहिये था। अतः स्पष्ट है कि प्रियतम से अत्यधिक मोह के कारण महादेवी कभी– कभी उनसे अपने को अलग नहीं मानती हैं।

10– प्रेयसी की प्रणयानुभूति :– प्रेयसी महदेवी की अंसख्य प्रणयानुभूतियाँ हैं। उनके अनुसार प्रेम का पुर्वाभास सबसे पहले उसके प्रेमी से शुरू हुआ था। उसका प्रियतम महादेवी जी के अलक्षित में उसके पास आते हैं और सम्मोहन तान सुना के उसके हृदय में प्रेम का संचार करते हैं। कवयित्री का निरीह हृदय इस सम्मोहन तान के आकर्षण से फँस जाता है : 'अलक्षित आ किसने चुपचाप/सुना अपनी सम्मोहन तान/दिखाकर माया का सम्राज्य/बना डला इसको अज्ञान'।[22] 'नीरजा' में कवयित्री अनुभव करती हैं कि उनका प्रिय अलक्षित रूप में आकर उसके हृदय में आ बस गये हैं। जब उसका हृदय दुःखी बन जाता है वे उसमें मधुरता भर देते हैं ताकि दुःख को कवयित्री झेल सके। उसके प्रिय इतने सहृदय हैं कि जब कवयित्री की आँखें प्यासी बन जाती हैं तब आँसूं बन कर आँखों में घुमडते हैं और टपकते हैं भी। लेकिन ध्यान देने की बात यह है कि जो प्रियतम उसके हृदय में बसने लगे हैं उसका परिचय महादेवी जी को नहीं है। इसलिये तो 'कौन तुम मेरे हृदय में ?' जानना चाहती हैः 'कौन तुम मेरे हृदय में/कौन मेरी कसक में नित/मधुरता भरता अलक्षित/कौन प्यासे लोचनों में/घुमड घिर झरता अपरिचित।'[23] चुँकि कवयित्री ने कहीं भी अपने प्रिय के परिचय का खुलास नहीं किया है, इसलिये उनका प्रिय 'रहस्य' के घेरे में रह जाते हैं। चाहे कवयित्री का प्रिय इंसान हो या ईश्वर, उनके साथ कवयित्री का प्रणय तो है, भक्ति नहीं। यह उनके काव्य के अधिकांश वर्णनों से स्पष्ट महसूस हो जाता है। उन्होंने जो लिखा है कि प्रेम की शुरुआत उसके प्रिय से सबसे पहले हुई थी, यह कभी भी सम्भव नहीं हो सकता यदि उसका प्रिय ईश्वर हो तो। भक्ति में भक्त की तडप सबसे पहले ईश्वर को पाने के लिये खुल कर सामने आती है। ईश्वर बाद में मिलते हैं। लेकिन प्रणय में किसी की तरफ से प्रेम की शुरुआत हो सकती है।

11– आलिंगन :– संयोग पक्ष का एक बलिष्ठ विभाव है आलिंगन। इससे प्रेमी हृदय का चरम–परिप्रकाश होता है। प्रेयसी होने के नाते कवयित्री भी इससे अछुती नहीं रही। पहले कहा जा चुका है कि कवयित्री का मिलन अपने प्रियतम से कभी स्वप्न से तो कभी कल्पना से होता है। इसमें कल्पना का आधिक्य है। यहाँ तक कि प्रेयसी को पता तक नहीं है कि उसका प्रेमी कौन है ? ऐसे अनजान प्रेमिक से आलिंगन केवल कल्पना से ही सम्भव हो सकता है। अतः परोक्ष रूप से प्रकृति के माध्यम से कवयित्री ने आलिंगन का चित्रण किया है। इसकी संख्या भी कम है। कवयित्री के प्रेमी चाँद की चंचल किरणों के बहाने उसके सामने मन को लुभानेवाले नृत्य पेश करते हैं और फिर किरणों के कर से उसे बाहु–बंधन से समेट लेते हैं और इस प्रकार प्रेयसी में प्रेम का उजागर करना चाहता हैः 'लोल तरंगों के तालों पर/करती बेसुध लास,/फैलाती तम के रहस्य पर/आलिंगन का पाश।'[24] प्रकृति के माध्यम से आलिंगन का चित्र देकर कवयित्री ने परोक्ष रूप से अपने प्रेयसी–हृदय के मनोभाव का परिप्रकाश किया है।

12– चुम्बन :– प्रणय की प्रचेष्टाओं में चुम्बन एक घटक है जो प्रेमियों के बीच की अत्यधिक आसक्ति को दर्शाता है। आलिंगन की तरह चुम्बन का परोक्ष चित्रण प्रकृति के माध्यम से कवयित्री ने किया है। साँझ होते ही शून्य–आकाश में अँन्धकार की कालिमा छाने लगती है। कवयित्री बोलती है कि अत्यधिक आसक्ति के कारण प्रेयसी कालिमा अपने प्रेमी शून्य–आकाश को चुम्बन देती है। इस चुम्बन का असर भी अनोखा होता है। प्रेमी के मन में प्रणयासक्ति की कोमल भावनाएँ झनझना उठती हैं जिसका परिप्रकाश असंख्य उज्वल सितारों के जल उठने से होता है। लेकिन भोर होते ही सूर्य की रोशनी से इन सितारों का नाम–निशान तक नहीं रहता है। कवयित्री सवाल करती है कि सूर्य की किरणों का इस प्रकार किसी की कोमल–भावनाओं के उदगारों को मिटा देना कहाँ तक उचित है ?– 'शून्य नभ में तम का चुम्बन/जला देता असंख्य

उडुगण/बुझा क्यों उनको जाती मूक,/भोर की उजियाले की फूँक ?'[25] यहाँ भोर की रोशनी ही सांसारिकता है जो प्रणय की कोमल भावनाओं को मिटा देती है।

13– मिलन :– प्रेमियों के लिए सबसे महार्घ मुहूर्त मिलन का समय होता है जिसको पाने की कामना उन्हें हमेशा रहती है। प्रेम का यह चरम परिप्रकाश है। ऐसे तो महादेवी ने प्रकृति के माध्यम से मिलन के बहुत सारे चित्र दिये हैं : जैसे–' क्या नहा आई विरह –निशि, मिलन मधु– दिन के उदय में' (नीरजा–पृ०– 10), 'स्निग्ध चितवन प्राणदा ले, चिर मिलन हेतु चिर विदा ले।' (दीपशिखा दृपृ०– 74) आदि । लेकिन चूँकि ऐसे मिलन में वास्तविकता नहीं है, कल्पना है, कवयित्री को अवशोष के साथ कहना पडता है कि : 'मैंने हँस प्रलय से बाँध/तरणी छोड दी मँझधार/तुमसे पर न पूछा लौट/अब होगा मिलन किस कूल ?'[26] अतः महादेवी का प्रियतम से मिलन काल्पनिक है। वास्तविक होता तो वे प्रलय से प्रणय करने की बात क्यों करती एवं 'मिलन किस कूल होगा' का सवाल क्यों आता ?

निष्कर्ष :– **1.** महादेवी ने प्रणय चेतना के संयोग पक्ष की सारी पहलुओं का परोक्ष वर्णन किया है। **2.** अपने प्रियतम का खुलासा कहीं पर भी नहीं किया है। **3.** प्रणय निवेदन सबसे पहले उसके प्रिय की तरफ से होता है। **4.** उसका प्रिय कभी आँसू बन कर उससे दूर चले जाने की कोशिश कर रहे हैं तो कभी स्मृति बन कर उसके मन को पीडा पहुँचाते हैं। **5.** वह नहीं जानती है कि उसके प्रिय के साथ उसका मिलन कब होगा ? **6.** 'मिलन का नाम मत ले मैं विरह में चिर हूँ' (सन्धिनी– पृ०– 92) बताने वाली महादेवी, प्रिय से मिलन न हो पाने को लेकर असन्तोष व्यक्त करते हुए क्यों बोलती है कि मैंने प्रलय के साथ सम्बंध जोडा है (दीप शिख–पृ०– 91। संयोग पक्ष के संदर्भ में लगता है महादेवी की कथनी और करनी में अंतर है। वे कुछ छुपाने की कोशिश करती हैं।

संदर्भ–सूची :–

1. यामा–महादेवी वर्मा– लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. 2012, पृ0– 1–2।
2. नीहार–महादेवी वर्मा– पृ0– 18।
3. यामा–पृ०–183।
4. यामा–पृ0–77।
5. यामा–पृ0–59।
6. यामा–पृ0–45।
7. नीहर–(यामा) महादेवी वर्मा–लोकभारती प्रकाशन– इलाहाबाद,–पृ०–13।
8. रश्मि –(यामा) महादेवी वर्मा–लोकभारती प्रकाशन– इलाहाबाद, 2012–पृ०–34 ।
9. रश्मि–पृ०– 46।
10. नीरजा –(यामा) महादेवी वर्मा–लोकभारती प्रकाशन– इलाहाबाद, 2014–पृ०– 03।
11. सांध्यगीत– महादेवी वर्मा–लोकभारती प्रकाशन– इलाहाबाद, 2011–पृ०–26।
12. सन्धिनी–महादेवी वर्मा–लोकभारती प्रकाशन– इलाहाबाद, 2012–पृ०–49।
13. सन्धिनी– पृ०–32।
14. सन्धिनी–पृ०–36।
15. यामा–पृ०–73।
16. नीरजा–पृ०–5।
17. दीपशिखा–महादेवी वर्मा–लोकभारती प्रकाशन– इलाहाबाद, 2013–पृ०–87।
18. यामा (नीहार)– पृ०–06।
19. यामा (नीहार)– पृ०–24।
20. संधिनी–पृ०–67।
21. यामा (नीरजा) पृ०–73।
22. यामा (नीहार)–पृ०–17।
23. नीरजा–महादेवी वर्मा–लोकभारती प्रकाशन– इलाहाबाद, 2014–9।
24. आत्मिका–महदेवी वर्मा– राजपाल एण्ड संन्ज, सं० 2015, पृ०– 14।
25. संधिनी–महादेवी वर्मा–लोकभारती प्रकाशन– इलाहाबाद, 2012–पृ०–40।
26. दीपशिखा–महादेवी वर्मा–लोकभारती प्रकाशन– इलाहाबाद, 2013–पृ०–91।

भारत में इच्छामृत्यु का विश्लेषणात्मक अध्ययन

वैभव भण्डारी*

इच्छा–मृत्यु अर्थात यूथनेशिया (Euthanasia) मूलतः ग्रीक (यूनानी) शब्द है। जिसका अर्थ Eu = अच्छी, Thanatos= मृत्यु होता है। यूथेनेसिया, इच्छा–मृत्यु या मर्सी किलिंग (दया मृत्यु) पर दुनियाभर में बहस जारी है। इस मुद्दे से कानूनी के अलावा मेडिकल और सामाजिक पहलू भी जुड़े हुए हैं। यह पेचीदा और संवेदनशील मुद्दा माना जाता है। दुनियाभर में इच्छा–मृत्यु की इजाजत देने की मांग बढ़ी है। मेडिकल साइंस में इच्छा–मृत्यु यानी किसी की मदद से आत्महत्या और सहज मृत्यु या बिना कष्ट के मृत्यु प्राप्त करना, इसके व्यापक अर्थ हैं। क्लिनिकल दशाओं के मुताबिक इसे परिभाषित किया जाता है।

इच्छा मृत्यु सम्मानपूर्वक जीवन के अधिकार से जुड़ा है। इस पर दुनियाभर में आज भी बहस चल रही है। इसे मान्यता देना चाहिए अथवा नहीं। इसका सामाजिक और मेडिकल पक्ष दोनों ही महत्वपूर्ण है। बीमार व्यक्तियों के लिए इच्छा–मृत्यु बिना कष्ट के मरने के अधिकार की मांग उठती रही है। संसार के कुछ देशों में मरीज की मंजूरी के बाद ऐसी दवाइयां दी जाती हैं, जिससे मरीज की मौत हो जाए, परंतु भारत में इसे मान्यता नहीं है। मरीज की मृत्यु के लिए इलाज बंद कर देना या जीवनरक्षक प्रणाली को हटाना, संसार के अधिकतर देशों में कानूनी रूप से मान्य है। 'एक्टिव यूथेनेशिया' और 'पैसिव यूथेनेशिया' इन दोनों ही शब्दों का प्रयोग 'इच्छामृत्यु' को इंगित करने हेतु किया जाता है।

- एक्टिव यूथेनेसिया : 'एक्टिव यूथेनेशिया' वह स्थिति है, जब इच्छामृत्यु मांगने वाले किसी व्यक्ति को इस कृत्य में सहायता प्रदान की जाती है, जैसे– जहरीला इंजेक्शन लगाना आदि।
- पैसिव यूथेनेसिया : वहीं 'पैसिव यूथेनेशिया' वह स्थिति है, जब इच्छामृत्यु के कृत्य में किसी प्रकार की कोई सहायता प्रदान नहीं की जाती।

एक वाक्य में कहें तो एक्टिव यूथेनेशिया वह है, जिसमें मरीज की मृत्यु के लिये सीधे तरीके से कुछ किया जाए, जैसे जहर का इंजेक्शन लगा कर आदि। जबकि पैसिव यूथेनेशिया वह है, जहाँ गंभीर रूप से बीमार हो या कई सालों से कोमा में हो और उसके बचने की संभावना बहुत ही कम हो उसका लाइफ सपोर्ट, जैसे वेंटिलेटर या फीडिंग ट्यूब हटा लिया जाए और उसे जानबूझकर मरने के लिए छोड़ दिया जाए। 'असिस्टेड सुसाइड' आत्महत्या के लिए मदद : पुर्व में हुई सहमति के आधार पर डॉक्टर मरीज को ऐसी दवाइयां देता है, जिन्हें खाकर आत्महत्या की जा सकती है। यह तरीका नीदरलैंड, बेल्जियम, स्विट्जरलैंड और अमेरिका के ओरेगन राज्य में वैद्य है।

वैश्विक स्तर पर इच्छामृत्यु

यूथेनेसिया आज विश्व में चर्चित विषय है। यह मृत्यु के अधिकार पर केंद्रित है। यूथेनेसिया समर्थक इसके लिए सम्मानजनक मौत की दलील देकर ऐसे व्यक्ति को मृत्यु का अधिकार देने के पक्ष में हैं, जो पीड़ाजनक असाध्य रोगों से पीड़ित है अथवा नाममात्र को जिंदा है।

अमेरिका में एक महिला टेरी शियाबो को वर्ष 1990 में दिल का दौरा पड़ा। उनका दिमाग सुन्न हो गया था और मौत आने तक सुन्न ही पड़ा गया। इस महिला की जीवन–मृत्यु को लेकर सात साल तक कानूनी लड़ाई चली। एक ओर उसके पति चाहते थे कि बीमार पत्नी कष्टपूर्ण जीवन से मुक्त हो और आराम से मृत्यु का वरण करे। वहीं दूसरी ओर, उसके पिता बेटी को जीवित रखना चाहते थे। पर पति के तर्क को अदालत ने सही माना। इसके बाद टेरी की नाक से लगाई गई आहार नली को हटा दिया गया।

विश्व में सर्वप्रथम वर्ष 1996 में ऑस्ट्रेलिया के उत्तरी राज्य ने इच्छा मृत्यु का अधिकार प्रदान किया गया, किन्तु अगले ही वर्ष इस पर पुन रोक लगा दी गई । वर्ष 2014 में बेल्जियम ने अपने यहाँ असाध्य बीमारियों

*** शोधार्थी, 67, आदर्श नगर, पाली–मारवाड, राजस्थान।**

से ग्रस्त बच्चों तक के लिए इच्छा मृत्यु को वैध घोषित कर दिया, जिससे इच्छा मृत्यु चर्चित विषय बन गया।

- स्विट्जरलैंड में 'असिस्टेड सुसाइड' वैध है. लेकिन यूथेनेशिया नहीं. 'असिस्टेड सुसाइड' के लिए शर्त यह है कि इसके पीछे का इरादा ठीक होना चाहिए।
- नीदरलैंड्स में यूथेनेशिया और 'असिस्टेड सुसाइड' दोनों वैध हैं. इस देश में तो 12 साल का लड़का भी इच्छा मृत्यु की मांग कर सकता है. बस माता–पिता की इजाजत हो।
- न्यूजीलैंड में भी इच्छा मृत्यु को वैध करने के लिए कानून पारित कर दिया गया है, जो नवंबर 2021 से प्रभाव में आएगा।
- इसके अलावा बेल्जियम, लक्जमबर्ग, कनाडा, कोलंबिया, ऑस्ट्रेलिया का विक्टोरिया राज्य और अमेरिका के कुछ राज्यों (जैसे वाशिंगटन, कैलिफोर्निया, हवाई आदि) में भी इच्छामृत्यु को मंजूरी प्राप्त है।

भारत में इच्छामृत्यु

भारत में प्रायः इच्छामृत्यु को लेकर काफी भ्रातियां है। इच्छामृत्यु का विरोध करने वालों का कहना है कि जीवन ईश्वर की देन है, इसलिये इसे वापस लेने का हक भी सिर्फ उसे है। इसे कानूनी मान्यता प्रदान करने पर इसके दुरुपयोग के मामले बढ़ जाएंगे। इच्छामृत्यु के समर्थन करने वालों का कहना है कि व्यक्ति के शरीर पर केवल उसका अधिकार है। यदि बीमारी के कारण व्यक्ति का दर्द सहनशक्ति की सीमा से ऊपर जा चुका है, तो उस व्यक्ति को इच्छामृत्यु के जरिये दर्द से मुक्ति पाने का अधिकार प्रदान किया जाना चाहिये।

भारत में पुर्व के कुछ मामलें काफी महत्वपूर्ण है, जैसे हैदराबाद के 25 वर्षीय व्यंकटेश नाम के व्यक्ति ने इच्छा जताई कि वह मृत्यु के पहले अपने सारे अंगदान करना चाहता है, पर उसे इसकी अनुमति नहीं मिली। ऐसे ही केरल हाईकोर्ट द्वारा 2001 में वीके पिल्लै जो असाध्य रोग से पीड़ित थे, उनको भी इच्छा–मृत्यु की अनुमति नहीं मिली। इसी प्रकार की कुछ अपीलें भारत के राष्ट्रपति के पास भी आईं कि दया–मृत्यु की इजाजत दी जाए, पर अपील नामंजूर कर दी गई। तत्कालीन प्रावधानों के अनुसार दया–मृत्यु और इच्छा–मृत्यु दोनों ही असवैधानिक थी।

इच्छामृत्यु के पक्ष में तक –

अनुच्छेद 21 के तहत गरिमा के साथ जीने का अधिकार :

- संविधान का अनुच्छेद 21 जीवन का अधिकार देता है, लेकिन इसकी व्याख्या करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने बताया है कि जीवन के अधिकार में गरिमा के साथ जीने का अधिकार भी शामिल है।
- यदि कोई निसक्त व्यक्ति जिसके जीवन में पीड़ा ही पीड़ा हो और वह अपने प्रत्येक कार्य के लिये औरों पर निर्भर हो तो ऐसे में उसके गरिमा के साथ जीने के अधिकार का प्रत्यक्ष उल्लंघन होता है।

धारा 309 में सुधार की व्यापक गुंजाइस :

- आईपीसी की धारा 309 के तहत आत्महत्या का प्रयास करने वालों को दंड देने का प्रावधान किया गया है और इच्छामृत्यु को आत्महत्या का प्रयास माना जाता है। परन्तु वर्ष 2017 में पारित मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम की धारा 115 (1) के अनुसार, भारतीय दंड संहिता की धारा 309 में सम्मिलित किसी भी प्रावधान के बावजूद कोई भी व्यक्ति जो आत्महत्या करने का प्रयास करेगा, उसके संबंध में तब तक, यह माना जाएगा कि वह गंभीर तनाव में जब तक कि यह अन्यथा साबित न हो, और साथ ही उसके विरुद्ध मुकदमा नहीं चलाया जाएगा और न ही उसे दंडित किया जाएगा।
- आत्महत्या एक अपराध है, लेकिन ऐसा नहीं होना चाहिये। कोई स्वयं को मारने का प्रयास करता है, लेकिन यदि वह जीवित रह जाए तो उसे जेल की बजाय काउंसलिंग के लिये भेजना चाहिये।

सांस्कृतिक पिछड़ेपन का लक्षण :

- हाल ही महाराष्ट्र के एक दंपति नारायण लावते (88) और इरावती लावते (78) का कहना है कि वे अपने बुढ़ापे में समाज पर बोझ नहीं बनना चाहते हैं।
- यह दंपति भारत में इच्छामृत्यु के प्रति घृणा को सांस्कृतिक पिछड़ेपन का एक लक्षण मानता है। उनका कहना है कि उनकी इच्छामृत्यु की मांग तर्क से प्रेरित है न कि आध्यात्मिकता से।
- लावते दंपतियों ने विभिन्न मुख्यमंत्रियों को पत्र लिखने के बाद, राम जेठमलानी जैसे कानूनी विशेषज्ञों और संसद सदस्यों से भी गुहार लगाईं है, लेकिन इस संबंध में उन्हें कोई राहत नहीं मिली है।
- तब उन्होंने राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद को लिखा है कि वे दया मौत की अपनी याचिका पर अनुकूल प्रतिक्रिया चाहते हैं।

अरुणा शानबाग मामला :

- अरुणा शानबाग बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (2011) मामले में पहली बार इच्छामृत्यु का मुद्दा सार्वजनिक चर्चा में आया।
- इस मामले में सुप्रीम कोर्ट ने अरुणा की इच्छामृत्यु की याचिका स्वीकारते हुए मेडिकल पैनल गठित करने का आदेश दिया था। हालाँकि, बाद में न्यायालय ने अपना फैसला बदल दिया था।
- लेकिन, इस फैसले ने असाध्य रोगों से पीड़ित व्यक्ति को इच्छामृत्यु देने की बहस को आगे बढ़ाने का कार्य किया।

इच्छामृत्यु के विपक्ष में तर्क –

भारत इसके लिये तैयार नहीं है :

- दुनिया के कई देशों में (लक्जमबर्ग, नीदरलैंड और बेल्जियम आदि) इच्छामृत्यु की अनुमति है, लेकिन भारत इसके लिये अभी तैयार नहीं है।
- इन देशों में प्रत्येक मांगने वाले को इच्छामृत्यु नहीं दी जा सकती, इसके लिये कुछ कायदे–कानून बनाए गए हैं। जाहिर है प्रत्येक समाज में यह एक जटिल मुद्दा है।

मानसिक और शारीरिक रूप से स्वस्थ लोगों के लिये उचित नहीं :

- अरुणा शानबाग मामले में हमें ध्यान रखना होगा कि शानबाग खुद कोई निर्णय लेने की स्थिति में नहीं थी।
- वैसे मामलों में जहाँ कि किसी बीमार के ठीक होने की उम्मीद नहीं है और वह असाध्य पीड़ा से गुजर रहा हो तो इच्छामृत्यु को लेकर बहस की भी जा सकती है।
- लेकिन इसे मानसिक और शारीरिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों के जीवन को समाप्त करने के एक तरीके के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

दुरुपयोग की संभावनाएँ :

- इच्छामृत्यु की अनुमति देना या इसे वैध बनाना इसके दुरुपयोग की संभावनाओं को बल देगा।

न्यायिक दृष्टिकोण

इच्छामृत्यु पर ज्यादा चर्चा अरुणा शानबाग के मामले में देखने को मिली। वे कई दशकों से कोमा में थीं। अरुणा के कुछ संबंधियों ने उनको इच्छामृत्यु दिए जाने की मांग की थी, जिससे कि उनको तमाम तकलीफों से मुक्ति मिल सके। लेकिन उन्हें यूथेनेशिया की इजाजत मिल नहीं पाई थी।

भारतीय विधि आयोग (लॉ कमीशन) ने अभी कुछ वर्षो पहले ही संसद को अपनी 241वी रिपोर्ट में दया–मृत्यु को कानूनी अमली जामा पहनाने की सिफारिश की है। इसका उद्देश्य है पीड़ादायक, असाध्य रोगों से पीड़ित व्यक्ति को सम्मानजनक मौत मिले। आयोग उस समय से इस बात से इंकार नहीं किया कि इस मुद्दे पर लंबी बहस होनी चाहिए।

परन्तु 9 मार्च 2018 को सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा की अध्यक्षता में 5 जजों के पैनल ने पैसिव यूथेनेशिया को कानूनी रूप से वैध कर दिया। इसके साथ ही फैसले में कोर्ट ने गंभीर रूप से बीमार लोगों के लिए अग्रिम निर्देश (**लिविंग विल)** की इजाजत दे दी । इसको आप कुछ हद तक

वसीयत की तरह ही समझ सकते है। इसमें एक रोगी व्यक्ति यह बताता है कि अगर वह भविष्य में किसी गंभीर बीमारी से ग्रसित हो जाए तो वह किस प्रकार से अपना इलाज कराना चाहता है। इस दस्तावेज का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि अगर बीमारी बहुत गंभीर हो जाए और मरीज अपने फैसले खुद लेने में सक्षम न रहे तो इस दस्तावेज में लिखी हुई चीजों के हिसाब से उसकी जिंदगी को लेकर फैसला किया जा सके। न्यायालय ने कहा कि लिविंग विल हमेशा उसी स्थित में लिखी जानी चाहिए जब वह व्यक्ति पूरी तरह से सचेत हो और बिना किसी दबाव के हो।

समीक्षा

सर्वेक्षण में 85 व्यक्तियों ने भाग लिया। सर्वेक्षण में अधिवक्ता, सरकारी कार्मिक, शिक्षक, ग्रहणी सहित अन्य वर्ग के विशेषज्ञों ने भाग लिया। सवैक्षण में भारत में इच्छामृत्यु के परिपेक्ष्य से जुडे प्रावधानों एवं जागरुकता को लेकर प्रश्न पुछे गये। इस प्रकार सर्वेक्षण में प्रत्येक प्रतिभागी से 4 प्रश्न पुछे गये। यह सर्वेक्षण ऑनलाइन किया गया। प्रश्नो को चुनाव इस आधार पर किया गया था जिससे यह समझा जा सके की प्रतिभागी इच्छामृत्यु के विषय में कितनी जानकारी रखते है, वही उनका व्यक्तिगत रवैया क्या है।

संकलित तथ्य

- सर्वेक्षण में 70 पुरुष, वही 15 महिला प्रतिभागी थे।
- सर्वेक्षण में राजस्थान, गुजरात, उत्तर प्रदेश, बिहार, दिल्ली, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगंढ के निवासी ने भाग लिया।
- सर्वेक्षण में 16 विधार्थी, 14 सरकारी कार्मिक, 12 व्यवसायी, 11 निजी कार्मिक, 05 अक्षमता के कारण घर पर, 08 प्रोफसनल, 3 बेरोजगार, 6 स्व नियोजित, 10 अन्य कार्य करते है।
- भारत में वर्ष 2018 पैसिव यूथेनेसिया के रुप में इच्छामृत्यु को कानूनी रूप से मान्यता मिली। सर्वेक्षण मे 32 प्रतिभागियों ने सही उत्तर दिया, वही 44 प्रतिभागियों ने गलत उत्तर दिया। जबकि 09 प्रतिभागियों ने सम्भावना व्यक्त की।
- भारत में इच्छामृत्यु को कानूनी रूप से मान्यता मिलना जनहित में है, इसके सम्बन्ध में सर्वेक्षण मे 55 प्रतिभागियों ने हॉ में उत्तर दिया, वही 16 प्रतिभागियों ने नही में उत्तर दिया। जबकि 14 प्रतिभागियों ने सम्भावना व्यक्त की।
- भारत में मरणासन्न की स्थिति में लाइफ सपोर्ट सिस्टम पर रहने वाले मरीज को इच्छामृत्यु देना उचित होगा या नही, इसके सम्बन्ध में सर्वेक्षण मे 66 प्रतिभागियों ने हॉ में उत्तर दिया, वही 10 प्रतिभागियों ने नही उत्तर दिया। जबकि 09 प्रतिभागियों ने सम्भावना व्यक्त की।
- भारत में भी अन्य देशो की तरह लिविंग विल जैसे प्रावधान के प्रति जागरूकता लानी चाइये या नही, इसके सम्बन्ध में सर्वेक्षण मे 72 प्रतिभागियों ने हॉ में उत्तर दिया, वही 06 प्रतिभागियों ने नही उत्तर दिया। जबकि 07 प्रतिभागियों ने सम्भावना व्यक्त की।

इस प्रकार ज्ञात तथ्यों से निम्न निष्कर्ष निकलता है :

- भारत में पैसिव यूथेनेसिया के रुप में इच्छामृत्यु को कानूनी रूप से मान्यता मिलने उपरान्त भी आमजन को इसके बारे में जानकारी नही होना, लिविगं विल जैसे अधिकार सें वचित करता है। 51. 8 प्रतिशत प्रतिभागी को इसकी कानूनी मान्यता के बारे मे जानकारी नही है।
- भारत में से 64.7 प्रतिशत प्रतिभागी भारत में इच्छामृत्यु को कानूनी रूप से मान्यता के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखते है। वही 18.8 प्रतिशत प्रतिभागी इच्छामृत्यु को कानूनी रूप से मान्यता को लेकर नकारात्मक दृष्टिकोण रखते है।
- भारत में ऐसे मरीज जिनके बचने की सम्भावना बहुत कम है, उन्हे लाइफ सपोर्ट सिस्टम हटा कर मृत्यु देने हेतु के सम्बन्ध में 77.6 प्रतिशत प्रतिभागियों ने इच्छामृत्यु के पैसिव यूथेनेसिया स्वरुप को स्वीकार किया। वही 11.8 प्रतिशत प्रतिभागी लाइफ सपोर्ट सिस्टम हटा कर मृत्यु देने हेतु के सम्बन्ध नकारात्मक दृष्टिकोण रखते है।

- भारत में लिविंग विल जैसे प्रावधान के प्रति जागरूकता लाकर भविष्य आधारित परिस्थितियों का पुर्वाग्रह करके जीवन रंक्षक उपकरणों के कारण लम्बे समय तक मिलने वाली वेदना से मुक्ति के लिए 84.7 प्रतिशत प्रतिभागी सकारात्मक दृष्टिकोण रखते है। वही 06 प्रतिशत प्रतिभागी इच्छामृत्यु को कानूनी रूप से मान्यता को लेकर नकारात्मक दृष्टिकोण रखते है।

निष्कर्ष

दुर्लभ बीमारियों का क्षेत्र काफी जटिल व व्यापक है और दुर्लभ बीमारियों से बचाव, उपचार और प्रबंधन में कई चुनौतियां हैं। विभिन्न कारकों के कारण दुर्लभ बीमारियों का जल्द पता लगाना एक बड़ी चुनौती है, जिसमें प्राथमिक देखभाल चिकित्सकों, पर्याप्त जांच की कमी और उपचार सुविधाओं आदि शामिल हैं। ज्यादातर दुर्लभ बीमारियों के लिए अनुसंधान एवं विकास में मूलभूत चुनौतियां भी हैं, क्योंकि भारतीय संदर्भ में बीमारी से संबंधित विकारों से जुड़ी शारीरिक प्रक्रियाओं और प्राकृतिक इतिहास के बारे में कम ही जानकारी उपलब्ध है। दुर्लभ बीमारियों पर अनुसंधान भी खासा मुश्किल है, क्योंकि मरीजों का समूह छोटा है और इसके चलते अक्सर अपर्याप्त चिकित्सकीय अनुभव मिलते हैं।

भारत में इच्छा मृत्यु के सम्बन्ध में पक्ष एवं विपक्ष दोनो के प्रभावी तर्क है। भारतीय संस्कृति में जीवन रक्षा करने की परंपरा रही है। जीवन से पलायन को गलत माना गया है। परन्तु वर्तमान में दिन–प्रतिदिन नई दुर्लभ बीमारियां सामने आ रही है। जिनका वर्तमान में कोई भी पुख्ता उपचार नही है। जिनके कारण मरीजों काफी पीडा एवं तकलीफों का सामना करना पडता है। वही भारत में चिकित्सा के क्षैत्र में इतना अधिक विकास भी नही हुआ है, आज भी प्रायः ग्रामीण क्षैत्रों में, ब्लॉक–तहसील स्तर पर सुपर स्पेशलिस्ट चिकित्सक भी नही उपलब्ध है। वही जीवन रक्षक उपकरणों की संख्या सीमित होने के साथ ही, उनके चिकित्सक भी पर्याप्त नही है। जिसके कारण बडे–बडे शहरों तक ही यह सुविधा सीमित है। परिणाम स्वरुप यह काफी खर्चीला उपचार है। जिसमें मरीज की जीवन बचने की कोई गारंटी नही होती है, साथ ही इसकी कोई निश्चित समयावधि भी नही होती है, जिसके कारण इसे सप्ताह, माह, वर्ष भी लग सकते है। ऐसे कई उदाहरण भारत में भी देखने को मिलते है, जिसमें मरीज वर्षो तक जीवन रक्षक उपकरण के सहारे जीवन जीता है, परन्तु वह सिर्फ जिंदा लाश की तरह होता है। सिर्फ उसकी सांसे चलती है, बाकि सभी गतिविधियां प्रभावित हो जाती है।

लावते दंपति और एनजीओ 'कॉमन कॉज' से संबंधित मामले में भले ही बहस लिविंग विल पर केंद्रित है, लेकिन यह आवश्यक जान पड़ता है कि असाध्य रोगों से पीड़ित व्यक्ति को सम्मानजनक मौत मिले। सुप्रीम कोर्ट के द्वारा पैसिव यूथेनेशिया के सम्बन्ध में दिये निर्णय से इसके दुरपयोग की सम्भावनायें नही के बराबर है, क्योकि न्यायालय द्वारा विस्तृत रुप से इसके बारे निर्देश दिये गये है। वही आज भी किसी भी प्रकार की स्थिति में होने पर भी मरीजों को मारने के लिए दवाइयां देना पूरी तरह से गैर–कानूनी है और अपराध है। हालाँकि, इससे संबंधित तमाम नैतिक एवं वैधानिक आयामों पर अध्ययन के बाद संसाधनों की सीमित उपलब्धता, महंगी चिकित्सा व्यवस्था को देखते को हुए वर्तमान की परिस्थितियों के आधार पर आगे कदम बढ़ाना उचित होगा।

सदर्भ–सूची :–

1. भारतीय सविधान : डॉ. एन.वी.परांजपे, प्रकाशक सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन्स।
2. भारतीय दण्ड सहिता : डॉ. जय नारायण पाण्डेय, प्रकाशक सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी।
3. Hi.wikipedia.org/wiki/इच्छा–मृत्यु
4. https://www.drishtiias.com/hindi/daily-updates/daily-news-editorials/should-euthanasia-be-allowed
5. भारतीय विधि आयोग, रिर्पाट 241।
6. मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम 2017।

योग-दर्शन में ईश्वर की अवधारणा एवं समाधि-लाभ

पूनम गुप्ता*
डॉ. बी. आर. शर्मा**

सारसंग्रहः ईश्वर एक संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ है भगवान। यह एक व्यक्तिकृत (सगुण या विशेषता) देवता के साथ विरोधाभासी है। विष्णु या शिव जैसे विशिष्ट देवता के बजाय ईश्वर शब्द का प्रयोग करने से योग सूत्र गैर–सांप्रदायिक है।[1] अन्य समस्त दार्शनिक अवधारणाओ में ईश्वर अंतिम लक्ष्य है तथा समाधि और योग उसकी प्राप्ति के उपाय अथवा उपकरण हैं। महर्षि पतंजलि इस अर्थ में बहुत विशेष प्रयोजन से अपना मंतव्य स्पष्ट करते हैं, योग सूत्र में ईश्वर को समाधि की प्राप्ति के एक उपाय के रूप में प्रस्तुत किया गया है। ईश्वर को चित्त शुद्धि, योग मार्ग की बाधाओं से मुक्ति के रूप में भी प्रयुक्त किया गया है।[2] योगी अनुशासन के आचरण को आत्मसात करने के एक तत्व के रूप में भी ईश्वर के सन्दर्भ में सूत्र लिखे गए हैं। योग में भगवान की अवधारणा क्या है? यह हमें अपने कार्यो की जिम्मेदारी लेना सिखाता है और धर्मवादियों की तुलना में ईश्वर की पूरी तरह से अलग समझ प्रदान करता है। योग का लक्ष्य हमारे व्यक्तित्वों की बाध्यकारी शक्तियों के साथ–साथ प्रकृति की शक्तियों से पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करना है, यह ईश्वर को पूर्ण चेतना के उस क्षेत्र में रखता है जो स्वयं के अलावा किसी अन्य द्वारा शासित नहीं होता है। योग ईश्वर को एक विशेष पुरूष के रूप में परिभाषित करता है, एक सर्वोच्च आत्मा जो कभी भी कष्टो, कष्टों के वाहन, कर्म और कर्म के फल से प्रभावित नहीं होगी।[3] अन्य सभी आत्माएं किसी न किसी समय भूत वर्तमान या भविष्य में कर्म और अज्ञानता, अहंकार, मोह घृणा और मृत्यु के भय के परिचर कष्टों के अधीन हो जाती हैं। योग के अनुसार यह सर्वोच्च आत्मा उन सभी शिक्षकों को एकमात्र आध्यात्मिक गुरू हैं जो कभी पैदा हुए थे, क्योंकि ईश्वर उत्पत्ति और अंत से परे है। पूर्ण स्वतंत्रता इच्छा की अप्रतिबंधित शक्ति रचनात्मकता और अनंत काल के अलावा, ईश्वर में ''सर्वज्ञान का असीम बीज'' भी निहित है।

प्रस्तावनाः संप्रज्ञात समाधि प्राप्त करने की एक विधि के रूप में 1/23–29 में ईश्वर के प्रति समर्पण का अभ्यास है। ईश्वरप्रणिधानाद्वा ।। 1/23 ईश्वर प्रणिधान से भी चित्त की शुद्धि एवं समाधि की प्राप्ति होती हैं। संप्रज्ञात समाधि के लिये मन में किसी वस्तु या विचार पर इस अवस्था तक ध्यान केंद्रित किया जाता है कि मन शांत हो जाए। योग दर्शन के इस भाग में ईश्वर को एक विशेष पुरूष के रूप में वर्णित किया गया हैं।[4] क्लेशकर्मविपाकशयैरपरामृष्टः पुरूषविशेष ईश्वरः ।। (योगसूत्र 1/24)

एक आत्मा या चेतना जो कर्म, क्लेश, विपाक, कर्माशय अथवा किसी मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति से अछूती है। ये क्लेश, या कर्म संस्कारों के भंडार, और उससे जुडी क्रियाए परिणाम उत्पन्न करती है।[5] तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ।। 1/25 ईश्वर के पास अनुपम सर्वज्ञता का बीज है। सर्वज्ञता का अर्थ बहुत व्यापक है। यह भौतिक और अध्यात्मिक दोनों संदर्भो को अपने में समाहित कर लेता है। आत्मा अथवा परमात्मा सत, चित, आनंद स्वरूप हैं। आत्मा ज्ञान का मूल केंद्र है। आत्म तत्व का ज्ञान ही वास्तविक सर्वज्ञता है। ईश्वर में सर्वज्ञता निरतिशय अर्थात असीम अवस्था में निहित है।[6] पूर्वेषाम् अपि गुरूः कालेनानवच्छेदात्। तस्य वाचकः प्रणवः 1/26, 27। वह काल से असीमित पूर्व में हुए समस्त गुरूओं का भी गुरू है, और उसका नाम ऊँ है। योग दर्शन में महर्षि पतंजलि ने 9 प्रकार के योग अन्तराय अथवा योग मार्ग की बाधाओं की चर्चा की है। योगान्तराय अथवा योगविघ्न (चित्त विक्षेपक) अथवा योग बाधक और उनके 5 साथी। चित्त विक्षेपों को ही योग अन्तराय कहते हैं जो चित्त को विक्षिप्त करके उसकी एकाग्रता को नष्ट कर देते हैं।

योगस्य अन्तः मध्ये आयान्ति ते अन्तरायाः अर्थात जो योग के मध्य में आते हैं, वे योगान्तराय हैं। विघ्नों से व्यथित होकर योगसाधक साधना को बीच में ही छोड भाग खडे होते हैं। चित्त के विपक्षेक नौ अन्तराय हैं। इस प्रकार चित्तविक्षेप के प्रति ये 9 अन्तराय ही कारण है।

* असिस्टेंट, प्रोफेसर एम0एस0बी0 विश्वविद्यालय बारीपदा मयूरभंज ओडिसा द्वारा
** प्रोफेसर, संकध्यक्ष एवं विभागाध्यक्ष Health & Wellness श्री श्री यूनिवर्सिटी कटक ओडिसा भारत–754006

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभान्तिर्दानलालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ।। (1/30)व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व् और अनवस्थितत्व –ये 9 अन्तराय ही चित्त को विक्षिप्त करते हैं। इन विक्षेपों के होने का कारण प्रमाणादि चित्तवृत्तियाँ हैं।

1. व्याधि– धातुवैषम्य, रसवैषम्य तथा करणवैषम्य को व्याधि कहते हैं। वात, पित्त और कफ ये तीन धातुएं हैं। इनमें से एक भी कुपित होकर न्यून या अधिक हो जाये तो यह धातुवैषम्य कहलाता है। धातुओं की समता में शरीर स्वस्थ रहता है तथा विषमता में रूग्ण हो जाता है। आहार का अच्छी तरह परिपाक न होना रसवैषम्य कहलाताहै। यह शरीर में व्याधि बनाता है। ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों की शक्ति का मंद हो जाना करणवैषम्य है। योगसाधना के लिये सशक्त और दृढ इन्द्रियों की आवश्यकता होती हैं। धातु, रस तथा करण इन तीनों की विषमता को व्याधि कहते हैं। रोगी शरीर से समाधि का अभ्यास संभव नहीं। अतः व्याधि समाधि के लिये अन्तराय हैं।

2. स्त्यान– चित्त की अकर्मणता को स्तयान कहते हैं। अर्थात इच्छा होने पर भी किसी कार्य को (योगसाधन के अनुष्ठान की) सामथ्र्य न होना। पुत्रों की आसक्ति, विषयभोग की लालसाएं तथा जीविकापार्जन के व्यापार में चित्त को उलझाये रखने से चित्त अकर्मण्यता का अनुभव करता है। अकर्मण्यता समाधित में अन्तराय है।

3. संशय– यह भी हो सकता है और वह भी हो सकता है। इस प्रकार का ज्ञान संशय है। मैं योगसाधन कर सकूंगा कि नहीं कर सकूंगा, करने पर भी योग सिद्ध होगा या नही इन दो कोटियों का विषय करने वाला ज्ञान संशय है। संशय की अवस्था में साधक का चित्त असंतुलित रहता है और वह साधना नहीं कर सकता है।

4. प्रमाद– समाधि के साधनों में उत्साहपूर्वक प्रवृत्ति न होना प्रमाद कहलाता है। समाधिका अभ्यास प्रारम्भ कर देने पर उसमें वैसा ही ही उत्साह और दृढ़ता निरन्तर बनी रहनी चाहिए जैसा उत्साह प्रारम्भ में था। प्रायः युवावस्था का मद धन और प्रभुत्व का दर्प तथा शारीरिक सामर्थ्य का मद साधक के उत्साह को शिथिल कर देता है। अतः प्रमाद समाधि में अन्तराय हैं।

5. आलस्य– चित्त अथवा शरीर के भारी होने के कारण ध्यान न लगना। शरीर का भारीपन कफ आदि के प्रकोप से और चित्त का भारीपन तमोगुण की अधिकता से होता है। शरीर और चित्त के भारी होने से समाधि के साधनों में प्रवृत्ति नहीं होती, इसी का नाम आलस्य है।

6. अविरति– विषयों मे तृष्णा बनी रहना अर्थात विषयेन्द्रिय संयोग से चित्त की विषयों में तृष्णा होने से वैराग्य का अभाव अविरति है। तृष्णा वैराग्य का शत्रु है। समाधि के लिये वैराग्य प्रमुखतम साधन है। अतः वैराग्य का अभाव योग का अन्तराय है।

7. भान्तिदर्शन– मिथ्याज्ञान को भ्रान्तिदर्शन कहते हैं। जब साधक योग के साधनों को असाधन और असाधनों को साधन समझने लगता है तो यह भ्रान्तिदर्शन योग का विघ्न बन जाता है।

8. अलब्धभूमिकत्व– समाधि की किसी भी भूमि की प्राप्ति न होना भी योग में विघ्न है। किसी प्रतिबन्धक–वश समाधि–भूमि को न पाना अर्थात समाधि में न पहुंचना।

9. अनवस्थित्व– समाधि–भूमि को पाकर भी उसमें चित्त का न ठहरना अर्थात ध्येय का साक्षात करने से ही समाधि का छूट जाना। उपर्युक्त 9 विघ्न एकाग्रता से हटाने वाले हैं और चित्त की वृत्तियों के साथ होते हैं, उनके अभाव में नहीं होते। इस कारण चित्त के विक्षेप योग के मल, योग के अन्तराय और योग के प्रतिपक्षी कहलाते हैं। इन चित्तविक्षेपों के 5 साथी भी हैं, जो इन अन्तरायों के हेने पर स्वतः हो जाते हैं। दुखदौर्मनस्याअंगमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः। यो सू 1/31। अर्थात्

1. दुख– आध्यात्मिक, आदिभौतिक और आधिदैविक।
2. दौर्मनस्य– इच्छा की पूर्ति न होने पर मन में क्षोभ होना।
3. अंगमेजयत्व– शरीर के अंगों का कांपना।
4. श्वास– बिना इच्छा के बाहर की वायु का नासिका द्वारा अंदर जाना।
5. प्रश्वास– बिना इच्छा के भीतर के वायु का नासिका छिद्रों द्वारा बाहर निकलना। ये विक्षेपों के साथ होने वाले उपविक्षेप अथवा उपविघ्न हैं।[7]

ईश्वर की भक्ति का अभ्यास करने की विधि इसके अर्थ के चिंतन से समस्त प्रकार के विघ्न समाप्त हो जाते हैं, एवं शीघ्रतम समाधि की प्राप्ति होती हैं। इस तरह से अभ्यास के परिणाम आंतरिक चेतना की प्राप्ति और बीमारी, संदेह और गलत विचारों जैसे गड़बडी से मुक्ति के रूप में दिये जाते हें। तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः। 2/1

योग सूत्रों में दूसरी बार ईश्वर क्रियायोग के तीसरे अंग के रूप में प्रकट होता है, जो अध्याय दो के आरंभ में ही वर्णित किया गया है। ईश्वरप्रणिधान को तपस और स्वाध्याय के बाद सूचीबद्ध किया गया हैं। क्रियायोग को समाधि की ओर ले जाने और क्लेशों को कमजोर करने के लिये अभ्यास किया जाता है। क्लेश मानवीय क्रिया एवं दुखों के स्रोत हैं जो मानव मानस में गहराई तक समाए हुए हैंः अज्ञान, अहंकार, इच्छा, द्वेष और जीवेष्णा। क्रियायोग के परिणाम पहले अध्याय में ईश्वरप्रणिधान के परिणामों से थोडे अलग लेकिन समानांतर हैं। समाधि एक गहन ध्यान की स्थिति है, जो एक दर्पण के रूप में कार्य करती है जिसके माध्यम से आंतरिक चेतना को अनुभव किया जा सकता है।[8] ईश्वरप्रणिधान का तीसरा और अंतिम संदर्भ नियमों (आंतरिक पालन) में से एक के रूप में है जो अष्टांगयोग प्रणाली में आठ का दूसरा अंग है,। शौचसंतोषतपः स्वाध्ययायेश्वप्रणिधानानि नियमा। (योगसूत्र 2:32) पांच नियम स्वच्छता और संतोष से शुरू होते हैं और फिर क्रियायोग के तीन अंगों को दोहराते हैः तपस, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान। ईश्वरप्रणिधान का परिणाम समाधि की पूर्णता है। समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्।। 45।। (योगसूत्र–2.47) योग सूत्रों के अनुसार ईश्वर को ध्यान की वस्तु के रूप में प्रयोग करने से ध्यानी धीरे–धीरे मन को शुद्ध करता है। महर्षि पतंजलि की शब्दावली में बुद्धि (बुद्धि यो विवेकपूर्ण जागरूकता) ने हमारे शरीर, हृदय, मन और दुनिया (प्रकृति) के साथ एक मिथ्या तादाम्य बना दिया है। हम स्वयं को शरीर और अपने विचार मानते हैं। हम अपने सच्चे स्व को शुद्ध चेतना के रूप में नही देखते हैं। इसका उद्देश्य हमारी बुद्धि को शुद्ध करना या अधिक सात्विक बनाना हैं जब तक कि हम यह अनुभव ने करें कि हमारा वास्तविक अस्तित्व पुरूष, शुद्ध चेतना हैं। वृत्तिसारूप्यम् इतरत्र ।। 1.4 ।।

दूसरे समय में अर्थात् वृत्तियों के निरोध से भिन्न अवस्था में द्रष्टा का वृत्ति के सदृश स्वरूप होता है।[9] योग सूत्र में वर्णित ईश्वर की यह विशेष धारणा, तीन आंतरिक विशेषताओं पर प्रकाश डाल सभी कर्मो और कष्टों से पूर्ण मुक्ति और श्रेष्ठता;ादि आध्यात्मिक गुरू की भूमिका सभी जीवित प्राणियों के शाशव मार्गदर्शक; और सर्वज्ञता, हर चीज का पूर्ण ज्ञान। ये तीन विशेषताएं स्पष्ट रूप से इंगित करती हैं कि योगियों की रूचि कहाँ है। योगी अज्ञान, अंहकार, मोह, और दुखो के कारण– क्रोध, घृणा, ईर्ष्या, लालच इच्छा जैसे कर्म और कष्टों के बंधन से मुक्ति पाने का प्रयास करते हैं– जो इन कष्टों से उत्पन्न होते हैं। योगियों को अनुभव होता है कि एक बार जब हम भ्रम, आसक्ति इच्छा आदि के इस स्पष्ट रूप से अंतहीन चक्र में फंस जाते हैं, तो हमारी दृष्टि धुंधली हो जाती है और स्वयं को अलग करना कठिन होता है। केवल वही जो पहली बार में कभी उलझा नहीं था हमें स्वयं को मुक्त करने में मदद कर सकता है। इसी तरह, केवल वही जो पहले से ही मुक्त है, कर्म की लंबी श्रृंखला और कर्म के फल से मुक्ति पाने में हमारा मार्गदर्शन कर सकता है। योगियें के अनुसार, सर्वोच्च पुरूष बहुत विशेष भगवान सामान्य आत्माओं की तरह बंधे नहीं हैं। साधारण आत्माएं वे हैं जो अपूर्णता, स्वतंत्रता की कमी और पूर्ण ज्ञान की कमी का अनुभव करती हैं, और इस प्रकार ईश्वर में लीन होने की एक अंतर्निहित इच्छा होती है।

तो क्या योग हमें पूरी तरह से ईश्वर पर निर्भर रहना सिखाता है? यदि हां, तो हम अपने कार्यो के लिये कैसे जिम्मेदार हो सकते है? योग हमें ईश्वर पर निर्भर होना या ईश्वर को पलायन के रूप में उपयोग करना नहीं सिखाता है। बल्कि, यह हमें ऊपर से उपहार के रूप मे प्राप्त सभी संसाधनों को सर्वोत्तम उपयोग करना सिखाता है ताकि हमारी मानवीय क्षमता को पूर्ण रूप से प्रकट किया जा सके। योगियों के अनुसार, केवल भगवान ही सच्चे आदि गुरू हैं। हम अपने भीतर के इस आदि गुरू से हमारी सांसारिक आवश्यकताओं का ध्यान रखने की इच्छा नहीं कर सकते हैं, लेकिन आंतरिक प्रेरणा, आंतरिक मार्गदर्शन, प्रेरणा, उत्साह, साहस और दृढ़ संकल्प के रूप में, ईश्वर– आंतरिक शिक्षक– हमें सोचने, बोलने और कार्य करने में मदद करता है। एक तरीका जो हमें अपने कर्म बंधनों से मुक्ति पाने में सक्षम बनाता है।[10]

उपसंहार :– योग किसी भी तरह से हमें ईश्वर पर निर्भर नहीं बनाता है। इसके विपरीत, एक योगी कहेगा कि ईश्वर हमें संसार की मोहक शक्तियों से मुक्ति दिलाने में मदद करता है। एक बार जब कोई व्यक्ति

सर्वज्ञानी ईश्वर की मुक्ति शक्ति को जान लेता है, जो हम में से प्रत्येक के भीतर शाश्वत रूप से निवास करता है, तो यह अनुभूति स्वभाविक रूप से प्रेम और विश्वास के रूप में प्रकट होती है। यह स्वयं से स्वयं को भगवान के प्रति समर्पण करना संभव बनाता है। समर्पण का यह स्वाभाविक प्रकटीकरण असाहयता का कार्य नहीं है, बल्कि हमारे और उस सर्वज्ञ ईश्वरीय सत्ता के बीच स्पष्ट समझ है जो हमें निरंतर मार्ग पर ले जाती है। हमें स्वयं को परमेश्वर के प्रति समर्पण करने के लिये प्रयास करने की आवश्यकता नहीं है; बल्कि उस आंतरिक मार्गदर्शक के प्रति कृतज्ञता की सहज लहर आत्म–समर्पण का मानसिक वातावरण बनाती है। फिर हमें स्वयं के साथ काम करना जारी रखना चाहिए कि हम जो कुछ भी करते हैं वह सच्चे शिक्षक–भगवान के मार्गदर्शन के कारण होता है। यह जान लेने पर कि गहन प्रयास से भी हम अपने पिछले कर्मो की सतह को शायद ही खरोंच भी सकते हैं, बिना किसी संघर्ष या झिझक के हम स्वतः ही ईश्वर की प्रति समर्पण कर देते हैं और स्वतंत्रता प्राप्त कर लेते है। योगियों के अनुभव के अनुसार, यदि हमारे हृदय शुद्ध हैं और हमारे मन एकाग्र हैं, तो हम ईश्वर की एक सहज समझ प्राप्त कर सकते हैं, जो हमारी बौद्धिक समझ की तुलना में असीम रूप से स्पष्ट और अधिक व्यापक है। यही कारण है कि वे उन तकनीकों पर इतना बल देते हैं जो शुद्धि और एकत्व की ओर ले जाती हैं। यही कारण है कि जब पतंजलि ईश्वर की चर्चा करते हैं, तो वे इस विस्तृत परिधि में ऐसा करते हैं कि कैसे ईश्वर हमें उन तत्वों से मुक्ति दिलाने में मदद कर सकते हैं जो हमारे दिमाग को परेशान करते हैं और हमारे दिलों को प्रदूषित करते हैं। पतंजलि ईश्वर में निहित अनंत शक्तियों और विशेषताओं में से केवल सर्वज्ञता, सभी कर्मो से शाश्वत स्वतंत्रता और इस तथ्य का उल्लेख करते हैं कि ईश्वर आदि आध्यात्मिक शिक्षक हैं। योगियों के अनुसार, ईश्वर परम सत्य के रूप में मौजूद है और इस अस्तित्व के कारण ही बाकी सब कुछ स्थित हो सकता है। लेकिन ईश्वरीय चेतना की समग्रता को शब्दों में समिति नहीं किया जा सकता है।

References :-

1. तीर्थ, ओ. (2008) पातंजलयोगप्रदीप (vol.31) गोरखपुर उत्तर प्रदेश भारत गीताप्रेस गोरखपुर (पृष्ठ सं0 146–148)।
2. गोयनका, ह. (2017) योग दर्शन (vol 48) गोरखपुर, उत्तर प्रदेश, भारतः गीताप्रेस गोरखपुर, (पृष्ठ सं0 42)।
3. तीर्थ, ओ. (2008) पातंजलयोगप्रदीप (vol.31) गोरखपुर उत्तर प्रदेश भारत गीताप्रेस गोरखपुर (पृष्ठ सं0 146–148)।
4. शंकर, श. श. (2020, मार्च 10) योग के बारे में (Yoga). Retrieved from https:// www.artofliving.org/: https:// www. artofliving.org/in-hi/yoga/ patanjali- yogasutra/knowledge- sheet-33.
5. Ramanis. (2013, July 26) Yoga can be without God, But. Retrieved March 15, 2021, from https:// ramanisblog.in/: https://ramanisblog.in /2013/07/26/ yoga can be without god but sutra 1-24.
6. Sarawati, S.S (1976) four chapters on freedom (vol. frist) Munger, Bihar, Bharat: yoga publication trust-811201 (Page No. 82).
7. Burgin, (2007 July 06) Antarayas: The 13 Obstacles Yoga. Retrieved April 05, 2021 from https:/www.yogabasics.com:.
8. आचार्य, प. श. (2011) सांख्य एवं योगदर्शन (Vol.1) मथुरा उत्तर प्रदेश भारतः युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट–281003 (पृष्ठ सं0 192–201)।
9. Govindan, M (2001). Kriya yoga sutras of Patanjali (vol. 2) Banglore, Karnataka, Bharat: Babaji's Kriyayaoga order of Acharyas Trust – 560055 (Page No. 12) .
10. Ferretti, A. (2012, March 01). Yoga as a religion? Retrived April 15, 2021 from https:// www. yogajournal.com: https// www. yogajournal.com/ yoga 101/beyond-belief/

कोविड-19 महामारी के दौरान भारत में प्रवासी संकट
एक विश्लेषण

डॉ. ऋतेष भारद्वाज *
डॉ. पिंकी पुनिया**

सार :– कोविड–19 ने भारत के लिए एक अभूतपूर्व चुनौती पेश की है। कोविड–19 महामारी के प्रकोप के चलते हैं देशभर के बड़े–बड़े शहरों से हजारों संख्या में प्रवासी मजदूर अपने–अपने गांव की तरफ पलायन कर गए। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 24 मार्च 2020 को देशभर में 21 दिनों के लिए लॉकडाउन की घोषणा की थी और इस दौरान प्रवासी मजदूर भुखमरी के डर से अपने परिवारों के साथ गांव की तरफ कई हजार किलोमीटर पैदल चलते रहे जिसमें इनके साथ बुजुर्ग, बच्चे, महिलाएं और दिव्यांग भी शामिल थे। अपने घरों को लौटते हुए इन्हें दुर्घटनाओं का भी सामना करना पड़ा जिसमें कई प्रवासी मजदूरों की मृत्यु हो गई। महामारी के सबसे महत्वपूर्ण और दृश्यगत परिणामों में से एक प्रवासी संकट की समस्या रही है। अनियोजित और अचानक किए गए लॉकडाउन के कारण प्रवासी श्रमिकों को अपने जीवन और आजीविका के संदर्भ में महामारी का सबसे बुरा प्रभाव झेलना पड़ा है। करोना वायरस महामारी के दौरान प्रवासी संकट की वजह से प्रवासी श्रमिकों और करोना वायरस के बीच हमें कई बहुपक्षीय व बहुस्तरीय संबंधों का पता चलता है। इस लेख के माध्यम से कोविड–19 महामारी के दौरान भारतीय प्रवासी संकट का विश्लेषण विशेष रुप से प्रवासी श्रमिकों की गतिशीलता, सामाजिक सुरक्षा और स्वास्थ्य प्रबंधन के साथ–साथ सरकार द्वारा इनके हित में उठाए गए नीतिगत राहत उपायों के साथ ही न्यायपालिका द्वारा इनके संदर्भ में दिए गए निर्देशों का वर्णन और विश्लेषण भी किया गया है।

मुख्य शब्द/सूचक शब्द :– कोविड–19, महामारी, सामूहिक निरोधक क्षमता, अनौपचारिक क्षेत्र, स्वास्थ्य देखभाल, सामाजिक सुरक्षा, जन स्वास्थ्य प्रबंधन।

कोविड–19 महामारी इतिहास का सबसे बड़ा और भयंकर संकट रहा है क्योंकि यह त्रिस्तरीय संकट– स्वास्थ्य, मानवता और आर्थिक संकट– के रूप में हमारे समक्ष आया। अब तक इस महामारी ने राज्यों की सीमाओं को पार करते हुए कई महाद्वीपों में लाखों लोगों के जीवन को काल का ग्रास बना लिया है। यदि इस वर्तमान संकट को अतीत में घटित हो चुके संकटों के संदर्भ में देखा जाए – उदाहरण के तौर पर जैसा कि वर्ष 1930 की आर्थिक महामंदी– तो इस संकट ने मांग और आपूर्ति दोनों के समक्ष कई नए प्रकार के व्यवधान उत्पन्न कर दिए हैं। वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला व अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर कोविड–19 के प्रभाव को बहुत ही दृढ़ता से महसूस किया गया है। इसी संदर्भ में विभिन्न विद्वानों का भी कहना है कि इस महामारी नें श्रम बाजार की मांग में गिरावट लाने के साथ–साथ आपूर्ति श्रृंखला और श्रम बाजार को भी संकुचित कर दिया है। इस प्रकार के व्यवधान ने उत्पादन में श्रम को प्रभावित करने वाली श्रृंखला के निचले हिस्से में एक लहर पैदा कर दी है और जिसके परिणामस्वरूप गहरे झटके और ज्वलंत स्थिति उत्पन्न कर दी है।[1]

कोविड–19 पर राज्य की प्रतिक्रिया :– कोविड–19 महामारी वैश्विक स्तर पर एक बुरे स्वप्न का निर्माण किया, वैश्विक स्तर पर अनेक राष्ट्र–राज्यों ने कुछ कानूनी प्रतिक्रियाओं के माध्यम से इस वायरस के खिलाफ युद्ध शुरू करने, इसके प्रसार और प्रभाव को स्थानीय और राष्ट्रीय स्तर पर रोकने के लिए जन स्वास्थ्य प्रबंधन (Public Health Management) पर विशेष ध्यान केंद्रित किया है। ब्रिटेन और सिंगापुर के विपरीत, भारत में कोविड–19 कानून लागू नहीं किया और इस करोना वायरस महामारी से निपटने के लिए आपदा प्रबंधन अधिनियम 2005 (Disaster Management Act 2005) और औपनिवेशिक महामारी आपदा अधिनियम 1897 (Colonial Epidemic Disaster Act 1897) का सहारा लिया। इस वायरस के प्रसार और प्रभाव को रोकने के लिए भारत सरकार ने 25 मार्च, 2020 को सर्वप्रथम (4 घंटे के नोटिस के आधार पर) देशव्यापी लॉकडाउन की तत्काल घोषणा कर दी और जोकि लगभग दो महीने तक जारी रही। यह विश्व में लागू किया गया सबसे बड़ा और सबसे कठोर लॉकडाउन था। इस दौरान बहुत से व्यवसाय बंद हो गए, वस्तुओं की आपूर्ति श्रृंखला बाधित हुई, रेल और अंतर–राज्य बस सेवा रोक दी गई, कई बार लॉकडाउन की समय सीमा को बढ़ाया गया और बहुत से अनुबंध निलंबित कर दिए

*** एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग,श्याम लाल कॉलेज (संध्या), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली**
**** एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, पीजीडीएवी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।**

गए जिसके चलते देश के संगठित और विशेष रुप से असंगठित क्षेत्र को अभूतपूर्व आर्थिक नुकसान उठाना पड़ा। असंगठित क्षेत्र में पूर्णरूप से रुकावट पैदा हो गई और विशेषरूप से उन लोगों को कोई सहायता नहीं दी गई जो इससे सबसे ज्यादा प्रभावित हुए, जबकि इस लॉकडाउन का मुख्य उद्देश्य कोविड–19 के प्रसार को रोकना था।[2]

इस महामारी से निपटने के लिए राज्य की प्रतिक्रियाओं में अनेक आंतरिक दरारे देखी जा सकते हैं और प्रवासी मजदूरों के संदर्भ में यह दरारे और भी गहरी देखी जा सकती है। कोविड–19 के संकट से निपटने में नीतिगत समस्या और विवादों की सीमा का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि इस वायरस के प्रसार को समय रहते नहीं रोका गया। 'यह विचार की खतरा बाहर से है', इस आधार पर इस महामारी से सामना करने की रणनीति बनाई गई। इस रणनीति के संदर्भ में इस दृष्टिकोण में निहित उस विरोधाभास का पता चलता है जिसने भारत में 'प्रवासी संकट' (Migrant Crises) और 'सार्वजनिक स्वास्थ्य संकट' (Public Health Crises) के निर्माण में योगदान दिया।

सबसे सख्त लॉकडाउन :– हर्ष मंडर और अमितांशु वर्मा के अनुसार, 'भारत ने दुनिया की सबसे छोटे राहत पैकेज के साथ सबसे कठोर लॉकडाउन को देखा'।[3] इस लॉकडाउन से आप्रवासी श्रमिकों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। अर्थशास्त्री और विकास अध्ययन के प्रोफेसर बारबरा हैरिस वाइट ने लॉकडाउन को श्रमिकों के अस्तित्व के प्रति नीति निष्क्रियता के माध्यम से 'अनौपचारिक श्रम पर एक युद्ध की घोषणा' (Declaration of War on Informal Labour) के रूप में दर्शाया है। इसमें लोगों का भारी संख्या में शहरों से अपने ग्रामीण क्षेत्रों की तरफ पलायन देखा जा सकता है, जिसमें अदृश्य (गरीब, श्रमिक, मजदूर और हाशिए पर स्थित कामगार वर्ग) भी दृश्यवान हो गया। भारत सरकार के आंकड़े उस वास्तविक स्थिति का विवरण नहीं देते जिसमें प्रवासी मजदूरों का बहुत बड़ी संख्या में पलायन या विस्थापन हुआ था।

प्रवासन कोई नई घटना नहीं है, यदि नए प्रवासन और पुरानी प्रवासन के मध्य अंतर देखा जाए तो यह कहा जा सकता है की एक तरफ, यह प्रवासन दयनीय रसद के साथ किया गया प्रवासन था। तो वहीं दूसरी तरफ, इस संकट की घड़ी में परिवार सहित सुरक्षित घर लौटने की अनिवार्यता भी थी। शहरों के संसाधन इस बार इन प्रवासियों की कोई मदद नहीं कर पाए जिसने एक प्रकार से शहरों की जर्जर और असमान वितरणात्मक व्यवस्था को उजागर किया– विशेष रूप से स्वास्थ्य, शिक्षा, मजदूरी और कल्याणकारी योजनाओं के संदर्भ में– और अर्थव्यवस्था में विपरीत प्रवसन (Reverse Migration) को बढ़ावा दिया। यह प्रवसन भारतीय इतिहास में आज तक के सबसे बड़े प्रवसन के रूप में सामने आया। अमिताभ कुंडू और मोहनन[4] के अनुमान अनुसार, इस प्रवसन ने 12 लाख लोगों को अस्थिर किया और 22 लाख लोग अपने–अपने घरों को मजबूर होकर लौट गए। अन्य स्रोतों के अनुसार, इस महामारी के दौरान लगभग 20 लाख लोग या 15 से 20 प्रतिशत के लगभग कुल प्रवासी विस्थापित हुए हैं। अनौपचारिक क्षेत्रों में कार्यरत 93 प्रतिशत प्रवासियों को रोजगार का नुकसान हुआ है। भारत के औद्योगिक आंकड़ों के अनुसार, भारत के 470 लाख श्रमिकों में से लगभग 80 प्रतिशत असंगठित क्षेत्रों में आज कार्यरत है जिसमें मुख्य रुप से रिक्शा चलाना, सब्जी बेचना, भवन या मॉल निर्माण में कार्यरत मजदूर, गृह कार्य में हाथ बटाने वाले घरेलू नौकर इत्यादि। असंगठित क्षेत्रों में कार्य कर रहे श्रमिकों ने अर्थव्यवस्था के पहिए को चालू रखने में हमेशा अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इस महामारी के विषाणु को रोकने के लिए देशव्यापी स्तर पर हुए लॉकडाउन ने भूख, बेघर और अप्रत्याशित दुखो से घिरी हुई एक दयनीय स्थिति की और प्रवासी श्रम को फिर से धकेल दिया है। अप्रैल 2020 के मध्य में प्रवासी कामगार एक्शन नेटवर्क (Migrant Workers Action Network) के द्वारा कराए गए सर्वेक्षण (1,11,159 प्रवासी मजदूरों के नमूनों के सर्वेक्षण के आधार पर) के अनुसार इस दौरान 90 प्रतिशत लोगों को उनकी उचित मजदूरी तक नहीं दी गई, 96 प्रतिशत लोगों को सरकारी विभागों से राशन तक प्राप्त नहीं हुआ और 70 प्रतिशत लोगों को पका हुआ भोजन भी इस लॉकडाउन के दौरान प्राप्त नहीं हो सका।[5]

हाल ही (सितंबर 2020) में रोजगार की अनिश्चितता को देखते हुए केंद्र सरकार ने माना है कि देश के शहरी इलाकों में 10–7 फीसदी और ग्रामीण इलाकों में 29–3 फीसदी लोगों के पास स्थाई रोजगार नहीं है। यह लोग अस्थाई प्रकृति के कामकाज से जुड़े हुए हैं और बड़े संस्थानों में भी अस्थाई तौर पर रख लिया जाता है। इन प्रवासी मजदूरों और कामगार वर्ग की आर्थिक सुरक्षा के लिए समय–समय पर न्यूनतम पारिश्रमिक राशि तय की जाती है और हर 6 महीने पर उपभोक्ता मूल्य सूचकांक के आधार पर इनका पुनर्मूल्यांकन भी किया जाता है।[6] केंद्रीय श्रम एवं रोजगार मंत्री संतोष कुमार गंगवार ने हाल ही में संसद में एक प्रश्न का जवाब देते हुए कहा था कि न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के अंतर्गत अस्थाई प्रकृति के कामकाज में लगे लोगों के लिए

न्यूनतम पारिश्रमिक राशि निर्धारित की जाती है। 1 अप्रैल 2020 को तय की गई राशि के अनुसार अकुशल श्रमिकों के लिए ए वर्ग के शहरों में कृषि क्षेत्र में कामकाज के लिए ₹333 प्रतिदिन, बी वर्ग के शहरों में ₹303 प्रतिदिन और सी वर्ग के शहरों में ₹300 प्रतिदिन का पारिश्रमिक निर्धारित किया गया है। निर्माण क्षेत्र में काम कर रहे अकुशल श्रमिकों के लिए ए वर्ग के शहरों में ₹523, बी वर्ग के शहरों में ₹437 और सी वर्ग के क्षेत्रों में ₹350 प्रतिदिन मजदूरी निर्धारित की गई है। वहीं दूसरी तरफ दक्ष कामगारों के लिए कृषि क्षेत्र में ए वर्ग के क्षेत्रों में ₹438, बी वर्ग के लिए ₹407 और सी वर्ग के लिए ₹364 निर्धारित किए गए हैं। देश के उच्च शहरी इलाके जैसे दिल्ली, मुंबई, नागपुर, पुणे इत्यादि को ए वर्ग में, मध्यम स्तरीय शहरीकरण वाले स्थान जैसे प्रयागराज, अलीगढ़, बरेली और राजकोट को बी वर्ग की श्रेणी में रखा गया है और देश के शेष इलाकों को सी वर्ग में रखा जाता है।[7]

सामाजिक सुरक्षा तंत्र का अभाव :– ामाजिक सुरक्षा तंत्र से अनौपचारिक श्रमिकों का बहिष्कार उनकी कमजोरियों और परेशानियों को और बढ़ाता है। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन के एक अनुमान के अनुसार, सामाजिक सुरक्षा प्रावधानों तक पहुंच के मामले में भारत की आबादी एशिया और प्रशांत क्षेत्र में सबसे कमजोर है। भारत में प्रवासी श्रमिक सामाजिक सुरक्षा के दायरे से ज्यादा लाभान्वित नहीं है क्योंकि ग्रामीण शहरी प्रवासियों में से अधिकांश मुख्य रूप से आकस्मिक वेतन पर या अनौपचारिक क्षेत्र में स्व–कार्यरत है। भारत में विभिन्न राज्यों के बीच सामाजिक सुरक्षा समन्वय की कमी दिखाई देती है हालांकि कभी–कभी स्रोत और गंतव्य तो दिखाई देते हैं परन्तु अधिकांशतः श्रम बाजार में प्रवासन की प्रकृति अदृश्य ही होती है।[8] कोई भी व्यक्ति तीन स्तरों पर श्रमिक प्रवासियों के संकट का अवलोकन कर सकता है जैसे गंतव्य (Destination), पारगमन (Transit) और स्रोतों (Source) के आधार पर। श्रम प्रवासियों की सुरक्षा और गरिमा को सुनिश्चित करने के लिए उपरोक्त तीनों क्षेत्रों में उचित नीतिगत प्रक्रियाओं की आवश्यकता है, सरकार ने श्रम प्रवासियों के लिए मुफ्त आवास, मजदूरी का भुगतान और सार्वजनिक वितरण प्रणाली के जरिए कानूनी अधिकारों का उपयोग इनके हित में सुनिश्चित नहीं किया। इसी प्रकार उनके लिए सुचारू और सुरक्षित परिवहन व्यवस्था को भी सुनिश्चित करने हेतु कोई नीति नहीं अपनाई गई। श्रमिकों का अनिवार्य पंजीकरण नहीं किया गया ताकि आपदा के समय में उनको आवश्यक मदद पहुंचाई जा सके।[9] हाल ही में केंद्र सरकार ने 9 अप्रैल 2020 को घोषणा की कि 20 लाख पंजीकृत श्रमिकों को लाक्डाउन के दौरान 3000 करोड़ रुपए वितरित किए गए। इसके अतिरिक्त सरकार प्रवासी श्रमिकों को मुफ्त खाद्यान्न और किसानों को रियायती ऋण देने की भी घोषणा की।[10] तत्कालीन वित्त मंत्री ने की घोषणा की कि आठ करोड़ प्रवासियों को 2 महीने के लिए 5 किलोग्राम अनाज और 1 किलोग्राम दाल मुफ्त मिलेगी (नवंबर 2020 तक)। हालांकि, सरकार द्वारा प्रवासी श्रमिकों की समस्याओं को हल करने के लिए सरकार द्वारा टुकड़ों में नियोजित उपागम (Piecemeal Approach) का पता चलता है। बड़ी संख्या में निर्माण श्रमिक प्रवासियों की श्रेणी में आते हैं और कई प्रवासी श्रमिकों की तरह वह भी पंजीकृत नहीं है और इस तरह सरकार द्वारा दी जाने वाली नकद हस्तांतरण योजना से वह वंचित रहे। हाल ही में सरकार द्वारा राशन कार्ड पाने वाले 8 लाख लोगों के लिए 3 महीने तक मुफ्त राशन देने की घोषणा की गई, लेकिन प्रवासी श्रमिकों के पास उनके राशन कार्ड उनके गृह राज्यों में रखे हुए थे और जब इस महामारी के दौरान उनको अपने कार्य स्थलों में भोजन की आवश्यकता थी तब वह इस से वंचित रह गए। इस प्रकार, नकद वितरण और सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Public Distribution System) तक पहुंच का लाभ लेने के लिए फंसे हुए प्रवासी श्रमिकों को अपने कार्यस्थल से बाहर निकल कर सड़कों पर आना पड़ा ताकि इस महामारी के दौरान वह अपने–अपने घरों को लौट सके।

वर्तमान श्रम कानूनों के मौजूदा टुकडे जैसे अनुबंध श्रम विनियमन और उन्मूलन अधिनियम 1970 (Contract Labour Regulation and Abolition Act 1970), अंतर–राज्य प्रवासी श्रमिक अधिनियम 1979 (Inter&State Migrant Worker Act 1979), राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन अधिनियम 2005 (The National Disaster Management Act 2005), श्रम संहिता 2019 (The Labour Code 2019) केवल कागजी शेर साबित हुए हैं और वर्तमान संकट का सामना करने में इनकी कोई प्रसंगिकता नहीं है। प्रवासियों को शहरी केंद्रों से बाहर फेंक दिया गया और यह प्रवासी श्रम के संबंध में भारतीय राज्य के निष्क्रिय भूमिका को उजागर करता है।[11] कुछ राज्यों ने जैसे उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और गुजरात ने मौजूदा श्रम कानूनों को निलंबित कर दिया और नियोक्ता को अपने संबंधित व्यवसाय को मुक्त रूप से चलाने की अनुमति दे दी गई। अब मजदूरों को अब 12 घंटे कार्य करने के लिए मजबूर किया जाएगा और सप्ताह में 6 दिन फैक्ट्री अधिनियम 1948 के तहत प्रावधानों का पालन करते हुए, अब अतिरिक्त घंटों के लिए सामान्य दर की दुगनी दर से अतिरिक्त भुगतान करने के लिए कहा गया है। इसे आगे बढ़ते हुए, कमजोर और असुरक्षित मजदूरों को श्रम अधिकार संरक्षण से अलग किया गया जिसे शाह और लार्शे ने 'अति शोषण' (Super Exploitation) के रूप में अंकित किया है।[12] अभी हाल ही में (मई 2021) सर्वोच्च

न्यायालय ने देश के अलग–अलग हिस्सों में फंसे सभी प्रवासी मजदूरों को सूखा राशन (Dry Diet) देने का आदेश दिया है। जस्टिस अशोक भूषण और जस्टिस एम आर शाह की पीठ ने अपने आदेश में कहा है कि, 'प्रवासी मजदूर, चाहे वे देश के किसी भी हिस्से में क्यों न फंसे हो, इन सब को आत्मनिर्भर योजना या केंद्र या राज्यों की किसी अन्य योजना के तहत सुखा राशन उपलब्ध करवाया जाए और इसके लिए इन्हें राशन कार्ड भी दिखाना अनिवार्य नहीं होगा।'[13] सुप्रीम कोर्ट ने सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों को निर्देश दिया है कि वे उन स्थानों पर सामुदायिक रसोई (Community Kitchen) की शुरुआत करें जहां मजदूर फंसे हुए हैं।

प्रवासी श्रमिक और स्वास्थ्य प्रबंधन संकट :– लॉकडाउन के दौरान प्रवासी श्रमिक महामारी और स्वास्थ्य प्रबंधन संबंधी संकट से सबसे ज्यादा पीड़ित रहे। मनोविज्ञान और मानसिक स्वास्थ्य पर कोविड–19 का प्रभाव विविध और जटिल रहा है। इसके अतिरिक्त, प्रवासी गतिशीलता को सही ढंग से नहीं संभालनां, पुलिस की आक्रामकता, अधिकारियों के हाथों दुर्व्यवहार, परिवहन में देरी और प्रवासियों को बलि का बकरा बनाए जाने के कारण प्रवासी श्रमिकों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के साथ–साथ उनका विश्वास भी कम हुआ है। देखा जाए तो कोविड–19 महामारी एक महान तुल्यकारक/समतामूलक भी रही है और इसने प्रत्येक व्यक्ति पर चाहे वह किसी भी जाति, वर्ग, लिंग, आयु, क्षमता, धर्म और क्षेत्र का ही क्यों ना हो सबको बराबर प्रभावित किया है। हालांकि, प्रवासी मजदूरों को बीमारी का वाहक माना गया और प्रवासी शरीर को निष्कासन की नई चुनौती का सामना करने के साथ–साथ कलंकित सामाजिक बहिष्कार रूपी निगरानी तंत्र को भी उन पर लागू किया गया। इस उतार–चढ़ाव के समय में, मानवता और मानवीय संवेदनशीलता का भय के दायरे के साथ समझौता किया जा रहा है और यह भय इस बात से विदित होता है कि सरकारी अधिकारियों द्वारा इन पर सामूहिक रसायनिक छिडकाव तक किया गया।

निष्कर्ष :– कोरोनावायरस संकट ने प्रवासी श्रमिकों पर बहुपक्षीय रूप से प्रतिकूल प्रभाव डाला है। प्रवासी संकट ने भारत में महामारी की नैतिक और राजनीतिक प्रतिक्रियाओं को भी उजागर किया है, विशेष रूप से प्रवासी श्रमिकों के संदर्भ में। इसने नव–उदारवादी अर्थव्यवस्था में श्रम के क्षेत्र और सामाजिक न्याय के मुद्दों को भी उठाया है। निकट भविष्य में प्रवासन के मुद्दे के बेहतर प्रबंधन के लिए और महामारी से निपटने के लिए एक वैकल्पिक समावेशी और प्रवासी श्रम केंद्रित नीतियों को पुनर्जीवित और पुनर्गठित किया जाना आज बहुत आवश्यक है।

संदर्भ (Refrences)

1. Bales, Kevlin, (2020), 'COVID-19: Ensure Labour Laws benefit both Workers and Economy', *Financial Express*, August 3.https://www.financialexpress.com/opinion/covid-19-ensure-labour-laws-benefit-both-workers-and-economy/2042741/Accessedon: 20 September, 2020.
2. Chaudhary, Monika, P. R. Sodani, and Shankar Das, (2020), 'Effect of COVID-19 on Economy in India: Some Reflections for Policy and Programme', *Journal of Health Management*, Vol.22, No.2, pp.169-180.
3. https://journals.sagepub.com/doi/pdf/10.1177/0972063420935541Accessed on: 10 September, 2020.
4. D'souza, Kim, (2020), 'India's Kept Improvising During Coronavirus: Age of Pandemic Needs a New Public Health Law', *The Print*, 12 July,2020. https://theprint.in/opinion/india-kept-improvising-during-coronavirus-age-of-pandemics-needs-a-new-public-health-law/459122/ Accessed on: 14 July, 2020.
5. Economic Survey of India, (2017), Ministry of Finance, Government of India https://www.indiabudget.gov.in/budget2017-2018/survey.asp
6. Jha, Manish K and Ajeet Kumar Pankaj, (2020), (2020a), *Borders of An Epidemic: COVID-19 and Migrant Workers*, Kolkata: Calcutta Research Group, 2020.
7. Kapoor, Radhicka, (2020), 'The Unequal Effects of the Covid-19 Crisis on LabourMarket', *The India Forum*, August 7. https://www.theindiaforum.in/article/unequal-effects-covid-19- crisis labour-market Accessed on: 10 August, 2020.
8. Lal, Neeta, (2020), 'The Pandemic Revealed India's Invisible Workforce', *The Diplomat*, June 5. https://thediplomat.com/2020/06/the-pandemic-revealed-indias-invisible-workforce/ Accessed on: 10 June, 2020.
9. Rajan, S. Irudaya, P. Sivakumar and Aditya Srinivasan, (2020), The COVID-19 Pandemic and Internal Labour Migration in India: A 'Crisis Mobility', *The Indian Journal of Economics*, November, https://doi.org/10.1007/s41027-020-00293-8 Accessed on: 5 December, 2020.
10. Sen, Sunanda, (2020), 'Rethinking Migration and the Informal Indian Economy in the Time of a Pandemic', *The Wire*, June1. https://thewire.in/economy/rethinkingmigration-and-the-informal-indian-economy-in-the-time-of-a-pandemic Accessed on: 10 June, 2020.
11. Shah, Alpa and Jens Lerche, (2020), 'The Five Truths about the Migrant Workers' Crisis', *Hindustan Times*, July, 13.
12. https://www.hindustantimes.com/analysis/the-five-truths-about-the-migrant-workers-crisis-opinion/storyawTQUm2gnJx72UWbdPa5OM.html Accessed on: 20 July, 2020.
13. Sharma, Yogima Seth, (2020b), 'Unemployment Rate Falls to pre-Lockdown Level: CMIE', *The Economic Times*, June 24.https://economictimes.indiatimes.com/news/economy/indicators/unemployment-rate-falls-to-pre-lockdown-level-cmie/articleshow/76528571.cms Accessed on: 27 June, 2020.

इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता का स्वर

डॉ. शत्रुघ्न कुमार मिश्र*

कविता भारतीय साहित्य की दुनिया में सर्वाधिक प्राचीन विधा है। हमें साहित्य का प्राचीनतम रूप कविता के रूप में प्राप्त होता है। हिन्दी कविता अपने प्रारंभिक दौर से आजतक अविरल प्रवाहित हो रही है। आदिकाल से लेकर रीतिकाल तक लगभग 1000 वर्ष तक साहित्य की आवाज कविता ही रही। रीतिकाल के पश्चात् गद्य का जन्म हुआ और गद्य के विकास के समानान्तर कविता का विकास हुआ। उन्नीसवीं सदी की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि खड़ी बोली का प्रसार है। हिन्दी की बोलियों का संयुक्त एकाकार खड़ी बोली के रूप में इसी दौर में हुआ और पद्य ओर गद्य दोनों माध्यमों की भाषा खड़ी बोली बनी। खड़ी बोली का प्रयोग वस्तुतः गद्य लेखन के लिए प्रयोग किया जाता रहा, किन्तु बीसवीं सदी तक आते–आते कविता की भाषा पूर्णतः खड़ी हिन्दी हो गयी। बीसवीं सदी में काव्य के लिए ब्रजभाषा के प्रयोग का आग्रह बहुतायत कवियों का जाता रहा। आज की हिन्दी कविता के रूप का संस्कार हमें छायावादयुगीन कविता से मिला है। छायावाद युग से लेकर आजतक की हिन्दी कविता में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए, किन्तु कविता की भाषा खड़ी हिन्दी ही रही।

छायावाद युग के प्रारम्भ होने के साथ ही हिन्दी कविता में छन्दमुक्त कविता का दौर आया। छन्दमुक्त कविता का प्रारम्भ निराला ने किया, इसके कारण वह आलोचना का शिकार भी हुए। 'जूही की कली' जिसे छन्दमुक्त कविता की प्रारंभिक कविता माना जाता है, इस कविता ने तत्कालीन कवियों को प्रभावित किया। छायावाद युग से अब तक छन्दमुक्त कविता ही काव्य का मुख्य आधार व रुप है।

काव्यशास्त्रीय आधारों का कुछ असर छायावादयुगीन कविता पर तो पाया जाता है, किन्तु प्रगतिवाद का दौर आते ही कविता में यथार्थ का स्वर प्रमुखता से जगह बनाता है। प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, साठोत्तरी कविता के बाद हिन्दी साहित्य के इतिहास में काल–विभाजन का कोई ठोस आधार नहीं बना, कहने का तात्पर्य है कि इस युग की कविता को समकालीन कविता ही कहा जाता है। सन् 1960 ई0 से अब तक की हिन्दी कविता में कोई काव्य–आंदोलन परिलक्षित करने का कार्य आलोचकों ने नहीं किया है। समकालीन कविता का रूप भले ही अलग–अलग हो किन्तु नामकरण अभी उसकी समस्या है। अतः इस समय की कविता को 'समकालीन कविता' ही कहा जाता है।

समकालीन कविताएँ छोटी और बड़ी दोनों प्रकार की लिखी जा रही हैं। इन कविताओं का फलक बहुत ही व्यापक है। कविता की दुनिया इस समय भी प्रासंगिक बनी हुई है। इस युग में रचनाकारों की दो पीढ़ियाँ हैं। एक पीढ़ी वह है जो नागार्जुन और त्रिलोचन की परवर्ती है और उनके साथ–साथ या बाद से कविता लेखन की दुनिया में सक्रिय है। एक पीढ़ी एकदम नयी पीढ़ी है जो इक्कीसवीं सदी के रचनाकारों की पीढ़ी है। इन दोनों पीढ़ियों का सामंजस्य कविता की दुनिया को महत्त्वपूर्ण और जनप्रासंगिक बनाती है। पुरानी पीढ़ी के प्रमुख हस्ताक्षर में राजेश जोशी, अरूण कमल, विनोद कुमार शुक्ल, अष्टभुजा शुक्ल, आलोक धन्वा, असद जैदी, मदन कश्यप, विष्णु खरे जैसे महत्त्वपूर्ण कवि हैं तो नयी पीढ़ी में राकेश रंजन, अनुज लुगुन, अरूणाभ सौरभ, सुधांशु फिरदौश, अविनाश मिश्र जैसे युवतम स्वर भी कविता में सशक्त उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं। समकालीन कविता में महिला लेखिकाओं की भी सार्थक उपस्थिति है, अपने जीवनानुभवों और काव्य शिल्प से समकालीन कविता के फलक को महिला लेखिकाओं ने विस्तृत किया है। आगे इन्हीं महत्वपूर्ण कवियों के माध्यम से ही समकालीन कविता के रूप, सौन्दर्य व विशेषताओं पर बात की जाएगी।

समकालीन कविता में गँवई रूप भी मौजूद है। एक ओर कविता एकदम 'नयी हिन्दी' का रूप ग्रहण कर रही है वहीं दूसरी ओर कुछ कवि गँवई जीवन के अनुभव को कविता में पिरोते हैं। किसानों की समस्या, गाँव की पुरातन सभ्यता और सामाजिक संस्कृति के सशक्त कवि के रूप में अष्टभुजा शुक्ल हमारे सामने आते हैं। अष्टभुजा मूलतः भारतीय मन के कवि हैं। उनकी भाषा पाठक को अपनी पुरातन संस्कृति की ओर ले जाती है। अष्टभुजा शुक्ल की कविता 'चैत के बादल' ऐसी ही एक कविता है, जिसमें गँवई जीवन उपस्थित होता है। चैत माह अप्रैल माह के लगभग का समय होता है, अगर इस ऋतु में वर्षा होती है तो यह फसल को काफी

*** मकान नं. 437, कतवारू का पुरा, अनगढ़ रोड़, मिर्जापुर।**

नुकसान पहुँचाती है। इसी विषय पर यह कविता अत्यंत पठनीय हो जाती है– **''मुँह अन्हारे/सन्न मारे/गाँव में माया पसारे/कहाँ से उपरा गए/भडुए, अधी ये चैत के बादल''**[1]

चैत की वर्षा किसानों के काम न आकर उन्हें नुकसान ही पहुँचाती है। वर्षा ऋतु का जहाँ कवि सौन्दर्यात्मक वर्णन करते हैं, वहीं अष्टभुजा इसे किसान जीवन की समस्या के रूप में देखते हैं– ''**जब बयाना हो गई घर की मसूर/जब फसल पक कर हुई तैयार/तब फूँकने खलिहान/आए हैं''**[2]

इक्कीसवीं सदी की कविता में विनोद कुमार शुक्ल बुजुर्ग पीढ़ी के बेजोड़ कवि हैं। उनकी कविताएँ जंगल, जमीन व मनुष्यता की कविताएँ हैं। भाषा का अनूठापन भी उनकी कविताओं में प्रमुखता से दिखायी देता है। विनोद कुमार शुक्ल की कविताएँ छत्तीसगढ़ के जंगलों और बिहड़ों के अनुभव को भी हमारे सामने लाती हैं। आदिवासी जीवन के सौन्दर्य की झलक और स्थानीय बोध उनकी कविताओं में सजीव हो उठता है। विनोद कुमार शुक्ल अपनी धरा के भूगोल को बखूबी समझते हैं और उन्हें कविता का विषय बनाते हैं। जंगल के वनवासी लोग और उनकी लड़कियाँ बाजार जाने से कैसे घबराती हैं, इसकी बानगी उनकी कविता 'जंगल के दिन भर के सन्नाटे में' देखी जा सकती है– **''एक अकेली आदिवासी लड़की को/घने जंगल जाते हुए डर नहीं लगता/बाघ–शेर से डर नहीं लगता/पर महुवा लेकर गीदम के बाजार जाने/ डर लगता है।/बाजार का दिन है/महुवा की टोकनी सिर पर बोहे/या काँवर पर/इधर उधर जंगल से/ पहाड़ी के ऊपर से उतर कर/सीधे–साधे वनवासी लोग/पेड़ के नीचे इकट्ठे होते हैं/और इकट्ठे बाजार जाते हैं।''**[3]

पहाड़ प्रकृति और परिवेश कवि विनोद कुमार शुक्ल की कविता में इस तरह जीवतंता से उपस्थित होते हैं कि कवि उन्हें जीवन के हिस्सों में शामिल करना चाहता है– **''अन्तिम समय तक के लिए/उनका एक गृहस्थ आश्रम/एकान्त के घने वन से छुपे/जीवन की अथाह गहरी नदी के किनारे।/इसी नदी के जल में डुबकी लगाकर/दोनों स्नान करते/कलश में वह/यही जीवन जल भरती/और यही जल वे ताँवे के लोटे में लेकर लौटते।''**[4]

समकालीन कविता के युवा स्वर में अरूणाभ सौरभ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कवि हैं। बिहार प्रान्त की जमीन से ताल्लुक रखने वाले अरूणाभ की कविता में बिहार का लोकजीवन व संस्कृति प्रवाहित होता है। आज सम्पूर्ण दुनिया को 'विश्वग्राम' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। ऐसे में हमारे अपने ही देश में स्थानीयता की समस्याएँ विद्यमान हैं। वर्ष 2019 में भारत में जब कश्मीरी युवकों पर भारत के विभिन्न भागों में हमले हो रहे थे, ऐसे में देश में बहुत पहले से बिहार के निवासियों पर हुए सामाजिक व शारीरिक हमलों की याद अरूणाभ की कविता 'वो स्साला बिहारी' में देखी जा सकती है– **''आवाज में निरन्तरता है–/ओय बिहारी/तेरी माँ की/तेज–तेज फावड़ा चला/निट्ठले/यूपी–बिहार के चूतिए/तेरी भैण की/तेरी माँ की..।''**[5]

अरूणाभ के साथ ही आदिवासी समाज से ताल्लुक रखने वाले झारखण्ड प्रान्त के बेहद संवदेनशील कवि अनुज लुगुन हमारे सामने आते हैं। आदिवासी जीवन के संघर्ष व उनके जीवन का सौन्दर्यात्मक बोध उनकी कविताओं में मौजूद है। आदिवासी अपने जंगल, जमीन से बेदखल किए जा रहे हैं। पूंजीवाद की विकरालता ने उनके जीवन को दूभर कर दिया है– ''**लड़ रहे हैं ये/नक्शे में घटते अपने घनत्व के खिलाफ / जनगणना में घटती संख्या के खिलाफ/गुफाओं की तरह टूटती/अपनी ही जिजीविषा के खिलाफ'/..../'लड़ रहे हैं आदिवासी/अघोषित उलगुलान में/कट रहे हैं वृक्ष/माफियाओं की कुल्हाड़ी से और/बढ़ रहे है कंक्रीटों के जंगल''**[6]

आदिवासी समाज को दुनिया जिन नजरों से देखती है, वह हिकारत का भाव लिए हुए है। राजनीति और प्रकृति के दोहन ने आदिवासी सभ्यता को नष्ट करने में अपनी जबरदस्त भूमिका निभायी है। आदिवासी समाज के सच को अनुज लुगुन की कविता 'आदिवासी' में देखा जा सकता है–''**वे जो सुविधाभोगी हैं/या मौका परस्त हैं/या जिन्हें आरक्षण चाहिए/कहते हैं हम आदिवासी हैं,/वे जो वोट चाहते हैं/कहते हैं तुम आदिवासी हो,/वे जो धर्म प्रचारक हैं/कहते हैं/तुम आदिवासी जंगली हो।/वे जिनकी मानसिकता यह है/कि हम ही आदि निवासी हैं/कहते हैं तुम वनवासी हो।''**[7]

समकालीन कविता में राकेश रंजन अपने ढंग के इकलौते कवि नजर आते हैं। उनकी कविताओं में भोजपुरी जनपद के शब्द व वाक्य प्रयोग कविता के प्राणतत्व बन जाते है। राकेश रंजन की कविताई की भाषा व लहजा एक आम आदमी की भाषा है, जो वह दैनन्दिन जीवन में प्रयोग करता है। वाक्य के मुहावरों का सुन्दर प्रयोग वह कविता में करते हैं। राकेश की कविता 'गुरु कौ बचन' ऐसी है ठेठ लहजे की कविता है– **''आ बचवा,**

चल चिलम लगा दे।/रात भई, जी अकुलाता है/कैसा तो होता जाता है/ऊ ससुरा रमधरवा सरवा/अबतक रामचरित गाता है/रमधरवा जल्दी सो जाए/ऐसा कोई इलम लगा दे!"[8]

हमारा समाज आज जाति, धर्म, सम्प्रदाय के नाम पर बंटा हुआ है। मनुष्य सर्वाधिक क्रूर व अविश्सनीय ऐसे समय में होता जा रहा है। धर्म के नाम पर शक भरी नजर मनुष्य के स्वाभाविक जीवन को अन्दर से प्रभावित करती है। राकेश रंजन की कविता 'यह पहला मौका नहीं था' ऐसी ही एक कविता है, जहाँ एक कम उम्र का मुस्लिम बालक मंदिर पर अगरबत्ती बेचता है। कवि के उसके नाम लेने पर वह सकपका जाता है, कहीं मंदिर पर गैर धर्म का होने के कारण उसको सजा न दी जाए। ऐसा भययुक्त समाज आम इस दौर में बन रहा है, जिसमें मनुष्यता की हार हो रही है। कवि इसे मनुष्यता की पराजय के रूप में देखता है– **"बेटाजान/क्या हिन्दू क्या मुसलमान/प्यार से बड़ा और मेहनत से अलग/कौन सा दीन कौन सा ईमान/मैंने देखा, वह बिल्कुल आश्वस्त नहीं था/उसकी आँखों में भरा था खौफ।'...../ 'यह पहला मौका नहीं था, मित्रों/यह पहली पराजय नहीं थी।"**[9]

समकालीन कविता में असद जैदी कविता के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। कविता और कहन की साफगोई उनकी कविताओं में नजर आती है। भारतीय इतिहास और सामाजिक संस्कृति की कविताएँ भी असद जैदी ने लिखी हैं। सामाजिक संस्कृति का ताना–बाना भी वह बुनते रहते हैं। एक बेचैनी भी उनकी कविताओं में नजर आती है। इस बेचैनी को '1857 : सामान की तलाश' कविता में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। हम जिस इतिहास से निकलकर 150 वर्षों का सफर 1857 की क्रांति का तय कर चुके हैं, उस क्रांति को हमारा समाज कितना समझ पाता है। कवि की बेचैनी तब साफ समझी जा सकती है, जब हिन्दी साहित्य के राष्ट्रीय धारा के कवियों ने भी इस क्रांति को कविता में जगह देने पर कोई खास दिलचस्पी नहीं दिखायी है–**"जिस सन् सत्तावन के लिए सिवा वितृष्णा या मौन के कुछ नहीं था/मूलशंकरों, शिवप्रसादों, नरेन्द्रनाथों, ईश्वरचन्द्रों, सैयद अहमदों,/प्रतापनारायणों, मैथिलीशरणों और रामचन्द्रों के मन में/और हिन्दी के भद्र साहित्य में जिसकी पहली याद/सत्तर अस्सी साल के बाद सुभद्रा ही को आई।"**[10]

1857 की क्रांति और आजादी के इतने वर्षों के बाद समाज की दशा क्या है? उसको यह कविता बखूबी पेश करती है। सरकार व सत्ता से बैठे लोगों से कवि पूछता है–

"क्या अब दुनिया में कहीं भी नहीं है अन्याय
या तुम्हें ही नहीं सूझता उसका कोई उपाय।"[11]

समकालीन हिन्दी कविता का फलक बहुत ही व्यापक और समृद्ध है। समकालीन कविता चूँकि 'समकालीन' नाम से ही अभिहित की जाती रही है, और इन कविताओं की प्रवृत्ति भी एक जैसी नहीं है। कविता के इस युग का नामकरण आगे आने वाली पीढ़ी करेगी ही लेकिन आज की कविता स्मृतिमोह से हमें दूर ले जाती है। कविताएँ हमारे जीवन का सत्य होती हैं, इस सत्य को समकालीन कवि अपने भावों में व्यक्त करने में सक्षम हैं।

संदर्भ–सूची :–

1. चैत के बादल, अष्टभुजा शुक्ल, रामकृष्ण प्रकाशन, विदिशा, प्र0सं0–1990, पृ0–66
2. वही, पृ0–67
3. जंगल के दिन भर के सन्नाटे में, पचास कविताएँ (चयन), विनोद कुमार शुक्ल, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र0सं0–2011, पृ0–17
4. अन्तिम समय तक के लिए, पचास कविताएँ (चयन), विनोद कुमार शुक्ल, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र0सं0–2011, पृ0–31
5. वो स्साला बिहारी, दिन बनने के क्रम में, अरुणाभ सौरभ, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र0सं0–2014, पृ0–63
6. अघोषित उलगुलान, अनुज लुगुन, kavitakosh.org
7. आदिवासी, अनुज लुगुन, kavitakosh.org
8. गुरू कौ वचन, अभी अभी जनमा है कवि, राकेश रंजन, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, प्र0सं0–2007, पृ0–29
9. यह पहला मौका नहीं था, दिव्य कैदखाने में, राकेश रंजन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र0सं0–2017, पृ0–28
10. 1857: सामान की तलाश, सरे–शाम (असद जैदी के तीन कविता संग्रह) आधार प्रकाशन, हरियाणा, प्र0सं0–2014, पृ0–162
11. वही, पृ0–163

वीरेन्द्र मिश्र के गीतों में संवेदनात्मक-अवधारणा

मोहन बैरागी*

मूलतः वेदना या संवेदना का अर्थ ज्ञान या ज्ञानेन्द्रियों का अनुभव है। मनोविज्ञान में इसका सही अर्थ ग्रहण किया जाता है। उसके अनुसार संवेदना उत्तेजना के संबंध में देह–रचना की सर्वप्रथम सचेतन प्रतिक्रिया है, जिससे हमें वातारवरण की ज्ञानोपलब्धि होती है। उदाहरण– हरी वस्तु, हरे रंग को देखने की संवेदना की उत्तेजना मात्र है। उत्तेजना का हमारे मन पर मस्तिष्क तथा नाड़ी तंतुओं द्वारा प्रभाव पड़ने पर ही हमें उसकी संवेदना होती है। संवेदना हमारे मन की चेतना की वह कूटस्थ अवस्था है, जिसमें हमें विश्व की वस्तु विशेष का बोध न होकर उसके गुणों का बोध होता है।[1] संवेदना की अवधारणा बहुआयामी है। 'चेतनता' अन्तःप्रेरित प्रत्यय, सुखानुभूति या दुखानुभव, वेदना, संवेदना, बोध। विश्वास या प्रत्यय, धारणा प्रतीति, दूसरों की विपत्तियों का अनुभव करने की सत्वरता, तत्परता, शीघ्र अनुभवन करने की शक्ति, सद्विचार, सद्भावना,सत्कामना।[2] जैसे अर्थ संवेदना शब्द की व्यापकता और विविधता प्रमाणित करते है।

संवेदना शब्द विविध विषयों और विविध संदर्भो में प्रयुक्त होता रहा है। डॉ. राम शंकर शुक्ल रसाल ने संवेदना को ''सुख दुखादि की अनुभूति की प्रतीति, संवेदना किसी की विपदा या दुःख की दशा में समान रूप से साथ देना या तदनुरूप करना''[3] के रूप में माना है। संवेदना मानव–मन की गहराईयों से उठने वाली भाव–तरंगों के रूप में प्रस्फूटित होकर शरीर के प्रत्येक अंग को प्रभावित करती है। कभी यह मुखरित हो जाती है और कभी मुखरित होने का प्रयास करने पर भी विवशतावश मौन रह जाती है। यह अंतर व्यक्ति की चारित्रिक क्षमता के कारण उत्पन्न होता है। एक घायल व्यक्ति को सड़क पर देखकर एक व्यक्ति संवेदना के वशीभूत होकर उसे अस्पताल पंहूचाने का पूरा उपक्रम करता है जबकि दूसरा उसे दुखकर कूछ करने की इच्छा होने पर भी कुछ नहीं करता। संवेदना का क्षेत्र हर्ष और विषाद दोनों को अपनी सीमाओं में लिए रहता है। भारत या एशियाई देशों में ये दोनो तत्व साथ–साथ प्रवाहित होते देखे जाते है। शंभुनाथ सिंह के अनुसार 'नृत्य–गान और रंगारंग जीवन एशियाई देशों के लोगों की निजी पहचान है। परंतु काव्य के क्षेत्र में या कला के क्षेत्र में संवेदना का जो रूप उभरता है उसमें करूण पक्ष की भूमिका तुलनात्मक दृष्टि से इक्कीस ही रहती है। ''वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा 'गान' '', ये यह उद्घाटित होता है। संवेदना जब दुखात्मक कारणों से जागृत होती है और उसका रूपायन काव्य में होता है तो वह रचना माधुर्य से ओतप्रोत हो जाती है। नृत्यगान और रंगारंग जीवन के भीतर झॉककर देखें तो वहॉ भी संवेदना के करूण प्रसंगों की भरमान दिखाई देगी।

संवेदना की शक्ति ही व्यक्ति विशेष को कवि या चित्रकार अथवा कलाकार बनाने का कार्य निष्पादित करती है। इस दृष्टि से संवेदना मानव–मन की झंकारों को कलाकृति से अवतरित करने की भूमिका का निर्वाह करती है। संवेदनाहीन व्यक्ति कलाकार नहीं हो सकता। आपराधिक प्रवृत्ति के व्यक्तियों में संवेदना के तत्व दुर्बल होते है। रमानाथ अवस्थी मानते हैं– 'मुझे प्रायः लगता है, कविता किसी से अलग नहीं हैं क्योंकि वह सबको किसी न किसी रूप में बहलाती है। जिस कविता में यह प्रतीति हो, मै उसी कविता को काल–जयी मानता हूँ। ऊँची कविता कृष्ण की बॉसूरी जैसी है जिसमें हमारा दर्द और दिल बजता है।''4 स्पष्ट है कि दर्द और दिल का बजना संवेदना का बजना है। संवेदना के इस कारूणिक पक्ष में इतनी शक्ति होती है कि वह अंगुलिमाल जैसे डाकू को भी पिघला देती है।

संवेदना जागृत होना या न होना व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर नहीं होता। दूर्गंधपूर्ण गंदगी देखकर व्यक्ति स्वयं को असहज अनुभव करता है। यह अनुभूति उसकी इच्छा पर निर्भर नहीं है। पुष्पित उद्यान को देखकर होने वाली प्रसन्नता को कोई व्यक्ति मुखरित होने से तो रोक सकता है परन्तु उसकी अनुभूति उसकी इच्छा की दसी नहीं। यदि वह व्यक्ति चिंताग्रस्त व शोकग्रस्त है तो हो सकता है वह उस पुष्पित

*** शोधार्थी, डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम विश्वविद्यालय, इंदौर, म.प्र.।**

उद्यान से उत्पन्न होने वाली प्रसन्नता का अनुभव न करें परंतु इस स्थिति में भी प्रसन्नता की अनुभूति से वंचित रहना उसकी इच्छा की क्रियात्मकता के रूप में रहता है। हिंदी साहित्यकारो के अनुसार 'प्रौढ़ व्यक्तियों में... संवेदना प्रायः अंसभव हो जाती है। यद्यपि साधारणतः अंग्रेजी में इसे 'सिम्पैथी' या फैलो फीलिंग' कह सकते हैं किंतु मनोविज्ञान में 'सेन्सेशन' के रूप में ही इसका विशिष्ट प्रयोग होता है। यह हमारी इच्छा पर निर्भर नहीं है।'' संवेदना के तीन भेद बताए गए हैं–

अ. विशिष्ट संवेदना, ब. अन्तरावयव संवेदना, स. स्नायविक संवेदना।

अ. विशिष्ट संवेदना :– विशिष्ट संवेदना वह होती है जो विशिष्ट ज्ञानेन्द्रिय तथा बाहरी उत्तेजना द्वारा अनुभव की जाती है। यह संवेदना इंद्रियों द्वारा अनुभव की जाती है अतः इसे ज्ञानेन्द्रिय संवेदना भी कहा जाता है। इसकी जागृति के लिए बाहरी अवयव का होना आवश्यक है। अवयवों की विविधता तथा तदनुसार ज्ञानेन्द्रियों की विविधता के कारण विशिष्ट संवेदना, दृश्य–संवेदना तथा श्रव्य संवेदना जैसे भेद ज्ञानेन्द्रिय भेदों के आधार पर किए जाते है। संवेदना के इन भेदों की एक विशेषता यह होती है कि ऐसी एक संवेदना को दूसरी से पृथक् किया जा सकता है। उदाहरण के लिए श्रवण–संवेदना एक दूसरी से स्पष्ट रूप से पृथक होती है।

ब. अन्तरावयव संवेदना :– प्राणी की आंतरिक अवस्था से जब कोई संवेदना जागृत होती है तो उसे अन्तरावयव संवेदना की श्रेणी में माना जाता है। श्वास प्रणाली, रक्त संचार प्रणाली या पाचन क्रिया की प्रणाली आदि के अवयवों से उत्पन्न संवेदनाएँ, अन्तरावयव संवेदनाएँ होती हैं। किसी अंग में जलन हो, चोट लगी हो या व्यक्ति को भूख लगी हो तो ये अनुभूतियॉ अन्तरावयव संवेदना का ही रूप होंगी। चन्द्रसेन 'विराट' की दो पंक्तियॉ हैं – ''हिल–डुल रहा है देखो, शायद वो जी उठा।/बाहर निकल रहा है, तसवीर तोड़कर।।''/उपरोक्त द्विपदी में व्यक्त संवेदना बिंब की दृष्टि से अन्तरावयव संवेदना है।

स. स्नायविक संवेदना :– स्नायविक संवेदना मांसपेशियों तथा ग्रंथियों के संचलन में उत्पन्न होती है। नर्वस ब्रेक डाउन होने पर इस प्रकार की संवेदनाएँ शिथिल हो जाती है। स्नायुतंत्र एवं पेशियों का स्वस्थ रहना इस श्रेणी की संवेदनाओं का अस्तित्व के लिए आवश्यक होता है। विश्वकल्याण के भाव और प्राणिमात्र के लिए सेवाभाव जगाना भी संवेदना है। संवेदना का यह रूप नैतिक और सात्विक मूल्यों की धुरी है। इसलिए संवेदना का क्षेत्र अत्यंत व्यापक होता है तथा इसे सीमित संदर्भ में बॉधकर इसकी पूर्णता को नहीं पहचान सकते। कविता कालजयी बनती है जब वह संवेदना के मुल्यात्मक पक्ष को जीवन्त करने में सक्षम होती है। मानवीय अनुभूतियों, जीवनानुभवों और विचारों की गीतात्मक अभिव्यक्ति ही वास्तविक कविता है दूसरे श्रेष्ठ कविता वह है जो समाज तक संप्रेषित होकर उद्धरणीय बन जाए, लोकोक्ति बन जाए। निष्कर्ष यह निकलता है कि संवेदना काव्य की प्रेरक ही नहीं उसकी कसौटी भी है। संवेदना कविता का प्राण है। 'जीवन की जिस गुनगुनाहट की अन्य विधाएँ मानवीय संवेदन से भरे–पूरे राग में नहीं गा पाती, उसे कविता गाती है। वेदना से भरापूरा होना काव्य की जीवन्तता के लिए आवश्यक है। इससे संवेदना के स्वरूप के उस पक्ष का बोध होता है जो मानव–जीवन को हलचलों में माला के सूत्र की तरह समया रहता है। मानव–मन संवेदना का स्त्रोत है तथा इसकी योग्यता एवं क्षमता अलग–अलग स्तरों पर हाती है जिसके कारण एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की तुलना में अधिक या कम संवेदनशील दिखाई देता है। इस स्थिति–भिन्नता के कारण ही मानवीय आचरणों में भिन्नता होती है। जिन लोगों में संवेदना के तत्व प्रबल होते है वे जीवन–संग्राम में साहसिक कार्य कर पाते है। कवि भी सामान्य से अधिक संवेदनशील होते है तथा सवंदना उन्हें काव्यकला के सहयोग से कृतित्व के लिए प्रेरित करती है। इस प्रकार भूमिका की दृष्टि से संवेदना सशक्त आधार है।

संवेदना का स्वरूप बहुआयामी होता है। समाज में जब परिस्थितियॉ क्रांतिकारी रूप से परिवर्तित होती है तो समाज की संवेदनाओं में भी एक नई लहर आती है जिसके प्रभाव से काव्य–विधाओं में भी नये आयाम जुड़ने लगते है। वर्तमान की सामाजिक परिस्थितियॉ बदली हुई हैं। परिणामस्वरूप आज नवगीत ने 'युग की संवेदना को गीत–जीवी बना दिया है और कृषि तथा सामंतीय गीत को आधुनिकता प्रदान की है। डॉ. विनोद गोदरे का यह कथन हिंदी साहित्य के इतिहास के काल विभाजन से भी सत्य प्रमाणित होता है। वीरगाथाकाल और भक्तिकाल के साहित्य में जो भारी अंतर है वह इन दोनों कालों में व्याप्त सामाजिक

संवेदनाओं के अंतर का ही परिणाम है। उन्नीस सौ नब्बे के दशक में कारगिल में जो भारत पाकिस्तान का युद्ध हुआ उससे भारत की राष्ट्रीय चेतना व्यापक स्तर पर अभिव्यक्त हुई तथा उसने कुछ समय के लिए जाति, धर्म, भाषा आदि के पारंपरिक विवादों को पृष्ठभूमि में धकेल दिया। पत्र–पत्रिकाओं में एकता की यह संवेदना काव्य के रूप में भी प्रकाशित होती रही। राष्ट्रीय भावनाओं पर आधारित संवेदना ने इतना तीव्र और व्यापक रूप धारण कर लिया कि विदेशों में रहने वाले भारतीयों ने भी इस अवसर पर अपने देश को याद किया। इंग्लैण्ड से प्रेषित उषा सक्सेना की कविता को तो शीर्षक ही देश की याद है– 'देश की याद,/प्रवास में/मुद्दतें गुज़र गई/देश की मिट्टी/याद की थपकियाँ देती रही.....।'[5]

तात्पर्य यह कि संवेदनाएँ परिस्थिति सापेक्ष भी होती हैं। संवेदना का विष्लेषण करते हुए डॉ. राकेश गुप्त एवं डॉ. ऋषि कुमार चतुर्वेदी ने कहा कि 'भाव' शब्द का प्रयोग चेतना के प्रत्येक स्तर पर आने वाली अनुभूति के लिए किया जा सकता है। चेतना के ये स्तर मुख्यतः तीन हैं– ऐंद्रिक, सांवेगिक और बौद्धिक।[6] बौद्धिक स्तर की चेतना तुलनात्मक दृष्टि से कम संवेदनात्मक होती हैं इन तीनों स्तरों की चेतना ही कलाकृति का नेतृत्व करती है। रामस्वरूप चतुर्वेदी का कथन हैं– 'भाषा भावों की अनुवर्तिनी है, यह मान्यता तो वैज्ञानिक नहीं लगती।[7] इस नेतृत्व का विरोध करता है परंतु इस विरोध को आँख बंद कर स्वीकार नहीं किया जा सकता। 'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आंचल में हैं दूध और आँखों में पानी''। 'अबला' शब्द चयन समाहित संवेदना की सटीकता प्रतिबिंबित करने के लिए किया गया है। जो स्पष्ट करता है कि इसके चयन के पीछे संवेदना का ही बल है। संवेदना को अभिव्यक्ति देने के लिए कई समानार्थी शब्दों में से एक का चुना जाना रचना में संवेदना के महत्व को प्रमाणित करता है।

गुलाबराय ने गीत की व्याख्या में संवेदना और संगीत दोनों का महत्व स्वीकार किया है। 'संगीत यदि उसका शरीर है तो निजी भावातिरेक और आत्मनिवेदन उसकी आत्मा है।'[8] निजी भावातिरेक और आत्मनिवेदन संवेदना का प्रतिबिम्ब होता है। तथा इमें अतिरेक का होना भी संवेदना की तरंगों का सूचक है। संवेदना के स्वरूप की व्यापकता तथा इसकी शक्ति को दृष्टिगत रखकर ही शंकर देव अवतरे कहते हैं– 'साहित्य में संवेदना का एकछत्र राज्य है। इसकी सवारी के बिना साहित्य महापुरूष एक पैर भी नहीं चलते।.... भावात्मक प्रक्रिया के सामप्त हो जाने पर भी यह टहलती रहती है। इसका व्यावहारिक सबूत यह है कि भावों से छुट्टी पाकर भी हम उनकी चर्वणा का बहुत कुछ अनुभव जिसके बल पर प्रस्तुत कर देते है वह अनुभूति की अन्तरात्मा का संवेदना के अतिरिक्त और क्या है?'[9] शंकर देव अवतरे का यह कथन संवेदना के बहुआयामी रूप, उसकी व्याप्ति की गहराई, साहित्य में उसके वर्चस्व, उसके संप्रेषण की सार्थकता की कसौटी होने तथा उसके काव्य की आत्मा होने के अभिलक्षणों को प्रमाणित करता है।

साहित्य और संवेदनाः– संवेदना साहित्य की प्राणवायु है। यह ऐसी धुरी है जिस पर साहत्य चक्र विविध गतियों और शैलियों में घूमता रहता है। ''संवेदनशीलता और रागात्मकता– ये दो तत्त्व काव्य को सार्थकता प्रदान करते है।[10] साहित्य शब्द का प्रयोग की दृष्टि से काव्य की अपेक्षा अधिक व्यापक है तथा इसमें किसी औषधि के अनुपालन, गुण आदि के उल्लेख को भी उस औषधि का साहित्य कह दिया जाता है। परंतु साहित्य शब्द जब कला के रूप में प्रयुक्त होता है तो वह काव्य का समान धर्मी होता है। संवेदना और रागात्मकता काव्य की आत्मा है। धनंजय वर्मा के अनुसार 'गीत की सर्जन भूमि रागात्मक क्षणों की सम्पृक्ति है, लेकिन तटस्थ आसक्ति उसका निकष है।'[11] संवेदना का सर्वाधिक प्रभावी अवतरण करूणा में होता है इसीलिए भवभूति ने 'करूण' रस को ही एकमात्र रस मान लिया – ''एको रसः करूण एवं निमित्त भेदात/भिन्नः पृथक पृथगिवाश्रयते विवित्तान्।।/आवर्त्तबुद बुदेतरग्ड़मयान विकारान्/अम्मों यथ सलिलमेव हि तत्समस्तम्।।''[12]

उपर्युक्त मान्यता साहित्य में संवेदना की महत्ता का भी प्रतिपादन करती है। इस संदर्भ में विचारणीय है कि करूणा तभी साहित्यिक रूप धारण करती है जब सके पात्र से व्यक्तिगत संबंध नहीं होता। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस तथ्य को विष्लेषित करते हुए कहा कि 'यदि करूणा किसी व्यक्ति की विशेषता पर अवलंबित होगी– कि पीड़ित व्यक्ति हमारा कुटुम्बी, मित्र आदि है– तो उस करूणा के द्वारा प्रवर्तित तीक्ष्ण या उग्र भावों में उतनी सुंदरता न होगी। पर बीज रूप में स्थिति करूणा यदि इस ढब की होगी कि इतने पुरवासी, इतने देशवासी या इतने मनुष्य पीड़ा पा रहे हैं तो उसके द्वारा प्रवर्तित तीक्ष्ण या

उग्र भावों का सौंदर्य उत्तरोत्तर अधिक होगा। रस को काव्य की आत्मा कहा गया है जो संवेदना का ही सहोदर है। संचारी भाव भी संवेदना की लहरों के रूप में उभरने वाले तत्व हैं और आश्रय की षारीरिक चेष्टायें, जिन्हें अनुभाव कहा जाता है, भी संवेदना की प्रतिक्रिया के रूप में व्यक्त होती है। अतः संवेदना और साहित्य का रिश्ता एक अटूट रिश्ता है। संवेदना विहीन साहित्य की कल्पना करना हवा में लाठी मारने के समान है।

कवि की संवेदना वैयक्तिक धरातल की नहीं होती। यदि शिल्प की दृष्टि से कवि 'मैं' का प्रयोग करते हुए गीत लिखता है तो उसके 'मैं' का तात्पर्य उसकी परिस्थिति में जीवन बिताने वाला सम्पूर्ण जनसमूह होता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से गरीबी हटाने की घोषणाऐं सरकारों द्वारा की जाती रही हैं परंतु गरीबी देश में अभी नहीं हटी है। गरीबी की संवेदना को कवि अपनी गरीबी के रूप में भी रूपायित कर सकता है। यथा– ''मैं ऋण लेकर गजरा लाया/आँगन में आकर मुस्काया।/उसने आँखें गीली कर लीं/उस दिन मेरे अभिनन्दन में।। /लटका दी भूख किवाड़ों पर /दी फेंक प्यास वीराने में।/पैंताने में सपने रौंदे/आँसू पटके सिरहाने में।। /मैंने देखा भारत का रस/उस दिन उस आड़ी का चितवन में।।''13

(चन्द्र पाल शर्मा 'शिलेश')

'मैंने देखा भारत का रस' कहकर कवि ने वैयक्तिक धरातल को पूरी तरह सामाजिक धरातल में बदल दिया है। स्वेदना सामाजिक परिवर्तन से विचलित नहीं होती। हजारों वर्ष पहले भी किसी की मृत्यु पर रोया जाता था और आज भी रोया जाता है। भारतेन्दु प्रकाश सिंहल के अनुसार– 'त्रेता युग से आज तक हजारों साल बीत गए, पर मनुष्य तब भी सुख चाहता था और दुःख से भागता था, सो, आज का मनुष्य भी सुख ही सुख चाहता है, पर मनुष्य को जो भूख और प्यास हजारों साल पहले सताती थी, वही भूख और प्यास आज भी सताती है।.... निःसंदेह हर आने वाली पीढ़ी अधिक बुद्धिमान है, अधिक चैतन्य है, फिर भी अन्याय देखकर मनुष्य में प्रतिशोध की भावना हजारों वर्ष पूर्व भी उठती थी, आज भी उठती है। संवेदनाएँ उसी तरह अविचलित या अपरिवर्तत रहती हैं जैसे भूख या प्यास।

नेमिचन्द्र जैन ने कहा है कि 'यह एकदम अनिवार्य है कि साहित्यकार उन समस्त निराशावादी, पराजयवादी और युद्ध की प्रेरणा देने वाली विचारधाराओं से संघर्ष करे जो मनुष्य के इस नवनिर्माण के संकल्प को दुर्बल करती है, उसे कमज़ोर बनाती है।' साहित्यकार का दायित्व संवेदनाओं को आँख बंद करके भड़काना नहीं, उसके गुण–दोषो को मानवहित की कसौटी पर कसकर पाठक के समक्ष प्रस्तुत करना है। व्यक्ति विषेष की प्रशंसा यदि स्वार्थ के लिए की जाती है तो वह प्रशंसक किसी भी विधा का उपयोग क्यों न करें, उसकी अभिव्यक्ति पर साहित्य का लेबल नहीं लगाया जा सकता। 'कीन्हे प्राकृत जन गुनगाना, सिर धुनि गिरा लागि पछितावा' में तुलसीदास ने इसी तथ्य को इंगित किया है।

साहित्य में संवेदना शब्द और अर्थ दोनों के साहचर्य से उभरती है इसलिए कवि शब्द के कोशीय अर्थ छोड़कर उनके सांस्कृतिक अर्थ को महत्व देता है। इसके लिए वह वर्तनी तक को बदल देता है। कभी–कभी की भी परवाह नहीं करता। परन्तु संवेदना को वह अपना इष्ट मानता है और उसी के आधार उभार के लिए वह विविध उपादानों का उपयोग करता है। संगीत में संवेदना अर्थहीन शब्द से भी उत्पन्न कर दी जाती है। यह प्रकार्य संगीत में मात्र ध्वनि से भी निष्पादित हो जाता है। शंकर देव अवतरे के शब्दों में 'साहित्य में शब्द और अर्थ दोनों की एकता अनिवार्य है जबकि संगीत केवल शब्द पर ही खड़ा रह सकता है। संगीत में यह धनात्मक संवेदना अर्थ–निरपेक्ष शब्दों में भी स्वरूपतः अवसित हो सकती है जबकि साहित्य में अर्थ सापेक्ष होकर ही स्वरूपतः पूर्ण होगी। संगीत संवेदना को झंकृत करने का सशक्त उपादान है और यह उपलब्धि साहित्य का भी लक्ष्य होती है।

सामान्य भाषा में संवेदना का केवल गणितीय उल्लेख हो सकता है, उसके भाव या कला का रंग तो काव्य–भाषा ही भरती है। जिसमें रचनाकार शब्दों की रूढ़ात्मकता को तोड़कर उनमें नया जीवन भरता है। वस्तुतः 'जैसे ही यह अनुभव होता है कि किसी शब्द के साथ कोई विशिष्ट अर्थ बहुत अधिक सम्बद्ध हो गया हैं, कवि बलपूर्वक उसे अलग कर लेना चाहता है। अर्थ की स्थूलता को तोड़क रवह उसकी अमूर्त ओर उन्मुक्त प्रकृति को पुनः स्थापित करता है। साहित्य संवेदना की अमूर्तता को मूर्तिमान करने का प्रयास करता

है। इसलिए संवेदना की अमूर्त प्रकृति के समरूप उसे अपनी अभिव्यक्ति में शब्दों का स्थूलत्व मिटाकर उनमें अमूर्त छवि की स्थापना करनी होती है।

सुर और तुलसी के पदों में संवेदना की प्रबलता स्पष्ट और जीवन्त रूप से दिखाई देती है। इन पदों में गेयता की व्याप्ति का बहुत कुछ श्रेय संवेदना की तीव्रता को दिया जा सकता है। संवेदना की तीव्रता कलाकार को भी मुग्ध कर देती है। संस्कृत और हिन्दी के अन्य काव्य में भी गेयता का गुण कदाचित पश्चिमी भाषाओं के साहित्यिक काव्य की अपेक्षा कहीं अधिक है। 'सुर और तुलसी के अतिरिक्त संगीत और का ऐसा समन्वय अत्यंत दुर्लभ है। गेयता संवेदना के साथ ही उभरती है।

संवेदना के शब्दकोषीय विवरणों से यह स्पष्ट हो चुका है कि इसका उद्‌गम स्थल मानव–मन है। मन अनुभूतियों का भी केन्द्र–स्थल है। इसीलिए कवियों ने 'मन' को संबोधित कर अनेक रचनाएँ लिखी है। यथा– 'रे मन आज परीक्षा तेरी/थ्वनती करती हूँ मैं तुझसे बात न बिगड़े मेरी।' आधुनिक कवियों ने भी मन को विविध संदर्भो में रूपायित किया है। कृष्ण कल्पित की पंक्तियाँ उदाहरणार्थ देखें– 'मैं सोचता हूँ कैसे/पत्थर का मन पसीजा।/मैं रो रहा था तेरी/साड़ी का छोर भीजा।'

एक प्रसंग में अब्राहम लिंकन का उदाहरण आता है जिसमें लिंकन का कहना था कि सूअर को दलदल में फँसा देखकर मुझे दुःख हुआ, इसलिए मैंने सूअर को अपना दुःख दूर करने के लिए निकाला, सूअर का दुःख दूर करने के लिए नहीं। इन प्रसंगों से इस तथ्य की पूष्टि होती है कि संवेदना जीवन–मूल्यों का बीज है तथा इसका अंकुरण और पल्लवन मानव को महामानव बना देता है। साहित्य में अनेक विधाएं होती हैं और सभी में संवेदनाओं को आधार रूप में अपनाया जाता है। शिल्प के विविध उपादान तो उस संवेदना को सुन्दर रूप देने के उपकरण हैं। संवेदना का जो रूप गीति विधा में अवतरित होता है वह अन्य विधाओं में नहीं होता। अतः यहाँ गीति काव्य में संवेदना के स्वरूप को समझ लेना आवश्यक है।

संदर्भ सूची :–

1. हिंदी साहित्य कोश, भाग–1, सं.– डॉ. धीरेन्द्र वर्मा आदि तृतीय संस्करण।
2. वृहत् अंग्रेजी–हिंदी कोश, प्रथम खंड, सं.– डॉ. हरदेव बाहरी, पृ. 400।
3. भाषा शब्द कोश, डॉ. रामशंकर शुक्ल, 'रसाल', पृ. 1780।
4. नवगीत दशक–3, सं. शंभूनाथ सिंह, भूमिका, पृ. 1।
5. अंजुरि–अर्द्धवार्षिकी, सं. बैनीकृष्ण शर्मा, नई दिल्ली, जून, 1999 अंक, पृ. 13।
6. गीति सप्तक, सं. डॉ. राकेश गुप्त तथा डॉ. ऋषि कुमार चतुर्वेदी, पृ. 11।
7. भाषा और संवेदना, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ. 100।
8. काव्य के रूप, गुलाबराय, पृ. 114।
9. साहित्य, शंकर देव अवतरे, पृ. 58।
10. खुशबुओं के दंश, योगेन्द्र दत्त शर्मा, पृ. 19।
11. आस्वाद के धरातल, धनंजय वर्मा, पृ. 175।
12. उत्तर रामचरित 3/47।
13. गुलशन, त्रेमासिक, सं. अनिल 'अनवर', अप्रेल–जून 1997, पृ. 19।
14. नीरज रचनावली, खण्ड–2, पृ. 137।
15. गीत और गीत–3, सं. मुधकर गौड़

लोकजीवन की भावसंगति दुनिया को उकेरता 'छ्करबाज़ नाच' (लौंडा नाच)

डॉ. सुनील कुमार शॉ*

भारतीय समाज प्राचीन समय से ही कई प्रकार के बंधनों से जकड़ा हुआ था। इसी के साथ–साथ तत्कालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति अच्छी नहीं थी। समाज के धनाढ्य सामंत अपने शौक एवं मनोरंजन के लिए कोठों की या नाचने वाली की ओर रुख करते थे। इस परंपरा ने तवायफ परंपरा को बढ़ाया। इसके बाद बाईजी युग का आरंभ होता है लेकिन इस तक केवल अमीरों एवं तथाकथित समाज के उच्च वर्ग की ही पहुँच होती थी। इस जमींदारों के बीच गरीब मजदूरों की पहुँच आसान नहीं थी। इन्होंने अपने मनोरंजन के लिए एक तरकीब का इजाद किया जिसका नाम है 'लौंडा नाच' या 'छ्करबाज़ नाच'। इस नाच परंपरा में पुरुष स्त्री के कपड़ों में नजर आता है। उसके धोती की जगह साड़ी, कुर्ता/कमीज की जगह चटक रंग की ब्लाउज ले लेती है। स्त्री की तरह साज कर जब वह स्टेज पर उतरता है तो कुछ पल तक तो यह पता लगाना मुश्किल हो जाता है कि यह स्त्री है या पुरुष। उस वक्त स्त्री, पुरुष की भूमिका में इसलिए भी नजर आता है क्योंकि उस वक्त स्त्रियों के घर से निकालने की सख्त मनाही थी। फिर यह तो नाचने और नौटंकी की बात थी। धीरे धीरे यह नाच परंपरा समाज में अपना स्थान बनाता चला गया और कलांतर में रोजगार का माध्यम भी 'लौंडा नाच' परंपरा बन गया।

भोजपुरी के शेक्सपियर कहे जाने वाले नाटककार, लोक परंपरा के वाहक भिखारी ठाकुर का जन्म बिहार के सारण जिले के कुतुबपुर ग्राम में 18 दिसंबर 1887 ई. को एक सामान्य गरीब परिवार में हुआ था। रोजगार की तलाश में युवक भिखारी ठाकुर बंगाल के खड़गपुर, मेदिनीपुर एवं कलकत्ता तक की यात्रा करते हैं। इन क्षेत्रों में वे खुद को रमा नहीं पाते हैं। वापस बिहार आकर वे अपने पैतृक कार्य में लग जाते हैं। उन्हें यह लगता है कि वे इस काम के लिए नहीं बने हैं। बचपन से उन्हें रामलीला और नाच का शौक था। उन्होंने खुद की मण्डली बनाकर रामलीला एवं नाच आरंभ किया। अपने द्वारा लिखित भोजपुरी नाटक 'बिदेसिया' का मंचन खुद किया। इस नाटक के अतिरिक्त भिखारी ठाकुर के और भी प्रसिद्ध नाटक हैं जैसे बेटीबेचवा, बिधवा–बिलाप, ननद–भौजाई, कलियुग–प्रेम, गबर घिचोर आदि। भिखारी ठाकुर खुद भी स्त्री की भूमिका में मंच पर आते थें। 'लौंडा नाच' परंपरा में कुछ परिमार्जन कर के उन्होने इस पर नया प्रयोग किया और इसे समाज के प्रत्येक वर्ग के बीच लोकप्रिय बनाया। अब तक समाज जिसे खराब समझता था उसे एक नए परंपरा के तहत आगे बढ़ाया। 'लौंडा नाच' परंपरा को आगे बढ़ाकर रोजगार से जोड़ने का श्रेय इनको ही जाता है। इन्होंने बेरोजगार युवाओं को अपनी मण्डली में स्थान दिया। उनमें से कई युवा स्त्री की सज्जा में सजकर मंच पर उतरते थें। भिखारी ठाकुर के कारण बिहार के भोजपुरी सुनने, जानने एवं बोलने वाले क्षेत्रों में नाच की इस विधा को काफी पसंद किया गया। इस शैली को इतना पसंद किया गया कि प्रत्येक सामाजिक आयोजनों जैसे– रामलीला, रासलीला, शादी, मुंडन आदि में इसका प्रदर्शन किया जाता था। इसकी लोकप्रियता का एक कारण यह भी था कि यह सर्वजन की पहुँच में आसानी से था। एक तरह से भिखारी ठाकुर ने इस परंपरा को आलोचना के जाल से मुक्त करके मंच तक लाया। इसका श्रेय भिखारी ठाकुर को ही जाता है। इनको पहचान भी इसी विधा ने दिलाई लेकिन इससे भी अधिक उनकी लेखनी ने उन्हें अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुँचाया है। भिखारी ठाकुर के संदर्भ में ऋषि राज एवं प्रज्ञा ठाकुर लिखते हैं 'भिखारी ठाकुर बहुआयामी प्रतिभा के धनी थे। वह एक लोक कलाकार के साथ कवि, गीतकार, नाटककार, नाट्य निर्देशक, लोक संगीतकार और अभिनेता थे। उनकी मातृभाषा भोजपुरी थी और उन्होंने भोजपुरी को ही अपने काव्य और नाटक की भाषा बनाया. उनकी प्रतिभा का आलम यह था कि महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने उनको 'अनगढ़ हीरा' कहा, तो जगदीशचंद्र माथुर ने कहा 'भरत मुनि की परंपरा का कलाकार'। (साहित्य आज तक)

बिहार की यह नृत्य परंपरा लोक की झलक प्रस्तुत करती है। बिहार के लोक नाट्य एवं लोकनृत्य की परंपरा के इतिहास में इसका विशेष स्थान है। बिहार के मिथिला क्षेत्र में इसे 'छकरबाज़ नाच' के नाम से जाना जाता है। नाच की प्रकृति में कोई अन्तर नहीं है बस नाम का अन्तर है। 'लौंडा' शब्द का अर्थ अविवाहित युवक

*** हिन्दी विभाग, नेहू, शिलांग–793022, मेघालय।**

है। कुछ ग्रामीण क्षेत्रों में युवकों/किशोरों को 'लौंडा' कहकर पुकारा जाता है। दूसरे शब्द 'छ्करबाज़' शब्द छोकरा और बाज से मिलकर बना है जिसका अर्थ होता है छोकरों का शौक रखने वाला। लेकिन यह अर्थ अव्यवहारिक है। 'छकरबाज़ नाच' के संदर्भ में वह युवक जो स्त्री की तरह पोशाक पहनकर नाचता हो या गीतिनाट्य में हिस्सा लेता हो उसे 'छ्करबाज़' कहा जाता है। इस नाच में कई प्रकार के पुरुष शामिल होते हैं। जिनके समक्ष रोजगार की समस्या होती है वे इस परंपरा को आगे बढ़ाने के साथ ही साथ अपने बेरोजगारी की समस्या को दूर कर परिवार का पेट पालते हैं। आज वर्तमान समय में लौंडा नाच या छकरबाज़ नाच की परंपरा लगभग समाप्त होती जा रही है। परंपरा के वाहक अब बेरोजगारी और भुखमरी का शिकार होते जा रहे हैं। इन कलाकारों के समक्ष कई प्रकार की समस्याएं हैं जिनमें प्रमुख हैं समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता है। लेकिन यह बात भी सत्य है कि यह लोकनृत्य परंपरा हमारी संस्कृति का अभिन्न हिस्सा है और ये कलाकार भी हमारे समाज का हिस्सा हैं। आरंभिक दौर में कई प्रकार के मानसिक रोग से पीड़ित लोगों के गुस्सों और गुमानों का इन्हें शिकार होना पड़ता था। बिहार के जिस क्षेत्र से इस लोकनृत्य परंपरा का उदय होता है वहाँ कई प्रकार के बाहुबलियों का बोलबाला था। इन्हें कई बार इनके द्वारा प्रताड़ित होना पड़ता था। आज इस प्रकार की समस्या नहीं है। समय और समाज धीरे–धीरे बदल रहा है। आज सब बाहुबली हैं, कोई किसी से कम नहीं है। समाज के तथाकथित दलित समुदाय को अब दबाया नहीं जा सकता है। वह दौर कुछ और था अब दौर कुछ और है। लोकतान्त्रिक पद्धति ने देश की समस्त जनता को गर्व से जीने का अधिकार प्रदान किया है। इसकी जमीनी हकीकत क्या है, इससे हम सब वाकिफ हैं। इन कलाकारों के जीवन के आंतरिक दर्द को हमें महसूस करना चाहिए। लोकनृत्य की इस शैली को बिहार, झारखंड में लौंडा नाच, छ्करबाज़ नाच आदि नामों से जाना जाता है। भारत के अन्य हिस्सों में भी लोकनृत्य की इस शैली का प्रचलन है। पूर्वोत्तर के राज्य असम में इस लोक नृत्य जिसमें पुरुष स्त्री की तरह पोशाक पहनकर अभिनय करते हैं, का प्रचलन है। इस लोकनृत्य परंपरा को यहाँ 'भाउना' कहा जाता है। 'भाउना' शब्द भाव से बना है जिसका अर्थ होता है भाव से किसी भी कथा या बात को श्रोता, दर्शक तक पहुँचाना। बहुत समय पहले इस राज्य में भी स्त्रियों को घर से बाहर निकलने पर पूर्ण प्रतिबंध था। वे घर में ही रहा करती थीं। मनोरंजन के लिए पुरुष खुद स्त्री की साज कर अभिनय किया करते थें। यह परंपरा आज भी इस क्षेत्र में प्रचलित है। एक विशेष समय में इसका आयोजन किया जाता है। इस लोकनृत्य शैली में कृष्ण की कथा को अपने हाव–भाव के माध्यम से दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। अब आजकल इन नृत्य शैली में महिलाएँ भी हिस्सा लेने लगी हैं। महिलाएँ पुरुष रूप में सजकर पुरुष और स्त्री पात्र दोनों भूमिकाओं में अभिनय करती हैं। पुरुष भी स्त्री की तरह सजकर 'भाउना' लोकनृत्य में हिस्सा लेते हैं। कृष्ण, कंश, देवकी, यशोदा आदि के रूपों में इस प्रकार के भाव लोक नाट्य / लोकनृत्य में अभिनय किया जाता है। यह परंपरा इस राज्य में बहुत पुरानी परंपरा है। मनोरंजन के साथ ही साथ धार्मिक आयोजनों में इस प्रकार के लोक नाट्य का आयोजन किया जाता है। असम में भगवद कथा का आयोजन एक सप्ताह तक किया जाता है। उस कार्यक्रम के अंतिम दिन 'भाउना' का आयोजन किया जाता है। इस तरह के कार्यक्रमों में यहाँ के स्त्री दृपुरुष बढ़–चढ़कर हिस्सा लेते हैं। आजकल 'भाउना' के लिए कई मण्डली है जो इस तरह के कार्यक्रमोन में प्रदर्शन करते हैं और कभी कभी तो प्रतियोगिता के रूप में भी 'भाउना' का आयोजन किया जाता है।

गुजरात एवं राजस्थान के क्षेत्रों में इस प्रकार के नृत्य शैली को 'भंवाई' कहा जाता है। भारत के इस क्षेत्र में भी आदिकाल में स्त्रियों के बाहर निकलने पर प्रतिबंध था। 'भंवाई' नृत्य में पहले पुरुष स्त्री के वेश में मजाकिया अंदाज़ में नृत्य करते थे। गुजरात एवं राजस्थान के क्षेत्रों में भावनात्मक लोकनृत्य एवं लोक नाट्य के रूप में 'भंवाई' प्रसिद्ध है। अब आजकल इस नृत्य में स्त्री एवं पुरुषों की भागीदारी बराबर है। दोनों ही इस 'भंवाई' लोक नृत्य परंपरा में हिस्सा लेते हैं। पहले केवल पुरुष ही इस लोक नृत्य में होते थें। गुजरात एवं राजस्थान के कुछ क्षेत्रों में आज भी इस नृत्य की परंपरा जारी है। भारत एवं राज्य सरकार इस नृत्य के कलाकारों को समय–समय पर प्रोत्साहित करते रहते हैं। कला के मर्मज्ञ एवं जागरूक कलाप्रेमी इस परंपरा को बचा कर रखने में अपनी महत्वपूर्ण योगदान लगातार दे रहे हैं। किसी भी समाज की पहचान वहाँ की सांस्कृतिक परंपरा एवं विरासत के माध्यम से देखी जा सकती है। आंचलिक साहित्य में भी इस लोक नाट्य / लोकनृत्य शैली का वर्णन मिलता है। बिहार की पृष्ठभूमि पर लिखने वाले साहित्यकार फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी 'तीसरी कसम उर्फ मारे गए गुलफाम' में भी इस छकरबाज़ नाच का जिक्र किया गया है। नायक गाड़ीवान हीरामन छ्करबाज़ नाच देखने के कारण कई बार अपनी भाभी से कई बार डांट सुनता है 'गाड़ी की बल्ली पर उँगलियों से ताल दे कर गीत को काट दिया हिरामन ने। छोकरा–नाच के मनुवाँ नटुवा का मुँह हीराबाई–जैसा ही था। ... क़हाँ चला गया वह जमाना? हर महीने गाँव में नाचनेवाले आते थे। हिरामन ने छोकरा–नाच के चलते अपनी भाभी की न जाने कितनी बोली–ठोली सुनी थी। भाई ने घर से निकल जाने को कहा था।'(तीसरी कसम उर्फ मारे

गए गुलफाम, फणीश्वरनाथ रेणु, हिन्दी समय) 'तीसरी कसम उर्फ मारे गए गुलफाम' कहानी पर हिन्दी में सिनेमा का भी निर्माण किया गया था। कलात्मक फिल्मों में 'तीसरी कसम' सिनेमा का अलग स्थान है। बिहार की पृष्ठभूमि पर बनी कई फिल्मों जैसे 'गैंग्स ऑफ वासेपुर', 'दामुल' आदि में इस लोकनृत्य का प्रयोग किया गया है।

अश्लीलता एवं भौंड़ेपन का धीरे–धीरे शिकार हो जाने के कारण लौंडा नाच परंपरा बिहार के कुछ अंचलों में अपनी लोकप्रियता खोती चली गई। भिखारी ठाकुर ने कभी सोचा नहीं होगा कि उनके द्वारा नाच की इस परंपरा का हश्र आज यह हो जाएगा। इस लोकनृत्य के लोकप्रियता कम होने का कारण यह भी है कि आज पढ़े–लिखे लोग इसके जगह पर ऑर्केस्ट्रा को ज्यादा तरजीह देने लगे हैं। जिसके कारण यह पारंपरिक नृत्य परंपरा धीरे–धीरे ख़त्म होती जा रही है। विगत कुछ वर्षों से ऑर्केस्ट्रा एवं नाच में लड़कियों के आगमन के कारण इस प्रकार की कई नाच कंपनियां बंद हो गईं और कुछ बंद होने के कगार पर हैं। एक वह दौर था जब कई–कई कोस और किलोमीटर से लोग टॉर्च और लाठी लेकर रात में लौंडा नाच देखने के लिए चले आते थें। कुछ युवक तो घर में इसके लिए खूब पिटते थे फिर भी लौंडा नाच देखने के लिए किसी न किसी बहाने निकल पड़ते थे। लोगों में इस नृत्य और नौटंकी के लिए जुनून था। उस दौर में मनोरंजन के लिए इस साधन का खूब बोलबाला था। लोग इस पारंपरिक लोकनृत्य की सराहना भी किया करते थें। आधुनिकता और भौतिकतावाद ने मानव सभ्यता को विकसित तो किया ही साथ ही साथ बहुत से लोगों को बेरोजगार भी किया है। विकास के सकारात्मक पहलुओं के साथ विकास का यह रूप भी है जिसे भारतीय समाज व्यवस्था को स्वीकार करना चाहिए। भिखारी ठाकुर के प्रसिद्ध भोजपुरी नाटक 'बिदेसिया' के तर्ज पर इस लौंडा नाच में कुछ परिमार्जन करके इसे सबसे पहले मंच पर प्रस्तुत कर कला का रूप प्रदान किया। बाद में 'बिदेसिया' लौंडा नाच एक जैसा बन गया। जिसे 'बिदेसिया' शैली कहना उचित होगा। भिखारी ठाकुर स्वयं भी नारी पात्रों का अभिनय बखूबी करते थें। लौंडा नाच आज ख़त्म होने के कगार पर है। यह लोकनृत्य परंपरा हमारे समाज में पला, बढ़ा, जवान हुआ, बूढ़ा हुआ और धीरे–धीरे मर भी रहा है। नाच और अपने रोजगार से संबंधित बातों को खुद भिखारी ठाकुर चौपाइयों में लिखते हैं – निजपुर में करिके रामलीला। नाच के तब बन्हलीं सिलसिला।।/केहू सराहे, केहू दूसे। केहू जमावऽ कहे अबहूँ से।।/ तनिको गावे न आवे बजाये। काहे दो लागल लोग का भावे।।(भिखारी ठाकुर, कविताकोश)

बिदेसिया नाच/लौंडा नाच परंपरा के धीरे– धीरे ख़त्म होने का कारण 95 वर्षीय रामचंद्र मांझी अश्लीलता को मानते हैं। भिखारी ठाकुर के साथ मंच साझा करने वाले रामचंद्र मांझी इस उम्र में भी उस परंपरा को बचाने के लिए प्रतिबद्ध नजर आते हैं। उम्र के समक्ष यह व्यक्ति बेबस नजर नहीं आता है। कला को बचा लेने की और उसे सँजो कर अगली पीढ़ी के लिए सुरक्षित रखने के लिए रामचंद्र मांझी जैसे नाच कलाकार आज भी प्रतिबद्ध हैं। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, दिल्ली के छात्र राकेश कुमार इस मरती हुई लोकनृत्य परंपरा को बचाने के लिए अग्रिम पंक्ति में खड़े होते हुए दिखते हैं। राकेश कुमार जैसे कलाकारों को इस परंपरा के पक्ष में खड़ा होता हुआ देखकर यह लगता है कि इस कला की धमक अब भी बची हुई है। आने वाली पीढ़ी इस लोक परंपरा से वंचित नहीं रहेगी। बिहार के दनियावाँ के छात्र ललित कुमार भी इसी परंपरा को आगे बढ़ाने एवं अपनी पहचान के लिए निरंतर संघर्षरत हैं। संस्कृति एवं तथ्य मंत्रालय, भारत सरकार की अधीनस्थ संस्था संगीत नाटक अकादमी ने प्रदर्शनकारी कलाओं के लिए वर्ष 2017 ई. के लिए लौंडा नाच कलाकार, भिखारी ठाकुर एवं बिदेसिया परंपरा के कलाकार रामचंद्र मांझी को वर्ष 2018 ई. में संगीत नाटक अकादमी अवार्ड देने की घोषणा की। राष्ट्रपति रामनाथ कोविद ने इस महान कलाकार को सम्मानित करके इस परंपरा से जुड़े कलाकारों को पुनर्जीवित किया है। रामचंद्र मांझी ग्यारह वर्ष की आयु से भिखारी ठाकुर के साथ नाच मण्डली में शामिल हो गए थे। एक मुलाक़ात में उन्होने खुद इस बात का जिक्र किया है। इन जैसे कलाकार राष्ट्रीय ही नहीं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इस नृत्य परंपरा को पहुँचा रहे हैं। इस कला को शीर्ष स्तर तक ले जाने के लिए दिन रात मेहनत कर रहे हैं। देश के कुछ हिस्सों में आज भी इस नृत्य परंपरा के कई कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। संगीत नाटक अकादमी सहित, भिखारी ठाकुर कि स्मृति पर आधारित कई संस्थाएं बिहार, दिल्ली एवं देश के अन्य हिस्सों में भिखारी ठाकुर की स्मृति में कई कार्यक्रमों का आयोजन करते हैं। इन कार्यक्रमों से उन सभी कलाकारों को प्रोत्साहन मिलता है। आज वर्तमान समय में सरकार को और भी इस लोकनृत्य और हमारी संस्कृति के हिस्से, इस परंपरा को बचाने की दिशा में ध्यान देने की और भी आवश्यकता है। देश की कई सामाजिक संस्थाएं इस ख़त्म होती जन संस्कृति को बचाने और सहेजने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठा रही हैं। समाज में अपनी पहचान के लिए संघर्षरत अनाम, गुमनाम लौंडा नाच, छकरबाज़ नाच कलाकारों के लिए रामचंद्र मांझी, राकेश कुमार, ललित कुमार आदि आशा की एक किरण हैं। इन सबपर समाज के प्रत्येक व्यक्ति को गर्व करना चाहिए।

'हलाला' नारी-स्वतंत्रता के लिए एक चुनौती

जानी तुषार चंदुलाल*

शोध सारांश :– आज के आधुनिक युग में किस प्रकार से धार्मिक परम्पाराओं को आधार बनाकर नारियों का शोषण हो रहा है। इस बात को इस शोध आलेख के माध्यम से उजागर करने का प्रयास किया गया है। इन धार्मिक परम्पाराओं ने किस प्रकार आज नारियों के गले को दबोचा है उसे भी उजागर किया गया है। चाहे वह किसी भी धर्म या वर्ग से ताल्लुकात क्यों न रखती हो। हलाला जैसी धार्मिक परम्परा ने आज मुस्लिम समाज की नारियों की नकेल कस के रखी है। आज का मुस्लिम पुरुष सत्ताधीश समाज हलाला एवं तलाक जैसी धार्मिक रुढियों की आड़ में मुस्लिम स्त्रियाँ पर पूर्ण रूप से अपना वर्चस्व स्थापित करने में कामयाब हुआ है। जिसके चलते मुस्लिम नारियाँ आज भी जीते जी नर्क भोग रही है। इन रुढियों के खिलाफ चाहे वह कितनी भी बुलंद आवाज करके उसका विरोध प्रदर्शित कर ले लेकिन आखिरकार उन्हें पुरुषों की सत्ता के आगे शरणागति स्वीकार करनी ही पड़ती है।

बीज शब्द :– हलाला, पितृसत्तात्मक, प्राचीन, अहमियत।

परिकल्पना :– 'यत्र नार्यस्तु पुज्यनते रमन्ते तत्र देवता :' ये सूक्ति प्राचीन काल से हम सुनते आये हैं। जिसके आधार पर हमें यह सीख दी जाती है की नारियों का हमेशा सम्मान करना पुरुसत्तात्मक समाज का कर्तव्य है। लेकिन अगर इसके आगे सोचे तो एसी ही धार्मिक उक्तियों ने नारीयों का शोषण करके रखा है क्योंकि नारीयों को जब–जब देव तुल्य मना गया है तब–तब उसके सामाजिक व्यवहार पर पुरुष सताधिश समाज ने बंधन डाल दिया है। एसे ही बंधनों के जरिए पुरुषों ने नारियों को अपने पैरों तले हमेशा रौंदने की कोशिश की है। जिसमें वे ज्यादातर सफल हुए हैं।

भूमिका:– प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक नारियों ने हर प्रकार के दर्जे को जिया है और उसे महसूस भी किया है। पुराने समय में नारियों को देवी का रूप मानकर उनकी पूजा की जाती थी। पुरुष उसे अपनी अर्धांगिनी मानता और परिवार में ऊँचा दर्जा देता। उसके विचारों की क़द्र की जाती थी। लेकिन समय का चक्र कुछ इस प्रकार पलटा की समाज की हर स्थितियों में परिवर्तन शुरू हुआ। इस परिवर्तन की लहर में नारियों की सामजिक स्थितियों में भी बदलाव आना शुरू हुआ। जो नारी परिवार का अहम सदस्य मानी जाती थी उसे अब पुरुषों ने अपने पैरों की जूती मान लिया था। जिसकी मुख्य वजह मुगलिया सल्तनत में नारियों पर लादे गए सामाजिक बंधन थे। इन सामाजिक बंधनों के चलते नारियों का सामाजिक स्तर इतना निचे चला गया की उसे अब पर्दे के भीतर रहने की सलाह दी गई। उसे न तो शृंगार करने का हक था और ना ही पुरुषों के सामने खुला मुँह रखकर घूमने फिरने का। उसके जीवन के विभिन्न पायदानों पर पुरुषों ने हर प्रकार से बंधन डाल दिए थे जिसकी वजह से वह बचपन से ही परावलंबी बनती चली गई। इसी चीज का फ़ायदा उठाकर पुरुषों ने पूर्ण रूप से उसकी स्वतंत्रता को छीन लिया।

जिन घरों में पुत्री जन्म पर खुशियाँ मनाई जाती थी उन्ही घरों में पुत्री के जन्म को बोझ माना जाने लगा। कई समाजों ने तो उस पर इतने जुल्म ढोए की कई बार लड़की के जन्म के साथ ही उसे मार दिया जाने लगा। नारी की परावलंबिता ने पुरुषों को काफी ताकतवर बना दिया। जिसकी वजह से पुरुष जब चाहे जैसा चाहे नारी का शोषण कर सकता था। माता–पिता अपने सिर से बोज को हल्का करने हेतु अपनी बेटियों को किसी भी पुरुष के पल्ले बाँध देते थे। नारियाँ भी माता–पिता की खुशी के लिए हर ग़म को सहते हुए अपनी गृहस्थी को हॅसते हॅसते गुजार देती थी। एक प्रकार से नारियाँ पुरुष के हाथों की कठपुतली बन चुकी थी। जिसे पुरुष जब चाहे जैसा चाहे नचाता था। पारिवार एवं सामाज में कई बार धार्मिक अनुष्ठानों में भी नारियों को दूर रखा जाता था। एसे सामाजिक और पारिवारिक व्यवहार से नारियाँ पुरुषों के बिना अपने आपको असुरक्षित समझने लगी। जिसका फ़ायदा पुरुष सताधिश समाज ने पूर्ण रूप से उठाकर नारी जीवन के बद से बत्तर बना दिया। नारियों ने भी अपने जीवन पर पुरुषों के अधिपत्य को

* **शोधार्थी, हेमचंद्राचार्य उत्तर गुजरात विश्वविध्यालय, पाटण, गुजरात।**

स्वीकार कर लिया था। कई बार पुरुषों ने अपने सामाजिक स्तर को ऊँचा उठाने हेतु नारियों पर धार्मिक बंधन भी लाद दिए। जिस वजह से नारियाँ का स्तर ओर ज्यादा नीचे गिरता गया।

हालाँकि धीरे–धीरे समाज के भीतर शिक्षा का उदय हुआ। साथ ही कई सामाजिक संस्थाओं का भी उदय हुआ जिसने नारी जीवन को बेहतर बनाने के लिए कई प्रयास किए। शिक्षा ने नारी जीवन के भीतर एक नई प्रेरणा जगाई। दूसरी ओर पुरुषों ने भी फिर से नारी जीवन की महत्ता को समझा। जिस नारी को अब तक पुरुषों ने अपने नजर में कैद कर के रखा था वह अब खुले मन से घुमने के लिए सक्षम बन चुकी थी। नारियों के बदलते जीवन को हर समय के साहित्यकारों ने अपने साहित्य के भीतर पिरोया। नारी जीवन की उन्नति के लिए साहित्यकारों ने नारी के विभिन्न स्तरों को समाज के सामने रखा जिस वजह से नारी ने अपने आपको पुरुष के समकक्ष खडा कर दिया।

शिक्षा, विभिन्न साहित्यकारों के प्रयासों एवं विभिन्न संस्थानों के प्रयासों की वजह से नारी के जीवन में अवश्य बदलाव नजर आया। जो नारी पुरुष के इशारों पे चलती थी उसने अब खुद पैरों पर चलना सिख लिया था। नारियां समाज के हर क्षेत्र के भीतर अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए लड़ाई लडती नजर आने लेगी थी। आज के आधुनिक युग में नारियाँ हर जगह अपनी मौजूदगी का ऐहसास कराती हुई नजर आती है। आधुनिक समय में नारियों का पुनर्जन्म अवश्य हुआ। लेकिन इसके बावजूद भी नारियाँ पूर्ण रूप से पुरुषों की गुलामी में से मुक्त नहीं हो पाई है। यह आधुनिक बदलते समाज की एक कड़वी सच्चाई है। आज भी कई पायदानों पर पुरुषों ने अपना आधिपत्य इस प्रकार स्थापित किया हुआ है की उसमें सेंध लगाना नारियों के बस की बात नहीं है। चाहे वह कितनी भी कोशिश कर ले उसे ऐसे पायदानों पर पुरुष का साथ अवश्य चाहिए होता है। जब वह साथ नारी नहीं प्राप्त करती तब कई बार वह गलत रास्तों का चुनाव कर लेती है और अपने जीवन को बरबाद कर लेती है। पुरुषों के इस प्रकार के आधिपत्य की वजह से ही समाज में वेश्या प्रथा जैसे अपराधों ने जोर पकड़ा है। कई समाज ऐसे भी है जो नारी शिक्षा को आज भी एक अपराध समझते है। जिस वजह से ऐसे समाजों में नारियाँ आज भी पुरुषों के आधीन रहती दिखाई पड़ती है। कई बार ऐसे समाजों में धार्मिक ठेकेदार सर्वेसर्वा बनकर नारियों के जीवन का फैसला करते नजर आते है। ऐसे समाज के धार्मिक ठेकेदार ज्यादातर पुरुष ही होते हैं जो हर हाल में अपने पुरुष अहं को बनाए रखने के लिए नारियों का शोषण करने में पीछे नहीं हटते । लेकिन कई बार ऐसे समाज की नारियों पर पुरुषों के जरिए ज्यादा अत्याचार होने लगते हैं तब वे भी अपनी आवाज को बुलंद करके पुरुष सत्ताधीश सकाज का डट कर विरोध करती है।

आधुनिक युग के सबल साहित्यकारों ने एसी ही नारियों का चित्रण अपने साहित्य के भीतर किया है। जिसमें आधुनिक युग के उपन्यासकार भगवानदास मोरवाल भी शामिल है। जिन्होंने अपने उपन्यास 'हलाला' में जहाँ एक और मुस्लिम समाज के भीतर प्रचलित हलाला और तलाक जैसे धार्मिक मुद्दों को उठाकर पुरुष के वर्चस्व को दिखया है वहीं दूसरी और एसी प्रथाओं के सामने अपना विरोध दर्ज कराती महिलाओं की सशक्त मानसिकता का दर्शन भी करवाया है। प्रस्तुत उपन्यास में दो परिवारों की कहानी है। जो पाँच सर्गों में विभाजित है। उपन्यास के शीर्षक से ही पता चलता है की यह मुस्लिम धर्म में प्रचलित धार्मिक एवं सामाजिक कुप्रथाओं को केंद्र में रखकर लिखा गया उपन्यास है। उपन्यास के पूर्वार्ध में डमरू के परिवार की कथा है। डमरू के माध्यम से उपन्यासकार ने पुरुष शोषण को उजागर करने का प्रयास किया है। डमरू एक संयुक्त परिवार का हिस्सा है जिसमें आमना, फातिमा और नसीबन नामक उसकी तीन भाभियाँ, भाइयों के साथ रहती है। नसीबन जो उसके बड़े भाई की बीवी है वह डमरू को अपने बेटे की तरह मानती है साथ ही उसे काफी प्रेम करती है। दूसरी और फातिमा और आमना हमेशा उसका शोषण करती नजर आती है। उपन्यास के प्रारम्भ में ही डमरू को उसकी छोटी भावज उसका उपहास करती हुई कहती है कि "जब देखो, ई नौसा चारू पहर या सीसा के आगे धरो पावे है। ई तो खुदा ने थोड़ो सो मूलक न बणायो...बणायो होतो तो पतो ना कैसी धरती ऐ फाडतो !"[1] डमरू एक सीधा सादा व्यक्ति है। जो परिवार के हर सदस्य के बहुत प्रेम करता है। इसीलिए उसकी छोटी भावज आमना उसे कई बार भला बुरा कहती है लेकिन कभी वह पलट कर उसे जवाब नहीं देता। हालाँकि ऐसे व्यावहार से वह ऊब कर हज पर जाने की सोचता है। परन्तु, पारिवारिक सदस्यों के समझाने पर वह आखिरकार जमात पर जाने का तय करता है।

पारिवारिक प्रेम की वजह से ही जब वह जमात से वापस आकर अपनी छोटी भाभी आमना को नोहरे में काम करते हुए देखता है तब वह उससे कहता है कि "भावज , तू हीं कहा कररी है ?... चल हट , हाथ धोके अपने घर जा ..ये काम भला घर की बहू–बेटी न का ना हवे है। वैसे भी ई डमरू जिन्दो है , मरो ना है।"[2] उपन्यास की कहानी धीरे–धीरे आगे बढ़ती हुई टटलू सेठ के परिवार की ओर रुख करती है। जिसके परिवार का मसला यह है की उसके बेटे नियाज ने अपनी बीवी नजराना जो तीन बच्चों की माँ होने के बावजूद उसे तलाक दे देता है। टटलू सेठ के परिवार की यह खबर धीरे–धीरे पुरे गाँव में फ़ैल जाती है। हालाँकि तलाक क्यों हुआ है इसका पता किसीको नहीं है लेकिन डमरू की भावज फातिमा इसके बारे में बताती हुई कहती है कि " वैसे ये सारा बीज या ... टटलू का बोया हुआ है। वाही की ही बेटा बहू पे गलत नजर ...जब बहू काबू में न आयी तो अफवाह उड़ा दी के वाको चाल चलन ठीक ना है।"[3] आज समाज चाहे कितना भी आधूनिक क्यों न बन चुका हो लेकिन आज भी स्त्रीयों का शोषण घर के बाहर तो होता ही है, घर की चार दीवारियों के भीतर ही अपने भी पारिवारिक सदस्यों के जरिए होता है। यह आधुनिक बदलते समाज के कडवी सच्चाई है।

आगे चलकर नजराना के पति और उसके ससूर को अपनी गलती का अहसास होता है और वे नजराना को घर वापस लाना चाहते है। लेकिन दूसरी तरफ नजराना इन दोनों के समाने यह शर्त रखती है कि अगर वे दोनों भरी पंचायत के सामने उसके सामने माफी मांगेगे तभी वह वापस अपने ससुराल जाएगी। नियाज और उसका पिता उसकी इस बात को मान लेते है। लेकिन इसके लिए जब पंचायत बिठाई जाती है और पुरे मामले को बताकर जब नजराना को वापस ले जाने की बात होती है तभी पंचायत में बैठा रसखान प्रश्न पंचायत और अन्य लोगों से कहता है कि " गलत ..अन्यायी वैसे तो तम अपने आप–ए–बताओ हो मुसलमान , पर लखण तिहारा अभी भी हिन्दुन जैसा है।..भई वा, तम भला मुसलमान हुआ जो इतना भी पतों ना है के तल्लाक दिए पीछे अगर कोई फिर सू वाही घर में आणो चाहवे , तो वाकू हलाला जरूरी है।"[4]

हलाला की बात सूनकर नियाज के पैरों तले जैसे जमीन खिसकने लगी। उसका सारा परिवार परेशान हो गया। उसकी माँ कल्लो ने तो रसखान और हलाला की रस्म को लेकर काफी खरी खोटी सुनाने लगी। लेकिन इसके बावजूद नजराना का हलाला करने का तय होता है। नजराना के हलाला को लेकर नियाज का परिवार परेशान हो जाता है क्योंकि एक तरफ पति–पत्नी की रजामंदी होने के बावजूद भी उन्हें हलाला जैसी रस्मों से गुजरना पडेगा और दूसरी तरफ नजराना का हलाला अब किसके साथ कराया जाए। अपनी बहू नजराना के हलाला के लिए नियाज के माता–पिता ने पूरा गाँव छान मरा आखिरकार उनकी नजर नसीबन के देवर डमरू पर जाती है और नजराना का विवाह डमरू के साथ करवाने की वे सोचते हैं। लेकिन डमरू पहले तो इस शादी के लिए राजी नहीं होता लेकिन कल्लो की बिनती सुनकर नसीबन उसका हौंसला बांधती है और डमरू को शादी के लिए राजी कर लेती है। शादी के बाद हलाला की रस्म को पूरा करने हेतु फिर से पंचायत बैठती है। इस बार मौलवी साहब को भी बुलाया जाता है। मौलवी साहब को नजराना, नियाज और डमरू के रिश्ते से अवगत कराया जाता है।

जैसे ही भरी पंचायत में डमरु दो बार जब तलाक तलाक का उच्चारण करता है तभी मौलवी साहब ने उसे बीच में रोकते हुए कहा कि , "हजरात हलाला के बारे में नबी सल्लाहे वलैह अस्सलम ने फ़रमाया है कि हलाला के लिए सिर्फ दूसरा निकाह काफी नहीं है, बल्कि उसे उस वक्त तक औरत पहले शौहर के लिए हलाल नहीं हो सकती जब तक कि वह दूसरे शहर के साथ हमबिस्तर न हो ले।"[5] डमरु को जैसे ही हमबिस्तर के बारे में पूछा गया तब वह कुछ नहीं बोलता,उसकी यही खामोशी सब कुछ बयाँ कर देती है और तलाक वहीं रुक जाता है।

हमबिस्तर की बात सुनकर सब से पहले नियाज की माँ कल्लो मौलवी पर भड़क उठती है। उसके बाद वह डमरू और नजराना के रिश्ते के बारे में भी काफी खरी खोटी सुनाती हुई पंचायत से उठकर चली जाती है। दूसरी और नजराना भी धार्मिक रस्मों के सामने अपने आपको निःसहाय महसूस करती है। डमरू जिसे तो हमबिस्तर का अर्थ भी नहीं मालूम वह भी परेशान होता है। इस प्रकार हलाला जैसी रस्मों की वजह से डमरू, नजराना और नियाज तीनों अपने आपको समुंदर के गहरे गर्त में डूबे हुए महसूस करते है। जिसमें से बाहर निकलना उनके लिए मुश्किल बन जाता है।

डमरू की बड़ी भावज नसीबन आखिरकार नजराना को डमरू और नजराना के रिश्ते के बारे में सच्चे रूप से अवगत कराती है और उसे डमरू के साथ हमबिस्तर होने के लिए समझाती है। दूसरी तरफ डमरू को जब हमबिस्तर होने का सही अर्थ लपरलेंडी के जरिए पता चलता है तब वह यह गुनाह करने के लिए मना कर देता है। अंत में नजराना और डमरू दोनों इस चुंगुल से बचने के लिए झूठ का सहारा लेते हैं। डमरू नजराना से कह देता है की अब की बार जब उसे हलाला के बारे में पूछा जाएगा तो वह झूठ कह देगा की मौलवी ने बताया है उस प्रकार से हलाला हो चुका है। दूसरे दिन जब पंचायत बैठती है और डमरू जैसे ही तीसरी बार तलाक कहने जाता है तब नजराना उसे बिच में ही रोक कर कहती है कि "दादा, जैसे या मौलवी साब ने हलाला करना की कही है, वैसे तो कुछ हुओ ही न... ई डमरू तो झूठ बोलरो है !"[6] इसके बाद जब नजराना मौलवी साब को अपनी इच्छा को लेकर सवाल करती है तब मौलवी नजराना से कहता है कि "बेवकूफ औरत यह समझ लो कि मियाँ बीवी का आपस में एसा वास्ता है कि उन्हें ताउम्र एक दूसरे के साथ बसर करना है। अगर दोनों का दिल मिला हुआ रहा, तो उससे बढ़कर कोइन नेमत नहीं , और अगर खुदा न करे दिलों में फर्क आ गया, तो उससे बढ़कर कोई मुसीबत नहीं। इसलिए जहाँ तक हो सके, मियाँ का दिल हाथ में लिए रहो और उसके आँख के इशारे पर चला करो। अगर ऐसा किया होता तो आज यह दिन देखना नहीं पड़ता।"[7] उसकी यह बात सुनकर किसी को कुछ समझ में नहीं आता कि आखिरकार नजराना चाहती क्या है ? एक–एक करके सभी लोग पंचायत से उठ खड़े होते हैं आखिर में नजराना पंचायत में बैठे–बैठे दादा टुंडल से कहती है कि, "बुरा ना मानो तो एक बात पूछूं दादा हम कोई लत्ता कपड़ा है के जब जी कर पहर लेओ और जब जी करें उन्ने उतार के फेंक दिओ?"[8]

निष्कर्ष :– अंत में नजराना अपना फैसला सुना देती है कि वह अब डमरू के साथ ही अपना जीवन व्यतीत करेगी। इसके बारे में वह नसीबन से कहती है कि "मैंने अपना फैसला या मारे बदल लियो हो, के खुदा न खास्ता तेरो देवर वा मौलवी के मुताबिक़ मेरे संग जिनाह कर बैठतो ..और तल्लाक के पीछे मैं नियाज संग उल्टी चली जाती, तो मैं जीते जी जिन्दगीभर या आदमी सू तो आँख मिला पाती ही ना, बल्कि मैं वा नियाज की नजर में गुनेहगार और बणि रहती ..बात–बात में अपनी वा सास और दौर–जिठनी का बोल सुणती, वे अलग। अब कम सू कम मैं या गुनाह सू तो बचगी।"[9] नजराना को जब नसीबन उसके बच्चो के बारे में सवाल करती है तब वह अपनी औलाद को अपनी कमजोरी नहीं बनाना चाहती एसा समझाती हुई अपनी सशक्त मानसिकता का दर्शन पाठक को करवाती है।

प्रस्तुत उपन्यास मेवात की पृष्ठभूमि पर रचा गया है। साथ ही जो धर्म आज पुरुष और स्त्री दोनों को समान दर्जा देने की बात करता है वही तलाक और हलाला जैसी रस्मों के वक्त पुरुषों का पक्ष लेता नजर आता है। लेकिन उपन्यास में नजराना का डमरू के साथ रहने का फैसला धार्मिकता का चोला ओढ़कर बैठे पुरुषों के गाल पर मारा करारा तमाचा है जिसकी गूंज भले ही सूनाई न देती हो लेकिन उसे महसूस अवश्य की जाती है।

उपन्यास में जिस भाषा का प्रयोग किया गया है वह मेवाती बोली है। इस लिए उसके भीतर जो गाली गलोच देखी जाती है, उससे पाठक विचलित नहीं होता। उपन्यासकार ने उपन्यास में मेवात की रोचकता बनी रहे इस हिसाब से इसका प्रयोग किया हो ऐसा प्रतीत होता है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. भगवानदास मोरवाल, हलाला, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१६, पृ.८।
2. वही, पृ.५७।
3. वही, पृ.७७।
4. वही, पृ.६३।
5. वही, पृ.१३०।
6. वही, पृ.१७१।
7. वही, पृ.१७४।
8. वही, पृ.१८२।
9. वही, पृ.१८२।

महिला शिक्षा : पर्यावरणीय संचेतना

मानसी पाण्डेय *

प्रकृति और जीवन का सहअस्तित्व सृष्टि के आरम्भ से ही अन्योन्याश्रित सम्बन्ध के रूप में सतत गतिमान है। अस्तित्व के आरम्भ से ही मानवता को प्रकृति ने तराशा और सहेजा है। प्रकृति रही तभी यह संसार रहा और तभी हम सब जीवित प्राणी सुरक्षित और संरक्षित रहे। प्रकृति ही प्राणियों का आधार है। प्रकृति और प्राणी के अभाव में सृष्टि और जीवन अकल्पनीय है। प्रकृति में विद्यमान कोई भी ऐसा तत्व नहीं है जिसने मानव जीवन को संरक्षित न किया हो सृष्टि रचयिता ने मनुष्य से पूर्व प्रकृति की रचना की जिससे मानवजीवन सुरक्षित रह सके। इसी भाव को संस्कृत भाषा के महान कवि कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तलम् के मंगलाचरण में इस प्रकार व्यक्त किया है– प्रत्यक्षाभिः प्रपन्न स्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः'' अर्थात् उन्होंने जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी, आकाश आदि प्रकृति के तत्वों को ईश्वर का प्रत्यक्ष स्वरूप मानकर अभिनन्दित किया है। अन्य शब्दों में सृष्टि में विद्यमान समस्त पदार्थ एवं जीव अन्योन्याश्रित सम्बन्ध के रूप में एक दूसरे से बंधे हुये है। यह एक व्यापक प्राकृतिक व्यवस्था है, जिसमें एक का अस्तित्व दूसरे पर निर्भर है। इनका पारस्परिक सामन्जस्य पर्यावरण का निर्माण करता है। इनमें किसी एक के भी असंतुलित होने पर सारी व्यवस्था बिगड़ जाती है। अतः सृष्टि में विद्यमान सभी पदार्थों का सबल होना आवश्यक है। किसी में भी दुर्बलता आने पर उसका विनाश होने लगता है। यदि पृथ्वी को क्षति पहुँचती है तो वायु प्रभावित होती है और यदि वायु की क्षति होती है तो सूर्य को नुकसान होता है। पर्यावरण का निर्माण करने एवं उनमें संतुलन स्थापित करने में तीनों लोको की शक्तियां अन्योन्याश्रित रूप से सम्बद्ध है और चराचर जगत के लिये संतुलन चक्र का निर्माण करती है। ऋग्वेद में उल्लिखित है–

हरयो धूमकेतवो वातजूता उपद्यपि यतन्ते पृथगन्याः अर्थात् प्रकृति द्वारा रचित सूर्य, अग्नि, विद्युत चन्द्र आदि सर्वजगत अपने–अपने कार्य में अलग–अलग संलग्न है। सूर्य की रोशनी से पौधे खिलते है, पानी वाष्प बनकर उड़ता है पुनः बरसता है तथा पृथ्वी को सींचता है। प्रकृति का यह स्वयं संचालित सामन्जस्य निरन्तर गतिमान है जन्म से मृत्यु तक उपयोगी पदार्थ हमें प्रकृति ही उपलब्ध कराती है। पृथ्वी पर जीवन का आरम्भ हरे पौधों से हुआ है पेड़ो की पत्तियां पर्यावरण में विद्यमान जहरीली गैसों और धूल को नष्ट करके पर्यावरण को जीवधारियों के अनुकूल बनाती है। शुद्ध वायु, आहार प्रदान करती है तथा बाढ़ नियन्त्रण भूसंरक्षण आदि रोकने में वृक्ष और वनस्पतियां महती भूमिका का निर्वहन करती है। पर्यावरण जीवनोपयोगी संसाधन ही नहीं उपलब्ध कराता बल्कि उसका जन्मदाता, पोषक एवं रक्षक भी है। अतः सम्पूर्ण भारतीय जीवन दर्शन प्रकृति पर आश्रित है। मानव शरीर ही प्राकृतिक तत्वों से निर्मित है– क्षिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित यह अधम शरीरा।।

समस्त भारतीय चिन्तन प्रकृति रक्षण की वकालत करता है। वैदिक विचारधारा में प्रकृति के अनुरूप कार्यों को कल्याणकारी व शांति प्रदान करने वाला माना गया है स्वार्थ रहित निष्काम कर्म करना ही भारतीय जीवन का उद्देश्य है और ये कर्म यज्ञ होते हैं। हमारे यहॉ यज्ञ में 'इदं न मम' अर्थात् मेरा नहीं ईश्वर का और स्वाहा की भावना सदा ईश्वर में बनी रहे तथा ''तेन व्यक्तेन भुञजीथा'' अर्थात् प्रकृति से प्राप्त समस्त पदार्थो का त्यागपूर्वक उपभोग करो, जिससे प्रकृति में संतुलन बना रहे। वैदिक साहित्य में अनेकत्र धावापृथिवी अर्थात् जिसमें सूर्य, अन्तरिक्ष और पृथ्वी लोक समाहित है को प्रदूषण मुक्त रखने का निर्देश दिया गया है– ''धौश्च नः पृथिवी च प्रचेतसः रक्षताम्। मा दुर्विदत्रा र्निऋतिनि ईरात। यदि इनको प्रदूषित किया जाता है तो विनाश विपत्ति और संकट उत्पन्न होते हैं। धावापृथिवी के साथ हमारा बराबर का सम्बन्ध है यदि हम इनकी सुरक्षा करेंगे तभी हम सुरक्षित रह सकेगें'– अवतां त्वा द्यावापृथिवी अव त्वं धावापृथिवी

अथर्ववेद में पृथ्वी के खोदे गये भाग को पुनः भरने के लिय आदेशित किया गया है। अर्थात यदि हम पृथ्वी से रत्न, कोयला, गैस, पेट्रोल आदि पदार्थों को खनन द्वारा निकालते है तो खाली हुये भाग को

***बी–30/ए.+पी., प्रशांत नगर, नगवा, लंका, वाराणसी–221005।**

फिर से मिट्टी डाल कर भर दें। ऐसा न करने पर भूमि का संतुलन बिगड़ता है और भूकम्प आने व जल स्रोतों के नष्ट हो जाने की सम्भावना बढ़ जाती है– यत्ते भूमे विश्वनामि, क्षिप्रं तदपि रोहतु। / मा ते मर्म विमृग्वरि, मा ते हृदयमर्पितम्।

जल की शुद्धता को ध्यान में रखते हुये नदियों एवं जलाशयों में थूकने मलमूत्र करने, कूड़ा डालने तथा गंदा जल डालने को महापाप माना गया है तथा ऐसा करने वाला नरकगामी होता है और उस पर ब्रह्म हत्या का पाप लगता है। वृक्षों वनस्पतियों में दैवीय शक्तियों का आरोपण प्रदूषण नष्ट करके मानव जाति को जीवनी शक्ति देने वाली कहा गया है– वीरूधो वैश्वदेवीः उग्रा पुरूषजीवनीः उग्रा या विषदूषणीः ..... ओषधीः

वृक्ष वनस्पतियाँ कार्बन डाइ आक्साइड रूपी विष को ग्रहण करते है और आक्सीजन रूपी अमृत (प्राणवायु) को छोड़ते है अतः इन्हें शिवरूप माना गया है– औषधयो वै पशुपतिः। वृक्षों की उपयोगिता को देखते हुये मत्स्य पुराण में एक वृक्ष को दस पुत्रों के बराबर माना गया है। पीपल का वृक्ष रोगों को दूर करने वाला कहा गया है। यह सर्वाधिक कार्बन डाई आक्साइड अवशोषित करता है तथा सबसे अधिक आक्सीजन छोड़ता है अतः इसका भारतीय समाज में सर्वाधिक महत्व है इसमें देवताओं का निवास माना गया है और इसकी पूजा की जाती है अश्वत्थो देवसदनः। तुलसी के पौधे को अधिक मात्रा में आक्सीजन छोड़ने के कारण पूज्य माना जाता है। इसकी पत्तियां तथा बीज रोगनाशक तथा प्रदूषण रोकने वाले है। वृक्ष छाया प्रदान करके पृथ्वी को शीतलता प्रदान करते है फल देते है तथा वर्षा करने वाले बादलों को आकृष्ट करते है तथा पृथ्वी को दृढ़ बनाते है। वनस्पतिः देवमिन्द्रम् अवर्धयत्। पृथिवीम् अदृंहीत्। अतः हरे वृक्षों को काटना हिंसा माना गया है तथा इसके लिये दण्ड का विधान किया गया है।

पर्यावरणीय सुरक्षा व शुद्धता की दृष्टि से यज्ञों का भी बहुत महत्व है। यह वायुमण्डल को पवित्रता, प्रदान करने वाले तथा विविध रोगों का नाश, शारीरिक, मानसिक उन्नति के कारण है। जिसके कारण वायुमण्डल में आक्सीजन और कार्बनडाइआक्साइड का संतुलन बना रहता है। इसी प्रकार के सुख प्राप्त होते है। यज्ञ से पृथ्वी अन्तरिक्ष और द्युलोक से सभी प्रदार के दोष या प्रदूषण दूर होते है। सौर ऊर्जा भी पर्यावरणीय प्रदूषण को नष्ट करने का एक सशक्त साधन है। उदय होता हुआ सूर्य सभी प्रकार के दृश्य और अदृश्य प्रदूषणकारी कीटाणुओं को नष्ट करता है–

उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा।
दृष्टान् च हनन् अदृश्टान च, सर्वान च प्रमृणन् क्रिमीन।

इस्लामिक साहित्य में भी पर्यावरण चेतना के प्रति संजीदगी व्यक्त की गई है। पर्यावरण संरक्षण, जल संचय, वृक्षारोपण, प्रदूषण पर नियन्त्रण का संदेश कुरान शरीफ में अनेकत्र वर्णित है। जमीन पर रेंगने वाली चींटी की अकारण हत्या करने को पाप की श्रेणी में रखा गया है। अगर कोई बच्चा भी किसी पशु–पक्षी को परेशान करता है या उसे दुःख देता है तो उसके लिये अल्लाह से माफी मांगने और दूसरे बच्चों को ऐसा न करने से रोकने का विधान किया गया है। हजरत मुहम्मद साहब का वक्तव्य है 'तुम इस प्रथिवी के सभी जीव–जन्तुओं पर दया करो, परमात्मा तुम पर दया करेगा।'' इस्लाम जीव जन्तुओं के प्रति क्रूर व्यवहार का विरोध करता है। किसी भी जीव को जिन्दा आग में जलाने, मनोरंजन के लिये हत्या करने, उन पर जरूरत से अधिक बोझ डालने, दूध पिलाने वाली मादा की हत्या करने, पक्षियों के अण्डे या घोंसले तोड़ने या किसी जीव को तड़पाकर मारने को धर्म विरोधी कार्य बताया है। इस प्रकार इस्लाम मनुष्यों के साथ–साथ समस्त जीव जन्तुओं की रक्षा का भी पाठ पढ़ता है तथा मानवता का संदेश देता है।

बौद्ध साहित्य में भी पर्यावरणीय संचेतना स्पष्ट परिलक्षित होती है। पाली ग्रन्थों से ज्ञात होता है, वृक्ष पूजा व्यापक स्तर पर होती थी। वृक्षों को देवता, अप्सरा, नाग, प्रेतात्मा आदि का निवास मानकर लोग संतान, यश, धन आदि प्राप्त करने की आकांक्षा से वृक्षों की पूजा करते थे। पशुओं का भी संरक्षण किया जाता था। बौद्ध ग्रन्थों में वृषभ को श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता था। २५०० ई०पू० सम्राट अशोक ने वन्यजीव संरक्षण के लिये अभिलेखों पर राजाज्ञायें खुदवायी। जिनमें अनेक पशुओं के शिकार वर्जित होने के साथ गार्भिनी सुअरी, बकरी को न मारना, त्योहारो के दिन पशुओं को बधिया न करना, जीवित प्राणी सहित भूसी को न जलाना, वनो में आग न लगाना जीवों को मारकर न खाना आदि शामिल था। जैन धर्म के पंचमहाव्रतों में उल्लिखित अहिंसा का सिद्धान्त पर्यावरण संरक्षण के सिद्धान्त पर ही आधारित है। जैन विचारधारा में मन वचन कर्म तथा तीनों प्रकार से होने वाली हिंसा का निषेध किया गया है।

पन्द्रहवीं शताब्दी में गुजरात (अहमदाबाद) का सुल्तान महमूद बेगड़ा अपने हाथों से वृक्ष लगाता था तथा खाद व पानी देता था। अपने ५२ वर्ष के शासनकाल में उसने ६०,००० वृक्ष लगाये। गुजरात के फिरदौस और शकाबान बाग उसके प्रकृति प्रेम का परिचय देते हैं। वर्षाकाल में वह बैंड बाजों के साथ १५ दिनों तक वन महोत्सव मनाता था। इस महोत्सव में मार्ग के दोनों ओर तथा खाली मैदानों में आम, चन्दन, इमली, अशोक, पीपल नीम आदि के पौधे लगाये जाते थे। पौध रोपण के दौरान वह प्रजा से कोई कर नहीं वसूल करता था साथ ही वह प्रजा को वस्त्र और भोजन उपहार स्वरूप प्रदान करता था। सावन पूर्णिमा को महोत्सव के समापन पर कुवांरी युवतियों के बीच वृक्षारोपण प्रतियोगिता करवायी जाती थी जिसमें निर्धारित समय में सर्वाधिक पौधे लगाने वाले युवती को शाही सम्मान प्रदान किया जाता था। इस प्रकार प्राचीनकाल से ही भारतीय जनमानस पर्यावरण सहअस्तित्व के प्रति सचेत रहा है। पेड़–पौधो जलाशयों में देवत्व को प्रतिष्ठापित करके अपनी वैज्ञानिक धारणा का परिचय दिया तथा उसे धर्म से जोड़कर सुरक्षा प्रदानकी। पर्यावरण के प्रति उनका सम्बन्ध उपयोग वादी नहीं अपितु सहयोगवादी रहा है।

पर्यावरण संरक्षण के प्रति महिलायें आदिकाल से लेकर अद्यतन सचेष्ट हैं। पेड़–पौधों, खेतों, जलाशयों, जीव जन्तुओं की विभिन्न व्रत–त्योहारो पर पूजा करना, उनकी पर्यावरणीय संचेतना का परिचायक है। पक्षियों को दाना खिलाना, पानी रखना या पहली रोटी गाय को तथा अन्तिम रोटी कुत्ते को देने के कारण जीवों की सुरक्षा करना ही है। मकर संक्रान्ति व छठ पर्व सौर ऊर्जा को प्रदूषित न करने के उद्देश्य से मनाये जाते है। गंगा दशहरा व किसी मनौती के पूरा होने पर गंगा पुजैया का अनुष्ठान करने में जलाशयों को संरक्षित करने का भाव है। लोहड़ी–होली के अवसर पर वृहद स्तर पर अग्निदहन तापमान परिवर्तन के वाहक है। शीतला अष्ठमी, तुलसी विवाह में महिलाये वनस्पतियों की पूजा करती है। देवठऊनी एकादशी और अक्षय नवमी की तिथि को आंवले के नीचे भोजन बनाना व ग्रहण करने के पीछे भी यही भाव है कि प्रकृति के रक्षण एवं पोषण में ही मानव का रक्षण व पोषण है। यद्यपि अधिकांश महिलायें इस प्रकार के अनुष्ठानों के वैज्ञानिक पक्ष से अनभिज्ञ होती है फिर भी उनमें धार्मिक व सामाजिक भावना तथा इनके सदुपयोग की दृष्टि से इन वृक्षों वनस्पतियां व जल स्रोतो के प्रति आत्मीयता व सम्मान बना हुआ है। बदलते समय के साथ महिलाओं में पर्याप्त जागरूकता आयी है और वह पर्यावरण को सुरक्षित करने में गुरूतर दायित्व का निर्वहन कर रही है। राजस्थान के खेजड़ली गांव की अमरती देवी ने खेजड़ी वृक्षों की रक्षा के लिये 'चिपको अभियान' चलाया तथा ३६३ विश्नोइयों सहित अपना बलिदान दिया। उत्तराखण्ड के रेणी गांव की महिलायें पेड़ों को बचाने के लिये उनसे चिपकी रही। मेधा पाटेकर ने नर्मदा बचाओ आन्दोलन में उल्लेखनीय योगदान दिया। हिमाचल प्रदेश के लाहुल स्पीति क्षेत्र की ग्रामीण महिलायें हिम तेंदुये के संरक्षण में महती भूमिका निभा रही है। हिमाचल में नेचर कंजर्वेशन फाउण्डेशन नामक संस्था भी इसको संरक्षित करने का प्रयास कर रही है। यह हिमाचल के ऊंचाई वाले पहाड़ी क्षेत्रों में पाया जाता है और भेड़–बकरियों को अपना भोजन बनाता है। ऐसी अवस्था में हिम तेंदुआ ग्रामीणों का दुश्मन बन गया। क्योंकि ग्रामीणों के पशुओं को यह अपना शिकार बनाता है और यह पशु ही उनकी जीविका का साधन है। ऐसी स्थिति में महिलाओं को इसकी सुरक्षा का भार देकर उन्हें रोजगार प्रदान किया गया है क्योंकि तेंदुये के व्यवहार की जानकारी महिलाओं को पुरूषों से अधिक है। स्पीति घाटी के चिचम, किबर, गेते, कीह, कौमिक लांगचा व पीन बैली के शगनम व मुद्द गांव की महिलायें हिम तेंदुए को बचाने में लगी हुई है।

महिलायें चाहें कामकाजी हो या घरेलू यदि वह संकल्प ले लें कि वह पर्यावरण के प्रति अपना कर्तव्य निभायेंगी और अपने परिवार को भी समझायेगी, तो हमारा आज और आने वाला कल निश्चित ही बेहतर स्थिति में होगा, क्योंकि उनमें नैतिक मूल्यों के साथ–साथ वचनबद्धता की भावना भी होती है। अतः महिलायें पर्यावरण को सुरक्षित रखने में बहुमूल्य योगदान दे सकती है। घर के लिये जरूरी सामान को अधिकतर वही खरीदती है, अतः वह वही सामान खरीदे जिसे बनाने या प्रयोग करने में प्रकृति को कोई नुकसान न हो या कम हो। सामान की पैकिंग में एल्यूमिनियम या प्लास्टिक का प्रयोग न किया गया हो और सामान रखने के लिये थैला ले लाये। डिस्पोजल सामान का इस्तेमाल स्वयं न करें तथा परिवार को भी प्रेरित करें जैसे डिस्पोजल रेजर के स्थान पर मशीन रेजर, पेपर नैपकिन की जगह कपड़े के बने नैपकिन, रोटी या खाद्य पदार्थ लपेटने के लिये एल्यूमिनियम फायल की जगह कपड़े का नैपकिन प्रयोग कर सकती है। लिक्विड सोठ, चाय, काफी, तेल आदि के नये पैक के स्थान पर रीफिल पैक खरीद सकती है। इससे पैसे भी बचेंगे और कचरा भी कम होगा। घर का कूड़ा कचरा खुले स्थानों में न फेंके। फल व सब्जियों के

छिलकों को अन्य कूड़े से अलग करके और उसे किसी गड्ढे में डालती रहे और उसकी कम्पोस्ट खाद बनाकर पौधों में डालें । फल व सब्जी किसी बर्तन में धोकर बचे हुये पानी को पौधो में डाले और गन्दे पानी का सदुपयोग करें। वाशरूम तथा किचन से निकलने वाला पानी किसी नदी या तालाब में पहुचता है और साफ पानी को प्रदूषित करता है अतः रासायनिक डिटर्जेन्ट्स का प्रयोग न करके पौधो से बनाये गये डिटर्जेन्ट से कपड़े धोयें। बिजली के अधिक उपकरणों के प्रयोग से तापमान में वृद्धि होती है अतः जितनी जरूरत हो उतनी ही बिजली जलायें, बल्व के स्थान पर एल०ई०डी० लाइट जलाये। घर के सभी सदस्य एक साथ ही बैठकर टी०वी० देखे। ए.सी. कूलर युक्त कमरे में सोने की जगह खुली हवा में सोयें जिसमें एसी से निकलने वाली गैस से वातावरण भी प्रदूषित नहीं होगा और शुद्ध आक्सीजन भी मिलेगी। फ्रिज की जगह घड़े का पानी पीने से बहुत सी बीमारियों से भी बचा जा सकता है और वातावरण भी शुद्ध रखा जा सकता है।

शहरी क्षेत्रों में जहाँ कृषि योग्य भूमि की कमी है वहाँ महिलायें घर की छतों पर गमलों, लकड़ी की पेटियों, लोहे के ड्रमों में मिट्टी भरकर फल व सब्जियां उगा रही है तथा रासायनिक खादों व कीटनाशकों के स्थान पर गोबर की खाद का प्रयोग कर रही है। जालन्धर शहर में संभ्रान्त वर्ग की महिलाओं ने जैविक खेती को अपनी जिन्दगी का हिस्सा बना लिया है। माडल टाउन निवासी सामाजिक कार्यकर्ता लिपिका कोचर तथा 'खेती विरासत मिशन' इस कार्य को आगे बढ़ाने में लगे हुये है। मिशन से जुड़े तकनीकी विशेषज्ञ महिलाओं को टेरेस गार्डन बनाने में मदद कर रहे है। हेम खोसला, रीति जैन आदि महिलायें टेरेस गार्डन बनाकर न सिर्फ आर्गेनिक सब्जियां उगा रही है बल्कि नींबू, अनार, चीकू जैसे फल भी उगाने आरम्भ कर दिये है। वह स्वयं भी अपने घर में इनका उपयोग कर रही हैं तथा अतिरिक्त मात्रा में उत्पन्न होने वाली सब्जियों को एकलव्य स्कूल में सण्डे मार्केट में स्वयं बेचती भी हैं।

बदलती जीवन शैली में घर का वातावरण शुद्ध रखने के लिये घर के अन्दर भी गार्डन बनाने का चलन बढ़ रहा है। घर के अन्दर पौधे लगाने से घर का वातावरण भी शुद्ध रहता है तथा घर भी देखने में सुन्दर लगता है। इस गार्डन को सीढ़ियों के नीचे पड़ी खाली जगह में बनाया जा सकता है। इसे पेबल गार्डन कहते है इसमें मिट्टी की जगह छोटे–छोटे विभिन्न आकार और रंगो वाले पत्थरों का इस्तेमाल किया जाता है। ५–६ इंच मोटी परत में पत्थरों को विछाकर इसमें छोटे–छोटे पौधे, फूल और डेकोरेटिव प्लांट लगाये जा सकते हैं। इसमें पौधे सीधे लगाने के बजाय गमलो में लगाकर इन पत्थरों पर सजाये जा सकते है और यह कार्य महिलायें बखूबी कर सकती हैं। सहअस्तित्व यानी प्रकृति को उनके वास्तविक स्वरूप में सुरक्षित रखते हुये मानव जाति का विकास आज के समय की आवश्यकता है। क्योंकि प्रकृति और मनुष्य दोनो का अस्तित्व एक दूसरे पर निर्भर हैं इसलिये प्राकृतिक संसाधनों का क्षरण न हो, ऐसे संकल्प और ऐसी व्यवस्था की जरूरत है। इस रूप में मानव और प्रकृति के सहअस्तित्व को अक्षुण्ण बनाये रखने में महिलाओं का अमूल्य योगदान है।

संदर्भ–समची :–

1. किष्किन्धाकाण्ड रामचरित मानस।
2. ऋग्वेद– १०.३६.२।
3. यजुर्वेद– २.६।
4. अथर्ववेद– १२.१.३५।
5. पदृम पुराण क्रियायोग ८.८ से १०।
6. अथर्ववेद ८.७.१०।
7. शतपथ ब्राह्मण ६.१.३.१२।
8. अथर्ववेद ५.४.३।
9. यजुर्वेद– २८.२०।
10. मनुस्मृति ११.६३ से ६६
11. यजुर्वेद ६.२१.१८ से २६.२२.३३।
12. ऋग्वेद– १.१६१.८ अथर्ववेद ५.२३.६; ६.५.२.१।
13. सुरा– ३०, आयत– ४१।
14. चुल्लबग्ग, ६.६.५ ।
15. पंचुपोसथ जातक– ४६०।
16. अशोक के लेख में वर्णित राजाज्ञा ।
17. दैनिक जागरण ५.१.१७।
18. दैनिक जागरण २०.११.१७

तुलसी का समाज-दर्शन

डॉ. अर्चना पाण्डेय *

तुलसीदास हिन्दी–साहित्य के पूर्व मध्यकालीन रचनाकारों में सर्वाधिक चर्चित और सर्वाधिक विवादित कवि हैं। रामभक्ति–धारा के अग्रगण्य कवियों में तुलसी का प्रमुख स्थान है। तुलसी के समय का समाज एवं तुलसी द्वारा परिकल्पित समाज उनके साहित्य में स्पष्टतः विवेचित हुआ है। अतः तुलसी के समाज–दर्शन विषयक मान्यताओं के प्रकाशन से पूर्व समाज–दर्शन पदबंध की व्याख्या उचित होगी। 'समाज–दर्शन' पदबंध दो शब्दों से मिलकर बना है– 'समाज' और 'दर्शन'। 'समाज' शब्द संस्कृत के 'सम्' एवं 'अज' शब्दों से मिलकर बना है। 'सम' का अर्थ होता है इक्टट्ठा और एकसाथ तथा 'अज' का अर्थ होता है एक साथ रहने वाला 'समूह'। तात्पर्य यह कि समाज का अर्थ होता है– समुदाय, समूह का एक साथ रहना आदि। द्वितीयतः 'दर्शन' शब्द संस्कृत की 'दृश्' धातु से निर्मित है, जिसका अर्थ होता है 'दृश्यते यथार्थ तत्त्वयनेन'। कहने का तात्पर्य यह कि दृष्टि या यथार्थ–दृष्टि और यथार्थ तत्त्व की अनुभूति।

अतः दोनो शब्दों के नियोजन से निर्मित 'समाज दर्शन का तात्पर्य यह कि समाज या समुदाय को देखने की दृष्टि या दृष्टिकोण'। तुलसी के संदर्भ में उक्त 'पदबंध' का अर्थ निकलता है, कि उन्होंने अपने समय के समाज को किस दृष्टि से देखा और अपने साहित्य में 'कैसे' समाज का वर्णन किया है। तुलसी की प्रामाणिक बारह कृतियों में समाज विषयक उनकी मान्यताएं विशेषतः 'रामचरित मानस' एवं 'कवितावली' में ही मिलती हैं, किन्तु इन दोनो में 'रामचरित मानस' प्रमुख है। विवेच्य कृतियों में समाज के अनेक स्तर वर्णित हैं– जिसमें परिवार, राष्ट्र, जातिगत, समुदायगत, वर्गगत, लिंगगत, वयगत आदि में समाज का रूप प्राप्त होता है। उनका समाज इतना व्यापक है, कि उसमें मनुष्य, पशु, प्रकृति तथा ग्रामीण, नागर एवं काननचारी समुदाय प्रश्रय पाते हैं। इन परस्पर एक दूसरे पर अवलंबित समाज की रीतियाँ–नीतियाँ, आचार–व्यवहार, परस्पर संबंध, मानव समाज का तथा मानवेतर समाज का संबंध भी रूपायित होता है।

तुलसी के यहाँ समाज के अनेक घटक–तत्त्व विद्यमान हैं, किन्तु विवेच्य आलेख का विषय मूलतः तीन समाजों के चित्रण तक ही सीमित किया जा रहा है, क्योंकि संपूर्णतः में तुलसी के साहित्य में समाज का दर्शन अत्यंत व्यापक एवं विशद् हैं। तुलसी कृत 'रामचरित मानस' में त्रि–आयामी 'राम का समाज' जो कि उदात्त मानवीय एवं आदर्शवादी जीवन मूल्यों पर आधारित है। द्वितीयतः 'रावण का समाज' जो यथार्थवादी खण्डित जीवन मूल्यों पर आधारित है। तृतीयतः 'बालि का समाज' जो यथार्थवादी खण्डित जीवन मूल्यों से अग्रसारित होकर आदर्शवादी जीवन मूल्यों की स्थापना की ओर संचालित है। आर्थात् संक्रमणकारी जीवन मूल्याधारित समाज है।

इन तीनों ही समाजों को तुलसी ने अपने समाज–दर्शन के अन्तर्गत किस दृष्टि– से संपादित किया है, उसे केवल परिवार के 'एक' संबंध 'भ्रात्रि–संबंध' के पारस्परिकता के आधार पर मूल्यांकित करना उचित होगा अर्थात् समग्रता में विवेचित न कर आंशिक रूप से निष्पादन अपेक्षित है। प्रथमतः 'राम का समाज'– मानवीय–समाज का प्रतीक है, जो उच्चस्तरीय मूल्यों एवं त्यागवादी संस्कृति को रूपायित करता है। यहाँ राम, भरत और लक्ष्मण के परस्पर संबंध का दिग्दर्शन अपेक्षित है। कैकेयी जब राम को वन जाने की आज्ञा देती हैं, तब राम का भरत के प्रति जो अनुरक्ति/सद्भाव है, उसे प्रकट करते हुए तुलसी कहते हैं–

भरत प्रानप्रिय पावहिं राजू। विधि सव विधि मोहि सनमुख आजू।।
जौ न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा।।[1]

और आगे ही जब भरत को राम के वनगमन के विषय में ज्ञात होता है तब भरत अपनी माता को भी व्यंग्योक्ति कहने से नहीं चूकते हैं ; यथा–

लखन राम सिय कहुँ बनु दीन्हा। पठइ अमरपुर पति हित कीन्हा।
लीन्ह बिधव पर अपजसु आजू। दीन्हेअ प्रजहि सोकु संतापू।।
मोहि दीन्ह सुखु सुजसु सुराजू। कीन्ह कैकयी सब कर काजू।।[2]

*** सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, खिदिरपुर कॉलेज, कोलकाता।**

आगे भरत के चरित्र की विशेषता तथा राम के प्रति उनके भ्रातृत्व–प्रेम का वर्णन करते हुए तुलसी ने लिखा है– "चलत पयादें खात फल पिता दीन्ह तजि राजु।/ जात मनावत रघुबरहि भरत सरिस को आजु।।/भायप भगति भरत आचरनू। कहत सुनत दुख दूषन हरनू।।"[3] भरत के चरित्र की उदात्तता से तुलसी मानव समाज के उच्चतर मानवीय मूल्यों की स्थापना करते हुए उसका विकास इस रूप में किया है कि भरत अयोध्या लौटकर नंदी ग्राम में जमीन में गड्ढा खोदकर बनवासी का जीवन व्यतीत करते हैं– "नंदिगाँव करि परन कुटीरा। कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा।।/ जटाजूट सिर मुनिपट धारी। महि खनि कुस साथरी संवारी।।"[4]

तुलसी राम एवं भरत के परस्पर अनुरक्ति के प्रकाशन के साथ ही उक्त तथ्य का द्योतन 'लक्षमण–मूर्छा–प्रसंग' में भी करतें हैं। पिता की आज्ञा को सर्वोपरि स्वीकार कर "सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी।।" कहने वाले राम लक्ष्मण को मूर्छित देखकर कहते हैं– "जौं जनतेंउ बन बंधु बिछोहू। पिता बचन मनतेंउ नहिं ओहू"।। इतना ही नहीं, सीता–हरण के पश्चात् जड़ और चेतन का पार्थक्य विस्मृत कर "हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी"।।– कहकर विरह विदग्ध हो जाते हैं; वही राम लक्ष्मण को भू–शायी देखकर बिलखते हुए कहते हैं– "सुत बित नारि भवन परिवारा। द्वितीयतः रावण का समाज है– जो बर्चस्वशाली, आसुर–संस्कृति और साम्राज्यवादी मनोवृत्ति का प्रतीक है और खण्डित यथार्थवादी जीवन मूल्यों पर आधारित है, इसका प्रमाण "रावण और विभीषण" दोनों भाईयों के परस्पर संबंध में द्रष्टव्य होता है। जब विभीषण अपने भाई के हित के लिए सीता को लौटाने के लिए रावण को समझाता है, तब रावण स्वार्थान्ध होकर विभीषण पर शत्रुवत् प्रहार करता है; इसे तुलसी ने इस प्रकार उकेरा है–

"बुध पुरान श्रुति संमत बानी। कही विभीषण नीति बखानी।।
सुनत दसानन उठा रिसाई। खल तोहि निकट मृत्यु अब आई।।
जियसि सदा सठ मोर जिआवा। रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा।।
असि कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। अनुज गहे पद बारहिं बारा।।"[5]

तृतीयतः बालि का समाज है– जो कानन चारी, असभ्य अनार्य जाति का समाज है और संस्कृति विहीन सामान्य स्तर का अर्द्धविकसित जीवन मूल्यों से मानवीय मूल्यों की स्थापना की ओर अग्रसर है। इसका प्रमाण भी हमें तुलसी साहित्य में प्राप्त होता है। सुग्रीव के प्रति बालि के व्यवहार में हमें यह मिलता है, सुग्रीव कहता है–

"मंत्रिन्ह पुर देखा बिनुसाईं। दीन्हेउ मोहि राज बरिआईं।।
बालि ताहि मारि गृह आवा। देखि मोहि जियं भेद बढावा।।
रिपु सम मोहि मारेसि अतिभारी। हरि लीन्हेसि सर्वसु अरू नारी।।
ताकें भय रघुबीर कृपाला। सकल भवन में फिरेऊँ बिहाला।।
इहाँ साप बस आवत नाहीं। तदपि सभीत रहऊँ मन माही।।"[6]

किन्तु बालि अंत में अपनी गलती स्वीकार करता है और राम से कहता है– "सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि।/ प्रभु अजहूँ मैं पापी अंतकाल गति तोरि।।"[7]

उपरिलिखित वर्णित तीनों समाज ही 'राजन्य–समाज' हैं, जिनमें तीनों के मध्य केवल एक संबंध भ्रात्रि–संबंध को ही विवेचित किया गया है। इसके अतिरिक्त तुलसी ने अन्य सामाजिक संबंधों को भी अत्यंत गंभीरता पूर्वक दर्शाया है, किन्तु उसका विश्लेषण इस आलेख में काम्य नहीं है। मूलतः सम्बन्ध दो प्रकार के होते हैं– वैयक्तिक और सामाजिक। उक्त आलेख में अनेक वैयक्तिक संबंधों में से 'एक' के निरूपण के माध्यम से तुलसी के 'समाज दृदर्शन' विषयक मंतव्य को प्रकट किया जा चुका है अब द्वितियतः सामाजिक सम्बन्ध के अंतर्गत 'राजा और प्रजा' के सम्बन्ध का निरूपण अपेक्षित है। राम के समाज में राजा–प्रजा के पारस्परिक समबन्ध का वर्णन 'रामचरितमानस' के अयोध्याकाण्ड और उत्तरकाण्ड में तुलसी ने किया है। राम के वन गमन के समय प्रजा दुःख कातर होकर उनके साथ चलने लगती है –

"चलत रामु लखि अवध अनाथा। बिकल लोग सब लागे साथा।।
कृपासिन्धु बहु बिधि समुझावहिं। फिरहिं प्रेम बस पुनि फिरि आवहिं"।।[8]

उत्तरकाण्ड में राजा का प्रजा प्रति समतामूलक दृष्टि देखने योग्य है–

"पनिघट परम मनोहर नाना। तहां न पुरुष करहिं अस्नाना।।
राजघाट सब बिधि सुन्दर बार। मज्जहिं तहां बरन चारिउ नर"।।[9]

तात्पर्य यह कि सरयू नदी के तट पर अनेक घाट थे जिसमें पानी पीने का घाट अलग था, वहाँ कोई स्नान नहीं करता था, किन्तु जो राजपुरुषों के स्नान का घाट था वहाँ चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) के लोग स्नान करते थे। यहाँ एक प्रश्न सहज ही उत्पन्न होता है कि आधुनिक युग के यथार्थवादी रचनाकार प्रेमचंद ने 'ठाकुर का कुआँ' कहानी में सवर्णों के कुँए से शूद्रों द्वारा पेयजल न ले पाने की कथा कही है और

तुलसी ने तो रामराज्य में 'स्नान' का चित्रण किया है, पांच सौ वर्ष पूर्व ? क्या तुलसी वर्णाश्रम के पोषक थे ? तुलसी ने दरिद्रता अर्थात गरीबी को सबसे बड़ा दुःख स्वीकार किया है– 'नहिं दरिद्र सम दुःख जग माहीं'।[10] किन्तु, उनके द्वारा वर्णित रामराज्य में– 'नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना।[11] था। द्वितीयतः रावण के समाज में 'राजा और प्रजा' के मध्य सम्बंधों को उन्होंने कैसे दर्शाया है, पर दृष्टिपात समीचीन होगा। जिस समय हनुमानजी लंका जला देते हैं, उस समय रावण की प्रजा का उसके प्रति क्या दृष्टिकोण है– का निरूपण तुलसी ने 'कवितावली' में किया है–

"लपट कराल ज्वालजालमाल दहूँ दिसि/धूम अकुलाने, पहिचाने कौन काहि रे।
पानी को ललात, बिललात, जरे गात जात/परे पाइमाल जात 'भ्रात! तूं निबाहि रे।।
प्रिया तूं पराहि, नाथ! नाथ! तूं पराहि बाप!/बाप! तूं पराहि, पूत! पूत! तूं पराहि रे'।।
'तुलसी' बिलोकि लोग ब्याकुल बेहाल कहैं/लेहि दससीस अब बीस चख चाहि रे"।।[12]

'सब लोग ब्याकुल और परेशान होकर कह रहें हैं– अरे दशशीश रावण ! अब बीसों आँखों से अपनी करतूत देख ले'। आगे 'लंका–दहन–प्रसंग' में ही स्त्रियाँ गाली देते हुए कह रहीं हैं– "तुलसी निहारि अरि नारि दे–दे गारि कहैं। 'बावरें सुरारि बैरु कीन्हों रामरायसों"।।[13] फलतः यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि चरम भौतिकता में आकंठ डूबे राजा के राज्य में प्रजा किस प्रकार उसकी महत्वाकांक्षा की पूर्ति हेतु 'बली' चढ़ जाती है, तुलसी की उपरिलिखित पंक्तियाँ साक्ष्य स्वरूप हैं। त्रि–तीयतः 'बालि का समाज' जो कि अर्द्ध–विकसित समाज है– में तुलसी ने राजा–प्रजा के पारस्परिक सम्बन्ध को उस रूप में निरूपित नहीं किया है, क्योंकि वहाँ 'बौद्धिक–विवेक' विकसित ही नहीं हुआ है, वहाँ प्रजा राजाज्ञा की अनुगामिनी है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है, कि तुलसी ने अपने समाज दर्शन के अन्तर्गत 'राम के समाज' को ही महत्वपूर्ण एवं समानता मूलक स्वीकार किया है और पात्रों का जो मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इसका प्रमाण उत्तरकाण्ड में प्राप्त होता है, जिसमें उक्त मत का प्रमाण प्राप्त होता है, यहाँ राम अपनी प्रजा के प्रति जो बात कहते हैं वह उक्त धारणा की पुष्टि करती है–

"सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहऊँ न कछु ममता उरआनी।।
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई।।
.....
जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौं मोहि बरजहु भय बिसराई।।"[14]

यह राम का जनतंत्र है। वर्तमान समय में परिवार और सत्ता समाज के दो महत्वपूर्ण घटक तत्त्व हैं। पारिवारिक विघटन से 'संस्कार' ख़त्म हो रहे हैं और संसदीय राजतंत्रीय–प्रणाली से सामाजिक–संरचना में परिवर्तन हो रहा है, जिससे भोग–लिप्सा, अबाध तृष्णा और संकीर्ण स्वार्थ की लौह–श्रंखला दृढ़ होती जा रही है। ऐसे समय में तुलसी–वर्णित 'उच्च–मानवीय–मूल्यों' से युक्त राम के समाज की महती आवश्यकता है, जो स्पष्टतः सही अर्थों में 'जनतंत्र' है।

संदर्भ–सूची :–

1. रामचरितमानस– ; गीताप्रेस ; गोरखपुर;२०७१, 2/42/1, पृष्ठ–256
2. वही, 2/180/3–4 पृष्ठ –327।
3. वही, 2/222–223/1 पृष्ठ –342।
4. वही, 2/323/2–3 पृष्ठ –400।
5. वही, 5/41/1–2 पृष्ठ –484।
6. वही, 4/6/5–6 पृष्ठ –445।
7. वही, 4/9 पृष्ठ –447।
8. वही, 2/83/2 पृष्ठ–277।
9. वही, 7/29/2–3, पृष्ठ –604।
10. वही, 7/121/7 , पृष्ठ –664।
11. वही, 7/21/3, पृष्ठ –600।
12. कवितावली , पद –16 ; गीताप्रेस , गोरखपुर ;२०६६ ,पृष्ठ –38।
13. वही, पद –24, पृष्ठ –42।
14. रामचरितमानस–7/43/1–2 ; गीताप्रेस ;गोरखपुर ; २०७१, पृष्ठ–612।

मृदुला गर्ग के आठवें दशक की कहानियों में भारतीय-नारी

मनोज कुमार सिंह*

आठवें दशक की सिद्धहस्त कहानी लेखिकाओं में मृदुला गर्ग अपने मौलिक चिंतन, विषय वैविध्य और बेबाकपन के कारण अपनी एक विशिष्ट पहचान स्थापित करती हैं। विशेषकर नारी अस्मिता के प्रश्न एवं उसकी आन्तरिक भाव संवेदना के स्तर मृदुला जी के विचार काफी सशक्त, प्रभावी एवं विचारणीय हैं। सन् 60 के बाद से कथा साहित्य के क्षेत्र में महिला कथा–लेखिकाओं का योगदान सराहनीय रहा है। नारी जीवन के विभिन्न संदर्भों को उषा प्रियंवदा, दीप्ति खंडेलवाल, मन्नू भंडारी, राजी सेठ, मंजुल भगत, मेहरून्निसा परवेज, नासिरा शर्मा, प्रभा खेतान, शशि प्रभा शास्त्री जैसी सशक्त कथा लेखिकाओं ने जीवन बोध तथा भाव संवेदना के स्तर पर यथार्थरूप में प्रकट किया। इसी परम्परा की अगली कड़ी में स्त्री स्वातंत्र्य एवं उसके अधिकार के प्रश्न को मृदुला गर्ग सजगता से उठाती हैं। मृदुला गर्ग के कहानी संसार की स्त्री अपने अस्तित्व के प्रति सजग हैं। उसके अन्तर्मन में उठने वाले भाव को वह सहज स्वाभाविक रूप से जीवन की आवश्यकता समझती है। सामाजिकता के नाम पर घुटते रहना उसे स्वीकार नहीं है। आधुनिक परिदृश्य के अनुरूप साहित्य सृजन की आवश्यकता पर विचार करते हुए कहती हैं– ''मैं समझती हूँ कि जब लेखक सांस्कृतिक मूल्य व्यवस्था को पुनः परिभाषित करने की प्रेरणा से कहानी के कथ्य, शिल्प व भाषा को प्रयोग करता है, तो हम कह सकते हैं कि उसमें एक नए बोध को स्वर देने का प्रयास कर रहा है।''[1]

नई कहानी आंदोलन के बाद के समय की सशक्त कहानी लेखिका मृदुला गर्ग के लेखन की शुरूआत 1972 में लिखी उनकी पहली कहानी 'रूकावट' (सारिका पत्रिका) से होती है। अपने समय की नब्ज को पकड़ते उनके उपन्यास 'वंशज', 'चितकोबरा' की सर्जक मृदुला गर्ग के आठवें दशक की प्रमुख कहानी– संग्रहों में 'कितनी कैदे' (1975), 'टुकड़ा–टुकड़ा आदमी' (1977), डैफोडिल जल रहे हैं' (1978) 'ग्लेशियर से' (1980), 'उर्फ सेग', 'शहर के नाम' और 'समागम' प्रमुख हैं। ये सभी कहानी–संग्रह अलग–अलग पृष्ठभूमि से संबंधित होकर भी भारतीय नारी के जीवन में आधुनिकता के परिणामस्वरूप आए बदलाव, अस्तित्वबोध मूल्यों को विविध संदर्भों में अभिव्यक्त करती है। स्वयं मृदुला जी का यह कहना कि ''हिन्दी कहानी में सबसे ज्यादा वैविध्य मेरी पीढ़ी से आया।'' (मृदुला गर्ग का कुमारी राजु, एस बागलकाट को दिया गया साक्षात्कार– 25.10.2000 दिल्ली स्थित निवास) वास्तव में मृदुला गर्ग जी की कहानियों में युग–यथार्थ के संदर्भ में व्यक्ति जीवन के विविध प्रसंगों एवम् स्थितियों का यथार्थ अंकन हुआ है। स्त्री–जीवन के टूटते संदर्भ, सेक्स संबंधी स्थितियों, पारिवारिक संबंधों में आए मूल्य विघटन के विविध संदर्भ प्रस्तुत हुए हैं। नारीवाद या फेमिनिज्म उनकी दृष्टि में जकड़बंदी से मुक्ति का उपाय है। सड़ी–गली मान्यताओं, कुसंस्कारों से मुक्त होकर स्त्री को स्त्री के रूप में देखना ही स्त्रीवाद का असली रूप है। वह कहती हैं– ''नारीवाद की परिभाषा बस इतनी है कि नारी को अधिकार है यह तय करने का कि वह क्या करना चाहती है? क्या नहीं? कोई मुखौटा नहीं कि स्त्रियों पर चस्पा दिया जाए।''[2] मृदुला जी की 'कहानियाँ वर्तमान की चुनौतियों का सामना करती है। इनकी कहानियों के पात्र परंपरागत अंधविश्वास, रूढ़ियों, विकृत सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थितियों के प्रति प्रश्न अंकित करते हैं। इनकी नारी पात्र स्त्री के परंपरागत 'इमेज' को तोड़ती हुई मुक्त रूप में प्रस्तुत होती है।

'कितनी कैदे' कहानी–संग्रह की कहानी, 'अगर यो होता' भारतीय पृष्ठभूमि में एक नारी के विवाहेतर संबंध का मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत करती है। कथा नायिका 'मधुर' का विदेशी पुरुष 'जिम' से प्रेम उसके हृदय की विवशता है। प्रेम की संवेदनशीलता मधुर के हृदय में गहरे समाती है। जिम मधुर की पारिवारिक स्थिति एवं उसके मातृत्व पक्ष से अवगत हैं। मधुर अपने पति, प्रेमी तथा बच्चे के बीच गहरे अन्तर्द्वन्द्व से गुजरती हैं। अन्त में उसे जिम के साथ संबंध अर्थहीन प्रतीत होते हैं और वह अपनी दुनिया में लौट आती है। आज स्त्री भावुकतावश कोई निर्णय नहीं लेती, वरन् भविष्य की अपेक्षा वर्तमान के संदर्भ में सोचती है। प्रेम उसके लिए जीवन नहीं जीवन की आवश्यकता है। 'कितनी कैदे' की मीना एक आधुनिक नारी है। ड्रग्स

---

* **शोधार्थी, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर, (म0प्र0)।**

और डेट उसके जीवन की सामान्य स्थितियाँ है। नशे की हालत में वह सामूहिक बलात्कार की शिकार होती है। सब कुछ खोकर उसे एक ही चीज मिलता है– घुटन। मृदुला जी की नारी पात्र स्त्री के परम्परागत छवि को स्वीकार करते हुए भी वर्तमान से आँखे नहीं फेरती। वह यथास्थिति को पूरी तटस्थता और साहसिकता से स्वीकार करती है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में स्त्री एक कामवासना की पूर्ति का साधन है। उसे सहज, स्वाभाविक रूप से स्वीकार न कर घर–परिवार की मर्यादा, पवित्रता–अपवित्रता, नैतिकता–अनैतिकता जैसी तमाम घेरों में आबद्ध कर देखा जाता है।

'दुनिया का कायदा' बदलती जीवन की परिस्थितियों के बीच भारतीय नारी की तल्ख प्रतिक्रिया को अभिव्यक्त करती है। दो खंडों में विभाजित कहानी 'रक्षा' के व्यक्तिगत एवं सामाजिक विरोध के स्वर को व्यक्त करती है। परिवार में बहू की मरणासन्न स्थिति तथा परिवार के लोगों द्वारा दहेज के लालच में अधेड़ पति के पुनर्विवाह का उत्साह उसे भीतर तक आहत करता है। उसकी आपत्ति को ''यह तो दुनिया का कायदा है'' कह कर खारिज कर देना असंवेदनशीलता की चरम स्थिति को दर्शाता है। पति सुनिल द्वारा प्रोमोशन का लाभ पाने के लिए अपने बॉस मेहता के साथ रक्षा को नाचने के लिए विवश करना उसकी अवसरवादी प्रवृत्ति को व्यक्त करता है। रक्षा किसी अवांछनीय लाभ की खातिर दुनिया का कायदा से समझौता नहीं करती। समाज का एक स्त्री के प्रति दोयम रवैये को देखकर क्रोधित हो उठती है– ''औरत आदमी के बगैर रह सकती है, आदमी औरत के बगैर नहीं रह सकता।'' (दुनिया का कायदा– मृदुला गर्ग, पृ0 122) रक्षा के यह शब्द स्वयं मृदुला जी के विचार हैं। कायदा बनाने वाले समाज की दृष्टि स्त्री के प्रति पक्षपातपूर्ण क्यों होती है? यह एक ज्वलंत प्रश्न है।

मृदुला जी की 'हरी–बिन्दी कहानी एक स्त्री के खो चुके अस्तित्व के तलाश की कहानी है। दाम्पत्य जीवन की जिम्मेदारियों तले एक स्त्री स्वयं में गुम हो जाती है। पति की अनुपस्थिति में वह जिन्दगी के कुछ क्षणों को स्वयं की तरह से जीते हुए मन भर खुशियों को समेट लेना चाहती है। आधुनिक महानगरीय संदर्भ में लिखी गयी यह कहानी एक स्त्री के अस्तित्व की निरर्थकता, एकरसता, दिशाहीनता का यथार्थ अंकन करती है। अपने 'स्व' को तलाशती स्त्री के संदर्भ में स्वयं लेखिका लिखती है– ''हरी बिन्दी अपने साथ कुछ क्षण गुजार पाने की ललक की कहानी है।''[3]

दाम्पत्य संबंध एवं तद्जनित उत्पन्न स्थिति के प्रति मृदुला जी की कहानियाँ बेबाकी से अपना पक्ष प्रस्तुत करती हैं। स्त्री कहीं मर्यादा, लोक–लज्जा, के नाम पर अस्तित्वहीनता का शिकार होती है तो कहीं व्यक्तित्व के विघटन की शिकार है। प्रेम की रिक्तता की पूर्ति किसी अन्य के होने की पूर्णता पर निर्भर है और यह उसकी दृष्टि में पूरी तरह 'जस्टीफाई' भी है। मृदुला जी की दृष्टि में वासना या सेक्स की न वर्जना है और न अर्चना, बल्कि वह एक स्वाभाविक वृत्ति है। 'पुनश्च' में रमेश दवे जी का प्रकाशित लेख इस संदर्भ में उल्लेखनीय है– ''मृदुला ने देह का कोई दार्शनिकीकरण या आध्यात्मिकरण नहीं किया है, बल्कि उसे उसकी भौतिकता में, रूप में, राग में और संपूर्ण चेतना में अभिव्यक्त होने दिया है। यही निस्संकोच देहराग मृदुला जी की कथा का रस है।''[4]

मृदुला जी नारी की उस परम्परागत छवि को अस्वीकारती हैं, जो उसके स्वयं के अस्तित्व पर ही प्रश्न अंकित करता है। उनकी कहानियों की नारी पात्र संबंधों के नाम पर उपेक्षा, घुटन एवं मानसिक पीड़ा की शिकार हैं। 'दो एक फूल' की शांतम्मा, 'उसकी कराह' की सुधा, 'यह मैं हूँ' की सरल कालरा 'लिली ऑफ दी वैली' की निशि सभी स्त्रियाँ अपने पति की उपेक्षा की शिकार हैं। परम्परा, मर्यादा, लोक लज्जा के नाम पर अपने स्वयं के अस्तित्व संकट की शिकार है। मृदुला गर्ग नारी को परम्परागत सोच की जकड़ी वृत्ति से मुक्ति दिलाकर आत्मनिर्भर रूप में देखना चाहती हैं। इसी कारण उनकी अधिकांश कहानियों की नारी पात्र परंपरागत मानसिकता से मुक्त होकर उन्मुक्तता की तलाश में अपने व्यक्तित्व को परिभाषित करना चाहती है। वह पुरुष की दृष्टि से अपनी परिभाषा नहीं चाहती, वरन् अपने स्वतंत्र व्यकितत्व की सार्थकता को महत्वपूर्ण मानती हैं। योगेश गुप्त उनकी कहानियों के संदर्भ में लिखते हैं– ''मृदुला गर्ग अपने साहित्य में वैयक्तिक से सामाजिक और सामाजिक से वैज्ञानिक, वैज्ञानिक से दार्शनिक की यात्रा करती दिखाई देती हैं। थीम की कटेगरी के प्रति उनका कोई पूर्वाग्रह नहीं हैं और न कोई आग्रह। घटनाओं और चरित्रों को सहज भाव से व्यक्त करती हैं और न यह मानती है कि थीम जितना नया होगा कला उतनी ही निखरेगी। प्रयोगधर्मा कथाकार होने के नाते उनकी संभावनाओं की शायद ही कोई सीमा निर्धारित की जा

सकती है। अच्छी बात यह है कि कथ्य के स्तर पर वह शत–प्रतिशत फासिस्ट है और साहित्य में लम्बी खोज की यात्रा की पहली शर्त शायद यही है।''[5]

वास्तव में मृदुला गर्ग की कहानियों में नारी स्वातंत्र्य के स्वर काफी बलवती है। उन्होंने नारी के सीमित तथा घुटन भरे दायरे को तोड़ा भी है। स्त्री–जीवन के विविध संदर्भ को व्यक्त करती इनकी कहानियाँ में नारी पात्रों की विविधता, नयापन एवं जिंदादिली के साथ ही आत्मविश्वास का पूर्ण स्वर भी है। इनकी कहानियों की नारी कभी अपना सर्वस्व दे कर भी परिवार को बचाती है, तो कभी मन की रिक्तता के खालीपन से भर जाती है। मृदुला जी भारतीय आदर्श और मूल्यों को स्वीकारती अवश्य है, किन्तु यदि वह आदर्श और मूल्य नारी अस्मिता के लिए बाधक अथवा बोझिल होते हैं तो उसे छोड़ना ज्यादा न्याय संगत समझती हैं। भारतीय नारी का यह आधुनिक रूप है। दाम्पत्य जीवन की हर कसौटी पर खरा उतरना मानो उसकी अनिवार्यता है। 'तुक' कहानी की मीरा वैवाहिक जीवन की हर स्थिति से समझौता करने वाली स्त्री है। वह घुट–घुट कर हर स्थिति को झेलती है। भिन्न स्वभाव, जीवन–शैली तथा संस्कारों के कारण मीरा और नरेश के वैवाहिक जीवन में तनाव की स्थिति बनी रहती है। नरेश का दंभी स्वभाव मीरा को समझौतावादी बना देता है। मीरा सोचती है– ''पति का होना उनके लिए एक स्थिति है। पति की खुशी–ना खुशी आकर्षण – विकर्षण, रूचि–उदासीनता जैसे मेरे लिए जिन्दगी और मौत का सवाल है।[5] मीरा का चरित्र एक औसत भारतीय स्त्री का चरित्र है।

आज नारी मूल्यों की निर्णायक स्वयं हैं। वह पुरुष परिधि से बाहर निकल कर निज जीवन के आयामों को स्वयं निर्धारित कर रही है। समाज में नई चेतना व नई स्फूर्ति अभिव्यक्त कर रही है तथा जीवन एवं समाज से संघर्ष करते हुए अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर रही है। 'खरीददार' कहानी की नीना पढ़ी–लिखी सहायक कमिश्नर है। विवाह के बाजार में अपने को बेचना उसे स्वीकार नहीं। वह कहती है– ''नहीं! यह बिक्री का माल नहीं है। मैं खरीददार बनूंगी।'' नीना के यह शब्द बदलते भारतीय नारी के शब्द हैं। 'वितृष्णा' कहानी की शालिनी आधुनिक नारी के बदलते तेवर का प्रतिनिधित्व करती है। एक पत्नी के रूप में स्त्री को अपने स्वाभिमान की रक्षा करनी ही पड़ेगी। भौतिक सुख की अपेक्षा उसका सम्मान और स्वाभिमान सर्वोपरि है। इससे अलग वह कुछ नहीं चाहती। शालिनी और दिनेश की वैवाहिक जड़ता का हृदयस्पर्शी वर्णन कहानी में व्यक्त हुआ है।

'डैफोडिल जल रहे हैं' कहानी–संग्रह की कहानी 'मेरा' भारतीय नारी के आत्मसम्मान एवं आत्मनिर्णय की दृढ़ता की कहानी है। भौतिकता के अतिशय प्रभाव ने वैयक्तिक संबंधों की रागात्मकता समाप्त कर दी है। जीवन के महत्वपूर्ण निर्णय भौतिक सुख की सापेक्षता में लिए जा रहे हैं। इन निर्णयों में स्त्री की भागीदारी कहीं नहीं है। मीता पति महेन्द्र के बच्चे की माँ बनने वाली है। महेन्द्र महत्वाकांक्षी पुरूष है। उसके लिए बच्चा उच्च स्तरीय जीवन जीने के मार्ग में अवरोधक है। अतः अमानवीयता का परिचय देते हुए वह मीता का गर्भपात करवाना चाहता है। मीता के लिए यह पाप है। वह सोचती है– ''महेन्द्र तुम्हारे तर्क कैसे हो गए हैं? इतने दो टूक, इतने अकाट्य? प्यार कोई तर्क है? तुम्हारा दिल क्या तर्क से धड़कता है? भावना है ही नहीं? ऐसा है तब तुम जीवित ही नहीं हो। तुम्हारा बच्चे पर क्या अधिकार? वह मेरा है, सिर्फ मेरा''[7] इसी प्रकार 'मीरा नाची' कहानी की बिन्नी अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ते हुए अंत तक हारती नहीं है। वह कहती है– ''मेरा अपना कोई अस्तित्व नहीं, चुनाव नहीं, निर्णय नहीं।'' वहीं कहानी की मीरा स्वयं से प्रेम करती है।' बदलती परिस्थिति में आज स्वयं को पसंद करना पड़ेगा, अन्यथा वह समाज से उपेक्षित एवं तिरस्कृत होती रहेगी। एक स्त्री की महत्ता उसकी स्वाधीनता उसके अस्तित्व का सामाजिक स्तर पर स्थापना का बीज इसी विचार में समाहित है। 'अदृश्य', 'बाँस–फूल' 'चकरघिन्नी', 'खाली', 'खरीददार' जैसी कहानियों की स्त्री पात्रों में अपने अस्तित्वगत चेतना को सुरक्षित रखने की चाहत प्रबलता से दिखाई देती है। सदियों से उपेक्षित स्त्री जब तक स्वयं के अस्तित्व के प्रति सजग नहीं होगी, उसकी सार्थकता समाज के स्तर पर स्थापित नहीं होगी।

मृदुला जी ने अपनी रचनाओं में समाज के शोषित, पीड़ित, दीन–हीन श्रमिक वर्ग, किसान जीवन को नयी दृष्टि से व्यक्त किया है। उनकी कहानियों के पात्र आठवें दशक के वैविध्य भरे परिस्थितियों की उपज है, जो कई स्तरों पर संघर्ष करते हैं। उनका संघर्ष वैयक्तिक स्तर के साथ ही सामाजिक स्तर पर अधिक है। 'तीन किलो की छोरी' सामाजिक कुरीतियों एवं विसंगतियों की पृष्ठभूमि में शारदा बेन जो कि

एक अस्पृश्य स्त्री है, समाज सेवा करने में ही सुख की अनुभूति करती है। कहानी के शब्द चित्र सामाजिक यथार्थ को स्पष्टतः व्यक्त करते हैं।

मृदुला गर्ग की कहानियों में प्रेम के विविध रूप व्यक्तिगत एवं सामाजिक संदर्भों मे स्पष्टता से व्यक्त हुए हैं। प्रेम की रागात्मकता संबंधों को उर्जस्वित करती है और उसकी कमी शुष्कता, कटुता एवं विच्छेद को जन्म देती है। प्रेम की तरलता से यदि संबंध प्लावित न हो तो वह संबंध बोझ मात्र है। 'रेशम' कहानी इसी वस्तुस्थिति का यथार्थ अंकन करती है। हेमवती का वैवाहिक जीवन एक सामाजिक संबंध मात्र था, अतः वैधव्य की पीड़ा उसके हृदय को स्पर्श नहीं करती। उसकी दृष्टि में जो आत्मीय संबंध कभी जुड़े नहीं, उसके टूट जाने का क्या गम है। अतः पति के स्वर्गस्थ होने पर शुकून की साँस लेती है। वह सोचती है– ''बच्चों ने सोचा होगा, माँ अपने सुहाग की चिंता में फक पड़ गयी है। बेचारे, पहली पीढ़ी के बारे में कैसे भ्रम पालते हैं'' पति के देहावसान के बाद उसकी यादों का पल्ला पकड़े जीवन को काट देने की सोच को हेमवती एक सिरे से खारिज कर देती हैं।

आज समाज में भौतिकता की चरम परिणति ने संबंधों में अवमूल्यन, अकेलापन की स्थिति को व्यापकता से जन्म दिया है। अकेलापन की स्थिति समय और स्थान के अनुसार भिन्न है। अतिविकसित राष्ट्रों का अकेलापन वैभव विलासिता और अतिशय भौतिक समृद्धि का परिणाम है। वहीं भारतवर्ष में उपजे अकेलेपन के मूल में अभाव और आत्मकेन्द्रीयता की स्थिति प्रधान है। मानवीय संबंधों में आत्मीयता की जगह उपभोग ने ले लिया है। 'छत पर दस्तक' कहानी में चित्रित बुजुर्ग का अकेलापन और भारत के एक संयुक्त परिवार में रहने वाली नलिनी का अकेलापन अलग–अलग स्थितियों का परिणाम है।

निष्कर्षतः मृदुला जी व्यक्ति और समाज के प्रति प्रतिबद्ध कहानी लेखिका हैं। वह विकृतियों से मुक्त भारतीय समाज का निर्माण चाहती हैं। जीवन के उन्मुक्त मार्ग में दूषित वैचारिक वृत्तियों को समाप्त कर जीवन मूल्यों से समृद्ध समाज का सृजन ही उनकी रचनाओं का उद्देश्य है। आयातीत संस्कृति के परिणामस्वरूप सेक्स की उन्मुक्तता, विवाहेतर संबंध, दाम्पत्य जीवन का घुटन, अवैध संबंधों की बहुतायता जैसे विषयों के चित्रण के मूल में समाज में व्याप्त कमियों को कुरेद कर एक स्वस्थ संतुलित समाज की स्थापना का ही प्रयास है। उनकी कहानियों में नारी स्वातंत्र्य के स्वर सीमित दायरे में नहीं वरन विविधता के साथ आत्मविश्वास, संघर्षशीलता एवं जिजीविषा की प्रखरता के रूप में अभिव्यक्त हुए हैं। 17.07.03 को एक शोध छात्रा के पत्र के उत्तर में लिखे शब्द मृदुला जी के पात्रों की जीवन–दृष्टि को अभिव्यक्त करते हैं– ''मेरी अलग–अलग रचनाओं में अलग–अलग पात्र है। हर पात्र का अपना दृष्टिकोण है। आँख मूंदकर किसी की पूरी की पूरी विचार श्रृंखला को स्वीकार नहीं किया जा सकता।'' मृदुला जी का चिंतन किसी एक विचारधारा के प्रति एकांगी नहीं है। वह भारतीय मूल्यों तथा आदर्शों के अनुरूप भारतीय नारी के छवि को प्रस्तुत करती हैं, किन्तु जहाँ ये आदर्श और मूल्य नारी स्वातंत्र्य एवं उसकी अस्मिता के मार्ग में बाधक बनते हैं उसे अस्वीकार करना ही उनकी दृष्टि में ज्यादा समीचीन प्रतीत होता है।

संदर्भ–सूची :–

1. मृदुला गर्ग– चुकते नहीं सवाल (साहित्य : क्या, क्यों, कैसे) सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष–2018, पृ0 09।
2. मृदुला गर्ग– मेरे साक्षात्कार, किताबघर प्रकाशन– दिल्ली, प्रकाशन वर्ष–2012, पृ0 93।
3. डॉ0 मधु संधु– साठोत्तरी महिला कहानीकार, सन्मार्ग प्रकाशन–दिल्ली, वर्ष 1984, पृ0 90।
4. रमेश दवे का लेख– 'मृदुला गर्ग का उपन्यास– शिल्प–कथा में व्यथा, वासना और विद्रोह का विचार–कल्प' से पुनश्च–जून 2004।
5. मृदुला गर्ग– ग्लेशियर से (तुक कहानी) राजकमल प्रकाशन–नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1986, पृ0 50–51।
6. मृदुला गर्ग– कितनी कैदे, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, कृष्णा नगर–दिल्ली–51, प्रथम संस्करण, 1975।
7. मृदुला गर्ग– डैफोडिल जल रहे हैं (book.google.com).
8. मृदुला गर्ग– हरी बिंदी, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण–2008

रीतियुगीन मुस्लिम कवियों की शृंगार-भावना

डॉ. अनुपम गुप्ता*

सारांश :– रीतिकालीन कविताओं का सृजन सामन्ती वातावरण में हुआ था अतः तद्युगीन कवियों की श्रृंगारी कविता दरबारी संस्कृति की देन है। रीतिकाल का साहित्य विपुल और विविधवर्णी है। इस काल के साहित्य में प्रेम और श्रृंगार की अद्भुत छँटा दिखाई देती है। जिसमें मुस्लिम साहित्यकारों ने भी तत्कालीन प्रचलन के अनुसार नायिका भेद, नख–शिख वर्णन तथा लक्षण ग्रंथ लिखकर अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया। मुबारक, आलम, रसलीन, पेमी ऐसे ही रचनाकार हैं। वस्तुतः रीतियुगीन हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने और उसके सुदृढ़ विकास में मुस्लिम कवियों का महती योगदान है।

प्रस्तावना :– हिन्दी साहित्य में रीतिकाल की समय सीमा सम्वत् 1700 से सम्वत् 1900 (सन् 1643–1843 ई0) तक स्वीकार की गई है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस युग में रीति–ग्रन्थों की प्रचुरता देखकर ही इसका नामकरण 'रीतिकाल' के रूप में किया था। इस काल में काव्यगत प्रवृत्ति की अनेक धाराएँ परिलक्षित होती है किंतु कवियों का वर्ण्य विषय मुख्य रूप से प्रेम और श्रृंगार ही रहा। श्रृंगार की इसी प्रधानता को लक्ष्य करते हुए रीतिकालीन कविता के मर्मज्ञ आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इसे 'श्रृंगार काल' के नाम से अभिहित किया।

रीतिकालीन कवि सौन्दर्य–विधान एवं रूप–कल्पना करने में पूर्ण समर्थ थे। गुण, अवस्था, जाति, वय आदि के आधार पर नायिकाओं का चित्रण रीतियुगीन कवियों की श्रृंगार–भावना का द्योतन करता है। अपने आश्रयदाताओं से प्रशंसा प्राप्त करना कवियों के कविकर्म का लक्ष्य था। वास्तव में ''राज दरबारों में अनूठी उक्ति कहना ही पण्डितों तथा काव्य मर्मज्ञों से प्रशंसा प्राप्त करने का एकमात्र साधन माना जाता था। इसके अतिरिक्त श्रृंगारिक कविता ही आश्रयदाताओं का मनोरंजन करने में समर्थ मानी जाती थी।''[1] विलासी शासक कलाप्रेमी थे। अतः उनके दरबारों में कलाकारों और कवियों को आश्रय प्राप्त था। उनके कला का आलम्बन नारी के अंग–प्रत्यंगों का सौन्दर्यांकन तथा नख–शिख चित्रण एवं वर्णन रहा। इस तरह रीति युगीन कवियों की श्रृंगारिक कविता दरबारी संस्कृति की झलक बन जाती है।

''रीतिकाव्य' का आशय उन कविताओं से है जिसमें साहित्य शास्त्र की बँधी–बँधाई परम्पराओं का अनुसरण अर्थात् रस, अलंकार, छन्द, शब्द–शक्ति आदि से सम्बन्धित लक्षण एवं उदाहरण प्रस्तुत हो। इस सन्दर्भ में डॉ0 ईश्वरदत्त शील का कथन है– ''हिन्दी में मध्यकालीन आचार्यों और कवियों ने रीति शब्द का व्यापक अर्थ में प्रयोग कर इसके अन्तर्गत रस, अलंकार, रीति, ध्वनि, आदि सभी रचना पद्धतियों को अपने अन्दर समेट लिया है।''[2]

आनन्द की भावना जीवन विकास की मूल प्रवृत्ति है तथा श्रृंगार का आनन्द से अनिवार्य सम्बन्ध है अतः श्रृंगार–भावना का विकास भी जीवन विकास के साथ होता आया है। 'श्रृंगार' शब्द के मूल अर्थ को स्पष्ट करते हुए डॉ0 त्रिभुवन सिंह का कथन है– ''श्रृंगार शब्द यौगिक है और 'श्रृंग' तथा 'आर' दो शब्दों के सुयोग से बना है कि जिसका अर्थ कामवृत्ति की प्राप्ति से है।''[3]

'श्रृंगार रस' का स्थायी भाव 'रति' अर्थात् प्रेम है। श्रृंगार के उभय पक्षों संयोग और वियोग का जितना विशद, वैविध्यपूर्ण और सूक्ष्म चित्रण रीतियुगीन कवियों में मिलता है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

श्रृंगार–भावना के अन्तर्गत नायिका–भेद, नख–शिख वर्णन, सौन्दर्य के प्रसाधन, आलम्बन की चेष्टाएँ और हाव, मिलन के अनेक स्थल एवं माध्यम, षटऋतु–वर्णन (उद्दीपन के लिए) तथा वियोग की अवस्थाओं एवं दशाओं आदि का वर्णन सब कुछ आता है।

*** प्रवक्ता (हिन्दी विभाग), आर्य महिला पी0जी0 कॉलेज, वाराणसी।**

रीतिकालीन कविता की मुख्य प्रवृत्ति प्रेम और श्रृंगार है। श्रृंगार के आश्रय–आलम्बन, नामक–नायिका हैं। अतः इनकी अनेक जातियों, रूपों, स्थितियों और स्वभावों की चर्चा की गई। हालाँकि कवियों का मन नायिका वर्णन में ज्यादा रमा। फलतः गुण, कर्म, वयक्रम, शील, अंग–रचना आदि आधारों पर विविधवर्णी नायिकाओं के लक्षण एवं उदाहरण प्रस्तुत किए गये। इस प्रकार नायिका–भेद और नख–शिख वर्णन की परम्परा रीतियुगीन कविता की मुख्य विशेषता बन जाती है। इस परम्परा को पोषित करने वाले अनेक मुस्लिम रचनाकारों की रचनाएँ भी हमारे समक्ष उद्‌घाटित होती हैं जो तत्कालीन प्रचलित रीति का अनुसरण करती दिखाई देती हैं। प्रायः इन कवियों और इनके द्वारा रचित ग्रंथों की गणना गौण रूप में ही की जाती है। प्रस्तुत शोध–पत्र में रीतियुगीन ऐसे ही मुस्लिम कवि और उनके काव्य में वर्णित श्रृंगार–भावना को लक्ष्य करने का प्रयास किया गया है। संक्षेप में इन कवियों का क्रमवार वर्णन निम्नलिखित रूप में किया जा रहा है। इस कड़ी में सबसे पहले मुबारक कवि का नाम आता है।

मुबारक :– इनका पूरा नाम सैयद मुबारक अली बिलग्रामी है। मुबारक के दो श्रृंगारी ग्रंथ 'अलक शतक' और 'तिलक शतक' उल्लेखनीय रूप से चर्चित रहे हैं। इन दोनों ग्रंथों में नायिका का नख–शिख वर्णन तथा श्रृंगार–चित्रण अत्यंत मनोहारी है उदाहरण देखा जा सकता है–

परी मुबारक तिय बदन अलक ओप अति होय।
मनो चंद की गोप में, रही निशा सी होय।।
चिबुक कूप मन परन्यो छवि जल तृषा विचारी।
कढ़ति मुबारक ताहि तीय अलक डोरि सी डारि।।
चिबुक कूप रसरी अलक, तिल सु चरस दृग बैल।
बारी बैंस सिंगार की, सींचत मनमथ छैल।।[4]

आलम–

मध्यकालीन साहित्य में आलम नाम के दो रचनाकार हुए हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने एक को अकबर के समकालीन माना है जिनकी रचना 'माधवानल काम कंदला' ठहराया है। दूसरे आलम औरंगजेब के पुत्र मुअज्जब के आश्रित थे तथा जिनकी रचना 'आलमकेलि' प्रसिद्ध है। यहाँ तात्पर्य दूसरे आलम से है। आलम और शेख रंगरेजिन की प्रेम कथा तो हिन्दी साहित्य में खूब कही–सुनी जाती है। आलम के काव्य में श्रृंगार रस की प्रधानता है। वियोग पक्ष की पंक्तियाँ हृदय को छू जाती हैं। इस सम्बन्ध में यह सवैया बहुत प्रसिद्ध है–

जा थल कीन्हें बिहार अनेकन ता थल कांकरी बैठि चुन्यौ करैं।
जा रसना सौं करी बहु बात सुता रसना सौं चरित्र गुन्यौ करैं।
'आलम' चैन से कुंजन में करी केलि वहाँ अब सीस धुन्यौ करैं
नैनन में जो सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यौ करैं।।[5]

शाह बरकतुल्लाह 'प्रेमी'– इनके द्वारा रचित ग्रंथ 'पेम प्रकाश' जो ब्रजभाषा तथा फारसी–हिन्दी मिश्रित भाषा में है अत्यंत उल्लेखनीय रचना है। इसमें कवि के साथ बिरह की मार्मिक व्यंजना भी प्रस्तुत की है–

उत सावन इत नैन है, उत गरजत इत आह।
उतहि कूक इत हूक है, सकौ तो लेहु निबाह।।
हौं चाहो पिय पक्करौ, बिरहा पकरेधाय।
बीर बछूटी जिमि सदा, सिमिट सिमिट रह जाय।।[6]

मधनायक :– सैयद निजामुद्‌दीन जो हिन्दी में मधनायक के नाम से कविता करते थे, उनके ग्रंथ 'मधनायक श्रृंगार' का वर्ण्य विषय ही नायिका भेद निरूपण है। एक उदाहरण दर्शनीय है–

कोउ कहै चन्द के मृगंक अंक देखियत, कोउ कहै छाया छित भूतल प्रकास की।
कोउ कहै अन्धकार पीयो है सो पेखियत, कोउ कहै कालिमा कलंक उन्यास की।।
कहै मधनायक सत हर लीन्हो करतार, ताहि की सवारी भामा कान्ह के बिलास की।
ता दिन से छाती छेदिपरी है छपाकर की, बार–बार देखियत नीलिमा अकास की।।[7]

रसलीन–

''व्यवस्थित विवेचन और कवित्व का समान रूप से निर्वाह करते हुए रीति निरूपण करने वाले इस युग के इने–गिने आचार्यों में सैयद गुलाम नबी 'रसलीन' का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है।''[8] इनके द्वारा रचित 'रस प्रबोध' और 'अंग दर्पण' अत्यंत प्रसिद्ध ग्रंथ है। 'अंगदर्पण' के निम्नलिखित दोहे को बहुत दिनों तक बिहारी का दोहा माना जाता रहा जिससे इनकी श्रेष्ठता स्वयं सिद्ध हो जाती है–

अमिय, हलाहल, मदभरे, सेत, स्याम रतनार।
जियत, मरत, झुकि–झुकि परत, जेहि चितवत एक बार।।9

अर्थात् नायिका की श्वेत, श्याम और रतनारी आँखे अमृत विष और मद से परिपूर्ण हैं अतः जो इन्हें एक बार देख लेता है वह एक साथ जीता है, मरता है और मस्त हो जाता है।

याकूब खाँ– याकूब खाँ के 'रस भूषण' नामक काव्य ग्रंथ में उनकी श्रृंगार–भावना के दर्शन होते है। नायिका–भेद का एक उदाहरण देखिए–

पूरन उपमा जानि, चार पदारथ होंहि जिंहि।
ताहि नायिका मानि रूपवन्ति सुन्दर सुछवि।।
है कर कोमल कंज से, ससि सी दुति मुख एन।
कुंदन रंग पिक वचन से मधुर जो वैन।।[10]

मुहम्मद आरिफ जान– जान कवि के रूप में प्रसिद्ध मुहम्मद आरिफ जान के तीन ग्रन्थ 'रस मूरत', अंग शोभा तथा मदन मूरत' में भी नायिका भेद तथा नख–शिख वर्णन किया गया है।

अहमदुल्लाह– अहमदुल्लाह का उपनाम दक्षन था। ''संवत् 1773 में इन्होंने अपने मित्र मुहम्मद फाजिल अली के लिए 'दक्षन विलास' नामक एक काव्य ग्रंथ लिखा। इसमें नवरस तथा नायिका भेद उत्तम रीति से लिखा गया है।''[11] नायिका का रूप वर्णन इस कवित्त में देखिए–

औरे जाति और भॉति औरे रूप औरे कांति, औरे राग औरे तांति औरे दुति अंग की।।
औरे रंग भीजे नैन और प्रेम पागे बैन, औरे चाव औरे चैन औरे चोप संग की।।
औरे चाल डगमग औरे बाल सग बग, औरे 'दक्ष' जगमग भूषन के भग की।।
औरे रंग औरे ढंग औरे छवि की तरंग, औरई उमंग गति औरई अनंग की।।[12]

मीर अब्दुल जलील– मीर अब्दुल जलील द्वारा रचित 'शिख–नख' तथा 'प्रेमकथा' हिन्दी काव्य कृतियाँ मानी जाती हैं। बरवै भाषा की सहजता और नायिका की मनोदशा का स्वभावगत चित्रण देखिए–

भले गइन पनघटवा पनिया लेन, जल भरी गगरिया भरि गये नैन।।
कसकन कासो कहिए कसक न कोय, कस–कस होत करेजवा कस–कस होय।।[13]

मीर ईसा मीरन– इन्हें औरंगजेब ने हिम्मत खाँ की उपाधि से सम्मानित किया था। इनके द्वारा रचित 'नख–शिख' नामक ग्रंथ से उनके काव्य–प्रतिभा का पता चलता है। एक उदाहरण दृष्टव्य है–

पौढ़ी छुती पालिका पर निसिग्यान सौं ध्यान पिया मन लाए।
लागि गयी पलकैं पल सों पल लागत ही पल में पिय आये।।
ज्यों ही उठी उनके मिलि हौं सु जाग परी पिय पास न पाए।
मीरन और तो सोई के खोवत हौं सखि प्रीतम जागि गॅवाए।।[14]

रीतिकाल की समय सीमा में उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त ऐसे अनेक कवियों की चर्चा होती है जिन्होंने श्रृंगार–रस के फुटकल पद रचे हैं किंतु उसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता।

प्रेमाख्यानक काव्य परम्परा के मुस्लिम कवियों को भी हम इस श्रेणी में रख कर देख सकते हैं क्योंकि उनका तो सारा काव्य ही प्रेम पर आश्रित है। प्रेम और श्रृंगार ही उनके काव्य का मूल है। देखा जाय तो हिन्दी में प्रेमाख्यानक काव्यधारा में मुस्लिम कवियों की ही बहुलता रही। रीतिकाल में भी काशिम शाह की 'हंस जवाहिर', नूर मुहम्मद की 'इन्द्रावती' शेख निसार की 'युसुफ–जुलेखा' आदि ग्रंथ देखने को मिलते हैं जिसमें श्रृंगार का सरस वर्णन किया गया है।

निष्कर्ष :– उपर्युक्त मुस्लिम कवियों और उनके काव्य का अवलोकन करने के उपरान्त हम यह निष्कर्षतः कह सकते हैं कि रीतियुगीन कविता में प्रेम और श्रृंगार की जो अजश्र धारा दिखलाई पड़ती है उसमें मुस्लिम कवियों की रचनाओं का भी खासा योगदान है। नायिका भेद, नख–शिख वर्णन तथा श्रृंगार के संयोग–वियोग पक्षों का सुन्दर चित्र इन कवियों की रचनाओं में बहुलतः देखने को मिलता है। रीतिकाव्य धारा में जहाँ, मतिराम, चिन्तामणि, देव, भिखारीदास, बिहारी, पद्माकर, घनानन्द, बोधा, ठाकुर जैसे कवियों के लक्षण ग्रंथ और मुक्त स्वच्छन्द रचनाओं की भूमिका प्रबल है वहीं उसी के समानान्तर मुस्लिम कवियों की सरस काव्यधारा भी रससिक्त करने में कोई कसर नहीं छोड़ती। इनका यह अवदान तो हमें मानना ही होगा। इन मुस्लिम कवियों की भाषा सम्बन्धी उदार दृष्टिकोण की जितनी सराहना की जाए कम है। अरबी–फारसी के जानकार होते हुए भी बिना किसी मजहबी–संकीर्णता के वो लोकभाषा और लोक–आख्यानों का आधार लेकर काव्य रचना करते हैं। इस प्रकार वे सिद्ध करते हैं कि साहित्य की कोई भाषागत् संकीर्णता नहीं होती। भारत में रहते हुए वे भारतीय संस्कृति के अगाध प्रेमी थे। यही कारण है कि इनकी रचनाओं की सुन्दरता अद्वितीय है। आज देश में जाति, धर्म और भाषा को लेकर जो अलगाववादी मानसिकता पनप रही है, ऐसे में इन मुस्लिम कवियों की जाति, धर्म और भाषा सम्बन्धी उदार सोच और सद्भावना भाव को हृदय से नमन करते हुए–

कबीर इश्क का कर नाता, दुई को दूर कर दिल से।
जो चलना राह नाजुक है, हमन सिर बोझ भारी है।।

सन्दर्भ–

1. साहित्यिक निबन्ध ले0– राजनाथ शर्मा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, पृ0–80।
2. हिन्दी साहित्य का मध्यकाल, डॉ0 ईश्वर दत्त शील, गरिमा प्रकाशन, कानपुर, द्वितीय संस्करण– 2013, पृ0–377।
3. हिन्दी साहित्य एक परिचय, डॉ0 त्रिभुवन सिंह, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, तृतीय संस्करण–1982, पृ0–156।
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ0 भगवान तिवारी, भारतीय विद्या संस्थान, वाराणसी, पृ0–245।
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं0 डॉ0 नगेन्द्र, मयूर पेपर बैक, पृ0–337।
6. मुसलमान कवियों की हिन्दी साधना, डॉ0 ओ0पी0 मिश्र, चंद्रलोक प्रकाशन, कानपुर : 2017, पृ0–67।
7. Yugvimarsh.blogspot.com (प्रो0 शैलेश जैदी का लेख– हिन्दी साहित्य को मुस्लिम साहित्यकारों का योगदान)
8. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं0 डॉ0 नगेन्द्र, मयूर पेपर बैक, पृ0–303।
9. हिन्दी साहित्य एक परिचय, डॉ0 त्रिभुवन सिंह, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, तृतीय संस्करण–1982, पृ0–180।
10. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ0 भगवान तिवारी, भारतीय विद्या संस्थान, वाराणसी, पृ0–293।
11. हिन्दी के मुसलमान कवि– सं0–गंगा प्रसाद सिंह विशारद, दुर्गा प्रसाद खत्री, लहरी बुकडिपो, काशी द्वारा प्रकाशित–1926, पृ0–196।
12. वही, पृ0–198।
13. Yugvimarsh.blogspot.com (प्रो0 शैलेश जैदी का लेख– हिन्दी साहित्य को मुस्लिम साहित्यकारों का योगदान)
14. Yugvimarsh.blogspot.com (प्रो0 शैलेश जैदी का लेख– हिन्दी साहित्य को मुस्लिम साहित्यकारों का योगदान)

ꕥ

हिन्दी उपन्यासों में थर्ड-जेंडर की सामाजिक चुनौतियाँ

अंकिता देवी*

साहित्य समाज की चेतना को जगाने का कार्य करता है। समाज के उन पक्षों को उजागर करता है, जिससे समाज अनभिज्ञ होता है या ज्ञात होते हुए भी अनभिज्ञ बना रहता है। क्योंकि उसे स्वीकार नहीं कर पाता, जिसके चलते उसे समाज के द्वारा अवहेलना झेलनी पड़ती है। हमारा समाज ऐसा है जो स्वयं की देह से पैदा बच्चे का परित्याग इसलिए कर देता है, कि वह न तो स्त्री है और न ही पुरुष। मानसिक रूप से स्त्री है तो शारीरिक रूप, बनावट से पुरुष दिखता है वह भी अविकसित अंगों के साथ। इसी तरह देह स्त्री की तरह तो मन पुरुष की तरह, पुरुषों की तरह चाल–ढाल, पुरुष है तो स्त्री की तरह हाव–भाव। अर्थात् अविकसित जननांग, अस्पष्ट शारीरिक बनावट जैसे– पुरुषों की तरह चेहरे पर दाढ़ी–मूंछ आना साथ ही स्त्रियों की तरह उरोजों का उभार आना ये दोनों स्थितियाँ मानसिक और शारीरिक रूप से तालमेल नहीं खातीं। यही गड्मगड स्थिति इनके पीड़ा का कारण बन जाती है।

हमारा सभ्य पित्रात्मक समाज अपने ही वीर्य से उत्पन्न बच्चे को अस्वीकार कर देता है, यदि सम्पूर्ण शरीर है तो वह प्यार–दुलार, शिक्षा, समाज का भागीदार है और अगर वह सम्पूर्ण शरीर होते हुए उसके जननांग अविकसित है तो वह प्यार–दुलार तो दूर की बात घर में रहने, खाने, जीने का अधिकार खो देता है। ये कहे कि उससे जबर्दस्ती छीन लिया जाता है और दर–दर ठोकर खाने के लिए छोड़ दिया जाता है।

यह दोष जो उस पर मढ़ कर नरक भरी जिंदगी दे दी जाती है वह दोष उसका नहीं उसे पैदा करने वाले पुरुष (पिता) के स्पर्म में होता है। जिसे समाज स्वयं को बचाकर पैर का कांटा निकाल देता है। 'मैं हिजडा मैं लक्ष्मी' में कहा गया है कि "लिंग शरीर रचना का एक हिस्सा है, इसलिए लिंगभाव एक मानसिक प्रक्रिया है इसे ध्यान में रखते हुए लिंग के एहसास और उसके सन्दर्भ का सम्भ्रम जान लेना उचित होगा। लक्ष्मी जैसे हिजड़ों में पुरुषों की लैंगिकता है, तो लिंग भावना स्त्री की है। यह सच सामने आता है। गर्भ धारण के बाद के छह हफ्ते स्त्री के गुणसूत्र XX और पुरुषों के XY होते हैं। उसके बाद Y के Sry जीन कार्यरत हो कर टेस्टोस्टेरॉन सम्प्रेरक पुरुष लिंग तैयार करने का काम करता है। इनकी कार्य–पद्धति के दोषपूर्ण होने और कभी–कभी गुणसूत्रों की गड़बड़ी से लिंग–निश्चित का भ्रम सामने आता है।"[1] जब बच्चा माँ के गर्भ में पल रहा होता है तो कुछ कारणों से क्रोमोसोम की आकृतियों में बदलाव हो जाता हैं जिस वजह से ऐसे बच्चे का जन्म होता है।

इस प्रकार विज्ञान भी सिद्ध करता है कि शारीरिक समस्याओं के कारण ऐसा होता है। तो ऐसे में उस बच्चे या माँ का कोई दोष नहीं होता। फिर भी समाज की घटिया सोच ने अपने ही बच्चों को फेंकते–फेंकते अमावीयता का ढेर खड़ा कर दिया है। जहाँ अशिक्षा का अंधेरा है, रौशनी का नामोनिशान नहीं, मुख्य धारा से जुड़ने की बात ही अलग है नाच, गा कर ताली पीट कर पेट भर कर जानवरों की जिंदगी जी रहे है। सदियों से ये अस्वीकार्यता बनी है, जिसके कारण आज भी अभिशप्त जीवन जीने के लिए मजबूर है।

यहाँ तक कि जिन घरों में इस प्रकार के बच्चे अस्वीकार्य होते हुए भी स्वीकार कर लिए जाते है, वहाँ ये समाज रूपी नाग फन निकाल लेता है। प्रतिदिन उस परिवार को डसता है, कभी हिजड़े का बाप कह कर, कभी हिजड़े की माँ कह कर, कभी हिजड़े का भाई कह कर। यहाँ तक कि शिक्षा संस्थान जो पढ़े–लिखे लोगो का मंदिर कहा जाता है, वहाँ पर इनके साथ भेदभाव का व्यवहार किया जाता है। परिवार बच्चे को इसके चलते शिक्षा नहीं दिला पाता। अन्ततः समाज इतना प्रताड़ित करता है कि एक दिन उसे उसी नरक के द्वार पर छोड़ आता है जहाँ जाने कितने नरक–यातना भोग रहे होते हैं। चर्चित लेखक प्रदीप सौरभ अपने बहुचर्चित उपन्यास 'तीसरी ताली' में जीवन्त पात्र आनन्दी आण्टी और उनकी पुत्री निकिता के

*** (पी–एच०डी० शोध छात्रा), हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उ0प्र0 (221002)**

बारे में लिखते है कि– "लेकिन छठी कक्षा में दाखिले की बारी आयी तो उनके सामने धर्म संकट खड़ा हो गया। आखिर वे निकिता को लड़कों के स्कूल में दाखिला दिलाएं या फिर लड़कियों के स्कूल में? आखिर काफी उथल–पुथल के बाद उन्होंने उसे लड़कियों के स्कूल में डालने की कोशिश की। मगर वहाँ उन्हें निराशा हाथ लगी। ऐसा ही लड़को के स्कूल में भी हुआ। उन्हें दोनों जगह एक ही जवाब मिला कि जेण्डर स्पष्ट न होने के कारण हम दाखिला नहीं दे सकते हैं... यह स्कूल सामान्य बच्चों के लिए है, बीच वाले बच्चों को दाखिला देने से स्कूल का माहौल खराब हो जाता है।"[2] इस सत्य पर आधारित उपन्यास के नजरिए से देखा जाए तो समाज कितना घृणित है कि एक जननांग अस्पष्ट बच्चे के दाखिले से स्कूल का माहौल खराब हो जायेगा।

इस तरह समाज, परिवार, मित्र, रिश्तेदार सभी उस बच्चे को हेय दृष्टि से देखने लगते हैं। स्वयं परिवार उससे कटने लगता है यहाँ तक कि माता–पिता एक सिर–दर्द की तरह उसे घर में रखे हुए होते है। एक वक्त ऐसा आता है कि या तो बच्चा प्रताड़ित होकर स्वयं घर छोड़ देता है या समाज की दुहाई देते हुए उसे ऐसे समाज के डेरों पर छोड़ आते हैं। एक किशोरावस्था की ओर अग्रसर किशोर/किशोरी तमाम हार्मोन्स के बदलने से पहले से मन की उथल–पुथल से परेशान होते हैं उस पर घर से हमेशा के लिए निकाल दिया जाता है। जहाँ पर कोई अपना नहीं होता। न माँ न बाप न भाई न परिवार साथ ही ऐसा समाज जहाँ सिर्फ तालियों से स्वागत, तालियों से तिरस्कार, बात–बात पर गाली सुनने को मिलती है। वह इतना घबरा जाता है कुछ समय के लिए शून्य में स्वयं को और अपने भविष्य को तलाश रहा होता है।

अन्ततः उसी को स्वीकार करते हुए उन्हीं में रिश्ते खोज लेते है कोई मौसी तो कोई दीदी कोई मित्र बनकर खुद के रिश्तों की तलाश पूरी करते हैं। इसी संदर्भ में 'तीसरी ताली' में नीलम, निकिता के खोये संबंधों में लेखक कहता है कि "असल में हिजड़ों को अगर खुशी मिलती है तो किसी से रिश्त बनाने में। अतीत के उनके सभी रिश्ते टूट जाते हैं, शायद इसलिए। नीलम निकिता को अपनी बेटी की तरह पाल रही थी, पर निकिता अन्दर ही अन्दर छटपटाती रहती।"[3] जिस उम्र में इन्हें डेरे पर भेजा जाता है उस उम्र में एक किशोर/किशोरी अपने भविष्य को देख रहा होता है। तरह–तरह के सपने संजोता है। वहाँ नरक में पहुँच कर जीवन में अंधेरा छा जाता है सिर्फ नाच गाना ही जीवन जीने का आधार होता है। इसी समस्या को 'तीसरी ताली' में निकिता के माध्यम से लेखक ने उठायी है। "उसे अपना भविष्य अंधकारमय दिखता था। वह सोचती थी कि मै चाहे जितना पढ़–लिख जाऊँ, बड़ी होकर पेट पालने के लिए नाच–गाना ही करना पड़ेगा। नाचने में निकिता की जरा भी रुचि नहीं थी।"[4] इस समुदाय के लोगों को जब डेरे पर छोड़ा जाता है वहाँ उन्हें तीसरी दुनिया लगती हैं क्योंकि एक मानव जाति की तरह कुछ भी सामान्य नहीं होता। न ही वो निर्गुण उपासक होते है न ही सगुण वो मुर्गे वाली देवी को पूजते हैं। छोटी–छोटी बात बिना ताली बजाये बोलते ही नहीं। इनकी कुछ भाषायें भी अलग होती है जो न किसी भाषा में आती है न बोली में, न ही इन्हें मनुष्य माना जाता है न ही पशु न जंगली आदिमानव। बस इन्हें पैदा करके कचरे के ढ़ेर में फेंक दिया जाता है जिंदगी को सड़ने के लिए। ऐसे में कुछ तो उस जिंदगी को स्वीकार कर लेते है तो कुछ इससे उबरने का उपाय ढूढ़ते है तो कुछ अवसाद से ग्रसित हो जाते हैं। हिन्दी साहित्य के अग्रणी उपन्यासकार प्रदीप सौरभ 'तीसरी ताली' में बताते हैं कि "अपने को किसी से कम न समझने वाली निकिता के अन्दर अपने आधे–अधूरे होने का हीन भाव घर करने लगा।"[5]

हिन्दी उपन्यास समसामयिक विमर्श को उठाता रहा जिसमें थर्डजेंडर इसमें भी ट्रांसजेंडर की समस्या उसकी चुनौतियाँ, संघर्ष को उकेर रहा। ट्रांसजेडर की सबसे प्रथम समस्या उनका लिंग अस्पष्ट होने से उनके साथ शारीरिक, मानसिक प्रताड़ना सर्वाधिक होती है। जिस छोटी उम्र में बच्चे खेलते–कूदते, मस्त रहते हैं उस उम्र में उनके साथ ब्लात शारीरिक संबंध बनाये जाते हैं। उनके साथ ये एक बार नहीं आये दिन हमउम्र साथी या चाचा, मामा, रिश्तेदार सभी टूट पड़ते है। वो मानसिक, शारीरिक प्रताड़ना, ब्लातकार से पूरी तरह बिखर चुका होता है न परिवार में कोई उसकी सुनता और समाज तो पहले ही बहरा है सिर्फ भेड़ियों की तरह नोचता है। लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी अपनी पुस्तक 'मै हिजड़ा मैं लक्ष्मी' में बताती है कि "जब मै सात साल का था, तब पहली बार मेरा यौन–शोषण हुआ।"[6] ये मानव समाज इतना कलुषित मानसिकता का है बस स्त्री जैसा कुछ भी दिख जाए उसे भोग करने के लिए तड़प उठता है। आगे लक्ष्मी उस यातना का जिक्र करती हुई कहती है। "उसके बाद उस शादी के घर में इस तरह की घटनाएं बार–बार घटीं। और

सिर्फ वही लड़का नहीं, और भी कई लड़के मेरा फायदा उठाते रहे। बहुत तकलीफ हो रही थी.... शारीरिक और मानसिक थी।"[7]

इस हवशीपन का शिकार ऐसे ही बच्चे की व्यथा को जया जादवानी अपने उपन्यास 'देह कुठरिया' में उठाती है। "वे हँस रहे हैं.... उनकी हँसी में कितनी क्रूरता थी? भीड़ क्रूर होती है। भीड़ वहशी जानवर होती है। सबने पकड़कर उसे खूब मारा... उसके कपड़े फाड़ दिये... उसे नंगा कर दिया और उसके जिस्म से खेलते रहे... खेलते रहे...।"[8] ऐसी ही घटना का जीती–जागती उदाहरण मानोवी बंद्योपाध्याय संघर्षो के पहाड़ से टकराती हुई बतौर कॉलेज प्रिसिपल पर आसीन हुई। जब मानोवी पाँचवी कक्षा में थी पहली बार ब्लातकार किया गया वो इक्कीस साल के अपने ही चचेरे भाई द्वारा। "मुझे तब तक इस बात का एहसास नहीं हुआ, जब तक वह एक दिन मुझे अकेला पाकर उस बड़े से घर के वीरान भूतल के खाली कमरे में नहीं ले गया। उसने वहीं मेरे साथ शारीरिक सम्बन्ध बनाये। जब तक मेरे साथ गुदा मैथुन नहीं किया, तब तक मुझे कुछ पता नहीं था कि क्या होने वाला था। शायद मुझे उसका सहलाना और दुलारना अच्छा लगा होगा,.. फिर उसने अचानक मेरी गुदा में प्रवेश किया और धक्के मारने लगा। मैं मारे दर्द के चिल्ला पड़ी, उसने मेरी चीख दबाने के लिए मेरे मुँह पर अपना हाथ रख दिया।"[9]

हिन्दी साहित्य ऐसे समाज की समस्या को उजागर करने मे एक लम्बा वक्त जाया किया। इसका कारण समाज की अस्वीकार्यता, प्रशासन द्वारा अधिकार न दिया जाना, प्रकाशक द्वारा न छापा जाना भी सभवतः कारण रहा होगा। लेकिन इसके बावजूद 'यमदीप' की लेखिका नीरजा माधव ने 2002 में इस कोढ़ बन चुके रोग पर अपनी लेखनी चलाई। यह उपन्यास उस समय उतना चर्चा में नहीं आया कारण एक सामाजिक, मानसिक दबाव ने घेरा रहा होगा। किन्तु एक वक्त यह आया कि लगभग भारत के समस्त वि0वि0 में हिन्दी साहित्य का कम से कम एक शोधार्थी इस विषय पर शोधरत है हालांकि कहां तक न्याय कर पाता है ये अलग बात है। लेकिन कहीं न कहीं शोध ने इस पर साहित्य को अपना विषय बनाने के लिए एक राह दी है। इसी जरिए ही सही तमाम समस्यायें संघर्ष, अशिक्षा, मानसिक, शारीरिक शोषण अनेक बातें हमारे समक्ष निकल कर आ रही। जिस तरह मानव समाज को यही ज्ञात था कि किन्नर समुदाय ताली पीट कर रूपया कमाते है, गाली देते है आदि बातें इन सभी के पीछे इनके छुपे दर्द का अध्ययन साहित्य ने समाज को एक नए तरीके से सोचने के लिए मजबूर किया। इस सामाजिक अस्वीकार्यता को झेलते हुए निर्मला भुराड़िया जब किन्नरों के बारे में खोज–पड़ताल कर रही थी उस समय नजदीकी लोगों को पता चला उस पर उनकी प्रतिक्रिया बताते हुए कहती है कि "कुछ नजदीकी मित्रों पर भी यह बात खुली कि मैं किन्नरों पर कुछ काम कर रही हूँ। मुझे यह सलाह दी गयी, हालांकि सदाशयता के साथ ही कि मुझे उनके पक्ष में नही बोलना चाहिए क्योंकि हिजड़े बहुत बदतमीज होते हैं। ऐसी बातों पर मैंने कभी मित्रों से बहस नहीं की, सिर्फ एक मुस्कुराहट दी या सिर हिलाया, मगर मन में निश्चय दृढ़ था, कोई कुछ भी कहे, मुझे तो पूरी बात को मानवता के कोण से देखना है।"[10]

मुख्य धारा से तिरस्कृत, घृणित, बहिष्कार सहने को अभिशप्त थर्डजेंडर को मानव की यौन स्थिति को आधार बनाकर हिजड़ा, किन्नर, छक्का, मामू, उभयलिंगी आदि भद्दे नामों से पुकारा जाता है। इनका असली नाम तक को मिटा कर इनको ताली पीटना, नाच–गाना, बधाई तक सीमित कर दिया जाता है। समाज अपनी पितृसतात्मक सोच को बदल नहीं पाता इसी के चलते इनकी यौनिकता पर प्रश्न चिन्ह लगा देता है। लिंग तथा सामाजिक पहचान विधि मान्यता के आधार पर हमेशा से वाद–विवाद का ज्वलंत मुद्दा रहा है। लिंग विभेद की बात की जाए तो तृतीय लिंग (थर्डजेंडर) एक विवादित तथा संवेदनशील मुद्दा है जिसे समाज समझना ही नहीं चाहता। इसी बात पर लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी अपने 'आटोबायोग्राफी' में मलेशिया की कार्तिनी स्लामा की बात याद करते हुए दोहराती है– "अपनी लैंगिकता को अपने हिसाब से अभिव्यक्त करने और अपने व्यक्तित्व का निर्माण करने का अधिकार हर किसी को होना चाहिए।"[11] लिंग भेद की समस्या सिर्फ भारतीय समाज में ही नहीं लगभग देशों में जिसकी वजह इन्हें अपना पेट पालने के लिए देह का व्यापार भी न चाहते हुए भी करना पड़ता है। लक्ष्मी अपने आटोबायोग्राफी में एक ट्रांसजेंडर कार्तिनी जो मलेशिया की है, वहाँ के बारे में बताते हुए कहती है कि "मलेशिया में ट्रांसजेंडर्स में मुसलमान और गैर–मुसलमानों की संख्या लगभग 50–50 प्रतिशत है। इन सभी को नौकरी मिलने में मुश्किलें आती हैं, और

फिर जीने के लिए शरीर बेचने के अलावा उनके पास दूसरा चारा नहीं होता।"[12] यह समाजिक घृणित कार्य तृतीय लिंगी समाज को शिक्षा, रोजगार न दिये जाने की वजह से उत्पन्न है।

साहित्य ने अधिक न कहे तो भी वो कोई भी विधा हो उपन्यास, कहानी, साक्षात्कार, पत्रिका आदि ने ट्रांसजेंडर समाज के मुद्दो, उनकी परेशानियों को सामने लाने का प्रयास किया है। हमारा समाज कभी इनसे पूछने नहीं जाता कि उनकी पीड़ा क्या है? इस समाज को सिर्फ उनसे घृणा करना आता है और रात के अंधेरे शरीर को भोग लेना। इसके अलावा ये नहीं पूछा जाता कि जिस समाज में रह रहे हो किन–किन संघर्षो से जूझना पड़ता है? जिसे हिजड़ो का डेरा कहा जाता है, इसमें भी एक कुशासन देखने को मिलता है। सभी में वरिष्ठ किन्नर गुरू माई की गद्दी पर विराजमान रहता है, उसी के आदेशों का पालन किया जाता है। नाच–गाना, बधाई, देह व्यापार आदि न भी करने का मन हो फिर भी उसे सीखना पड़ता है और करना भी। इसी बात पर 'सरस्वती' पत्रिका के अंश 'किन्नरों का सामूहिक साक्षात्कार' में 'मोहम्मद हुसैन डायर' के पूछने पर कि रोजगार, स्वास्थ्य आदि पर आपका समाज सामने नही आएगा तो समस्याओं का समाधान कैसे होगा? इस पर 'सलोनी' (ट्रांसजेंडर) कहती है कि "समाज की विकृत सोच के कारण किन्नर बचपन से ही शिक्षा से उपेक्षित हो जाते हैं। हमारी हार्दिक इच्छा होने के बावजूद हम ज्यादा पढ़ नहीं पाते। क्या सरकार ने हमारे लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार जैसे बुनियादी मुद्दों के लिए कोई व्यवस्था की है? इतनी पीढ़ियों के बाद भी हमारी स्थिति अछूतों के समान हैं। खाली नाम थर्डजेंडर दे देने से कुछ नही होता हैं। अक्सर कहते है कि नाचने–गाने के अलावा भी किन्नर समाज का जीवन है, पर वह जीवन क्या है, यह कोई नहीं बताता हैं। किन्नर समाज के नियम–कानून और यहाँ का परिवेश हमें दुःखी भी करता है। कई बार यहाँ से निकलने की बहूत इच्छा होती है, पर सवाल वही कि हम यहां से निकलने के बाद जाएंगे कहाँ? रहेंगे कहाँ? इसीलिए मन मारकर चाहे खुशी हो या दुःखी, हम इस परिवेश में रहने को मजबूर है।"[13]

इस प्रकार निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि थर्डजेंडर की स्वीकार्यता का संघर्ष जारी है। वे स्वयं भी कर रहे साथ ही साहित्य अपनी थोड़ी ही सही पर इस दशक में इन्हें स्थान दिलाने, समाज को जगाने का कार्य कर रही। इसमें निर्मला भुराड़िया का गुलाममंडी, नीरजा माधव का 'यमदीप, चित्रा मुद्गल का 'पोस्ट बॉक्स न0 203 नालासोपारा' मानोवी बंद्योपाध्याय का आटोबायोग्राफी 'पुरुष तन मे फंसा मेरा नारी मन', लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी का आटो बायोग्राफी 'मैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी', आदि ने इनके जीवन संघर्ष को परत–दर–परत खोलने का कार्य कर रहे। साहित्य समाज की सबसे निकृष्तम विषय को उठा कर एक नई दिशा देने का कार्य करता है जिससे समाज में बदलाव की बयार स्वतः बहने लगती है।

संदर्भ–सूची :–

1. मैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी!, लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी (पुस्तक अंश 'मैं लक्ष्मी के बहाने'– डॉ प्रदीप प० पाटकर), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– 2018, पृ०–18
2. तीसरी ताली, प्रदीप सौरभ, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2011 पृ०–42
3. वही, पृ०–43
4. वही, पृ०–43–44
5. वही, पृ०–44
6. मैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी! लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2018, पृ०–27
7. वही, पृ०–28
8. देह कुठरिया, जया जादवानी, सेतु प्रकाशन, दिल्ली–110092, प्रथम संस्करणः 2021, पृ०–113
9. पुरुष तन में फँसा मेरा नारी मन, मानोवी बंद्योपाध्याय (झिमली मुखर्जी पांडे), प्रथम संस्करण : 2018, हिन्दी अनुवाद–राजपाल एण्ड सन्ज़, पृ०–16
10. सामयिक सरस्वती– शब्दों का उत्सव, अप्रैल–सितम्बर 2018, अंक 13–14, थर्डजेंडर विशेषांक पत्रिकाISSN 2454-2911,पृ०–18
11. मैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी, लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2018, पृ०–101
12. वही, पृ०–102
13. सामयिक सरस्वती– शब्दों का उत्सव, अप्रैल–सितम्बर 2018, अंक 13–14, थर्डजेंडर विशेषांक पत्रिका ISSN 2454-2911,पृ०–23

दलित साहित्य : आशय, अवधारणा और मुक्ति

किरण असवाल *

सारांश :– हिन्दी साहित्य के इतिहास में दलित साहित्य की लेखन की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। दलित साहित्य एक ऐसा साहित्य है जो मुख्य रूप से विचारणीय है। इसके अंतर्गत कुछ विद्वानों ने इसे परिभाषित कर दलित की दुःख–वेदना और उनके जीवन–संघर्ष को सशक्त अभिव्यक्ति देने का प्रशंसनीय कार्य किया है। यह एक ऐसी परिघटना है जो पूर्वमध्यकाल के उपरांत आधुनिक काल के साहित्य तथा उसके कठोर मानदंडों को परिवर्तित कर मानवीय मूल्य, जातीय समरसता व राष्ट्रीय संवेदना का बोध कराता है। आजादी के इतने वर्षों पश्चात भी भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में धार्मिक परम्पराओं के अन्तर्गत जातीय व्यवस्था को जिस सहृदयता के साथ महिमा मण्डित कर दलितों के सिर माथे जबरन मनमाने ढ़ंग से मढ़ दिया गया वह हम सभी के लिए चिंता का विषय है। क्योंकि इसके परिणामस्वरूप तिरस्कार, दुराचार अपमान व शोषण जैसी बद्धमूल धारणाएं विकसित हुई जिसने आगे चलकर प्रचण्ड रूप धारण कर जातिगत भेदभावहीनता के दुष्प्रभाव से उत्पन्न होने वाली विसंगतियों को जन्म दिया। दलितों को वर्णाश्रम जैसी सामाजिक व्यवस्था में जकड़कर भारतीय समाज के कुछ तथाकथित धर्म के ठेकेदारों ने उन्हें केवल शारीरिक रूप से ही नहीं अपितु मानसिक रूप से भी दासता की श्रृंखलाओं में जकड़े रहने के लिए आजीवन बाध्य कर दिया। दलित की सूक्ष्म अतिसूक्ष्मतर समस्याओं, अवधारणाओं व मानसिक तनाव जो अप्रत्यक्ष है जिस पर मानवीय दृष्टि केवल बाहरी परिवेश तक ही परिलक्षित होती है आतंरिक परिवेश तक नहीं। जो पक्ष समाज से अस्पर्शनीय ही रह गया जिसमें दलित की अनुभूतियों को पर्याप्त स्थान प्राप्त नहीं हुआ है वह सभी तथ्य दलित साहित्य के अन्तर्गत द्रष्टव्य होते हैं। दलित साहित्य का वास्तव में जो अर्थ है वह दलितों की अनादि–काल से चली आ रही परम्परागत छवि एवं झूठी व अतार्किक मान्यताओं को तोड़कर पुनः आत्मविश्वास, दृढ़ता और बन्धुता की भावना से परिपूर्ण एक नई छवि की सृष्टि करना है। इनके अन्तर्मन तथा बहिर्मन का भली–भांति से अवलोकन कर उनके मन में उठने वाले समस्त भावों से अवगत होना ही वास्तव में दलित को व्याख्यायित करने की दिशा में उठाया गया प्रभावपूर्ण प्रयास है। दलित साहित्यः आशय, अवधारणा और मुक्ति के अतिरिक्त हमारे समाज में व्याप्त व्यवस्थाओं की पारंपरिक तथा रूढिगत नीतियां, कुरुतियां व सवर्ण वर्चस्ववाद को दलित सदियों से भोगता आया है। इन समस्त विशिष्ट तथ्यों पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर एक नवीन संदेश देना प्रस्तुत शोध–पत्र के माध्यम से प्रयास रहेगा।

मूल शब्द :– दलित, आजादी, आंदोलन, उत्पीड़न, शोषण, दुरावस्था, बाध्य, उपेक्षित, वर्ण व्यवस्था।

भारतीय समाज में दलित से आशय एक ऐसी विशेष जाति की मूल संरचना से लिया जाता है जो अस्पृश्य और उपेक्षित है। जिसका वर्षों तक निरन्तर शोषण किया गया हो, मर्दित तथा घृणित निम्न वर्ग आदि। ओम प्रकाश वाल्मीकि ने दलित शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है– "भारतीय समाज में जिसे अस्पृश्य माना गया वह व्यक्ति ही दलित है। दुर्गम पहाड़ों, वनों के बीच जीवन यापन करने के लिए बाध्य जनजातियाँ और आदिवासी, जरायमपेशा घोषित जातिया सभी इस दायरे में आती हैं। सभी वर्गों की स्त्रियाँ दलित हैं। बहुत कम श्रम–मूल्य पर चौबीसों घंटे काम करने वाले श्रमिक, बंधुआ मजदूर दलित की श्रेणी में आते हैं।"[1]

इसी प्रकार डॉ० श्यौराज सिंह बेचैन का मत है कि– "दलित वह है जिसे भारतीय संविधान ने अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है।"[2] इन समस्त तथ्यों पर विचार विश्लेषण के उपरांत ज्ञात होता है कि दलित शब्द मुख्य रूप से उन पीड़ित व शोषित वर्ग विशेष के लिए प्रयुक्त किया जाता है जिसे भारतीय समाज की वर्ण–व्यवस्था ने शुद्र, अपवित्र, हरिजन तथा नीच जाति से अभिहित कर अधोगति के मार्ग पर अग्रेषित किया है। दलित भारतीय सभ्यता में ही नहीं वरन् पाश्चात्य संस्कृति में भी सामाजिक सरोकारों के

*** शोधार्थी, हिन्दी विभाग, गुरुकुल कांगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार।**

परिप्रेक्ष्य में दृष्टिगोचर होता है। इसके अन्तर्गत जातिवाद, रूढ़ियों से जुड़ी दर्दनाक विसंगतियां, मानव के कष्टों व संवेदनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान की जाती है। इस सन्दर्भ में डॉ० एंनीबीसेन्ट द्वारा 'डिप्रैस्ड' शब्द का प्रयोग दरिद्र तथा पीड़ितों के लिए किया गया है। इस वर्ण–व्यवस्था ने समस्त मानव–जाति को धर्म एवं संस्कृति की आड़ में भिन्न–भिन्न वर्गों व समुदायों में विभक्त करने का अनौचित्य पूर्ण कार्य किया। आजादी के इतने वर्षों पश्चात् भी दलितों की स्थिति हमारे वर्तमान समय में विचारणीय है। समाज का अभिन्न अंग होने के उपरांत भी वे भारतीय संस्कृति व सभ्यता की मुख्य धाराओं से वियुक्त हैं। वर्ण–आभिजात्य की प्रवृत्ति इतनी भयावह है कि इसने भारतीय समाज में अस्पृश्यता, तिरस्कृत व्यवहार एवं दलितों के प्रति असम्मानित जीवन की कहानी को अभिव्यक्त किया है।

भारतीय संविधान ने भले ही दलितों को मौलिक अधिकार के रूप में समानता का अधिकार प्रदान किया है, परन्तु फिर भी वह सवर्णों के साथ उठ–बैठ तथा भोजन ग्रहण नहीं कर सकता। यहाँ तक कि वह अन्य जाति में स्वेच्छा से शादी जैसे पवित्र समारोह करने के अधिकार से भी वंचित है। क्योंकि उसके ऐसा करने मात्र से उच्च वर्ग की परम्पराएं, रीति–रिवाज और संस्कार कलुषित हो जाएंगे। इस सम्बन्ध में हरिनारायण ठाकुर जी कहते हैं कि– "यहाँ जाति और वर्ण–व्यवस्था इतनी मजबूत है कि आज भी शादी–विवाह एवं अन्य महत्त्वपूर्ण सामाजिक अनुष्ठानों पर जातीय नियमों का कड़ाई से पालन किया जाता है। विवाह–सम्बन्ध तो अपनी जाति और वर्णों के बीच ही सम्पन्न होते हैं। इसके बाहर जाना सामाजिक अपराध है। ऐसे अनेक सामाजिक–सांस्कृतिक कार्य हैं, जिसे जाति से बाहर नहीं किया जा सकता। समाज में ऊपर से लेकर नीचे तक श्रेष्ठता और पवित्रता का एक श्रेणीक्रम है। सामाजिक श्रेष्ठता में सबसे ऊँचे पायदान पर ब्राह्मण और सबसे निचले स्तर पर शूद्र और दलित हैं। इस कारा को तोड़ पाना आज भी एक मुश्किल और कठिन काम है।"[3]

विचार करने योग्य बात यह है कि दलितों के लिए इस प्रकार के जाति–हीनता की भावना से ग्रस्त व्यवहार वास्तव में आया कहाँ से? जबकि भारतीय संविधान सभी धर्मों को समान रूप संरक्षण प्रदान करते हुए हम सभी को स्पष्ट रूप से यह निर्देश देता है कि सभी धर्मों को सम्मानजनक दृष्टि से देखा जाए। किन्तु हमारे समक्ष महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या हमारे समाज के समस्त नागरिक संविधान द्वारा प्रदत्त नियमों का पालन निष्ठापूर्वक करते हैं, यदि करते हैं तो नित्य प्रति किसी विशेष वर्ग का दलन उसके प्रति घृणात्मक व्यवहार व शोषण–दमन जैसी अनेकों शर्मसार करने वाली घटनाएं कहाँ से जन्म ले लेती हैं? इस तथ्य की पुष्टि हमें हरिनारायण ठाकुर के द्वारा लिखित 'दलित साहित्य का समाजशास्त्र' नामक कृति से होती है। "देश की आजादी के पूर्व से अब तक जातीय समस्या के सुधार की दिशा में जो प्रयास हुए, उसका इतना ही परिणाम निकला है कि शूद्र और अन्त्यजों के साथ छुआछूत प्रायः समाप्त हो गयी है। किन्तु मन की छुआछूत अब भी बाकी है। वर्ग और वर्ण के द्वन्द्व की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि वर्ग में ऊपर–नीचे जाने की गतिशीलता है, जबकि वर्ण और गति स्थिर और गतिहीन है। गतिहीनता के इसी गर्त में शूद्र और दलितों की सामाजिक नियति–प्रकृति निहित है।"[4]

साहित्य समाज का दर्पण है। प्रत्येक साहित्य समय के साथ गतिशील है, क्योंकि इसमें परिवर्तन के साथ ही साहित्य का विकास भी दृष्टिगोचर होता है। इसके परिप्रेक्ष्य में प्रसिद्ध हिन्दी साहित्यकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन दृष्टव्त है– "प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित तब यह निश्चित है कि चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ–साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है .... जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है।"[5] साहित्य अपने आप में विस्तृत वनस्थली है, जिसमें किसी वर्ग विशेष को महत्त्व न देकर अखिल मानवता तथा जन–सामान्य को स्थान दिया जाता है। इसके माध्यम से ही हम मानव मूल्यों को समाजशास्त्रीय ढ़ंग से समझने का प्रयास करते हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरांत दलितों ने अपने अधिकार के लिए अपने–आप को स्वर्णों के साथ मुख्यधारा से जोड़ने का साहसपूर्ण कार्य किया जिसके परिणामस्वरूप उनके दुःख, संघर्ष, अलगाववाद और शोषण की दास्तां की जो मार्मिक कहानी उभरकर आई उसी भावों की रचनात्मक अभिव्यक्ति को 'दलित साहित्य' से अभिहित किया गया है।

दलित साहित्य वासतव में विचारणीय विषय है। अधिकांश विद्वानों ने दलित साहित्य को अपने–अपने अनुसार व्याख्यायित करते हुए परिभाषित किया है। इस सम्बन्ध में दलित चितंक कंवल भारती की धारणा है कि "दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है। जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रूपायित किया है। अपने जीवन–संघर्ष में दलितों ने जिस यर्थाथ को भोगा है, दलित साहित्य की उसी अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला नहीं, बल्कि जीवन और जीवनर की जिजीविषा का साहित्य है इसलिए कहना न होगा कि वास्तव में दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलीत साहित्य की कोटि में आता है।"[6] अम्बेडकर दर्शन दलित साहित्य का प्रारम्भिक बिन्दु है, जिसमें मानव–मुक्ति और दलितों संवेदनाओं के साथ–साथ उनकी समता व स्वतन्त्रता की अभिव्यक्ति को पर्याप्त स्थान मिला है। दलित–साहित्यकारों में से कुछ बुद्धिजीवियों ने 'दलित' शब्द पर आपत्ति उठाई है, उनके मतानुसार यह शब्द हीनता का बोधक है। इससे वर्ण व्यवस्था को आश्रय मिलता है और दलितोद्धार का प्रश्न भी सहज रूप से हमारे सम्मुख आ खड़ा उठता है। हिन्दी साहित्य में दलित धारा का इतिहास विस्तृत एवं प्राचीन रहा है। प्रारम्भ से ही वर्ण व्यवस्था जैसी सामाजिक विद्रूपताओं का पुरजोर विरोध करने वाली परम्परा है। इसका प्रादुर्भाव सर्वप्रथम संत साहित्य में हुआ जो कि सिद्धों तथा नाथों से प्रभावित थी। इन संतों में कबीर, नामदेव, रविदास, दादू, गुरु नानक इत्यादि प्रमुख रहे हैं। इन्होंने जन्माधारित वर्णवाद, कर्मकाण्ड, पाखण्डवाद जैसी सामाजिक कुरीतियों की कड़े स्वरों में निंदा की है। यह सत्य है कि मध्ययुगीन निर्गुण साधु संतों ने प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से अपनी ओजपूर्ण वाणियों द्वारा सामाजिक परिवर्तन का बिगुल बजाया। परंतु दुर्भाग्यवश मध्यकाल के उपरांत भक्ति–भावना, आश्रयदाओं की प्रशंसा और नारी के प्रति कामुक दृष्टिकोण की चकाचौंध के पक्ष उनका स्वर दब–सा गया। समय परिवर्तनशील है, और इसी परिवर्तनशीलता के कारण आधुनिक युग आते–आते दलित साहित्य की सुगबुगाहट पुनः प्रारम्भ हुई। जो आंदोलन समय के साथ दब–सा गया था वह एक बार दोबारा जीवित हो उठा। इस युग के अन्तर्गत गैर–दलित साहित्यकार मुंशी प्रेमचन्द, दिनकर, नागार्जुन, निराला, अज्ञेय के अतिरिक्त दलित लेखक डॉ० अम्बेडकर, ओमप्रकाश वाल्मीकि, जयप्रकाश कर्दम, श्यौराज सिंह बैचेन, तुलसीराम, असंगघोष, मोहनदास नैमिशराय आदि ने अपने साहित्य को माध्यम बनाकर दलितों की विरह–व्यथा को उत्कृष्ट अभिव्यक्ति प्रदान करने का सर्वोच्च कार्य किया।

"दलित साहित्य की प्रारम्भिक अभिव्यक्ति मुंशी प्रेमचंद और सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला' के साहित्य में मानी जा सकती है। 'ठाकुर का कुआँ', 'शुद्रा', 'दूध का दाम', मन्दिर' आदि कहानियों के अलावा गोदान, रंगभूमि, कर्मभूमि, सेवासदन आदि उपन्यासों मे भी दलित जीवन की चर्चा हुई है। निराला की अधिकांश कविताओं में प्रतिकात्मक जाति विरोध है। किन्तु 'चतुरी चमार' जैसे उपन्यास के माध्यम से निराला ने दलित जीवन में झाँकने का प्रयास किया है। हीराडोम की कविता अछूत की शिकायत (सरस्वती में प्रकाशित 1914 ई०) दलित काव्य के क्षेत्र में मील का पत्थर है।"[7] दलित उपन्यास कहानी की भांति काव्य में भी दलितों पर हुए असंख्य शोषण तथा उनसे जन्मे आक्रोश को ओज स्वर में व्यक्त किया। मोहन दास नैमिशराय दलितों के प्रति पक्ष–पात रहित मानवीय व्यवहार की बात करते हैं। उनकी 'शब्द' नामक कविता में पूर्वाग्रह से ग्रसित वर्ण–व्यवस्था तथा उससे जन्मी विसंगतियों पर कठोर प्रहार किया गया है। उनका मत है कि धर्म–ग्रन्थ समस्त मानव जाति को जोड़ने का कार्य करता है न कि मानव से मानव के बीच गहरी खाई उत्पन्न करने का अनिष्ट कार्य। ये अपनी कविता में मनुस्मृति की आलोचना करते हुए लिखते हैं–

"शब्द ही तो थे
जो मनुस्मृति में लिखे गए
राम राज चला गया
पर शम्बूक की चीख अभी बाकी है
जैसे दलितों की पीठ पर
चोट के निशान
शब्द सिसकते नहीं बोलते हैं
चोट कहते हैं

जैसे दलित से हरिजन
और हरिजन से दलित।"[8]

नैमीशराय जी ने अपनी कविता के माध्यम से मनुवादी व्यवस्था का बहिष्कार करते हुए दलित–उत्थान की मांग करते हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि दलित साहित्य का बीजारोपण भले ही प्रारम्भिक दौर में बौद्ध–साधकों, संतों व नाथों द्वारा हुआ परन्तु उसे पल्लवित करने का महान कार्य महात्मा फुले और अम्बेडकर जैसे समाज सुधारकों ने किया। इन्होंने समाज में व्याप्त वर्णवादी समस्या का समाधान खोजने तथा उनको दूर करने का प्रयास किया है। दलित चिंतक के रूप में देखा जाए तो इन्होंने समाज को नवीन रूप देने का सराहनीय कार्य निष्ठापूर्वक किया। जिस जाति–व्यवस्था ने सदियों से दलितों के हृदय में हीनता की भावना को आश्रय दिया था दलित साहित्यकारों ने इन दोषरूपी विषतुल्य परम्परा को स्वरचित कहानी, उपन्यास, आत्मकथा एवं कविता के माध्यम अर्थपूर्ण चुनौती दी है।

दलित साहित्य शोषित वर्गों की संघर्षमय दासता को अभिव्यक्ति प्रदान करने के साथ वंशवादी कुलीनता जैसे गम्भीर मुद्दे को अपनी सशक्त लेखन की क्षमता से उल्लेखित करता है। निःसन्देह कहा जा सकता है कि दलित साहित्य को प्रभावशाली ग्रंथ रूप में प्रयोग कर सामाजिक संरचना में परिवर्तन लाया जा सकता है।

मेरे द्वारा प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य भारतीय समाज में व्याप्त उपेक्षित निम्न वर्ग की अनेकानेक समस्याओं को प्रत्यक्ष रूप से आप सभी के समक्ष उजागर करता है। जिससे कि अंत्यज अस्पृश्यता के आचरण तथा जातिगत विशेषाधिकार जैसी कुप्रथा समाप्त हो सके।

संदर्भ सूची :–

1. ओम प्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, पहला संस्करण 2001, राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 14
2. वही, पृष्ठ 13 पर उदृधत
3. हरिनारायण ठाकुर, दलित साहित्य का समाजशास्त्र, पहला संस्करण 2009, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 45–46
4. वही, पृष्ठ 46
5. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रथम संस्करण, नागरी प्रचारिणी सभा
6. ओम प्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, पहला संस्करण 2001, राधा कृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 14–15 से उद्धृत।
7. हरिनारायण ठाकुर, दलित साहित्य का समाजशास्त्र, प्रथम संस्करण : 2009, भारतीय ज्ञानीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 411
8. हरिनारायण ठाकुर, दलित साहित्य का समाजशास्त्र, प्रथम संस्करण : 2009, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 411

रमेशचन्द्र शाह के उपन्यासों में धार्मिक एवं ऐतिहासिक वर्णन की प्रासंगिकता

कृपा शंकर*

भारत की परिस्थतियाँ, समस्याएँ, सभ्यता और संस्कृति पश्चिमी देशों से भिन्न है। इसलिए पश्चिमी विचारधारा यहाँ कभी पुष्पित पल्लवित नहीं हो सकती। भारतीय मनीषा के विचार अत्यन्त उदात्त थे। जीवन दर्शन का कोई ऐसा नहीं है, जिस पर यहाँ विचार न प्रकट किया गया हो। इसी प्रकार शासन व्यवस्था एवं राजदर्शन का विस्तृत विवेचन यहाँ किया गया है। शास्त्रों के अनुसार राजनीति भगवान् विष्णु की पालिनी शक्ति है। आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता इसके दण्ड विधान हैं। कामन्दक नीति, शुक्रनीति, बृहस्पतिनीति इसके नीति ग्रन्थ है। महाभारत के शान्तिपर्व में भीष्म ने सम्पूर्ण राजदर्शन का बड़ा ही विशद् एवं शास्त्रपरक विवेचन किया है। जहाँ सृष्टि एवं उसके पश्चात् राज्य की उत्पत्ति एवं पुनः धर्मराज्य की स्थापना तथा धर्मराज्य के गुणों एवं अच्छाइयों का विस्तृत वर्णन है।

भारतवर्ष में धर्म और राजनीति एक दूसरे से कभी पृथक नहीं थे। राजनीति सदैव धर्म से प्रभावित रही है। साधु सन्त महात्मा इसके उपदेष्टा थे। आदि कवि वाल्मीकि ने धर्मयुद्ध राजनीति का चित्रण किया है। प्राचीन भारत में धर्मयुद्ध राजनीति का प्रधान कारण था धर्मशास्त्र का उद्देश्य। जहाँ राज्य की उत्पत्ति का एक सम्यक् प्रकार से करता रहे, जगत में धर्म संकरता, वर्ण संकरता उत्पन्न न हो पाए, बस यही राज्य का एक मात्र कर्तव्य बताया गया है। इसलिए प्राचीन राजशास्त्र धर्म को अधीन माना गया है। प्राचीन भारत में राजशास्त्र के अन्तर्गत उसकी समस्त क्रिया धर्म से प्रभावित थी। इस दृष्टि से प्राचीन राजशास्त्र धर्मानुप्राणित है।

धर्म बहुत व्यापक शब्द है। "अमरकोष के अनुसार धर्म शब्द के अनेक अर्थ हैं, यथा सुकृत या पुण्य, वैदिक विधि–यागादि, यमराज, न्याय, स्वभाव, आचार, सोमरस को पीने वाला।"[1] अन्य कोषों में धर्म के अर्थ मिलते हैं– शास्त्रोक्त कर्म के अनुष्ठान से उत्पन्न होने वाले भावी फल का साधन स्वरूप शुभ अदृष्ट था पुष्यापुण्य– रूप भाय, श्रौत और स्माते धर्म, विहित क्रिया से सिध्द होने वाला गुण या कर्म अन्य अदृष्ट, आत्म, देह, को धारण करने से जीवात्मा, आचार या सदाचार, वस्त्र का गुण, स्वभाव, उपमा, योग आदी अहिंसा, न्याय, उपनिषद् धर्मराज या यमराज, सोमाध्यायी सत्संग, धनुष, ज्यौतिष मत में लग्न सें नवम् स्थान या भाग्य भवन, दान आदि। किन्तु धर्म शब्द् का धातुगत अर्थ तो 'धारण करना' ही होता है। निरूक्त में धर्म शब्द का अर्थ 'नियम' बताया गया है। इन दोनों के मेल से 'धर्म' शब्द का यही वास्तविक अर्थ होता है कि जिस नियम ने इस लोक या संसार को धारण कर रखा है वही धर्म है। (धर्मेण धार्यत लोकः)

1. वेद कहते हैं, कि धर्म से सुख मिलता हैं। लोक में भी प्रचलित है कि धन सें धर्म होता हैं, तथा धर्मों से सुख मिलता है।
2. यह सुख दो प्रकार का बताया गया हैं। एक तो इहलौकिक और दूसरा पारलौकिक। इसलिए जिससे इन दोनों प्रकार के सुखों की प्राप्ति हो, वह धर्म हैं। सभी लोग सुख के लिए ही प्रयत्न करते हैं। उसका साधन धर्म हैं। धर्मण धार्यते लोकः।। चाणक्य नीतिसूत्र –धानाध्दर्म ततः सुखम्।। इसलिए वैश्विक दर्शन के प्रणीता महर्षि कणाद ने धर्म की परिभाषा इस प्रकार की है 'जिससे इस लोक में उन्नति और परलोक म ें कल्याण या मोक्ष की प्राप्ति हो, वह धर्म है।'
3. इस धर्म का मूल वेद है।
4. अर्थात् समस्त वेद ऋकू, यजुः, साम, और अथर्ववेद धर्म का मूल हैं। इस धर्म से ही सूर्य में तपन है धर्म से ही वायु बहती है। सब क ुछ धर्म में ही प्रतिष्ठित हैं।
5. इस धर्म श्रीमद्भागवत के अनुसार 'वेद में कहा हुआ धर्म है और उससें विपरीत अधर्म हैं।

* शोध छात्र–हिन्दी विभाग रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर (म.प्र.)

6. वेद में जिसकी प्रेरणा की गयी हैं, वह पदार्थ धर्म हैं। मतलब वेद निरूपित कर्म करना धर्म हैं। उसमें निषेध किए हुए कर्म का न करना भी धर्म का एक अन्य लक्षण हैं। जों वेद में कहा गया है, वह धर्म हैं। यतोडभ्युदय निःश्रेयसूसिध्दिः सधर्मः।। शबर भाष्य

वेदोडखिलों धर्म मूलमू ।। मनुस्मृति
धर्मेण घार्यते पृथ्वी धर्मण तपतें रविः।
धर्मेण वहति वायुः सवेधर्म प्रतिष्ठितमू।।महाभारत।।
वेद प्रणिहितो ऽ धर्माहयधर्मस्तद्रिपयेयः ।। श्रीमद्भागक्त

पारस्परिक सन्निकर्ष और सम्बन्ध का इच्छुक है। वैयक्तिक जीवन धारण की वृत्ति जिस प्रकार उसमें निसर्गिक है। उसी प्रकार सामूहिक पूगमय और व्रातमय जीवन यापन की भावना भी उसमें स्वभावतः नियत और सहज है इतिहास, समाजशास्त्र, तथा अर्थशास्त्र से प्राप्त ज्ञान के आधार पर ही वैसा राजनीति शास्त्र प्रणीत हो सकता है। जो राज्य की परिपूर्णता और परिपक्वता का दर्शन उपस्थित कर सके सभी जगत् में धर्म के सम्बन्ध में नाना प्रकार के विचार और वितर्क पले आ रहे हैं।

हमारा विचार और वितर्क पले आ रहे हैं। हमारा विचार है कि 'हम क्या हैं'? संसार क्या है? और हमारे इस संसार से क्या सम्बन्ध हैं? इन्हीं तीन जिज्ञासाओं या प्रश्नों ने दर्शनिकों (चैपसवेवचीमते) को जन्म दिया है। धर्म आत्मा की भूख का भोजन है। बिना भोजन के काम चल नहीं सकता यही कारण हैं कि किसी न किसी धर्म की और सदा कारण जनता की प्रवृत्ति होती चली आयी है। धर्म के न मानने वाले लोगों को लोगों ने कभी भी आदर की दृष्टि से नहीं देखा है। वेदादि शास्त्रों में दो प्रकार हैं। प्रवृत्ति नित्ति के धर्मों का उपदेश किया गया है। धर्म, उनमें एक है। प्रवत्ति धर्म, और दूसरा है निवृत्ति धर्म। निवृत्ति धर्म ज्ञान मार्ग केलिए कहा गया है।

प्रवृत्ति धर्म को जीवन और दुनिया की बातों के विषय में कहा गया हैं। जो संसार दुनिया में है, उनकी ठीक तौर पर हरेक काम करने के तरीका प्रवृत्ति धर्म बताता है। धर्म और राजनीति के अन्तः सम्बन्धों को इन्हीं के अन्तर्गत देखा जाता है। तात्पर्य है कि प्रवृत्ति वासना इच्छा आशा, अभिलाषा कलुषित जीव के लिए आवश्यक हैं और इसी वासना से धर्म मुक्ति दिलाता है। भारतीय विचारधारा में असलीयता सत्ता की श्रेणी से अगली श्रेणी में धर्म की भावना का ही अत्यन्त महत्व है। यही कारण है कि पुरूषार्थ चतुष्टय में धर्म का स्थान सर्वोपरि है सथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इसमें प्रथम तीन पुरूषार्थ इस लोक से किन्तु, चौथा परलोक से सम्बन्धित है।

"इसके अनुसार मानव धर्मपूर्वक अर्थ और काम का सेवन करता हुआ मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। इसलिए भगवान श्री कृष्ण ने गीता में कहा है कि अर्जुन! प्राणियों में धर्मानुकूल 'काम' भी मैं ही हूँ, इसलिए धर्म मानव जीवन का सार हैं।"[2]

धर्म की उत्पत्ति सत्य से होती है। दया और दान से वह बढ ता है, क्षमा में वह निवास करता है और क्रोध से उसका नाश होता है। मनुस्मृति में धर्म का लक्षण बताते हुए कहा गया है कि वेद स्मृति, या धर्मशास्त्र, सदाचार या सत्पुरूषों का आचारण और अपनी आत्मा की प्रसन्नता यह चार प्रकार धर्म के लक्षण हैं। श्रुति और स्मृति में जो कहा गया है, वह धर्म कहलाता है। श्रुति और स्मृति में कहे हुए धर्म को करता हुआ मनुष्य इस लोक में यश पाता है और मरकर परलोक में उत्तम सुख या मोक्ष को प्राप्त होता हैं। श्रुति और स्मृति में वर्णित सदाचार ही परम् धर्म है।

इसलिए अपनी आत्मा को जानने वाला (आत्मज्ञानी) द्रिवज सदा सदाचार से युक्त रहे। धर्म शब्द के पूर्व 'स्व' जोड़ने से 'स्वधर्म' शब्द बनता हैं, जिसका अर्थ अपना धर्म (वर्णाश्रम धर्म) होता है। इसी के पहले 'पर' जोड़ने से 'परधर्म' शब्द बनता है। जिसका तात्पर्य अपने (वर्णाश्रम) धर्म को छोड़कर दूसरे के (वर्णाश्रम) धर्म से है। उसी के पहले 'वि' उपसर्ग लगाने से 'विधर्म' शब्द बनता है। जिसका अर्थ 'विगतः धर्मेण विधर्मः होता है अर्थात् अपने धर्म से गिर जाय अथवा धर्मान्तरित हो जाय वह विधर्म है। अतः अपने धर्म को छोड़कर अन्य धर्म को स्वीकार करने वाला विधर्मी कहा जाता है। उसी के पहले 'कु' उपसर्ग लगाने से 'कुधर्म' शब्द बनता है। उसका अर्थ 'कुत्सितः धर्मः कुधर्मः अर्थात् जो धर्म निन्दा के योग्य हो, वह कुधर्म है। कुधर्म पापाचरण या बुरे आचारण को कहते हैं। 'कुधर्म 'शब्द का एक अर्थ और भी होता है। वह यह कि जो धर्म

अन्य धर्म में बाधा पहुँचाए वह कुधर्म कहलाता है। धर्म के पहले 'न' जोड़ने से 'न धर्मः अधर्मः' अधर्म शब्द बनता है। उसका अर्थ जो धर्म से बिल्कुल विपरीत हो, वह अधर्म कहलाता है। इस अधर्म के पाँच भेद हैं। विधर्म, परधर्म, धर्माभास, उपधर्म, और छलधर्म। इनमें से 'विधर्म' और 'परधर्म' की विवेचना ऊपर की जा चुकी है। अपने ही कान से किसी काम को धर्म कहकर करना 'धर्माभास' है प्रचलित अर्थ को छोड़कर दूसरें प्रकार का अर्थ करके जिस धर्म की व्याख्या की जाय वह छलधर्म है। गीता में स्वधर्म पालन पर बल दिया गया हैं।

गीता में कहा गया है कि धर्म से रोग नष्ट होते हैं। धर्म से ग्रहों की पीड़ा मिटती है। धर्म से शत्रुनाश होता हैं। इसलिए जहाँ धर्म होता है। वहीं जय होती है। महाभारत में कहा गया हैं की जहाँ धर्म है, वहीं कृष्ण हैं, जहाँ कृष्ण हैं वहीं जय हैं। धर्म उन कर्तव्यों का समूह हैं जिनका निरन्तर पालन करने से व्यक्ति और समाज की उत्तरोत्तर वृध्दि होती रहती है। धर्म के मुख्य तत्व परोपकार और भक्ति हैं जो दूसरे का हित करता है वह सच्चा धार्मिक है। संसार में पदार्थ का स्वरूप कर्मात्मक है। पदार्थ के स्वरूपों की निष्पत्ति कर्म से है। कर्म ही पदार्थों के स्वरूपों को धारण कर रहा है, बनाए हुए है। जो धारण करता है, स्वरूप निष्पन्न करता है अथवा जिससे स्वरूप पहचानने में आता है उसका नाम धर्म है। कर्म ही धारण करता है, कर्म ही निष्पन्न करता है, कर्म पदार्थ मात्र धर्म है। धर्म वहीं पदार्थ है जिस पदार्थ में एक कर्म पर दूसरे कर्म की चुनाई हुई है। जिस पदार्थ में कर्म की चिति नहीं है, अर्थात् जिस पदार्थ का स्वरूप पूर्व कर्म पर उत्तर कर्म की चिति से निष्पन्न नहीं हुआ वह पदार्थ धर्म नहीं है। वह तो धर्मी है। धर्म, धर्म को नहीं पकड़ता धर्मी धर्म को पकड़ता है। धर्म पर धर्म नहीं रहता, धर्मी पर धर्म रहता है। धर्मी वही हैं, जो सब धर्मी का आश्रय है, जिसमें कोई भी धर्म टिक सकता है। धर्मी धर्म का आश्रय देकर धर्म के स्वरूप को प्रकट करता है। इसलिए धर्म जानने का विषय हैं, धर्मी नहीं।

''धर्म अर्थात मर्यादा ठवनदकंतल सपउपजंजपवद, सीमा, नियम, नियमक्षेत्र। धर्म छन्द है, मनुष्य को छन्दित करता है, स्वच्छन्द या अच्छन्द नहीं रहने देता। छन्द का अर्थ होता है सोम। किसा फल या उद्देश्य को लेकर मनुष्य के क्रियाकलाप का एक स्वरूप बनता है।''[3]

कसी भी राष्ट्र का अस्तित्व उसकी संस्कृति के कारण ही बना रह सकता है। इसी कारण शताब्दियों से ऋषियों महर्षियों ने इसके रक्षण, परिरक्षण और संरक्षण पर जोर दिया था। संस्कृति के उदयास्त से ही राष्ट्र का उदयास्त होता है। इसलिए संस्कृति मानव की जीवन शक्ति, प्रगतिशील साधनाओं की विमल–विभूति, राष्ट्रीय आदर्श की गौरवमयी मर्यादा और स्वतन्त्रता की वास्तविक प्रतिष्ठा है। इस तथ्य का चिन्तन करते हुए भारतीय परम्परा ने सदा संस्कृति–निष्ठा के मंगलमय मार्ग को अपनाया।

भारतीय परम्परा में सनातन संस्कृति की मान्यता है। यह सनातन संस्कृति इतर सभी संस्कृतियों से श्रेष्ठ है तथा अनादि और अनंत भी है। दूसरी संस्कृतियाँ सनातन संस्कृति का अंश लेकर ही जीवित है। संस्कृति शब्द को अंग्रेजी के कल्वर शब्द का पर्याय माना जाता है। लैटिन अंग्रेजी डिक्सनरी में कल्वर की उत्पत्ति 'कैल्टस' से बतायी गयी है। जिसका अर्थ होता है 'कृषि।' सम्भवतः इसी बात को ध्यान में रखते हुए बाबू सम्पूर्णानन्द ने कहा था कि 'एक ही जलवायु में पले, एक ही प्रकार के गिरि, निर्झर, नदी सागर को देखने वाले, एक ही प्रकार के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक सुख–दुःख को भोगे हुए लोगों के चित्तों का झुकाव प्रायः एक सा होता है और यही उन लोगों के निर्माण में सहायक होती है।'' किन्तु अंग्रेजी का कल्वर शब्द संस्कृति का ठीक प्रकार से समानार्थी नहीं हैं। श्री चक्रवर्ती राज–गोपालाचारी ने संस्कृति पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि 'किसी भी जाति अथवा राष्ट्र के शिष्ट पुरुषों में विचारवाणी एवं क्रिया का जो रूप व्याप्त रहता है उसी का नाम संस्कृति है। धर्मसम्राट स्वामी करपात्री जी महाराज के अनुसार 'लौकिक, पारलौकिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, अभ्युदय के उपयुक्त देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकारादि की भूषणभूत सम्यक् चेष्टाएँ एवं हलचलें ही संस्कृति है।

भारत में अंग्रेजी शासन शोषण, साम्राज्यवाद तथा उपनिवेश्वाद पर आधारित था। सन् 1600 में व्यापार के उद्देश्य से स्थापित ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने जब सम्पूर्ण देश पर अपना एकाधिपत्य स्थापित कर लिया तो निरीह भारतीयों पर उसके शोषण का शिकंजा लगातार कसता गया। **''इसके परिणाम स्वरूप सन् 1857 का स्वतंत्रता–संग्राम हुआ, जो पारस्परिक फूट, असंगठन, विद्वेष, एक–दूसरे पर अविश्वास एवं**

असहयोग के कारण असफल रहा, परन्तु इसके परिणामों से प्रेरणा पाकर ब्रिटिश राजनेताओं ने ईस्ट इण्डिया शासन को समाप्त कर भारत को बिटिश साम्राज्य का एक अंग बना लिया।''[4]

उन्नीसवीं शताब्दी के विदेशी एवं स्वदेशी लेखकों ने भी अपनी इतिहास सम्बन्धी खोजों द्वारा भारतीयों की राष्ट्रीय–भावना को प्रबल किया। सर विलिम जोन्स, मैक्समूलर, जैकोबी, ए.वी की आदि ने भारतीय एवं संस्कृति की उन्नति के सम्बन्ध में विचार प्रस्तृत करके प्रबुध्द भारतीयों के मनोबल को परोक्ष रूप से ऊँचा उठाया। इसके अतिरिक्त कनिंघम तथा मार्शल की पुरातत्व सम्बन्धी खोजों ने यह सिध्द कर दिया कि भारत की प्राचीन सभ्यता मध्य एशिया एव ं मलाया द्वीप समूह में फैली और इससे इन देशों में रहने वाली ज ंगली जातियों का विकास हुआ। **''इतिहास सम्बन्धी खोजों से भारतीयों में केवल आत्म विश्वास ही उत्पन्न हुआ। अपितु उन्हें अपनी सभ्यता–संस्कृति और देश पर गर्व करना भी सिखाया।''[5]**

उपन्यास में नायक विनायक और उसका दोस्तों को राजनीति पर बहुत रूचि है, इसलिए वे अपने आपसे राजनीति के बारे में बात तो करते रहते हैं, **''हरीश मुच्ची तो यहाँ तक कहता है कि वह अमरीका में भी दिल्ली और बम्बई के कुछ एन.जी.ओ के साथ मिल के भारत तोड़ो अभियान चलाने में लगा हुआ है। कई सारी विदेशी एजेन्सियों से अंधाधुंध पैसा कबाड़ के।''[6]**

रमेश चन्द्रशाह स्पष्टतः समाजवादी व्यवस्था की वकालत करते हैं, और भारतीय जनता को मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करते हैं। वर्ग संघर्ष उनका एकमात्र राजनीतिक अस्त्र है जिसके द्वारा जनता समाजवाद की म ंजिल तक पहुँच सकते है। विनायक उपन्यास लिखकर शाह अपने उद्देश्य और संकल्प को स्पष्ट कर देते हैं। जबकि इसी दौर के बड़े लेखक या तो अतीतगामी हो जाते हैं या फिर टेढ़े–मेढे रास्ते का चयन कर जनता को भरमाते हैं। वे रहस्यमयी अध्यात्म जगत में अर्न्तमुखी होकर स्वान्तः सुखाय की अनुभूति करने लगते हैं या फिर विकृत मनोविज्ञान और सैक्स प्रधान रचनाएँ करते हैं। संकट के ऐसे विषम दौर में अकेले शाह जी जनता को समाजवादी व्यवस्था के स्वप्न दिखाते है, उस स्वप्न को साकार करने हेतु जागरूक, चेतना सम्पन्न और संघर्षशील बनाते हैं। यदि प्रेमचन्द की रचनाओं को पढ़कर ग्रामीण भारत को समझा जा सकता है तो शाह जी के साहित्य को पढ़कर शहरी मध्यवर्ग और मार्क्सवाद को समझा जा सकता है।

संदर्भ सूची :–

1. धर्माःपुण्ययम न्याय स्वभावाचार सोमपाः
2. धर्माविस्ध्दों भूतेषु कामोस्मि भरतर्षभ।1991।
3. आर. सी. मजूमदार, तैयारी जीत की, हिस्टी ऑफ फ्रीडम मूवमेन्ट ऑफ इण्डिया, भाग–2 पृ.85।
4. जोगिंदर सिंह, ब्रिटिश पैरामाउण्टसी एंड इण्डियनरिस्पान्स, आप भी सफल हो सकते हैं, पृ.442।
5. के.ए. पन्निकर–दी फाउन्डेशन ऑफ न्यू इण्डिया, हिन्दूओं का व्रत और त्योहार, पृ.70।
6. विनायक– रमेशचन्द्र शाह पृ.सं : 54

प्रेमचन्द के उपन्यासों में स्त्री-जीवन

शिप्रा श्रीवास्तव *

स्त्री शब्द अपने आप में सम्पूर्ण भी है और अपूर्ण भी। सम्पूर्णता के अर्थ में संसार के समस्त प्राणियों को माँ के रूप में मिलती है। भारतीय समाज में वो प्रत्येक प्रतीक, भाषा, देश, समस्त चीजें जिसे ये महान बनाना चाहता है, उसे मां से जोड़ दिया जाता है। जैसे– मातृभाषा, भारतमाता, न्यायालय में लगी वो आंखों पर बंधी पट्टी और हाथ में तराजू लिए स्त्री। अर्थात् समाज का प्रतीक भाषा, देश जो कुछ सब स्त्री के रूप, मातृत्व से जोड़ा जाता है लेकिन क्या यह सच है कि स्त्री को उतना ही सम्मान प्राप्त है जो मां, बहन, पत्नी के रुप में जीती जागती परिवारों को संभाल रही है।

किसी भी समाज में किसी अस्तित्व का एक पक्ष नहीं होता किन्तु ज्यादती कहां हो रही, किस वर्ग, किसी पक्ष के साथ यही साहित्य को जमीन देता है। समाज के बुरे बीज जो अंकुरित हो कर पेड़ बन गए और कमजोर पक्ष को सता रहे उसी पक्ष की पैरवी करता साथ ही पेड़ बन चुके दर्द पर साहित्य अपनी कुल्हाड़ी चलाता रहता है जिससे ये समाज के लिए नासूर न बन जाए। इसी विमर्श की कड़ी में साहित्य के सम्राट मुंशी प्रेमचन्द सिद्धहस्त है। इन्होंने स्त्रियों के प्रेम का रूप, मातृत्व का रूप और उनके कराहते दर्द को अपने साहित्य में उकेरा है। इनके स्त्री पात्र मनोवैज्ञानिक विशेषता लिए हुए है। इनका साहित्य स्त्री की मनोदशा पढ़ लेने वाला है। ऐसा प्रतीत होता है प्रेमचन्द ने जितने भी उपन्यास, कहानियों की रचना की सभी के पात्रों के साथ मिल–बैठ कर लिखी है।

प्रेमचन्द के उपन्यास में स्त्री जीवन के विविध रूप दिखलाई पड़ती जिसमें से कुछ कुप्रथाओं और रूढ़ियों से मुक्ति के लिए संघर्ष करती है तो कोई अपने अधिकारों को ढूंढती नजर आती है। गबन की नायिका जालपा जो कि आभूषण प्रिय, श्रृंगार–प्रेम एवं विलासी स्वभाव की है किन्तु वह परिस्थिति के अनुरूप अपने स्वभाव को बदल देती है। रमानाथ के प्रयाग जाने के बाद उसके स्वभाव में प्रेम, त्याग, करूणा, दया आदि भावना का उदय होता है। रमानाथ को सराफ़ के यहां से वादे पर गहना बनवाने की बात पर जालपा दृढ़ता के साथ कहती है– "नहीं, मेरे लिए कर्ज लेने की जरूरत नहीं। मैं वेश्या नहीं हूं कि तुम्हे नोच–खसोटकर अपना रास्ता लूं। मुझे तुम्हारे साथ जीना और मरना है। अगर मुझे सारी उम्र बेगहनों के रहना पड़े, तो भी मैं कर्ज लेने को न कहूँगी।"[1] इस प्रकार प्रेमचन्द यह दिखाते है कि जालया आभूषण प्रेमी तो थी पर वह पति को संकट में डालकर आभूषण पहनना नहीं चाहती। यह भारतीय स्त्रियों का एक विशिष्ट गुण है। इतना ही नहीं जालपा स्वाभिमानी स्त्री होने के कारण वह अपने मां द्वारा भेजे गए चंद्रहार को भी अस्वीकार कर देती है। साथ ही बुद्धि सम्पन्न गुण के कारण जालपा रमानाथ को खोजने में सफल हो पाती है। प्रेमचन्द ने जालपा को एक नए रूप मे प्रस्तुत किया है। वह मुसीबतों से पलायन न करके उससे जूझने वाली स्त्री है। जालपा के चरित्र के विषय में रामविलास शर्मा कहते है– "वह निर्मला की तरह घुल–घुलकर का प्राण देने वाली नहीं है और न ही सुमन की तरह तैश में आकर जल्दी ही किसी अनजानी राह पर कदम उठाने वाली।"[2]

स्त्रियों के तीन वर्ग प्रेमचन्द ने गबन में दिखाएं है– जालपा को मध्यवर्ग के रूप में, रतन को उच्चवर्ग के रूप में तथा जग्गो को निम्न वर्ग के रूप में प्रतिष्ठित किया है। और इन तीनों स्त्री पात्रों का व्यवहार परिस्थिति के अनुसार बदलता रहता है। प्रेमचन्द जालपा के जरिए मध्यवर्ग की समस्या को, रतन के जरिए अनमेल विवाह की समस्या को तथा जोहरा के जरिए वेश्या जीवन की समस्याओं को उजागर करते हैं।

रचनाकार को चाहिए कि पहले वह अपने आप की जाने, अपने समाज को जाने एव समाज में व्याप्त समस्याओं को समझे तब जाकर रचना करे। इस प्रकार से रचित रचनाएं पाठकों के ह्रदय में चिस्थायी

*** पी–एच०डी० (शोध छात्रा) हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, (उ०प्र०), 221002।**

रहती है। प्रेमचन्द समाज की समस्याओं को केन्द्र में रखकर रचनाएं लिखा करते थे जिसमे कारण इन रचनाओं को पढ़ने वाला पाठक उसमें अपनी छबि देखता है।

सेवासदन पहले बाजारे हुस्न से ऊर्दू में प्रेमचन्द ने लिखा था। उसके बाद हिन्दी में परिवर्तित किया। इसमें समाज में स्त्रियो के प्रति व्याप्त रूढ़ियों को इंगित किया गया है। यह नायिका प्रधान उपन्यास है। सेवासदन का सम्बन्ध काशी से है। जिसकी पहचान वर्तमान में वाराणसी के नाम से हैं। वाराणसी धर्मिक, सांस्कृतिक, संगीत कला का केन्द्र है। यह उपन्यास मुख्यतः वेश्या जीवन पर केन्द्रित है, साथ ही इसमे तत्कालीन समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों जैसे दहेज प्रथा, स्त्री पराधीनता, अशिक्षा आदि को भी बखूबी दर्शाया गया है। कथा की नायिका सुमन है। कृष्णचन्द्र अपनी बेटी का विवाह यह सोचकर पढ़े लिखे घर में करना चाहते थे कि ऐसे घरों में लेने–देने का कोई जिक्र नहीं होगा पर वह स्तब्ध रह जाते है जब उन्हें ज्ञात होता है कि वरों का मोल उनकी शिक्षा के अनुसार होता है। दहेज जैसी कुप्रथा अशिक्षित तक ही सीमित नहीं हैं अपितु शिक्षितों को भी जकड़ कर रखी है। आज भी दहेज की समस्या से निर्धन से लेकर धनी वर्ग पीड़ित है और इसके जिम्मेदार हम स्वयं है।

पुरुष के बढ़ते वर्चस्व के फलस्वरूप स्त्री सदैव पराधीन रही। इसका कारण स्त्रियों में अशिक्षा, गरीबी, अज्ञानता था। जिसके कारण स्त्री अपने अधिकारों से विमुख रहती थी। आज भी स्त्रियां चाहे जितना पढ़ ले पुरुष उनको उनका अधिकार देने से कतराता है। पहले स्त्रियां अपने अधिकारों की मांग करती थी तो उनको शारीरिक तौर पर प्रताड़ित किया जाता था। और अब पढ़े–लिखे घरों में मानसिक रूप से स्त्रियों को प्रताडित किया जा रहा है। स्त्रियों का शोषण तब भी हो रहा था और आज भी हो रहा है पर तरीका बदल गया है। प्रेमचन्द सेवासदन में स्त्री पराधीनता की समस्या को भी दिखलाए है। वह स्त्री पराधीनता का वीभत्स रूप चित्रित करते है। सुमन घर में अकेले पड़े–पड़े ऊब रही थी। उसी के घर के सामने भोली (वेश्या) रहती है। एक दिन सुमन उसके घर चली गई। गजाधर घर आया तो सुमन को न पाकर क्रोधित हो गया। सुमन के आने पर वह गुस्से से बोलता है– "पहले यह बताओ कि तुम वहां मुझसे पूछे बिना गयी क्यों? क्या तुमनें मुझे बिल्कुल मिट्टी का लोंदा ही समझ लिया है।"[3] इस तरह प्रेमचन्द दिखाते है कि किस तरह भारतीय समाज में पुरुष स्त्री के ऊपर अपना आधिपत्य जमाता है।

सुमन रूपवती थी। उसका गला भी मधुर था। गृहस्थ कार्यों में दक्ष थी। सामाजिक रीति–रिवाज से गजाधर के साथ उसका विवाह हुआ। फिर भी उसको उसकी योग्यता के अनुरूप सम्मान नहीं मिलता हैं। उनके आत्म– सम्मान को रह–रहकर ठेस पहुंचती है। वह हमेशा यही सोचती है कि आखिर इसका कारण क्या है। वही दूसरी जगह भोली जो कि वेश्या हैं रूप रंग में भी वह सांवली है। उसका कंठ भी उतना मधुर नहीं है। फिर भी उसे उच्च वर्ग के लोगों द्वारा सम्मान दिया जाता है। सुमन के मन में बार–बार यह प्रश्न उठता है और इस प्रश्न का उत्तर प्रेमचंद स्वयं सुमन के मुख से देते हैं– "वह स्वाधीन है, मेरे पैरों में बेड़ियां हैं। उसकी दुकान खुली है, इसलिए ग्राहकों की भीड़ है, मेरी दुकान बंद है, इसलिए कोई खड़ा नहीं होता। वह कुत्तों के भूकने की परवाह नहीं करती, मैं लोक–निंदा से डरती हूँ।"[4] वास्तव में यह हमारे समाज का दुर्भाग्य है कि पुरुष ऐसी स्त्री जो कि घर के दायित्वों के प्रति पूर्ण रूप सजग है को सम्मान न देकर उस स्त्री की ओर आकृष्ट हो रहा है जो अपना शरीर पैसों के लिए किसी को भी सौंप दे रही है। आखिर हमारा समाज किधर जा रहा है यह सोचने की आवश्यकता है। पुरुष की अपनी मनोवृत्ति बदलने की जरूरत है।

सुमन कुछ दिनों बाद घर छोडकर भोली वेश्या के घर पहुंच जाती है। भोली का प्रारम्भिक जीवन सुमन के जीवन से काफी कुछ मिलता है। सुमन भोली के रहन–सहन एवं बड़े–बड़े लोग कैसे भोली को इतना सम्मान देते है यह सब देखकर सुमन भोली की तरह बनने की ओर अग्रसर होती है। हम यह कह सकते हैं कि वेश्या का जन्म पुरूषों द्वारा होता है। पुरुष अगर घर की स्त्री को सम्मान, अधिकार दे तो वह कभी इस ओर नहीं कदम बढ़ायेगी। रामविलास शर्मा कहते है कि– "प्रेमचन्द ने विस्तार से दिखलाया है कि इस समाज व्यवस्था में सम्पत्ति के रक्षक सदाचार की आड़ में वेश्यावृत्ति को प्रश्रय ही नहीं देते, वेश्याओं को जन्म भी देते है।"[5] सुमन को वेश्यावृत्ति से कोई प्रेम नहीं था। वह आदर, सुख एवं स्वतंत्र जीवन जीने के लिए इस ओर अपना कदम बढाई थी। वह भले ही वेश्यावृत्ति से अपना जीवन जोड़ी परन्तु वह केवल नृत्य, गायन तक ही अपने को सीमित रखी। किसी और को अपना तन नहीं सौपती हैं।

नायिका के नाम पर प्रेमचन्द ने निर्मला उपन्यास का सृजन किया। यह लघु उपन्यास है। इसकी कथावस्तु नायिका निर्मला के इर्द–गिर्द चलती है। इसमें स्त्री का मनोविज्ञान तो है ही साथ ही तत्कालीन समाज की दहेज समस्या, अनमेल विवाह को प्रेमचन्द ने बडे ही बखूबी के साथ पाठक के समक्ष रखा है। निर्मला अनमेल विवाह से पीड़ित स्त्री है। उसकी शादी उम्रदराज वकील से होती है जिसके पहले से ही तीन बेटे हैं। वकील तोताराम और निर्मला की उम्र में लगभग पच्चीस साल का अंतर कोई सामान्य अन्तर नही है। वह उसके पिता के उम्र का था। निर्मला को अपने पति में कहीं न कहीं पिता की झलक दिखलायी देती थी। प्रेमचन्द कहते है– "लेकिन निर्मला को न जाने क्यों तोताराम के पास बैठने और हँसने बोलने में संकोच होता था। इसका कदाचित यह कारण था कि अब तक ऐसा ही एक आदमी उसका पिता था, जिसके सामने वह सिर झुकाकर देह चुराकर निकलती थी; अब उनकी अवस्था का एक आदमी उसका पति था।"[6] एक तरफ तोताराम जीवन के सारे अनुभव से पूर्ण थे। वकील होने के कारण कचहरी की पैतरेबाजी जीवन में उतरनी भी स्वाभाविक थी दूसरी तरफ निर्मला बाल सुलभ चंचलता को अभी भी त्याग नहीं पायी थी। उम्र में असमानता होने के कारण दोनों के गुण व्यक्तित्व व्यवहार में भी अन्तर स्पष्ट झलकता था। निर्मला तोताराम के समक्ष स्वयं को असहज महसूस करती है।

निर्मला पति–परायण स्त्री भी है। उसकी कर्तव्यनिष्ठा झलकती है। जब वह अपने घर जाती है कृष्णा से वह कहती है– "मैं सौगन्ध खाकर कहती हूं, जो मेरे मन में उनकी ओर से जरा भी मैल हो। मुझसे जहाँ तक हो सकता है, उनकी सेवा करती हूँ; अगर उनकी जगह कोई देवता भी होता, तो भी मैं इससे ज्यादा और कुछ न कर सकती।"[7] अनमेल विवाह के कारण यद्यपि निर्मला को कष्टपूर्ण जीवन जीना पड़ रहा था किन्तु उसके पति के प्रति कर्तव्य निष्ठा में कोई कमी नहीं होती है। प्रेमचन्द ने निर्मला के अन्दर स्त्रीत्व के वो सारे गुण समाहित किए हैं जो आदर्श रूप में प्रस्तुत की जा सके। समाज की स्त्रियां इनसे प्रेरणा ले सके। ऐसी परिस्थिति में स्वयं को कुंठा, अवसाद से मुक्त रख सके। प्रेमचन्द के स्त्री पात्र टूटने के बजाए सम्बल देते हैं।

निर्मला की मां कल्याणी और निर्मला की सहेली सुधा अन्याय का प्रतिकार करने वाली स्त्री है। अगर प्रेमचन्द के स्त्री पात्रों की तुलना की जाए तो वह बंगला के महान् साहित्यकार शरत्चन्द्र के स्त्री पात्रों से सर्वथा भिन्न है। शरत स्त्री पात्र अन्याय का विरोध नहीं करती है वह अन्दर ही अन्दर घुटती हुई नजर आती है। वही प्रेमचन्द की स्त्री पात्र चाहे वह शिक्षित हो या अशिक्षित अपने अस्तित्व को तलाशती हुई शोषण के विरूद्ध डट कर सामने आती है। वह तत्कालीन समय में स्त्रियों को जगाने का प्रयास करती हैं। रामविलास शर्मा कहते है कि– "'निर्मला' प्रेमचन्द के कथा–साहित्य के विकास में एक मार्ग चिन्ह है। यह पहला उपन्यास है जिसमें उन्होंने किसी सेवासदन या प्रेमाश्रम का निर्माण करके पाठक को झूठी सांत्वना नहीं दी।"[8]

गोदान की धनिया और होरी एक ही परिवार के होने के बावजूद दोनों के चरित्र में स्पष्ट अंतर है। होरी का व्यक्तित्व अपने ऊपर हो रहे अत्याचार को चुपचाप सहन करनें वाला है। वह कहता है– "जब दूसरे के पाँव तले अपनी गर्दन दबी हुई है, तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुशल है।"[9] इसके विपरीत धनिया का मानना था कि– "उनका विचार था कि हमने जमींदार के खेत जोते हैं, तो वह अपना लगान ही तो लेगा। उसकी खुशामद क्यों करें, उसके तलवे क्यों सहलाएँ।"[10] इस प्रकार जहां एक तरफ होरी समझौते के माध्यम से समस्या को सुलझाने का प्रयास करता था वहीं दूसरी तफ धनिया अपने हक के लिए किसी प्रकार का समझौता को महत्व नहीं देती थी। गोदान दुखान्त है। होरी सभी परिस्थितियों को झेलते हुए अन्त में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। परन्तु धनियां उन सभी परिस्थितियों को देखते हुए भी जीवित है। शिवकुमार मिश्र धनिया के व्यक्तित्व के सन्दर्भ में कहते है– "धनिया का यह स्वाभिमान उस भारतीय नारी का स्वाभिमान है, जो पुरुष के प्रति समर्पित होकर भी अपनी अस्मिता बनाये रहती है।"[11]

मालती को प्रेमचन्द शहरी जीवन में पढी–लिखी स्त्री के रूप में गोदान में चित्रित करते हैं। मालती इंग्लैण्ड से डॉक्टर की पढाई की है। वह स्वच्छन्द जीवन जीना चाहती है। उसे शादी जैसे बन्धन स्वीकार्य नहीं। क्यों कि उसका मानना था शादी के बाद स्त्री के जीवन का सम्पूर्ण विकास नहीं हो पाता है। प्रेमचन्द की स्त्री पात्र अपने अधिकार के प्रति संघर्ष करती है। प्रेमचन्द का कोई भी पात्र ऐसा नहीं लगता जो कठपुतली की भांति नाच रहा हो।

कुछ पात्र ऐसे है प्रेमचन्द के साहित्य में जिसमें चली आई परम्परा, रूढिवादिता, शोषण के प्रति विरोध का स्वर है ही नहीं। गूंगे भी प्रतिरोध करते हैं लेकिन यहां होरी जैसा पात्र शोषण को सहन करता हुआ मूक–बधिर की श्रेणी में नहीं दीख पड़ता। वही इसी उपन्यास की स्त्री पात्र धनिया जो गांव की मिट्टी, गोबर में सनी जिदंगी जीती है फिर भी अपने अधिकारों की बात करती है। अपने पति को जमींदार का प्रतिरोध करने के लिए उकसाती हुई नजर आती है। प्रेमचन्द की स्त्री पात्र गांव की होकर भी परिवार के साथ समाज द्वारा हो रहे अत्याचार का सामना डट कर करती है। इसी प्रकार निर्मला अपने अधेड़ पति के पुत्र के प्रति जब उस पर लांक्षन लगाया जाता है। इस पर वह हृदय की सत्यता को लेकर मुखर हो उठती है। वही सेवासदन की सुमन अपमान का घूट पीती हुई मूक बन कर भी प्रतिरोध करती है और अपने सम्मान की तलाश में घर छोड़ कर चली जाती है। अन्ततः कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द अपने उपन्यासों में स्त्रियों को अभिव्यक्ति की आजादी दी और उसे पूर्णतयः जीवंत बनाया। साथ ही स्त्री जीवन के विविध रूपों को बड़ी ही सादगी के साथ रचाया बसाया है।

संदर्भ–सूची :–

1. गबन, प्रेमचंद, अनुभव पब्लिशिंग हाउस अल्लापुर इलाहाबाद– 211006 (उ०प्र०), प्रथम संस्करण– 2018, पृ०– 39
2. प्रेमचन्द और उनका युग, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन प्रा०लि० दरियागंज, नई दिल्ली– 110002, दसवाँ संस्करण– 2018, पृ० 63
3. सेवासदन, प्रेमचन्द, नेशनल पेपरवैक्स, दरियागंज नयी दिल्ली 110002, दूसरा संस्करण– 2012, पृ०– 18
4. वहीं, पृ० 27
5. प्रेमचन्द और उनका युग, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन प्रा०लि० दरियागंज, नई दिल्ली– 110002, दसवाँ संस्करण– 2018, पृ० 36
6. निर्मला, प्रेमचंद, के0बी0एल0 पब्लिशर वाराणसी, पृ०27
7. वहीं, पृ० 86–87
8. प्रेमचंद और उनका युग, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन प्रा०लि० दरियागंज, नई दिल्ली– 110002, दसवाँ संस्करण– 2018, पृ० 62
9. गोदान, प्रेमचन्द, लोकभारती प्रकाशन, एम०जी०रोड, इलाहाबाद, संस्करण– 2005, पृ०5
10. वहीं, पृ० 5
11. प्रेमचन्द की विरासत और गोदान, शिवकुमार मिश्र, लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद– 211001, संस्करण– 2011, पृ० 86

योग-दर्शन में मन की अवधारणा

हिमांशु परिदा*

डॉ. अंजला देवी**

सारसंग्रहः मन सभी अस्तित्वों में सबसे रहस्यमय में से एक है। फ्रायड (1915) ने चेतन मन का वर्णन किया, जिसमें वे सभी मानसिक प्रक्रियाएं शामिल हैं जिनसे हम अवगत हैं, और इसे हिमशैल के सिरे के रूप में देखा जाता है।[1] उदाहरण के लिये, आपको इस समय प्यास लग सकती है और आप एक पेय लेने का निर्णय ले सकते हैं। योगदर्शन में चित का अथवा मन का वैज्ञानिकता और पूर्णता से वर्णन किया हैं। मन में एक बार फिर यह प्रश्न उठता है कि मन क्या हैं? संसार में दो प्रकार के तत्व हैं– एक बाह्य और दूसरा आभ्यन्तर, एक जड़ और दूसरा चेतना[2] आभ्यन्तर तत्व 'चित' है। प्रत्येक दर्शन में इन तत्वों की किसी न किसी रूप में सहायता आवश्यक है। साक्षात्कार करने से ही तत्वों का विशेष ज्ञान प्राप्त है। योगशास्त्र में बौद्धिक एवं अनुभवगम्य विषयों का विचार है। इनमें वस्तुतः विचार के लिये एकमात्र तत्व 'चित', अर्थात् बुदधि है, इसी के विविध स्वरूपों का योगशास्त्र में विचार है। चित शब्द की मूल धातु चित है, चित का अर्थ है ज्ञान। जो की आत्मा के तीन मौलिक गुणों सैट, चित एवं आनंद में से एक हैं। चित ज्ञान का साधन है। इस 'चित' की पांच अवस्थाएँ होती हैं, 'चित्त की भूमि' कहते हैं।[3]
ये हैं 1. क्षिप्त 2. मूढ़ 3. विक्षिप्त 4. एकाग्र तथा 5. निरूद्ध।

कुंजीशब्दः मन, प्रक्रियाएं, योगदर्शन, बाहय, अभ्यंतर चित्त।

प्रस्तावनाः आधुनिक मनोविज्ञान ने निस्संदेह मन और मन की अवस्थाओं पर बहुत अच्छा शोध एवं निदान कार्य किया है। भारतीय प्राचीन दर्शन एवं शास्त्रों में मन को उसकी सम्पूर्णता से परिलक्षित और प्रतिबिंबित किया हैं। महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र में चित्त के रूप में मन को परिभाषित किया है।[4] योगसूत्र में महर्षि पतंजलि ने चित्त की वृत्तिओं और ब्यास भाष्य में चित्त की भूमियो का वर्णन किया है। चित्त की पांच वृत्तिया हैं, प्रमाण, विपर्याय, विकल्प, निद्रा और स्मृति।[5] 'चित्त' जड़ है और 'पुरूष चेतन है। अनादि अविद्या के कारण 'पुरूष' और 'प्रकृति' में परस्पर एक प्रकार का अभेद सम्बन्ध हो जाता है। इससे बुद्धि की वृत्तियों का पुरूष में आरोप होता हैं और 'मैं शान्त हूँ, दुःखी हूँ तथा मूढ़ हूँ इस प्रकार के ज्ञान पुरूष में उदित होते हैं। बुद्धि की विषयाकार वृत्तियाँ पुरूष में प्रतिबिम्बित होती हैं, वही 'पुरूष की वृत्ति' कही जाती हैं। पुरूष का प्रतिबिम्ब 'चित्त' पर पड़ता हैं। उससे 'चित्त' भी अपने को चेतन के समान समझने लगता है और चेतन की तरह कार्य करने लगता हैं, यही चित्त की वृत्ति है।[5]

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः (योगसूत्र 1.2)

चित्त की वृत्तिओं का युक्तिपूर्वक निरोध करके बंधन मुक्त करना योग्य है।[7]

तदा दृष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् (योगसूत्र 1.3)

समाधि लाभ होने पर दृष्टा अपने स्वरूप में स्थित होता है। जब भी आप प्रसन्नता, उत्साह और आनंद का अनुभव करते हैं, तो आप जाने अनजाने आत्म स्वरूप में होते हैं,[8] वृत्तिसारूप्यम् इतरत्र (योगसूत्र 1.4) अन्यथा आप मन की विभिन्न वृत्तियों के साथ रहते हैं, चेतना मन की विभिन्न वृत्तियों में ही रमण करती रहता हैं। मन की वृत्तियाँ कोन सी हैं ? वृत्तयः पञ्चतय्यः किलष्टा अक्लिष्टाः (योगसूत्र 1.5)
मन की वृत्तियाँ पांच प्रकार की है। कभी–कभी यह वृत्तियाँ कठिनाई प्रकट करती हैं और कभी–कभी करती। ये वृत्तियाँ जब धर्म, अधर्म तथा वासनाओं की उत्पत्ति की कारण होती हैं, तब वे क्लेश देती हैं और 'क्लिष्ट' कही जाती हैं। ये जब ख्याति की देने वाली होती हैं, तब वे 'अक्लिष्ट' कहलाती हैं। इन वृत्तियों से 'संस्कार' होते हैं और 'संस्कार' से 'वृत्तियाँ' होती हैं। इस प्रकार वृत्ति–संस्कार–चक्र' अहर्निश चलता रहता हैं।

*** शोधछात्र, योग विज्ञान विभाग, श्री श्री यूनिवर्सिटी, कटक, ओडिशा– 754006।**

**** असिस्टेंट प्रोफेसर, योगविज्ञान विभाग, श्री श्री यूनिवर्सिटी, कटक, ओडिशा– 754006।**

चित्त की पांच भूमियाँ 1. क्षिप्त 2. मूढ़ 3. विक्षिप्त 4. एकाग्र तथा 5. निरूद्ध हैं।

1. क्षिप्तः रजोगुण के प्रभाव से 'चित्त' बहुत चञ्चल होकर सांसारिक विषयों में इधर–उधर भटका उस व्यवस्था में चित्त को 'क्षिप्त' कहते हैं। जैसे–दैत्य, दानवों का चित्त अथवा धन के मद से उन्मत लोगों का चित्त।[9]

2. मूढ़ः तमोगुण के उद्रेक से 'चित्त' मूढ़ हो जाता हैं, जैसे– कोई निद्रा में मग्न हो तो उसके चित्त को 'मूढ़' कहते हैं। राक्षसों के, पिशाचों के तथा मादक द्रव्य खाकर उन्मत पुरूषों के 'चित्त' मूढ़ कहे जाते हैं।

3. विक्षिप्तः सत्व के आधिक्य रहने पर भी, रजस् के कारण सफलता और असफलता के बीच में, कभी इधर और कभी दूसरी तरफ चित्त की वृत्ति भटकती हैं। कहते हैं कि देवताओं का तथा प्रथम भूमि में स्थित जिज्ञासुओं का चित्त विक्षिप्त होता है।

4. एकाग्रः विशुद्धसत्व के उद्रेक से एक ही विषय में लगे हुए चित्त को एकाग्र कहते हैं। जैसे निर्वात दीप शिखा स्थिर होकर एक ही ओर रहती है, इधर–उधर नहीं जाती।

5. निरूद्धः चित्त की सभी वृत्तियों के निरूद्ध हो जाने पर भी उन वृत्तियों के संस्कार मात्र चित्त में रह जाते हैं। उन संस्कारों से युक्त चित्त निरूद्ध कहा जाता है। चित्त त्रिगुणात्मक है। तीनों गुणों के उद्रेक क्रमशः समय–समय पर चित्त में होते रहते हैं। उसके अनुसार चित्त के भी तीन रूप होते हैं। प्रख्या, प्रवृत्ति तथा स्थिति।[10]

ये वृत्तियाँ पाँच प्रकार की होती हैं– प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा तथा स्मृति। इन्हीं में चित्त की अन्य सभी वृत्तियाँ अन्तर्भूत हैं।

प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः (योगसूत्र–1.6)[11]

मन की पांच तरह की वृत्तियाँ हैं–

- प्रमाण
- विपर्यय
- विकल्प
- निद्रा
- स्मृति

मन निंरतर किसी न किसी वृत्ति में उलझा रहता है। जब भी आप तर्क वितर्क से प्रमाण खोजने, किसी गलत धारणा में अथवा कपोल कल्पना या भूतकाल की स्मृति और निद्रा में भी नहीं होते तब योग होता है। जब भी आप सुन्दर प्रकृति के साथ होते हैं, अथवा क्रिया प्रामणायम के बाद प्राण ऊर्जा के उच्च स्तर को महसूस करते हैं तब मन इन पांचों वृत्तियों से मुक्त होता हैं। और आप स्वयं में स्थित होते है और यही योग्य है।

प्रमाण–मन की पहली वृत्तिमहर्षि पतंजलि कहते हैं, इस शोध पत्र में हम पहली वृत्ति प्रमाण को समझते हैं। योग में प्रत्यक्ष अनुमान और आगम ये तीन प्रमाण हैं। मन प्रमाण खोजता रहता है, मन को निरंतर स्पष्ट ठोस प्रमाण की चाह रहती है, यह मन की गतिविधि का एक तरीका है।

प्रमाण तीन तरह के हैं–

1.7 प्रत्यक्षनुमानागमाः प्रमाणानि–

- प्रत्यक्ष
- अनुमान
- आगम

प्रत्यक्ष अर्थात जो स्पष्ट है, आपके अनुभव में है। अनुमान अर्थात जो उतना जो उतना स्पष्ट नहीं है, आप उसे मान लेते है, विश्वास कर लेते है। आगम, अर्थात शास्त्र क्योंकि कहीं कुछ लिखा है इसीलिये आप उसे मान लेते है।[12]

विपर्यय

1.8 विपर्ययो मिथ्याज्ञानम् अतद्रूपप्रतिष्ठम्।

प्रमाण में मन तर्क विर्तक और जानकारियों में लगा रहता है अन्यथा मन मिथ्या ज्ञान अथवा गलत समझ में उलझ जाता है। विपर्यय किसी वस्तु के मिथ्या ज्ञान को विपर्यय कहते हैं।[13]

इस क्षण यदि आप सजगतापूर्वक परखें तो पाएंगे कि मन या तो प्रमाण में लगा होता है या फिर किसी मिथ्या ज्ञान में, वह ऐसा कुछ मान बैठता है जो वास्तविक नहीं होता है। अधिकतर समय हम अपने विचार, भावनाएं और राय दूसरों पर थोपते रहते हैं, हमें ऐसा लगता है कि वह इस तरह के हैं, मल की इसी वृत्ति को विपर्यय कहते हैं। एकदम से कभी लोगों को लगता है कि उन्हें कोई प्रेम नहीं करता कई बार बच्चों (बच्चों) को ऐसा लगता है कि उनके माता–पिता उनसे प्रेम नही करते, ऐसे में माता पिता परेशान होते हैं कि कैसे वो अपने प्रेम को प्रमाणित करें। विपर्यय आ जाए तो प्रमाण का स्थान नहीं रहता, तर्क विफल हो जाता है। मन की दूसरी वृत्ति विपर्यय में किसी भी तरह कोई तर्क काम नहीं करता, केवल गलत समझ बनी रहती है। मन के भीतर ऐसे में तर्क उठता भी है तो बार–बार पीछे चला जाता है और मिथ्या ज्ञान बना रहता है।

विकल्प

शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यों विकल्पः (yogasutra 1.9)[14]

मन की तीसरी वृत्ति विकल्प है, यह एक तरह का मतिभ्रम हैं, जैसे कोई कुछ कल्पना कर ले कि दुनिया समाप्त होने वाली है। वास्तविकता में ऐसा कुछ भी होता नहीं है बस कुछ मन के भीतर शब्द चलते हैं। ऐसे सभी व्यर्थ डर, कपोल कल्पना और निराधार शब्द जिनका कोई अर्थ नहीं है, ऐसे विचार और ऐसी वृत्ति को विकल्प कहते हैं।

विकल्प–शब्द ज्ञान से उत्पन्न होने वालाः किन्तु वस्तु शून्य अर्थात् जिस वस्तु का ज्ञान हो उस वस्तु का अत्यन्त अभाव रहे, ऐसे ज्ञान को विकल्प कहते है।[15]

निद्रा– किसी वस्तु के अभाव ज्ञान को आलम्बन करने वाली वृत्ति निद्रा है। सोकर उठने वाले पुरूष को जाग्रत् अवस्था में मैं खूब सोया, मेरा मन शान्त है, मैनें कुछ नहीं समझा इत्यादि बोध होते हैं। इसलिये निद्रा को भी वृत्ति कहते हैं।

अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा (योगसूत्र 1.10)[16]

मन यदि इन तीन वृत्तियों में से किसी एक में भी नही होता है तब मन चौथी अवस्था निद्रा, नींद में चला आता है।

स्मृति

1.11 अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः

मन की पांचवी वृत्ति स्मृति हैं, अर्थात पुराने अनुभवों को याद करना, जो बीत चुके हैं।[17]

अब देखो, जब तुम जागृत हो तो क्या तुम चारों वृत्तियों में से किसी एक में लगे हो, तो वह ध्यान नहीं हैं, योग नहीं है। क्या तुम मुझे कुछ प्रमाण ढूंढने के लिये सुन रहे हो? क्या तुम्हारे भीतर कोई वाद विवाद है? क्या तुम किसी मिथ्या ज्ञान में फंसे हो, किसी धारणा में कि सब कुछ ऐसा है? स्मृति–अनुभूत किये विषयों का ठीक–ठीक वैसा (असम्प्रमोष) ही स्मरण होना स्मृति है। ये ही वृत्तियाँ कार्य उत्पन्न कर, सूक्ष्म रूप से संस्कार के रूप में हमारे अन्तःकरण में रहती हैं। समय पाकर सादृश्य आदि के द्वारा उबुद्ध होने से ये संस्कार पुनः वृत्ति का रूप धारण करते हैं। यह चक्र सतत चलता रहता है।

इन्हीं वृत्तियों के निरोध से क्रमशः तत्वज्ञान होता है और दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति होती है। इन्हीं वृत्तियों का निरोध करना योग है।

मन की वृत्तियों का निरोध

1.12 अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः

मन की इन प्रबल वृत्तियों का निरोध हैः अभ्यास और वैराग्य।[18]

महर्षि पतंजलि के अनुसार, चित्त या व्यक्तित्व परिसर का नियमन है जो 17 घटकों से बना हैं, केवल प्राण की उपस्थिति में ही हो सकती हैं जो कि सार्वभौमिक प्रेरक शक्ति है। मन इंद्रियों द्वारा एकत्रित सूचनाओं का एक नेटवर्क है, जो स्थूल शरीर में बाहरी चीजों के साथ बातचीत के माध्यम से मौजूद होते हैं।

ज्ञान का प्रत्येक अंश मन पर एक छाप छोडता हैं, जिसे संस्कार कहा जाता है और मन इन्हीं संस्कारों से बना होता है। विचार, शारीरिक क्रियाएं और भावनाएं सभी संस्कारों का मन पर छाप छोडती हैं। अगर कोई निशान/संस्कार नहीं है तो कोई मन नहीं हैं। ये छाप उन वस्तुओं/भावनाओं के लिये पहचान पत्र के रूप

में भी काम करते हैं जिनके द्वारा वे उत्पन्न हुए थे जिससे मन उस वस्तु को जल्दी से पहचानने की इजाजत देता है जिसकी छाप पहले से मौजूद हैं। संस्कार पदार्थ के सूक्ष्मतम रूप से ज्यादा कुछ नहीं हैं जो प्रकृति तन्मात्राओं से विकसित हुए हैं जो संरचनात्मक भौतिक स्तर पर ध्वनि, स्पर्श, आकार, स्वाद और गंध की इंद्रियां हैं। परिणामस्वरूप मन मन जो संबंधित इंद्रियों के तन्मात्राओं से बने संस्कारों से बना है इंद्रियों की जागरूकता का एक सूक्ष्म अंग माना जाता है। नतीजतन, हम जो कुछ भी सुनते हैं, देखते है या सूंघते हैं उसका प्रभाव मन की संरचना पर पड़ता है।[19]

संस्कारों और उनके सम्बन्धों को बार–बार समझने के लिये मन को सूक्ष्मता से समझना आवश्यक है, एक प्रक्रिया जिसे मनन के रूप में जाना जाता है। मनन एक अटूट वैचारिक प्रक्रिया है, जो अपने स्वभाव से एक जागृत मन में निरंतर जारी रहती है, ज्ञान के रूप में संज्ञानात्मक इंद्रियाँ द्वारा प्राप्त संवेदी आदानों की स्मृति का निर्माण और भंडारण करती हैं। व्युत्थान संस्कार और निरोध संस्कार दो प्रकार के संस्कार हैं जो निर्मित होते हैं। व्युत्थान संस्कार सांसारिक सुख से जुडे अनुभवों से बनते हैं, और ये संस्कार मन को भौतिक दुनिया में लौटने और उन खुशियों को फिर से जीने के लिये प्रोत्साहित करते हैं। दूसरी ओर, निरोध संस्कार, संवेदी आदानों के छाप हैं जब कोई व्यक्ति अपने अस्तित्व के आध्यात्मिक सत्य का सामना करता है। दोनों प्रकार के संस्कार मन के भीतर तीव्रता से उदित और अस्त होते हैं, यही कारण है कि मन अधिकांश समय भौतिकवाद और आध्यात्मिकता के बीच झूलता रहता हैं।

इस प्रकार मन की योगिक अवधारणा के अनुसार मन का स्रोत प्रकृति है, इस प्रकार यह पदार्थ का उत्क्रमण होने के कारण पदार्थ का सबसे सूक्ष्म रूप है। संस्कारों का जाल, जो मन के रूप में निरंतर निर्मित और अंकित किया जा रहा हैं, एक प्रकार का भ्रामक चक्रव्यूह हैं जो वास्तविक, सार्वभौमिक स्व (पुरूष) को मन के दूसरी ओर स्थित रखता है। एक बार जब मन अथवा चित्त की गति योग के अभ्यास से स्थिर हो जाती है, तो वह स्पष्ट रूप से देख सकता है और सार्वभौमिक आत्म से जुड सकता है जो कि योग का अंतिम लक्ष्य है।

मन और आत्म के मिश्रित अनुभव को जीवात्मा[20] कहा जाता है जैसा मन है, वैसा ही व्यक्ति है। प्राण प्रकृति में निहित ऊर्जा जो मन की गतिविधियों को संस्कारों का निर्माण– संभव बनाती है; इस प्रकार प्राण वहां क्रिया में आता है जहां मन है। प्राण के कारण मन कभी सक्रिय तथा कभी निष्क्रिय हो जाता है। एक को नियंत्रित करने से दूसरे को नियंत्रित करने में मदद मिल सकती है। चूंकि हमारा तंत्रिका तंत्र हमारे शरीर स्वास्थ्य की स्थिति को प्रभावित करती है। मानसिक स्वास्थ्य या मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं जैसे शब्द इस मन–शरीर संबंध से प्राप्त हुए हैं, शरीर को वास्तव में मन का प्रक्षेपण माना जाता है।

योग चिकित्सा की सार्वभौमिक सफलता इस बात का प्रमाण है कि सकारात्मक मन संरचनाएं शरीर को ठीक करने में मदद करती हैं जबकि नकारात्मक मनोवैचारिक क्रियाएं सभी बीमारियों का कारण हैं।[21] मन को बदलकर, मानसिक स्वच्छता का अभ्यास करके, अपने चारों ओर ब्रहमांड से सकारात्मक, प्रेमपूर्ण देखभाल करने वाली और मैत्रीपूर्ण संवेदी उत्तेजनाओं को प्राप्त करने और प्राप्त करने के द्वारा अच्छा स्वास्थ्य प्राप्त किया जा सकता है। बाहरी दुनिया से मन को प्राप्त होने वाली संवेदी उत्तेजनाओं का प्रकार (जो इसकी संरचना को प्रभावित करेगा) मन/व्यक्ति के अहंकार इच्छाओं और दृष्टिकोण (गुण जो गुना प्रमुख है) द्वारा फिल्टर किया जाता है।

यदि पुरूष (सार्वभौमिक आत्म) और मन के बीच एक तामसिक अहंकार स्थित हैं, तो सार्वभौमिक आत्म (पुरूष) से आने वाले सभी संकेत मन में अवरूद्ध रहते हैं। इस प्रकार भले ही सही संवेदी उत्तेजनाएं आस पास मौजूद हों, अहंकार इच्छाएं और दृष्टिकोण उन्हें मन तक पहुंचने से रोकेगें। सूक्ष्म पदार्थ (तन्मात्रा) स्थूल पदार्थ (महाभूत) में संघनित होता है, मन की संरचना के अनुसार भौतिक शरीर का निर्माण करता हैं।

उपसंहार :

भारतीय चिंतन में मन, को अंतः करण चतुष्टय के रूप में भी दिखाया गया है। मन, बुद्धि चित्त एवं अहंकार। ये मन को उसकी सम्पूर्णता से परिभाषित भी करता है तथा उसकी क्रिया पद्धति को विस्तार से भी समझाता है। मन प्रकृति के आधारभूत घटकों में से एक है। मन का नियमन और निरोध जीवन के समस्त दुखों से मुक्ति दिलाता है। समाधि और आत्मस्वरूप की प्राप्ति मन की पूर्णता है।

References:-

1. Mcleod, D. S (2009, may 15). Freud and the Unconscious Mind. Retrieved February 10, 2021 from www. simplypsychology. https:// www. simlypsychology. org/ uonscious- mind. Html.
2. आचार्य, प. श. (2011) सांख्य एवं योग दर्शन (Vol. प्रथम) (म. भ. शर्मा, Ed) मथुरा उत्तर प्रदेश भारतः युग निर्माण योजना प्रेस–281003 (पृष्ठ सं0 92)
3. तीर्थ, स. ओ0 (2008) पातंजलयोगप्रदीप (vol. 31) गोरखपुर उत्तर प्रदेश, भारत गीताप्रेस गोरखपुर–273005 (पृष्ठ सं0 82)
4. ओशो, (2006) पतंजलि योगसूत्र भाग 1 (vol. प्रथम) (य. चिन्मय vol Ed.) नयी दिल्ली, दिल्ली, भारतः फ्यूजन बुक्स 110020 (पृष्ठ सं0 46)
5. तीर्थ, स0ओ0 (2008) पातंजलयोगप्रदीप (vol. 31) गोरखपुर उत्तर प्रदेश, भारत गीताप्रेस गोरखपुर–273005 (पृष्ठ सं0 135)
6- शंकर श. श. (2020, मार्च 10) मन की वृत्तियाँ– 1. Retrieved from https:// www. artofliving.org: https:// www. artofliving.org/in-hi/yoga/patanjali-yogasutra/5-modulations- of – mind part-1
7. गोयनका, श. (2012) योग दर्शन गोरखपुर उत्तर प्रदेश भारत गीताप्रेस गोरखपुर–273005 (पृष्ठ सं0 3)
8. गोयनका, श. (2012) योग दर्शन गोरखपुर उत्तर प्रदेश भारत गीताप्रेस गोरखपुर–273005 (पृष्ठ सं0 5)
9. Hindi, W. O. (2020, March 21). Retrieved from https:// www. worldofhindi.com: www. worldofhindi.com/essay-on-the- concept- of chitta-in-hindi/
10. आचार्य, प. श. (2011) सांख्य एवं योग दर्शन (Vol. प्रथम) (म. भ. शर्मा, Ed) मथुरा उत्तर प्रदेश भारतः युग निर्माण योजना प्रेस–281003 (पृष्ठ सं0 96)
11. तीर्थ, स. ओ0 (2008) पातंजलयोगप्रदीप (vol. 31) गोरखपुर उत्तर प्रदेश, भारत गीताप्रेस गोरखपुर–273005 (पृष्ठ सं0 86)
12. प्रकाश, व. (2020 अगस्त 30) योग दर्शन के अनुसार प्रमाण कितने प्रकार के होते हैं। Retrieved अप्रैल 10 2021 https:// www. vedarthprakash.in: https:// www. vedarthprakash.in/2020/08 maharsi%atanjali% 20yoggdarshan% 20 pramaan-Pratyaksh-Anuman- Upmaan- Shabd. html.
13. Govindan, M (2000) Kriya Yoga Sutras of Patanjali and the Siddhas (Vol. Second). Banglore, Karnataka, Bharat: Kriya yoga order of Acharyas Trust – 560055 (Page No. 9)
14. तीर्थ, स. ओ0 (2008) पातंजलयोगप्रदीप (vol. 31) गोरखपुर उत्तर प्रदेश, भारत गीताप्रेस गोरखपुर–273005 (पृष्ठ सं0 96)
15. तीर्थ, स. ओ0 (2008) पातंजलयोगप्रदीप (vol. 31) गोरखपुर उत्तर प्रदेश, भारत गीताप्रेस गोरखपुर–273005 (पृष्ठ सं0 96)
16. आर्य, ड. स. (2018 मई 6) Yoga Sutra–10 Retrieved from https:// drsomveeryoga.com/: https:// drsomveeryoga.com/ yoga – sutra-10/
17. तीर्थ, स. ओ0 (2008) पातंजलयोगप्रदीप (vol. 31) गोरखपुर उत्तर प्रदेश, भारत गीताप्रेस गोरखपुर–273005 (पृष्ठ सं0 97)
18. पाल, ड. ब. (2004) महात्मा गांधी के न्द्रीय विश्वविद्यालय, Retrieved मई 2021 15, 2021 From http:// www.mgcub.an.in/:http://www.mgcub.ac.in/pdf/material/20200519135641008 6a40579.pdf
19. Varma, C. (2011, July 24) Impressions of Mind. Retrieved May 15, 2021 from https:// www. speakingtree. in /:https:// www. speakingtre.in/blog/impressions- of- mind
20. Makwana, M (2013, April 15). What is the difference between Atma Jivatma and Paramatma? Retrieved May 20, 2021 from https:/ www. Speakingtre.in/ https: //www. speakingtree.in/blog/what is the difference between atma- jivatma and paramatma
21- Timothy Mccall, M (2008 June 20). Understanding the Mind- body connection. Retrieved 01 2021 from https:/ www. yogajournal.com/: https:// www. yogajournal.com /teach/yoga therapy- and mind body connection- part-1/

प्रेमचंद की दलित-जीवन से जुड़ी कहानियों का सांदर्भिक-विवेचन

डॉ. रमेश यादव*

साहित्य और समाज का संबंध घनिष्ठ रहा है। समाज में जो घटित होता है उसका सीधा प्रतिबिम्ब साहित्य में पड़ता है, कोई भी साहित्यकार को अपने युग की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और नैतिक गतिविधियों से प्रभावित हुए बिना रहना संभव नहीं है। एक महान लेखक युग–द्रष्टा भी होता है और युग–प्रवर्तक भी। प्रेमचंद भी एक ऐसे ही लेखक हैं जिनको विविध परिस्थितियों ने पूरी तरह से प्रभावित किया। युगीनकाल की तमाम समस्याओं को प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं के माध्यम से बखूबी उकेरा है। प्रेमचंद सामाजिक क्षेत्र में शोषण, उत्पीड़न, नैराश्य, गरीबी और विवशता देख रहे थे। एक ओर जमींदार और किसान का संघर्ष, पूंजीपतियों और सर्वहारा वर्ग का संघर्ष, महाजन और धनहीन गरीब का संघर्ष और दूसरी ओर परंपरा और आधुनिकता का संघर्ष, पाश्चात्य और भारतीयता का संघर्ष तथा अस्पृश्यता और सुधारवाद का संघर्ष भी चल रहे थे। प्रेमचंद का कथा साहित्य इससे अछूता नहीं है। प्रेमचंद की कहानियों में सुधारवादी प्रवृत्ति का अनोखा चित्रण है। उनकी कहानियों के पात्र सामाजिक विषमता से अभिशप्त, पीड़ित, शोषित होकर दयनीय जीवन जीने के लिए बाध्य है। प्रेमचंद की दलित कहानियों में ठाकुर का कुआँ, दूध का दाम, शूद्रा, सद्गति, मंदिर, मंत्र, पूस की रात, दो कब्रें, गरीब की हाय, सती, विध्वंस, अग्नि–समाधि, आगा–पीछा, कफन, सौभाग्य के कोड़े और घासवाली इत्यादि प्रमुख हैं। 'ठाकुर का कुआँ (1932) दलित जीवन की विभीषिका को प्रस्तुत करने वाली एक बेहतरीन कहानी है। प्रेमचंद ने गंगी और जोखू जैसे पात्रों के माध्यम से एक टिपिकल गांव के यथार्थ को चित्रित किया है। गंगी का विद्रोही चिंतन मन कह उठता है–''हम क्यों नीच हैं और ये लोग क्यों ऊंच हैं? इसलिए कि ये लोग गले में तागा डाल लेते हैं? यहाँ तो जितने हैं, एक से एक छंटे हैं?... किस बात में हैं हमसे ऊंचे? हां, मुंह में हमसे ऊंचे हैं। हम गली–गली चिल्लाते नहीं कि हम ऊंचे हैं, हम ऊंचे हैं। कभी गांव में आ जाती हूँ तो रसभरी आंखों से देखने लगते हैं, जैसे सबकी छाती पर सांप लोटने लगता है, परंतु घमंड यह कि हम ऊंचे हैं।''[1] प्रस्तुत पंक्तियों से स्पष्ट है कि प्रेमचंद ने सवर्ण–समाज की पतनशीलता को व्यक्त किया है और दलित वर्ग की सोच एवं प्रगतिशील चिंतन को भी बताया है। प्रेमचंद बताते हैं कि यह कैसा समाज है? कि पानी को भी एक जाति के नजरिये से देखता है। ठाकुर के कुएं का पानी केवल ऊंच जाति के लोगों के लिए है। निम्न जाति के लिए नहीं। ऊंच जाति के कुएं का पानी उनके लिए अमृत है। यह अस्पृश्यता की चरम–सीमा है। प्रेमचंद ने लिखा है–''घड़े ने पानी में गोता लगाया, बहुत ही आहिस्ता। जरा भी आवाज न हुई। गंगी ने दो–चार हाथ जल्दी–जल्दी मारे। घड़ा कुएं के मुंह तक आ पहुंचा– कोई बड़ा शहजोर पहलवान भी इतनी तेजी से उसे न खींच सकता था।''[2] यह ग्राम्य जीवन एवं संस्कृति के विविध रूपों एवं पक्षों का चित्रण है। इस चित्रण में अत्यधिक सच्चाई तथा घनीभूत संवेदनाएं अभिव्यक्त हैं। कमल किशोर गोयनका ने लिखा है–''ठाकुर का कुआं में गांव में दलित समाज के साथ अत्याचार, भेदभाव एवं पानी तक से वंचित भाव का चित्रण है।''[3]

भारतीय समाज में यथार्थ का स्वरूप काफी स्तब्ध और हृदयविदीर्ण करने वाला है। जो भारत में जीवन के विविध अन्तर्विरोधों को बड़े स्तर पर उजागर करता है। प्रेमचंद के कथा–साहित्य में उन तमाम महंत, पण्डे और पुरोहितों का चित्रण मिलता है। जो कहीं–न–कहीं नवजागरण कालीन की दृष्टि से देखें तो पायेंगे कि पूरा समाज ही धर्मोपजीवियों के फंदे में फंसा हुआ है। इन महंत, पण्डे और पुजारियों का भले ही कमोबेश राजनीतिक वर्चस्व रहा हो या नहीं लेकिन मनोवैज्ञानिक वर्चस्व जोरदार है। इस नजरिए से प्रेमचंद ने दलित जीवन की दुर्दशा को अभिव्यक्त किया है। किस प्रकार सवर्ण वर्ग अपना वर्चस्व कायम करने के लिए भले ही उसका मानसिक, शारीरिक और आर्थिक शोषण करने में कोई परहेज नहीं करता लेकिन मन में उसके प्रति हेय दृष्टि पाले रहता है। 'दूध का दाम' कहानी में एक भंगी बच्चे की है कि जिसकी मां ने जमींदार के बच्चे को अपना दूध पिलाकर पाला था, मां उसे जीवन दान देती है लेकिन वही जब मर जाती

***अध्यक्ष हिंदी विभाग, महारानी काशीश्वरी कॉलेज, कोलकाता।**

है तो उसका बच्चा जमींदार के बच्चे का जूठन खाने के लिए विवश है। प्रेमचंद ने यहां दयनीय स्थिति और संवेदना का यथार्थ चित्रण करते हैं। प्रेमचंद ने लिखा है–''भूंगी अपने बच्चे को दिन–रात में एक–दो बार से ज्यादा न पिला सकती थी। उसके लिए ऊपर के दूध का प्रबंध था। भूंगी का दूध बाबूसाहब का भाग्यवान बालक पीता था। और यह सिलसिला बारहवें दिन भी न बंद हुआ। मालकिन मोटी–ताजी देवी थीं, पर जब की कुछ ऐसा संयोग कि उन्हें दूध हुआ ही नहीं,...भूंगी दाई भी थी और दूध–पिलाई भी।''[4] प्रेमचंद ने दलित समाज पर होने वाले सामंती अत्याचारों का भी सजीवता से चित्रण किया है। 'सदगति' का दुखी कितने धार्मिक उत्साह से पुत्री के शादी की साइत निकलवाने के लिए झोपड़ी में झाड़ू–बुहार कर रहा था, सीधा पीसान का बन्दोबस्त कर रहा था, इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए बाबाजी का बेगारी भी करता है लेकिन अब उसी बाबाजी के द्वार पर लाश बनकर गिरा है। उसकी स्त्री और बेटी दहाड़ें मार–मार कर रो रही थीं। प्रेमचंद ने लिखा है–''पंडिताइन–'चमार का रोना मनहूस है।' पंडित–'हाँ, बहुत मनहूस।' ... पंडित–''चमार था ससुरा की नहीं, साध–असाध किसी का विचार है इन सबों।''[5] इसी कड़ी में प्रेमचंद ने 'पूस की रात' कहानी में हल्कू ने कंबल खरीदने के लिए किसी तरह तीन रूप्ये एकत्रित करता है, लेकिन दरवाजे पर महाजन आ उसे भी ले लेता है। उसकी पत्नी रूपये देना नहीं चाहती थी, पर हल्कू उदास मन से कहता है कि 'क्या गाली खाऊं'? हल्कू की चिंता माल गुजारी भरने की थी। यह दलित समाज का शोषण ही तो था कि खेत में पैदावार हो या न हो, सूखा पड़े, पाला पड़े, बाढ़ आये उससे सामंती समाज को लेना–देना नहीं था, किसी भी हाल में मालगुजारी चुकाना अनिवार्य था। प्रेमचंद ने मुन्नी के माध्यम से लिखते हैं–''मैं कहती हूं, तुम क्यों नहीं खेती छोड़ देते? मर–मर काम करो, उपज हो तो बाकी दे दो, चलो छुट्टी हुई। बाकी चुकाने के लिए ही तो हमारा जन्म हुआ है। पेट के लिए मजूरी करो। ऐसी खेती से बाज आए। मैं रूपये न दूंगी, न दूंगी।' ...मगर यह कहने के साथ उसकी तनी हुई भौंहे ढीली पड़ गईं।''6

समाजिक–आर्थिक व्यवस्था ने दलितों की चेतना को इस तरह कुन्द कर दिया है कि मानवीय संवेदना और समाजिक नैतिक सोच उनके लिए नगण्य थीं। 'कफन' कहानी इस मामले में बेजोड़ है। कहानी के दलित पात्रों में घीसू और माधव ने अमानवीयता की सीमा को भी पार कर जाते हैं। आर्थिक विषमता एवं महाजन प्रथा ने उस समय की पारिवारिक संबंधों को भीतर से खोखला कर दिया था। अब घीसू–माधव अपने ही खून के बाप–बेटे न थे बल्कि वे दो अनजान व्यक्ति बन चुके थे। प्रेमचंद ने लिखा है–''जिस समाज में रात–दिन मेहनत करने वालों की हालत उनकी हालत से बहुत कुछ अच्छी न थी और किसानों के मुकाबले में वे लोग, जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा संपन्न थे, वहां इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी।''[7] प्रेमचंद की कहानियों में ग्रामीण जीवन, समाज एवं संस्कृति का बड़ा ही विस्तृत और स्पष्ट चित्रण हुआ है। चित्रण में रहन–सहन, परंपरा और रूढ़ियां भी टूटी हैं। जैसे 'मंदिर' (1927) कहानी में दलितों का मंदिर प्रवेश और कट्टर धार्मिक विरोध भी होता है। प्रेमचंद ने लिखा है–''पुजारी' मंदिर का द्वारा खुला है। मैंने खट–खट की आवाज सुनी।' सहसा सुखिया बरामदे से निकलकर चबूतरे पर आई और बोली, 'चोर नहीं है मैं हूं। ठाकुरजी की पूजा करने आई थी। अभी तो अंदर गई भी नहीं, मार हल्ला मचा दिया।' पुजारी ने कहा 'अनर्थ हो गया! सुखिया मंदिर में जाकर ठाकुरजी को भ्रष्ट कर आई।''[8] सुखिया मंदिर प्रवेश कर मंदिर ही भ्रष्ट नहीं करती बल्कि वर्षों से चले आ रहे रूढ़ि–मान्यताओं को भी चुनौती देती है और पंडिताई समाज की कलई खोल कर रख देती है। वर्तमान समय में भी प्रस्तुत कहानी की प्रासंगिकता है आज भी भारत देश के ऐसे बहुत से गांव हैं जहां दलितों को मंदिरों में जाने की मनाही है। लेखक अति घनीभूत संवेदना के धरातल पर समाज की अति सचाई को व्यक्त करता है। इस प्रकार 'घासवाली' (1929), कहानी में दलित ग्रामीण स्त्री द्वारा अपनी सतीत्व–रक्षा और उच्च जाति के प्रति विद्रोह एवं उसका शमन करने की यथेष्ट चेष्टा की गई है। मुलिया महावीर की पत्नी है। चमार परिवार के इस दम्पत्ति का एकमात्र सहारा उनका घोड़ा है जो इक्का खींचता है। मुलिया दिन भर घास छीलकर घोड़े का पालन–पोषण करती है। सवर्ण के लोग मुलिया का स्पर्श पाने के लिए घात लगाये बैठे रहते हैं। चैन सिंह उसी वर्ग का प्रतिनिधि चरित्र है। प्रेमचंद ने लिखा है–''चैन सिंह ने कई गज के फासले से ही रूककर कहा, 'डर मत, डर मत, भगवान जानता है! मैं तुझसे कुछ न बोलूंगा। जितनी घास चाहे छील ले, मेरा ही खेत है। मुलिया के हाथ सुन्न हो गये। खुरपी हाथ में जम सी गई। घास नजर ही न आती थी। जी चाहता था, जमीन फट जाए और मैं समा जाऊं। जमीन आंखों के सामने तैरने लगी।''[9] घासवाली के ढ़ांचे में चाहे जो दोष हों, इसके कथ्य में चाहे जितना वैचारिक बिखराव

हो, पर यह पाठक की रूचि को बनाए रखने में सफल कहानी है। प्रेमचंद ने अछूतोद्धार की समस्या को अपनी कहानियों में बखूबी उठाया है। जो कि भाव–पक्ष का सामाजिक धरातल ही प्रेमचंद की कहानियों का मूल धरातल है। जिसमें प्रेमचंद ने समकालीन समाज की प्रायः इकाइयों और सम्पूर्ण समस्याओं को लिया है।

प्रेमचंद अपने कथा साहित्य में ग्रामीण–जीवन में जाति या बिरादरी की महत्ता और उसके सामर्थ्य को बहुत बारीकी से हमारे समक्ष लाते हैं। किसान या गांव के लोग बिरादरी से बाहर की सोच ही नहीं सकते हैं। शादी–ब्याह, जंम–मृत्यु, भजन–मंगल सब कुछ जाति पर निर्भर है। लेकिन प्रेमचंद इसी बिरादरी या जाति को तोड़ना चाहते हैं और व्यक्ति या मनुष्य के स्तर पर ऐसी चीजों को रखना चाहते हैं। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने लिखा है–''सामाजिक रीति–रिवाज में जाति, धर्म और परंपरा वह ऊंची दीवार है जहां मानवता सदियों से बंदी है। कोई अछूत के नाम पर बहिष्कृत है और कोई वेश्या या पतित के नाम से।''[10] इस तरह ग्रामीण क्षेत्र में छुआछूत, ईर्ष्या, वर्ण–व्यवस्था, जमींदारी प्रथा, पारस्परिक वैमनस्य, ईर्ष्या, द्वेष, पुलिस व्यवस्था का अत्याचार, बेगार, अनमेल विवाह, मजदूर–किसानों आदि के प्रश्न गांवों में आज भी बना हुआ है। फिर भी प्रेमचंद ग्राम–समाज के जीवन एवं संस्कृति से जुड़ी ओ तमाम समस्याओं के समाधान के वास्ते कमोबेश मार्ग भी सुझाते हैं। वे जानते हैं कि मजदूर–किसान 'नरम चारा' हैं। किन्तु सम्पूर्ण आर्थिक–व्यवस्था किसान एवं मजदूरों पर ही टिका हुआ है। इसकी रक्षा के लिए प्रेमचंद निर्धनों, काश्तकारों और मजदूर–किसानों की पूर्ण अधिकार एवं स्वतंत्रता चाहते हैं। अस्पृश्यता की समस्या आज भी हमारे भारतीय समाज के मूल में है। गांधी, जैसे प्रतिरोधी शक्तियों के कई प्रयत्नों के बावजूद भी यह समस्या समाज को, विशेषकर गांव समाज को अंदर से खोखला कर रही थी। गांधी जी जानते थे कि बिना सामाजिक एकता के स्वतंत्रता की बात पूरी तरह से निरर्थक है। प्रेमचंद भी अपने साहित्य में इसी प्रकार के विचार रखते हैं। उन्होंने तथाकथित ऊंची जाति के लोगों के दुष्कर्मों का अत्यंत यथार्थवादी नजरिये से चित्रण किया है। कभी अपने चरित्रों के जरिये से और कभी खुद अपनी ही आवाज में वे सवर्ण या आभिजात्य वर्ग के पाखण्डों का पर्दाफाश करते हैं। प्रेमचंद की स्पष्ट मान्यता है कि ऊंची जाति के लोगों का नीची जाती के लोगों पर किसी भी प्रकार का अत्याचार किसी के लिए नैतिक अधिकार हो ही नहीं सकता। डॉ. एम.सी जोशी ने लिखा है–''इसीलिए प्रेमचंद ने बार–बार कहा है कि जब तक दलित वर्ग में प्रतिरोध की शक्ति नहीं पैदा होगी तब तक सामाजिक एकता की स्थापना सम्भव नहीं होगी।''[11]

प्रेमचंद की 'शूद्रा' नामक कहानी दलित जीवन की ज्वलंत समस्या से जुड़ी कहानी है। इस कहानी में गंगा और गौरा दो नारी पात्र हैं। दोनों में मां–बेटी का रिश्ता है। पड़ोस के गांव का मंगरू गौरा को पसंद करके विवाह कर लेता है। और बाद में गौरा की जाति को लेकर पश्छताप करता है। एक बार अपने बहनोई के द्वारा इस बारे में धिक्कार किये जाने के बाद मंगरू गौरा को छोड़ देता है। प्रेमचंद ने लिखा है–''जिस पुरूष को वह देव तुल्य समझती थी, उसके प्रेम से वंचित होकर वह कैसे जीवित रह सकती थी? यही प्रेम उसके जीवन का आधार था। उसे खोकर अब वह अपना सर्वस्व खो चुकी थी।''[12] किसी के अन्तर्मन को पढ़ने की भी पात्रता होनी चाहिए, मात्र आभिजात्य वर्ग में जंम लेने से ही पात्रता नहीं आ जाती है। शूद्र गौरा के मन पर संदेह का ऐसा आघात पहुंचता है कि वह आत्महत्या करने को मजबूर हो जाती है। इसी तरह 'सौभाग्य के कोड़े' कहानी की भंगी नथुवा राय साहब के घर झाड़ू–पोछा करता है। पर एक दिन रत्ना के पलंग पर लेटने की गुस्ताखी कर बैठता है। फलतः रायसाहब उसे हंटर से मारते हैं। प्रेमचंद लिखते हैं–'हंटर मंगवाकर रायसाहब ने नथुवा को खूब पीटा। बेचारा हाथ जोड़ता था, पैरों पड़ता था, ...हंटर हाथ से फेंक कर ठोकरों से मारने लगे। रत्ना ने यह रोना सुना तो दौड़ी हुई आई और समाचार सुनकर बोली, 'दादाजी, बेचारा मर जायेगा। अब इस पर दया कीजिए।''[13] इसके बाद नथुवा वहां से भाग जाता है। और उसे जीवन में सहयोग से उन्नति का अवसर मिलता है। फिर वहीं नथुवा रायसाहब के घर का जामाता बन जाता है। प्रेमचंद ने दलित जाति को कड़ी मेहनत के द्वारा विकास करने का भी संदेश दिया है। आगे कहानी 'आगा पीछा' में प्रेमचंद ने दलित समस्या, शोषण और अस्पृश्यता को न उठाते हुए खुद चमार युवक भगतराम को समाज की वेश्या उद्धार के लिए प्रयत्नशील बताया है। जिस प्रकार हमारे लिए नीची जाति अस्पृश्य होती है, ठीक उसी तरह दलित भी अपनी जाति या बिरादरी वाले के नजरिए से भिन्न जाति को कहीं–न–कहीं निम्न ही समझता है। दलितों के पीछड़ेपन का प्रमुख कारण अज्ञानता और अंधविश्वास भी रहा है। जब भगतराम बीमार पड़ता है तो वह डॉक्टर को बुलाने के बजाय तंत्र–मंत्र पर विश्वास कर वह देवता को मनाने की कोशिश करता है। प्रेमचंद ने लिखा है–''डॉक्टर बीमारी की दवा करता है कि

हवा–बयार की? बीमारी उन्हें कोई नहीं है, कुल के बाहर ब्याह करने ही से देवता लोग रूठ गये हैं।''[14] चूंकि प्रेमचंद दलितों में जन–जागरण लाने के लिए शिक्षा को आवश्यक मानते हैं। उनके विचार में शिक्षा से ही दलित समाज में सामाजिक चेतना का उन्मेष होगा। इसी प्रकार 'विध्वंस' कहानी हमारे समाज में हो रहे दमन के विरूद्ध एक संघर्ष की कहानी है। प्रस्तुत कहानी में अधिक पात्र चमार जाति के हैं। इसमें स्वतंत्रता के पहले जमींदारों और महाजनों के उत्पीड़न या अत्याचारों को बताया गया है। यहां तक कि गुस्से से बेकाबू जमींदार भुनगी द्वरा जमा किये गये पत्तियों में आग लगावा देता है। उदास भुनगी लंकादहन को देख न सकी और वह उसी अग्निकुंड में कूदकर अपनी जान दे देती है। कहानीकार ने यहां तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्रण किया है। जमींदारी समाज का आतंक उस समय इतना रहा है कि दलित चाहकर भी उनकी अवज्ञा नहीं कर सकता था। दलित भुनगी जमींदार की गुलामी न कर स्वतंत्र रहना चाहती थी, पर जमींदार उसे गुलाम बनाये रखना चाहता है। प्रेमचंद इस गुलामपरस्ती जीवन के सख्त विरोधी हैं, और एक प्रगतिशील समाज के विकास में इस तरह की प्रवृत्ति को सिरे से खारिज कर देने के समर्थन में हैं।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि प्रेमचंद की दलित जीवन की कहानियां भले ही पूरी तरह से दलित जीवन से संबंधित न हों, परंतु दलित संवेदना की कहानियां जरूर कही जा सकती हैं। प्रेमचंद स्वयं ग्रामीण परिवेश से थे उन्होंने गरीब दलित लोगों की दशा और दुर्दशा को बहुत निकट से देखा था। इसलिए दलितों के प्रति उनके मन में घनीभूत संवेदना थी। और वे दलित समाज की अवस्था सुधार के लिए कहीं–न–कहीं वे अपने कथा साहित्य के माध्यम से पूरजोर कोशिश कर रहे थे। उनकी कहानियों में सभी पात्र पीड़ा, उपेक्षा को झेलते हुए वास्तविक जीवन की गहरी सच्चाइयों से रू–ब–रू होते हैं। इस तरह कहा जा सकता है कि प्रेमचंद ने संवेदना के धरातल पर निरीह, पीड़ित जातियों के लिए सामर्थ्य का भाव लाते हैं तथा सामाजिक–सांस्कृतिक स्तर पर इसको सुलझाने का रास्ता ढूंढ़ने की कोशिश करते हैं। इस दृष्टिकोण से प्रेमचंद एक सफल कथाकार हैं।

संदर्भ–सूची :–

1. प्रेमचंद, ठाकुर का कुआँ, 'भारतीय दलित जीवन की कहानियाँ' संस्करण 2011, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, पृ. 10।
2. वही, पृ. 11।
3. गोयनका, कमल किशोर, प्रेमचंद, संस्करण 2016, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, पृ. 60–61।
4. प्रेमचंद, 'दूध का दाम,' भारतीय दलित जीवन की कहानियाँ, संस्करण 2011, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, पृ. 13।
5. वही, 'सद्गति', पृ. 48।
6. वही, पूस की रात, पृ. 72।
7. वही, 'कफन', पृ. 147–148।
8. वही, 'मंदिर' पृ. 55।
9. वही, घासवाली, पृ. 168।
10. लाल, लक्ष्मीनारायण (डॉ.), कहानीकार प्रेमचंद, प्रेमचंद' सत्येन्द्र (सं.), संस्करण : 1989, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, कुल पृ. 123–136, पृ.132।
11. जोशी, एम,सी.(डॉ.), कहानीकार प्रेमचंद : एक पुनर्मूल्यांकन, संस्करण 1999, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 13।
12. प्रेमचंद, 'शूद्रा,' भारतीय दलित जीवन की कहानियाँ, संस्करण 2011, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, पृ. 39।
13. वही, 'सौभाग्य के कोड़े' पृ. 155।
14. वही, 'आगा–पीछा', पृ. 142।

हानूश : एक कलाकार की मर्मांतक पीड़ा

मिथिलेश कुमार मिश्र*

भीष्म साहनी मूलतः कथाकार है और नाट्य लेखन के क्षेत्र में उनका पहला नाटक 'हानूश' एक ऐसा सशक्त प्रयास है जो भीष्म साहनी की प्रतिभा को रेखांकित करता है। इसकी पहली प्रस्तुति का ही दिल्ली में जैसा स्वागत हुआ वह हिंदी के रंगमंच के इतिहास की एक उपलब्धि है। यह नाटक ऐतिहासिक नाटक नहीं है और न ही इसका अभिप्राय घड़ियों के आविष्कार की कहानी कहना है। कथानक के दो–एक तथ्यों को छोड़कर लगभग सभी कुछ काल्पनिक है।

"'हानूश' को पहली बार दिल्ली के दर्शकों के सामने 'श्री राम सेंटर फॉर आर्ट्स एंड कल्चर द्वारा' आयोजित प्रथम राष्ट्रीय समारोह के अवसर पर १८–१६ फरवरी १६७७ की पेश किया गया। इसका निर्देशन 'अभियान' के सुयोग्य डायरेक्टर श्री राजेन्द्र नाथ द्वारा किया गया। नाटक एक मानवीय स्थिति को मध्य–युगीन परिप्रेक्ष्य में दिखाने का प्रयास मात्र है।"01

चेकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राग में आज से लगभग पाँच सौ साल पहले ताले बनाने वाले एक सामान्य मिस्त्री के दिमाग में घड़ी बनाने का भूत सवार हुआ। घर के हालात भी ठीक न थे। परिवार में पत्नी काव्या जो सदैव से जीवन की विषम परिस्थितियों में रही फटेहाल में भी वह आत्मविश्वास और साहसपूर्ण अवयवों से जीवन को जी रही थी। पुत्री यांनका पिता की तरह स्वच्छंद और बेजोड़ गुणों से युक्त और पिता को कभी भी तुच्छता का एहसास नहीं कराया सदैव सबल रहकर उस निर्बल रहकर उस निर्बल पुरूष को साहस प्रदान किया। अनेकानेक विषम परिस्थितियों में लगातार हानूश अपनी धुन में मग्न रहा उसे सिर्फ और सिर्फ घड़ी का स्वपन ही दिखता जो कभी–कभी टिक–टिक करती और बन्द हो जाती है। कभी सफलता तो भी विफलता मिलती रहती। प्रोत्साहन के रूप में हानूश का पादरी भाई बूढ़ा लोहार, एमिल, जेकब सभी ने सहयोग किया। अकिंचन मनुष्य को बाहरी सहारा तो पग–पग पर मिला पर जो सहारा उसे मिलना चाहिए था पत्नी का वह उसे न मिल सका। इसमें उसकी पत्नी का भी दोष नही है, कौन ऐसी पत्नी होगी कि नही चाहेगी कि हमारे पति आगे बढ़े किन्तु निर्धनता कुछ भी करा सकती है। इन सब समस्याओं को झेलते–झेलते एक दिन घड़ी का प्रयोग सफल हो गया जिसे बनने में लगभग सत्रह साल लग गये। चेकोस्लोवाकिया की पहली घड़ी बनने में कामयाब हुयी, जो कि नगर पालिका के मीनार पर लगायी गयी, नगर पालिका की दीवार पर लगाने में भी काफी षड़यंत्र रचा गया।

इतनी बड़ी सफलता के बाद उस कलाकार को क्या मिला? हाँलाकि उसने तो कभी भी यह सोंचा न था कि वह जो घड़ी बनायेगा वह पुरस्कार के योग्य होगा, यह तो घड़ी बनने के बाद लोगों से उसे प्रतीत होने लगा काव्या (हानूश की पत्नी) द्वारा कही गयी एक बात सटीक बैठती है कि यहाँ पर– "सियाने यह कह गये कि जो अतीत से सबक हासिल नहीं करता वह वर्तमान में भी अन्धा और भविष्य में भी अन्धा बना रहता है। कलाकार तो तालियों की गड़गड़ाहट से खुश हो जाता है उसे तो और चीजों की इच्छा नही होती। क्या कलाकार को उसकी आँखों निकलवाने के अतिरिक्त दूसरा पुरस्कार नहीं दिया जा सकता था? क्या उसका यह सोचना गलत था कि मैं कुछ अनूठा या कुछ अलग करूँ जिससे मेरा और मेरे देश का नाम हो। यह गलत है? इस तरह का उदाहरण न केवल हानूश है बल्कि इस तरह के कई उदाहरण हैं। जिसे पाठक आज के समय में भी देख और सुन रहे हैं। इसी तरह का पुरस्कार आगरा के ताज महल को बनाने वाले शिल्पकारों को भी मिला और उन लोगों को भी पुरस्कार के रूप में अपना हाथ खोना पड़ा। हमें यह कहने में रंचमात्र का भी खेद नही हो रहा है कि यदि आप अनूठा या कुछ अच्छा कार्य करेंगे जिससे आपका और आपके देश का नाम होगा तो निश्चय ही आपको भी इसी तरह का कोई विशेष पुरस्कार जरूर मिलेगा। मैं तो कह सकता हूँ कि आज हमारा भारत विकासशील है तो इसका एक प्रमुख कारण ये भी है यदि ऐसा न होता तो शायद न जाने कितने ऐसे और ताजमहल बने होते और न जाने कितनी घड़ियाँ बनी होतीं।

---

* **शोध–छात्र, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वड़ोदरा, गुजरात 390024।**

कहीं पर कलाकार की तो कहीं पर उसके कला का विरोध होता ही आया है। इसी तरह का एक उदाहरण जगदीश चंद्र माथुर के कोणार्क(१६५६) का भी है "जिसमें विशु एक शिल्पी ही रहना चाहता है, वह शासन के मामले में नहीं पड़ना चाहता किन्तु पुत्र धर्मपद उसका प्रतिवाद करता है और राजसत्ता के विरोध में सक्रिय होता है। कोणार्क के ध्वंस के साथ राजमद ध्वस्त हो जाता है। कला का सम्मोहन टूट जाता है।"03

हानूश में वास्तव में कलाकार के सम्पूर्ण गुण थे और हुनर किसी भी मनुष्य को हुनर मंद बनाता है। जब हम अपना सब कुछ त्यागकर किसी कार्य के पीछे लगते है तो हमें उससे बड़ी उम्मीद होती है कि मेरी मेहनत एक दिन रंग लायेगी। कर्म करना तो हमारा अधिकार है। रामचरितमानस में भी लिखा गया है : "कर्म प्रधान विश्व करि राखा" परन्तु जब सच्चाई को टटोलते हैं तो इसका परिणाम कुछ और मिलता है। इसे भारत की कुप्रथा ही कह सकते हैं कि ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति को अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता है। उसकी (हानूश) वैवाहिक स्थिति बेहद लचर थी फिर भी वह एक सनक की तरह अपनी आपबीती भुलाकर बस अपने घड़ी बनाने में खोया रहता था। हालाँकि घड़ी तो बनी और संसार की सबसे अनूठी, बेजोड़ और अद्वितीय विलक्षण घड़ी बनी। घड़ी के तो अच्छे दिन आ गये कि वह टिक–टिक करने लगी परन्तु उस कलाकार की घड़ी उसी समय से बदल गयी। बदलाव हुआ समय ने करवट ली लोगों में उसकी एक अलग जगह बन गयी पर कैसे। वह एक दर्द भरी पीड़ा का कराह लेकर आयी जिसकी कल्पना शायद कोई न करे। कुछ समय के लिए हानूश सब ओठों पर छा गया जहाँ देखो वहाँ हानूश की ही चर्चा थी परन्तु राजसत्ता ने उसके पूरे भविष्य को अंधकारमय बना दिया। राजा ने पुरस्कार स्वरूप उसकी आँखे ही निकलवा ली ताकि वह उस जैसी या उससे अच्छी घड़ी न बना सके। आखिरकार एक कलाकार को ऐसा प्रोत्साहन जो अब अपने जिंदगी से ही डरता हुआ जीता है। वह भी कैसा जीवन जो उसके बज रही समय की घन्टी पर टिकी रहती है।

उसने सबके लिए समय बना दिया।
सबने मिलकर उसका समय ही बिगाड़ दिया।

'हानूश' के माध्यम से भीष्म साहनी ने एक ओर कलाकार की अदम्य अकुलाहट और उसकी निरीहता को उजागर किया तो दूसरी ओर धर्म और सत्ता के गठबंधन के साथ सामाजिक शक्तियों के संघर्ष को मार्मिक अभिव्यक्ति दी है। कलाकार के आमूल बनावों का अंकन हानूश की एक उपलब्धि है जो आज भी उतना ही सच है। जितना की पाँच शताब्दी पहले था।

मिलता रहा यदि इस तरह का पुरस्कार जमाने में।
तो कोई न बन पायेगा कलाकार इस महफिल को सजाने में।।

सन्दर्भ–सूची :–

1. हानूश– भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या – ०७।
2. वहीं।
3. हिन्दी गद्य विकास– आ. रामचंद्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ संख्या– ३६६।

अशोक का धम्म

डॉ. अमित दूबे*

देवानाम प्रियदर्शी राजा अशोक भारतीय इतिहास का ऐसा इकलौता शासक था जिसने अपने अभिलेखों के माध्यम से आने वाली पीढ़ियों के सम्मुख जनकल्याण, धम्मघोष एवं जनता के नैतिक स्तर को सुधारने का आदर्श रखा। उसके शासनकाल में भारतवर्ष ने अभूतपूर्व राजनीतिक एकता एवं स्थायित्व का साक्षात्कार किया था जिस समय उसने कलिंग विजय की थी, उसके पास असीम साधन एवं शक्ति थी, यदि वह चाहता तो उस शक्ति को सिकन्दर की भांति विश्व विजय के कार्य में लगा सकता था, परन्तु उसका तथाकथित कठोर एवं निर्दयी हृदय कोमल हो मानव कल्याण के लिए द्रवित हो उठा और वह शक्ति की पराकाष्ठा पर पहुँचकर विजय के कार्यों से मुख मोड़कर, धर्म विजय के कार्य में संलग्न हो गया।

अशोक अपने द्वारा प्रचलित धर्मानुशासन हेतु प्रजा पर किसी भी प्रकार बल प्रयोग नहीं करता, अपितु एक प्रजावत्सल शासक के रूप में देश के नागरिकों को सभ्य एवं नैतिक आदर्शों के माध्यम से सुसंस्कृत करने का प्रयास करता है। प्रस्तुत अभिलेखों के माध्यम से अशोक अपने राज्य अथवा समाज में व्याप्त विसंगतियों को दूर करने हेतु ही अपने धम्म का उद्घोष करने का सफल प्रयत्न करता है। उदाहरणस्वरूप अशोक अपने प्रथम शिलालेख में अपनी व्यथा प्रकट करता हुआ, प्रस्तुत होता है–

''बहुका हि दोषा समाजसा पसति देवानं प्रिये प्रियदसि लाजा दखति।[1]

अर्थात् देवताओं का प्रियदर्शी राजा समाज में अनेक दोषों को देखता है। इसके अतिरिक्त माता–पिता की सेवा, गुरु–मित्रों, ब्राह्मणों, श्रमणों वृद्धों की सेवा, दास–भृत्यों के प्रति उचित व्यवहार हेतु बार–बार अपने शिलालेखों में निर्देश देता है। यथा– तृतीय, चतुर्थ, पाँचवें, आठवें, नवें, एकादश, त्रयोदश शिलालेख। अतः स्पष्ट है कि समाज में व्याप्त इन विसंगतियों के वह अत्यन्त व्यथित था। किन्तु अपने कन्धार के लघुशिलालेख में वह अभिषेक के दस वर्ष पूर्ण होने पर अपने धम्म के सफल होने की सूचना देता है।

अशोक भारत का प्रथम शासक था जिसके सर्वप्रथम अभिलेख हमें प्राप्त होते हैं और वह भी इतनी बड़ी संख्या में जितने कि किसी भी प्राचीन भारतीय नरेशों के नहीं मिलते हैं। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि अशोक ने इतनी बड़ी संख्या में लेख क्यों लिखवाएँ? अगर इस पर ध्यानपूर्वक विचार किया जाए तो ज्ञात होता है कि अशोक के अधिकांश प्रमुख शिलालेख (चतुर्दश शिलालेख) उसके साम्राज्य की सीमाओं पर स्थित हैं जिसका उद्देश्य निश्चय ही अशोक के साम्राज्य का सीमा निर्धारण रहा होगा अथवा लेख उत्कीर्ण करवाने का मुख्य कारण धम्म प्रचार द्वारा शान्ति स्थापना रहा होगा। अशोक ने अपने सिद्धान्तों, विचारों एवं नैतिकता को धम्म का जामा पहनाकर अभिलेखों के माध्यम से जनता के सामने प्रस्तुत किया। अभिलेखों ने अशोक को अपने धम्म की व्याख्या करने का सुयोग दिया।

अशोक के धम्म से क्या अभिप्राय था? क्या वह किसी सम्प्रदाय विशेष के सर्वसम्मत सिद्धान्त था? इसकी जानकारी उसके शिलालेखों एवं स्तम्भ लेखों से स्पष्ट हो जाती है। वह स्वयं अपने द्वितीय स्तम्भलेख में कहता है कि **''कियं चु धम्मेति''**[2] उसका प्रत्युत्तर उसने द्वितीय एवं सातवें स्तम्भलेख से देता है। **''अपासिनवे बहुकयाने दयादाने सचे सोचये''**[3]। कम से कम पाप, अत्यधिक कल्याण, दया, दान, सत्यता, पवित्रता, मृदुता तथा ये छः तत्व हैं जो कि अशोक के धम्म को परिभाषित करते हैं। इसके अतिरिक्त उसके शिलालेखों से स्पष्ट यह है कि ''धर्म वह है जिसमें दास के प्रति उचित व्यवहार किया जाय, माता–पिता की

***असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, आर्य महिला पी0जी0 कॉलेज, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।**

सेवा की जाय, रिश्तेदार श्रमण और ब्राह्मणों को दान दिया जाय और प्राणियों के प्रति हिंसा न की जाय।[4] इस प्रकार से देखें तो अर्थात् अशोक के धम्म का अभिप्राय, नैतिक आचार के सर्वसम्मत नियमों से था।

अशोक के धम्मविजय के दो प्रश्न थे, एक निषेधात्मक जिसमें आक्रामक सैन्यवाद को त्यागने और शस्त्र प्रयोग के समय भी सहनशीलता एवं संयम से काम लेने की भावना निहित थी और दूसरा सकारात्मक पक्ष जिसमें द्वितीय शिलालेख, सप्तम स्तम्भलेख व रानी के लेख आदि में परिभाषित जनहित के कार्यों को करने एवं धर्म प्रचार के लिए दूत भेजने पर बल दिया गया था।[5] द्वितीय शिलालेख में उल्लेखित है कि अशोक ने पशु और मनुष्यों की चिकित्सा की व्यवस्था न केवल अपने राज्य में, अपितु अपने सीमावर्ती राज्यों में भी कराया था। औषधियों से सम्बन्ध रखने वाले वृक्ष, मूल तथा फल भी लगाये गए थे। साथ ही साथ सड़कों पर उसने पानी–पीने हेतु कुएँ खुदवाएँ एवं छायादार वृक्ष लगवाएं[6], जो कि अशोक के 'पूर्त धर्म' के प्रति अत्यधिक रूझान को स्पष्ट करता है। द्वितीय शिलालेख द्वारा राजा अशोक के पर्यावरण व परिस्थिति तन्त्र को सन्तुलित बनाये रखने एवं यात्रियों के सुविधा हेतु प्रबन्ध करने का भी ज्ञान कराता है, जो कि आज के समय में एक विकट समस्या के रूप में प्रस्तुत है।

अशोक द्वारा शासन सम्बन्धी कार्यों के लिए नियुक्त राज्य के युक्त, राजुक और प्रादेशिक को यह आदेश जारी किया जाता है कि वे प्रत्येक पाँच वर्ष पर धर्मानुशासन के निहितार्थ दौरा करें। साथ ही नियुक्त अधिकारियों के लापरवाह न होते हुए उनके जाँच के लिए एक परिषद् का भी निर्माण भी करता है जिसकी सूचना तृतीय शिलालेख से प्राप्त होती है।[7] पाँचवें शिलालेख से ज्ञात होता है कि अशोक ने धर्ममहामात्र की नियुक्ति, सभी धार्मिक सम्प्रदायों के धर्मानुशासन, धर्माधिष्ठान और धर्मवृद्धि के लिए की थी। इनके अधीन धर्मायुक्त नामक एक दूसरे अधिकारी की नियुक्ति की जाने की बात भी इस शिलालेख से परिलक्षित होती है।[7] धर्मयुक्तों की नियुक्ति अशोक ने पाटलिपुत्र तथा अन्यत्र अपने भाई–बहनों सम्बन्धियों के घरों में नौकरों, स्वामियों, ब्राह्मणों, वैश्यों, अनाथों व वृद्धों के मध्य तथा कतिपय निवासियों के मध्य भी की थी। छठे शिलालेख[8] से ज्ञात होता है कि प्रजा की फरियाद राजा तक सीधे नहीं पहुँचती थी, अर्थात् एक निश्चित समय में ही राजा–प्रजा की फरियाद सुनता था। इस घोषणा द्वारा अशोक ने प्रत्येक समय प्रजा का प्रतिवेदन सुनने का निश्चय किया तथा अधिकारियों को आदेश दिया कि वह जहाँ भी हो, जिस अवस्था में हो, उस तक जनता की फरियाद पहुँचायी जाय। साथ ही राजा की घोषणा को अनन्तिम न समझा जाय, यदि परिषद् पुनर्विचार की आवश्यकता अनुभव करे तो इस बात की सूचना उसे तत्काल, वह जहाँ भी हो, जिस अवस्था में हो दिया जाय। शिलालेख के उत्तरांश में अशोक सर्वलोकहित को अपना कर्तव्य माना है। साथ ही वह मानता है, कि सभी लोग पराक्रम के माध्यम से जीवधारियों के ऋण से मुक्त होवें, जिससे लोगों को इहलौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार के सुखों की प्राप्ति हो।

नवम् शिलालेखों में अशोक मांगलिक कार्यों के प्रति प्रजाजनों को विमुख होने का आग्रह करता है। उसका मत है कि बीमारी, न्योते, विवाह, पुत्रजन्म, परदेश जाने, स्त्रियों द्वारा किये जाने वाले मंगल कार्य अल्पफल देने वाले हैं। अतः उन्हें महाफल देने वाले धर्म मंगल कार्यों की तरफ उन्मुख होना चाहिये तथा इसके लिए पिता, पुत्र, माता, स्वामी, मित्र परिचित सभी प्रेरित किया जाना चाहिए।

राजा अशोक अपने द्वादश शिलालेख में सभी सम्प्रदायों की सारवृद्धि व समन्वय पर विचार देते हुए कहता है कि ''देवानामप्रिय प्रियदर्शी राजा सब धार्मिक सम्प्रदायों के प्रव्रजितों और गृहस्थों को पूजते हैं, दान और विविध प्रकार की पूजा द्वारा पूजते हैं। किन्तु देवानांप्रिय दान व पूजा को उतना नहीं मानते, जितना किसको? इसको कि सब सम्प्रदायों में सारवृद्धि होवे। सारवृद्धि अनेक प्रकार की होती है। उसका मूल है वचन का गोपन अर्थात् वाक् संयम। कैसे? अपने समप्रदाय की प्रशंसा और दूसरों के सम्प्रदाय की निन्दा, अनुचित अवसरों पर नहीं होनी चाहिए। थोड़ी हो किसी–किसी उचित अवसर पर। ऐसा करता हुआ मनुष्य अपने सम्प्रदाय को न केवल क्षीण करता है बल्कि दूसरों के सम्प्रदाय का भी अपकार करता है। वह जो कोई अपने सम्प्रदाय की प्रशंसा करता है और दूसरों के सम्प्रदाय की निन्दा, सब अपने सम्प्रदाय के प्रति भक्ति के कारण ही करता है। यह कैसे? 'ताकि अपने सम्प्रदाय की दीपन किया जाय।' अर्थात् अपने

सम्प्रदाय की उन्नति की जाय। और वह पुनः ऐसा करता हुआ अपने सम्प्रदाय की अत्यधिक हानि करता है। इसलिए समन्वय अर्थात् मेलजोल ही शुभ है। कैसे? दूसरों के धर्म को सुनना और सुनाना चाहिए। देवानांप्रिय की ऐसी इच्छा है। कैसी? कि सब सम्प्रदाय बहुश्रुत और कल्याणकारी सिद्धान्त वाले बने और वे जो अपने–अपने सम्प्रदाय में अनुरक्त हों, उनके द्वारा जो कहा जाय, 'देवानांप्रिय दान व पूजा को उतना नहीं मानते जितना किसे? जितना कि सभी सम्प्रदायों में सारवृद्धि होवें। इस प्रयोजन के लिए बहुत से धर्ममहामात्र और स्त्रीध्यक्ष महामात्र और व्रजभूमिक और अन्य अधिकारी वर्ग नियुक्त हैं। इसका यह फल है कि इससे अपने सम्प्रदाय की वृद्धि और धर्म का दीपन होता है।[9]

तेरहवें शिलालेख से स्पष्ट है कि कलिंग युद्ध में हुए भीषण नर–संहार एवं जन–धन के विनाश से अनुतापित होकर उसने सुदूर दक्षिण के चोल, पाण्ड्य, केरल, सतियपुत्र और ताम्रपर्णी राज्यों पर शस्त्र विजय के स्थान पर धम्म विजय का प्रयास करता है। यहाँ यह विचारणीय प्रश्न है कि अशोक को कलिंग राज्य में पृथक शिला प्रज्ञापन लेख लिखवाने की आवश्यकता ही क्यों पड़ी? इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि चूंकि अशोक द्वारा कलिंग विजय के प्रयास में इस क्षेत्र के बहुत सारे व्यक्तियों की हत्या, अपहरण, बन्दी बनाने का कार्य किया जाता है, अतः इस क्षेत्र के लोग उस करूण–वेदना से पुनः आहत न हो, इसलिए इस क्षेत्र में शान्ति हेतु अलग–अलग शिला–प्रज्ञापन लिखवाए जाने पर अशोक ने बल दिया होगा और यही कारण था कि धौली, जौगढ़ व सन्नति में पृथक शिलालेखों में वहाँ के प्रजाजनों को यह संदेश देने का प्रयास करता है कि ''सभी मनुष्य उसकी सन्तान हैं।''[10]

इस प्रकार हम देखते हैं कि अशोक न केवल महान, पराक्रमी शासक था, अपितु वह अपने तत्कालीन समय में एक समाज–सुधारक के रूप में दिखाई देता है। जहाँ कौटिल्य अपने स्वरचित ग्रन्थ अर्थशास्त्र में अर्थदण्ड के माध्यम से समाज के दोषों को दूर करने का प्रयत्न करता है, वहीं दूसरी ओर अशोक अपने धम्म के माध्यम से समाज में नैतिक आदर्श को स्थापित करने का प्रयास कर रहा है। एक शासक के कर्तव्य और उसके उत्तरदायित्व सम्बन्धी अवधारणा, अपने नैतिक आदर्श रूपी धर्मानुशासन को आगे बढ़ाने हेतु प्रबल पराक्रम और उसे सफल बनाने की क्षमता हेतु राजा अशोक अत्यधिक प्रशंसनीय है। वह इस विचार को भली–भांति समझता था कि सम्प्रदायों के समन्वय स्थापित होने से प्रत्येक सम्प्रदाय के जनों में एक–दूसरे के प्रति प्रेम–भावना का विकास होगा, तथा इस दृष्टि से देश का विकास एवं शान्तियुक्त समाज का निर्माण हो सकेंगा। अतः हम यह कह सकते हैं कि अशोक किसी विशेष नियमों और संकल्पों को केवल दिखाने हेतु पालन नहीं किया अपितु उसने उन तथ्यों को प्रकाश में लाया जो मनुष्य को ऊँचा उठाते हैं तथा जिसमें वास्तविक चरित्र के बीज निहित रहते हैं, जिन्हें समस्त मानवता पर लागू किया जा सकता है। वास्तव में राजा अशोक द्वारा नैतिकता को स्थापित करना ही उसका मुख्य धम्म था, जिसके लिए वह सदैव भारतीय इतिहास में स्मरणीय रहेगा।

संदर्भ सूची :–

1. गोयल, श्रीराम, प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह, पृ0 31
2. हुल्ज. ई0 : कार्पस इन्स्क्रिप्सन इण्डिकेरम् वाल्यूम I, (इन्स्क्रिप्सन ऑफ अशोक), इण्डोलाजिकल बुक हाउस स, न्यू दिल्ली, 1969, पृ0 120
3. गोयल, श्रीराम : प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह, पृ0 96
4. वही, पृ0 107
5. वही, पृ0 68
6. हुल्ज. ई0 : कार्पस इन्स्क्रिप्सन इण्डिकेरम् वाल्यूम I, (इन्स्क्रिप्सन ऑफ अशोक), इण्डोलाजिकल बुक हाउस स, न्यू दिल्ली, 1969, पृ0 2
7. वही, पृ0 9
8. वही, पृ0 11
9. गोयल, श्रीराम : प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह, पृ0 59–60
10. वही, पृ0 72

गुर्जर-प्रतिहार अभिलेखों में वर्णित मंदिर-स्थापत्य

प्रवीण पाण्डेय *

गुर्जर–प्रतिहार कला के अवशेष हरियाणा और मध्य भारत के एक विशाल क्षेत्र में, जिसमें सम्पूर्ण उ0प्र0 तथा हिमाचल प्रदेश और राजस्थान के आंशिक भू–भाग सम्मिलित है, उपलब्ध है। प्रतिहारों द्वारा निर्मित मंदिर स्थापत्य और कला की सबसे बड़ी विशेषता इसकी अलंकरण शैली है। जिसमें सज्जा और निर्माण शैली का पूर्ण समन्वय प्रदर्शित हुआ है। अनेक मंदिरों और मूर्तियों का पता चलना प्रतिहारों की सांस्कृतिक अभिरूचि को दर्शाता है। मानव शरीर भक्ति का माध्यम है इसलिए हिन्दू मंदिरों की बनावट मानव शरीर के अंगों के समान ही रची गई है जैसे– पैर, जघां, ग्रीवा, नासुका, शिखर इत्यादि जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में आत्मा का वास होता है उसी प्रकार मंदिरों के गर्भगृह में भगवान की मूर्ति रखकर मंदिरों को एक जीवित आस्था का केन्द्र माना जाता है।[1] प्रतिहारों के मंदिर भी इस भावना से अलग न थे। अपने पूर्ण विकसित रूप में प्रतिहार मंदिरों में मुखमण्डप, अन्तराल और गर्भगृह के अतिरिक्त अत्यधिक अलंकृत अधिष्ठान, जंघा और शिखर होते है। विभिन्न स्थानों से प्राप्त प्रतिहार कालीन मंदिर इस प्रकार है–

देवगढ़ (मंदिर संख्या 12) देवगढ़ उ0प्र0 के ललितपुर जिले में स्थित है। यह स्थान गुप्तकालीन दशावतार मंदिर के उत्कृष्ठ कला और स्थापत्य के लिए विख्यात है। यह इस क्षेत्र में पर्वत अधीलिका पर निर्मित है। निर्माण योजना में यह पश्चिमाभिमुख मंदिर है। इसमें अर्द्धमण्डप, अन्तराल तथा गर्भगृह है। वेदी वध में खुर, लतापत्र तथा ताड़पत्र से अलंकृत कुंभ तथा चैत्य से अलंकृत कलश बंधनों का समावेश है वर्तमान में यह पंचायतन शैली का अच्छा प्रासाद है।[2] यहां हिन्दू और जैन दोनों प्रकार के मंदिरो का निर्माण किया गया है। यहां पर प्राप्त अभिलेखिक साक्ष्य से प्रमाणित होता है कि यहां कन्नौज के गुर्जर प्रतिहारों का शासन था और उन्होंने यहीं के मंदिर निर्माण में उत्कृष्ट सहयोग दिया था। भोज के ग्वालियर अभिलेख में इसे लुअच्छगिरि कहा गया है।[3] यहां का शान्तिनाथ मंदिर और कुरैयाबीर का मंदिर प्रतिहार काल में निर्मित हुआ।

देवगढ़ (मंदिर क्रमांक 15) मंदिर में उत्कीर्ण अलंकरण के अभिप्रायों से प्रतीत होता है कि यह मंदिर देवगढ़ स्थित मंदिरो में सर्वश्रेष्ठ है। मंडप में 4 स्तम्भ और 12 स्तंभिकाए है। प्रदक्षिणापथ होने के कारण यह सांधार प्रासाद है। गर्भगृह की सज्जा तथा उसमें स्थित मूर्तियां अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। अन्तर्विन्यास में यह दशावतार मंदिर (देवगढ़) से साम्य रखता है।

रामेश्वर मंदिर (अमरौल) अमरौल ग्राम ग्वालियर से 30 कि0मी0 दक्षिण में स्थित है। यह स्थान प्रतिहार कालीन मंदिरों और उनके अवशेषों के लिए प्रसिद्ध है। पंचरथ निर्माण योजना में निर्मित इस देवालय में गर्भगृह तथा अतंराल है। शिखर शंक्वाकार है। मंदिर का गर्भगृह वर्गाकार व सादा है। गर्भगृह का वितान पुष्प निर्मित वर्तुल के मध्य कमल पुष्प उत्कीर्ण कर बनाया गया है। कृष्णदेव[4] के मतानुसार यह मंदिर तेली के मंदिर का पूर्ववर्ती है तथा इसके निर्माण की संभावित तिथि 8वीं श0 ई0 हो सकती है।

मालादेवी मंदिर (ग्यारसपुर) यह स्थान विदिशा के 85 किमी0 उत्तर पूर्व में स्थित है। यहाँ ग्राम के चारो ओर बिखरें पुरावशेषों से इसकी प्राचीनता का बोध होता है। इस अवशेषों में मालादेवी का मंदिर सबसे बड़ा है जो एक रमणीय पहाड़ी के स्थान पर है। निर्माण योजना में गर्भगृह त्रिरथ तथा शिखर पंचरथयुक्त है यह सांधार प्रासाद है।[5] गर्भगृह में तीन जिन प्रतिमाएं है किन्तु कोई भी प्रतिमा मूलनायक की नही है। इसी प्रकार ललाटबिम्ब में भी किसी प्रतिमा का अभाव है। अतः यह मंदिर किसी तीर्थंकर को समर्पित था, निर्धारित करना कठिन है। माता देवी मंदिर, योजना में पूर्ण विकसित है, इसमें मुखमण्डल, मण्डप, अन्तराल, गर्भगृह और आन्तरिक प्रदक्षिणा पथ है। इसका निर्माण काल 900 ई0 निर्धारित किया गया है।

*** शोध छात्र, डी0ए0वी0 पी0जी0 कॉलेज, बी0एच0यू0, वाराणसी।**

ग्वालियर चतुर्भुज मंदिर यह एकाश्म चट्टान को काटकर बना हुआ मंदिर ग्वालियर दुर्ग के पूर्वी भाग में स्थित है। इसका निर्माण प्रतिहार राजा भोज के समय ग्वालियर दुर्ग के कोट्टपाल अल्ता द्वारा करवाया गया था।[6] यह विष्णु मंदिर है। सम्पूर्ण मंदिर शैलोत्कीर्ण है। इसमें मंदिर स्थापत्य के प्रायः सभी अंगों का समायोजन है इस प्रकार शैलोत्कीर्ण मंदिर होते हुए भी यह पहाड़ी से बिल्कुल अलग है। इसमें शिखर तथा अलंकरण की पूरी व्यवस्था की गई है। वितान में पूर्ण विकसित कमल का फूल उत्कीर्ण है जिस पर स्थानक विष्णु की प्रतिमा स्थापित है। गर्भगृह की दाहिनी दीवार में प्रतिहार राजा भोज के समय के दो अभिलेख उत्कीर्ण है, अभिलेख में मंदिर के निर्माण की तिथि 850 ई0 उत्कीर्ण है।[7]

तेली का मंदिर (ग्वालियर) तेली का मंदिर ग्वालियर दुर्ग में पूर्वाभिमुख स्थित है। प्रतिहार शैली का भव्य मंदिर होने के साथ ही स्वरूप में यह अपवादात्मक है।[8] ऊँची जगती पर स्थित देवालय में आयताकार गर्भगृह, मंडप और अंतराल है। एक सादे किन्तु वृहद बंधन के ऊपर मंदिर का वेदिबंध आधारित है। जंघा में प्रत्येक दिशा में दीर्घीकृत चैत्य से युक्त तीन–तीन देवकोष्ठ है। शिखर भाग द्वितल है। मंदिर निर्माण नागर शैली का है। इसका निर्माण काल 850 ई0 प्रतीत होता है। आयताकार पंचरथ मंदिर में गर्भगृह अन्तराल और एक विशाल प्रवेशद्वार है। ललाटबिम्ब पर उड़ते हुए गरुड़ का अंकन है किन्तु मंदिर की भित्तियों पर शैव परिवार के देवी देवताओं की प्रमुखता है। मंडप चार स्तम्भों पर आधारित है। मंडप के उपर की धरणी में कृष्ण लीला व नीचे की धरणी में कपिशीर्षक अलंकरण से अलंकृत है।

शिवदेवालय (तेरही) यह स्थान शिवपुरी के रनोद नगर से 10 किमी0 दक्षिण–पूर्व में है। पंचरथ निर्माण योजना में निर्मित इस मंदिर में मंडप, अतंराल, गर्भगृह है। खोखई नामक शैवमठ में अंकित अभिलेख में इसका नाम तेरम्बि बताया गया है।[9] इस अभिलेख से ज्ञात होता है कि तेरही, रनोद (प्राचीन रणिपद) और कदम्बगुहा शैवमत के गढ़ थे जिसके अवशेष आज भी विधमान है। तेरही की शिवमंदिर शैवमठ के निकट है और स्थानीय जनों में गढ़ी के नाम से विख्यात है।

नरेसर नरेसर समूह के प्रतिहारकालीन मंदिर म0प्र0 के ग्वालियर जिला मुख्यालय से 25 कि0मी0 उत्तर पूर्व में नरेसर घाटी में स्थित है। अभिलेखों में इसका प्राचीन नाम नलेश्वर था।[10] यहां के सरोवर के निकट एक मंदिर समूह है इन मंदिरों की निम्नांकित विशेषताएं है–

1. सभी मंदिर पंचरथ प्रकार के है। इनमें गर्भगृह और प्रवेशद्वार के मध्य अन्तराल की व्यवस्था की गई है।
2. इनके साधारण अधिष्ठान में खुर, कुंभ, कलश, कपोतिका का निर्माण किया गया है।
3. जंघा के ऊपरी भाग पर चारो ओर घण्टमाला अभिप्राय है।
4. वराण्डिका में दोहरी कपोतिका है।
5. मंदिरो के शिखर स्थूल है, जो तीन या चार भूमिओं में विभक्त है।
6. प्रवेशद्वारा में प्रायः चार शाखाएं है।
7. किसी भी मंदिर में मुखमण्डप नहीं है।

बटेश्वर महादेव देवालय (मुरैना) पंचरथ निर्माण योजना में निर्मित इस देवालय में अंतराल और गर्भगृह है। वेदिबंध में खुर, कुंभ तथा कलश बंधनों का समावेश है। जघां अन्य देवालयों की अपेक्षा अधिक ऊँचा है। पंचाण्डक शिखर के मध्य में चैत्य अलंकरण है। चौकोर शिलाखण्ड के ऊपर स्थित आमलसार पर कलश स्थापित है। नंदिनी द्वार में लतापत्र, खल्व, पुष्प, घटपल्लव तथा पुनः लतापत्र युक्त शाखांए है। यही गंगा, यमुना, नाग–नागी सहित प्रदर्शित है। ललाटबिम्ब में आकाशचारी गरूड़ है। चन्द्रशिला में कमलपुष्प सहित दो सिंह उत्कीर्ण है।

नचना कुठार यह स्थान पन्ना जिले के 55 कि0मी0 दक्षिण पूर्व में स्थित है। यहां गुप्तकालीन पार्वती का एक प्रसिद्ध मंदिर है। इसी पार्वती मंदिर के समीप एक अन्य देवालय है जिसे चौमुखनाथ का मंदिर कहते है।[11] यह मंदिर प्रतिहारकाल में निर्मित बताया जाता है। मंदिर का गर्भगृह वर्गाकार है जिसमें चतुर्भुज महादेव का एक उत्कृष्ट शिवलिंग प्रतिष्ठित है। गर्भगृह के सामने एक अर्वाचीन बरामदा है। मण्डप और गर्भगृह के बीच में अन्तराल है। मंदिर की वाह्य दीवारों पर अनेक रथिकाएं है। जिसमें गणेश, यम, कुबेर, सूर्य,

महिषासुरमर्दिनी, कामदेव, वृषभारूढ़ तथा नृत्य शिव की प्रतिमाएं थी। अब इन रथिकाओं की प्रतिमाएं लुप्त हो चुकी है। यह मंदिर 9वीं श0ई0 के तृतीय चरण में निर्मित हुआ।

ओसिया मंदिर[12] कथात्मक अंकन के अन्तर्गत ओसिया का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहाँ कृष्ण की लीलाओं से संबंधित अनेक दृश्य मिलते है जिनका विस्तृत अंकन हुआ है। ओसिया में मुख्यतः 8–9वीं श0 ई0 के मंदिरों पर इनका उत्कीर्णन हुआ है। जो अन्य समकालीन केन्द्रों की तुलना में निःसंदेह अधिक विस्तृत, सुनियोजित, परम्परानिर्दिष्ट और महत्त्वपूर्ण है। ओसियां में सामान्यतः मूर्तिकला में निर्मित कृष्ण के बाल लीलाओं को ही दर्शाया गया है।

कृष्ण जन्म एवं गोकुल गमन– हरिहर मंदिर के उत्तरी कण्ठ पर, प्रथम दृश्य में बन्दीगृह के अधखुले कपाट के दूसरी ओर प्रसूति गृह का दृश्यांकन है। ओसियां में कृष्ण जन्म के कुल 6 उदाहरण है और सभी दृश्यों में एक जैसा अंकन है।

माखन चोरी – बालकृष्ण के द्वारा माखन की चोरी या यशोदा के दधिमंथन का दृश्यांकन है। दृश्य में एक आसन पर प्रसन्नचित्त नन्द की आकृति आसीन है। बालरूप श्रीकृष्ण को पात्र से मक्खन निकालते निरूपित किया गया है। कृष्ण की चचंलता दृष्टव्य है।

योगमाया वध – इस मंदिर में योगमाया का वध दृश्यांकन है। इसमें कंस को गतिशील मुद्रा में योगमाया का वध करने के उद्देश्य से पैरो से बालिका को पकड़े और शिक्षा पर पटकने की मुद्रा में आकारित किया गया है।

पूतना वध – हरिहर मंदिर –1 में योगमाया के पश्चात् पूतना वध का अंकन हुआ है जिसमें भयंकर स्वरूप वाली पूतना एक मंचिका पर अर्धपर्यकासनी प्रदर्शित है।

गोवर्धन धारण– सूर्य मंदिर–3 के दक्षिणी कर्ण भाग और अन्य मंदिरों की अनुपंक्ति में कृष्ण द्वारा गोवर्धन धारण का दृश्य उत्कीर्ण है। हरिहर मंदिर–1 में सामान्य रूप से कृष्ण अपने बाएं हाथ पर पर्वत उठाएं दिखाए गये है।

कालिया दमन –कृष्ण लीला दृश्यों में कालिया दमन का विस्तार के साथ अंकन हुआ है। कथानक में कदम्ब वृक्ष से कृष्ण कूदकर कालिया नाग का दमन करते और कालिया के विनाश से भयभीत उसकी पत्नियों तथा स्वयं कालिया द्वारा क्षमायाचना का अंकन हुआ है।

इस प्रकार ओसियां में कृष्ण के जन्म से लेकर कंस की रंगशाला तक के दृश्यों का विस्तार से अंकन हुआ है। जबकि अन्य प्रतिहारकालीन कला के केन्द्रों पर कृष्ण लीला का इतना विस्तृत अंकन नहीं मिलता है।

संदर्भ–सूची :–

1. देव, कृष्ण, टेम्पल्स ऑफ इण्डिया, आर्यन बुक्स, इटंरनेशनल दिल्ली, सन् 1995, पृ0 1–7।
2. अलैक्जेंडर कनिंघम, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, एन्युअल रिपार्ट, कलकत्ता, सन् 1874–75 और 1876–77, जिल्द 10, पृ0 101।
3. ई0 ह्यूल्टेज, मिहिरभोज का ग्वालियर अभिलेख, एपि0 इ0 खण्ड 18, पृ0 99–114, सन् 1925।
4. कृष्णदेव, टेम्पल्स ऑफ इण्डिया, आर्यन बुक्स इंटरनेशनल, दिल्ली सन् 1995, पृ0 112।
5. वही, पृष्ठ 22।
6. ई0 हयूल्टेज, मिहिर भोज का ग्वालियर मंदिर अभिलेख, एपि0 इ0 खण्ड 18, पृ0 112, सन् 1925।
7. वहीं, एपि0 इ0 खण्ड 18, पृ0 105–108, सन् 1935।
8. वही, एपि0 इ0 खण्ड 18, पृ0 102, सन् 1925।
9. एफ0 कीलहर्न, मधुबन प्लेट ऑफ हर्ष, एपि0 इ0 जिल्द 7, पृ0 155–157, सन् 1902–03।
10. रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा, प्रतापगढ़ इन्सक्रीप्शन ऑफ दि टाइम ऑफ (दि प्रतिहार) विंग महेन्द्रपाल II ऑफ महोदया, संवत् 1003, इपि0 इ0 खण्ड 14, पृ0 177–179, सन् 1917–18।
11. आर0 डी0 त्रिवेदी, टेम्पल्स ऑफ दि प्रतिहार पीरियड इन सेन्ट्रल एशिया, (इडियां) दिल्ली, सन् 1990, पृ0 125।
12. आर0 सी0 मजूमदार, जोधपुर इन्सक्रीप्शन ऑफ प्रतिहार बाउक, वि0 सं0 894, एपि0 इ0 खण्ड 18, पृ0 87–95, सन् 1925।

निजी क्षेत्र में कार्यरत ग्रामीण तथा शहरी महिला कर्मचारियों के कार्य-संतोष का अध्ययन

डॉ. अनामिका लिंका*

प्रस्तुत अध्ययन मेरठ जनपद के निजी क्षेत्र में कार्यरत ग्रामीण तथा शहरी महिला कर्मचारियों की कार्य संतोष का अध्ययन है। अध्ययन हेतु मेरठ के कालीन उद्योग से महिला कर्मचारियों का चयन किया गया। जिसमें से 50 ग्रामीण क्षेत्र की एवं 50 शहरी क्षेत्र की महिलाओं का चयन किया गया। संग्रह हेतु प्रयोज्य पर डॉ टी0आर0 एवं डॉ अमर सिंह द्वारा निर्मित "कार्य संतोष मापनी" का उपयोग किया गया सांख्यिकी विश्लेषण के लिए क्रांतिक अनुपात का उपयोग किया गया जिसमें ग्रामीण एवं शहरी महिला कर्मचारियों के कार्य संतोष में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

प्रस्तावना :– किसी भी उद्योग की उत्पादन क्षमता उस उद्योग में कार्यरत कर्मचारियों पर निर्भर करती है। जिस उद्योग में कर्मचारियों का कार्य संतोष उच्च होता है वह उद्योग तीव्र गति से विकास करते हैं तथा जिस उद्योग के कर्मचारियों का कार्य संतोष निम्न होता है वह उद्योग अत्याधिक विकास नहीं कर पाते हैं। औद्योगिक मनोविज्ञान एवं संगठनात्मक मनोविज्ञान में कार्य संतोष को एक महत्वपूर्ण कारक बताया गया है क्योंकि किसी भी उद्योग की सफलता की प्रमुख कुंजी यह है कि उसकी कर्मचारियों में पर्याप्त कार्य संतुष्टि हो। कार्यसंतोष मानसिक आनंदित स्थिति है जो एक कार्य स्वीकृति के परिणाम स्वरूप प्राप्त होती है। यह एक सामान्य मनोवृति होती है यह मनोवृति किन्हीं दो कर्मचारियों की एक ही कार्य परिस्थिति में एक समान होगा ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि दोनों कर्मचारियों की अपनी–अपनी मनोवृति अलग अलग हो सकती है कार्य संतोष उद्योग का सर्वोपरि लक्ष्य है।यह उद्योग का साधन एवं साध्य दोनों ही माना जा सकता है। पारिश्रमिक, पर्यवेक्षक, रोजगार की निरंतरता , कार्य की भौतिक एवं मनोवैज्ञानिक अवस्था , प्रोन्नति के अवसर, सामाजिक संबंध, शिकायतों की सुनवाई, नियोजक द्वारा पक्षपात रहित एवं न्याय संगत व्यवहार के साथ ही साथ, कर्मचारी की आय, स्वास्थ्य, एवं मनोवृति , आकांक्षा का स्तर, पारिवारिक स्थिति, सामाजिक प्रतिष्ठा, तथा सभी संबंधित विशिष्ट तत्व कार्य संतोष को प्रभावित करते हैं।

वेश एच0 एम0 ने तर्क दिया है– कार्य संतोष एक अभिव्यक्ति है लेकिन उसमें कुछ बिंदु भी बताए हैं जो शोधकर्ता को स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने चाहिए वह संज्ञानात्मक मूल्यांकन के उद्देश्य हैं संवेग, विश्वास और व्यवहार को प्रभावित करते हैं। लॉक (1976)के अनुसार – "कार्य संतुष्टि से तात्पर्य अपने कार्य या कार्य अनुभूतियों के मूल्यांकन से उत्पन्न सुखमय धनात्मक संवेग अवस्था से होता है।" ब्रूम (1964)– "व्यक्ति वर्तमान समय में किस कार्य में संलग्न है उसकी प्रभावशाली उन्मुक्तता ही उनका ही कार्य संतोष है।" इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कार्य संतोष किसी कर्मचारी में अंतर्निहित उसकी मनोवृतियों का परिणाम होता है औद्योगिक संगठनों पर कर्मचारियों के कार्य संतोष का व्यापक प्रभाव पड़ता है। यदि किसी संगठन में ज्यादातर कर्मचारी कार्य संतोष का अनुभव करते हैं तो इस संगठन में उत्पादन अधिक होता है ,दुर्घटनाएं कम होती हैं ,मनोबल अधिक रहता है और कार्य में संलग्नता बढ़ जाती है। अरविंद प्रसाद और अरुण कुमार (2009) – ने 300 कार्यरत महिलाओं के कार्य संतुष्टि का अध्ययन किया। अध्ययन में अधिकतर महिलाएं अपने कार्य में संतुष्ट पाई गई। अवधेश कश्यप 2008) ने पब्लिक एवं प्राइवेट सेक्टर की 200 कर्मचारियों के कार्य संतुष्टि एवं कमिटमेंट के बीच अध्ययन किया और अध्ययन में पाया कि पब्लिक सेक्टर में कार्यरत कर्मचारियों में कार्य संतुष्टि अधिक पाई गई जबकि प्राइवेट सेक्टर में कार्यरत कर्मचारियों में संतुष्टि की मात्रा कम पाई गई। स्टीवन एवं अन्य ने (2010) प्रोफेशनल अकाउंट पर अध्ययन किया। अध्ययन से प्रदर्शित होता है कि भूमिका द्वंद से संबंध होने की प्रवृत्ति होने के साथ निम्न कार्य संतोष एवं कार्य स्थान को विशेषताः छोड़ देने की प्रवृत्ति पाई गई।

सर्पिल एवं साहिल ने (2011) सार्वजनिक अस्पताल टर्की मैं कार्यरत 118 स्वास्थ्य कार्यकर्ता पर हिंसा निवारण जलवायु का कार्य स्थान पर कई आयामों को लेकर कार्य संतोष पर प्रभाव का अध्ययन किया, अध्ययन में कार्य संतोष पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा। जिससे कार्य संतोष की मात्रा उच्च पाई गई। मूसेन (2011)ने नर्सों

*** प्रिंसिपल, जय मां तारा बी. एड. कॉलेज, वेस्ट बंगाल।**

पर अध्ययन किया। अध्ययन में पाया गया कि कार्य संतोष एक सकारात्मक भूमिका निभाता है। कार्य परिवेश में एवं रचनात्मक कार्य करने में कार्य संतोष की मात्रा उच्च पाई गई।

समस्या का कथन :– प्रस्तुत शोध समस्या जनपद मेरठ के कालीन उद्योग में कार्यरत ग्रामीण एवं शहरी महिला कर्मचारियों के कार्य संतोष को ज्ञात करने के लिए संपादित की गई है। इस समस्या का प्रारूप निम्न है –

निजी क्षेत्र में कार्यरत ग्रामीण तथा शहरी महिला कर्मचारियों के कार्य संतोष का अध्ययन

अध्ययन के उद्देश्य :–

1. मेरठ जिले के कालीन व्यवसाय के कारखाने में कार्यरत ग्रामीण तथा शहरी महिलाओं में उनके कार्य के प्रति संतोष एवं असंतोष की स्थिति ज्ञात करना।
2. भविष्य को ध्यान में रखते हुए ग्रामीण एवं शहरी महिला कर्मचारियों द्वारा उत्पादन स्तर को बनाए रखने के लिए भविष्यवाणी संभव होगी।

अध्ययन की उपकल्पनाएं :–

- शहरी महिलाओं एवं ग्रामीण महिलाओं के कार्य संतोष में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं पाया जाएगा।
- ग्रामीण महिलाओं के 20 –30 वर्ष तथा 30 –40 वर्ष आयु वर्ग में कार्य संतोष में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं पाया जाएगा।
- शहरी महिलाओं के 20 – 30 वर्ष तथा 30– 40 वर्ष आयु वर्ग में कार्य संतोष में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं पाया जाएगा।

शोध विधि :– प्रस्तुत शोध कार्य विवरणात्मकअनुसंधान के अंतर्गत सर्वेक्षण प्रकार का अनुसंधान है। इस प्रकार के अनुसंधान में वर्तमान में चल रही घटनाओं अथवा वस्तु स्थिति का अध्ययन सर्वेक्षण के आधार पर प्राप्त आंकड़ों के द्वारा किया गया है।

प्रतिदर्श :– प्रस्तुत शोध के अंतर्गत निजी क्षेत्र के काली उद्योगों में कार्यरत 50 ग्रामीण तथा 50 शहरी क्षेत्र की महिलाओं का यादृच्छिक विधि से चयन किया गया जो मेरठ जिले के कालीन व्यवसाय के कारखानों से ली गई हैं। इन कर्मीको का चयन रसायन प्रिंटिंग, मशीनरी, प्लास्टिक रंगाई ,छपाई आदि लघु उद्योगों से लिया गया है।

प्रयुक्त उपकरण तथा सांख्यिकी विश्लेषण – ग्रामीण एवं शहरी महिला कर्मचारियों के कार्य संतोष के मापन के लिए डॉ टी0 आर0 शर्मा एवं डॉ अमर सिंह (पटियाला)द्वारा विकसित "कार्य संतोष मापनी"का उपयोग किया गया है। जिनमें कुल प्रश्नों की संख्या 30 है जिसमें धनात्मक तथा नकारात्मक दोनों प्रकार के कथन हैं। मापनी की विश्वसनीयता 0.978 है एवं वैधता गुणांक 0.743पाया गया। सांख्यिकी विश्लेषण हेतु मध्यमान, प्रमाणिक विचलन एवं क्रांतिक अनुपात का प्रयोग किया गया।

परिणाम एवं व्याख्या – मेरठ जनपद के कालीन व्यवसाय में कार्यरत ग्रामीण तथा शहरी महिला कर्मचारियों से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर सांख्यिकी विश्लेषण किया जो कि निम्नलिखित है –

तालिका –1 ग्रामीण एवं शहरी महिलाओं के कार्य संतोष का मध्यमान मानक विचलन एवं अंतर की सार्थकता–

क्रम संख्या	समूह	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात	सार्थकता स्तर
1.	ग्रामीण महिला	61.6	4.45	0.074	N.S.
2.	शहरी महिला	61.7	7.1	"	"

शहरी एवं ग्रामीण महिला कर्मचारियों के बीच कार्य संतोष का अध्ययन किया गया। ग्रामीण महिलाओं का मध्यमान 61.6 पाया गया एवं मानक विचलन 4.45 है ,तथा शहरी महिलाओं का मध्यमान 61.7 एवं मानक विचलन 7.1 है।दोनों समूह के क्रांतिक अनुपात का मान 0.074 है जो सार्थकता स्तर के 0.05 के मान से कम है। परिणाम प्रदर्शित करते हैं कि दोनों समूह में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

तालिका संख्या –2 ग्रामीण महिलाओं के 20 –30 वर्ष तथा 30 –40 वर्ष के बीच कार्य संतोष का मध्यमान मानक विचलन एवं अंतर की सार्थकता

क्रम संख्या	समूह	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात	सार्थकता स्तर
1.	आयु 20– 30 वर्ष प्रतिदर्श (25)	58.5	6.25	3.495	<0.01
2.	आयु 30–40 वर्ष प्रतिदर्श (25)	62.8	6.11	"	"

उपयुक्त सारणी में ग्रामीण महिलाओं में 20 –30 वर्ष आयु वर्ग का मध्यमान 58 .5 एवं मानक विचलन 6.25 है जबकि ग्रामीण महिलाओं में 30 –40 वर्ष आयु वर्ग का मध्यमान 62.8 एवं मानक 6.11 प्राप्त हुआ है दोनों समूह के सार्थकता का अंतर (क्रांतिक अनुपात) का मान 3.495 पाया गया। जो सार्थकता 001 स्तर पर सार्थक पाया गया। प्राप्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि 20– 30 वर्ष आयु वर्ग की अपेक्षा 30 –40 वर्ष आयु में कार्य के प्रति संतोष की मात्रा अत्याधिक है।

तालिका संख्या –3 शहरी महिलाओं के 20 से 30 वर्ष तथा 30 से 40 वर्ष के कार्य संतोष का मध्यमान मानक विचलन एवं सार्थकता का अंतर –

क्रम संख्या	समूह	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात	सार्थकता स्तर
1.	आयु 20 –30 वर्ष प्रतिदर्श (25)	62.5	6.85	0.769	N.S.
2.	आयु 30– 40 वर्ष प्रतिदर्श(25)	61.5	6.30	″	″

उपयुक्त सारणी में शहरी महिलाओं में 20 से 30 वर्ष आयु वर्ग का मध्यमान 62.5 एवं मानक विचलन 6. 85 है जबकि शहरी महिलाओं में 30 से 40 वर्ष आयु वर्ग का मध्यमान 61.5 एवं मानक विचलन 6. 30 प्राप्त हुआ है। दोनों समूहों में सार्थकता का अंतर (क्रांतिक अनुपात का मान) 0. 769 पाया गया जो सार्थकता 0.05 स्तर के मान से कम है। परिणाम प्रदर्शित करते हैं कि दोनों समूह में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

निष्कर्ष :– प्राप्त परिणामों के आधार पर यह स्पष्ट है कि ग्रामीण एवं शहरी महिला कर्मचारियों के कार्य संतोष का तुलनात्मक अध्ययन करने पर उनके बीच सार्थक अंतर नहीं पाया गया। दोनों समूहों के क्रांतिक अनुपात का मान सार्थकता स्तर से कम है अतः कहा जा सकता है कि ग्रामीण एवं शहरी महिलाओं के बीच कार्य संतोष में कोई भिन्नता नहीं है। जबकि विभिन्न आयु वर्ग में सार्थक अंतर पाया गया। ग्रामीण क्षेत्र की महिला कर्मी 20 से 30 वर्ष तथा 30 से 40 वर्ष के आयु वर्ग में कार्य संतोष का अंतर पाया गया। दोनों आयु वर्गों का तुलनात्मक अध्ययन करने में क्रांतिक अनुपात का मान सार्थकता स्तर से अधिक है। अतः दोनों के कार्य संतोष में अंतर है। शहरी क्षेत्र की महिला कर्मिक में 20 से 30 वर्ष तथा 30 से 40 वर्ष के कार्य संतोष में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया, दोनों आयु वर्ग में कार्य संतोष का तुलनात्मक अध्ययन में अनुपात का मान क्रांतिक अनुपात का मान सार्थकता स्तर कम है। निष्कर्ष में पाया गया कि दोनों समूहों के कार्य संतोष में कोई अंतर नहीं है। परीक्षा परिणाम एवं व्यक्तिगत वार्तालाप से कुछ महिला कर्मी को में सहयोग की भावना प्रबल पाई गई जबकि कुछ महिला कर्मियों ने इस कार्य के प्रति उनका रुझान नहीं पाया गया। उपयुक्त परिणाम एवं निष्कर्षों के आधार पर कहा जा सकता है कि यह अध्ययन औद्योगिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में कार्य के अनुप्रयोग के कर्मचारियों के कार्य संतोष को ध्यान में रखते हुए औद्योगिक विकास की योजनाओं के क्रियान्वयन में सहायक सिद्ध होगा।।

संदर्भ-सूची :–

1. Aytac serpilAnd Durson Sahil (2011), the effect on job satisfactionAnd the stress of the perceptions of violence climate in the workplace,Mediterranean Journal of social sciences.DOI: 10.5901 /Mjss.2011,V2 n3 P 70 ISSN 2039-2117,2011 MCSER.
2. Locke,1976 Cited in Brief ,A.P.And Weiss, H.M. (2001) Organizational behaviour effect in the workplace .Annual Review of Physcology 53 279-307,P.282.
3. Meeusen V.Ch., Van Dam. K; Brown Mahony C; Zundert .A.A J; Knape .H.TA (2011) Understanding nurseAnesthetists' Intention to leave their job;How BurnoutAnd job satisfaction mediate the impact of personalityAnd workplace characteristics .Health care management review,36,155.
4. Prasad ,ArvindAndArun Kumar (2009)A study of some background Variables of job SatisfactionA money working woman University of Bihar IIJ SSR/Val.3 NO.1 June 2009 PP.32-35.
5. Steven S.Lui ,Hue-yue Ngo ,Anta wing-Nagar Isang (2010). Interrale ConflictAsA Predictor of job satisfactionAnd propensity to leave Journal of managerial Psychology,Vol.16 No.6 2001 ,PP.469484.
6. Upadhyay ,Awadhesh (2008) ,A Study of job satisfactionAnd commitmentAmong workers of PublicAnd private sector organization ,U.P. college Varanasi IIJ SSR/Val. II No.II November 2008 PP 15-18.
7. Weiss,H.M. (2002) Deconstrectional Satisfaction Separating evaluations ,beliefsAndAffective experiences . Human resources management Review,12,173-194.

Analysing the Deteriorating Conditions of Prisons And Prisoners *A Critical Analysis*

Chaitanya Pant*

Prison is the place where the criminal value system puts its entirety into trust. Rebuking the blameworthy gatherings is the fundamental limit of each smart society. The therapeutic segment, if bombs will make the whole criminal procedure continually. The education behind discipline for bad behavior has been changed a ton by the advancement of new essential opportunities resolution. The possibility of revamping has become the watchword for prison association. Human rights law advocates that no bad behavior should be rebuked in an uncouth, degrading or in an uncouth manner. Notwithstanding what may be generally anticipated, it is held that any discipline that amounts to savage, debasing or severe should be managed as an offense without any other individual. The change caused the criminal value structure moreover, its healing instrument has been gotten all throughout the planet. Here the demand is made to know the level of thought of these fundamental freedoms of prisoners into Indian institutions. All around, it transforms into an especially recognized rule that the medicinal framework in criminal value association should concur with reformative game plans. It is also declared that all prisoners will be managed with reverence as a result of their trademark honorability and worth as human beings.There are a lot of rights recognized by the worldwide by and large arrangement of laws to save the human balance and worth of prisoners and there by the reformative subject of correction. It is also insistently fought that the neighborhood never bears an arrangement of correction that doesn't keep a relationship with the evilness of the bad behavior done. In this manner discipline reliably keeps an enthusiastic perspective. The advantages of the kept individual should be examined despite this wisdom.

It is earnestly suggested that there can be changed controls for the same offense; yet one should not be managed dreadfully while the sentence once declared by the court goes on. In this area, the rights guaranteed under the overall generally set of laws is to be researched and managerial concern for the comparable in India. Repelling the transgressors is the fundamental limit of all insightful society. Prisons are outstanding to have existed since the beginning. Presence of prisons can be followed back to the bygone era outline. It was acknowledged that exhaustive separation and custodial measures would change the blameworthy gatherings. With the improvement of sociologies, it began to federalize that restoration of blameworthy gatherings was by no means, by confinement alone. The correctional facilities are not normal spots to be involved or to visit. The prisoners who have executed bad behavior and being put behind the authority are consistently denied chances and individual contacts with friends and family.

The utility of prison as an establishment for rebuilding transgressors and setting them up for standard life has reliably been a questionable issue. There are a genuine gigantic number of liable gatherings who are for the most part aware and are individuals of good class of society yet they surrender to culpability in view of transient tactlessness, actuation or due to situational conditions. There is one more class of prisoners who are by and large legitimate anyway have to bear the burdens of prison life due to unexpected labor of value. Unmistakably such individuals imagine that it's difficult to change themselves to the prison incorporating likewise, find life inside the prison for the most part troublesome and upsetting.

*** LLM Symbiosis Law School, Symbiosis international Deemed University, Pune.**

In India, prison changes didn't emerge out of the social turn of events notwithstanding, were basically an aftereffect of the most really horrendous conditions of treatment stood up to by the political casualties in prisons during the hour of their confinement. They again and again dispatched battles with the prison subject matter experts and made all expected undertakings to see that the torments of prison life are mitigated and prisoners are humanely treated.

Statutory Definition of a Prison

The notion of the terminology of prison has been portrayed by the Prisons Act, 1894 in an thorough route under Sec. 3 which describes imprisons as: "Prison" implies any jail or spot used forever or momentarily under expansive or unprecedented orders of the State Government for the imprisonment of Prisoners and consolidate all landscapes and designs appurtenant thereto, yet bars - any spot for the control of prisoners who are just in the authority of the people. Prison can be any spot by exemplary nature of an organization demand being used for the control of prisoners[1]. In this manner even a jail will go under the means of prison as shown by this definition. Practically identical definition has been given to prison by the Prisoners Act, 1900. These two foundations really remain the fundamental premises by which the association of prison has been controlled. The Prisons Act dodges police care and assistant restorative offices from the methods for the word prison. Worldwide essential opportunities law also made its own beginning for the term prison. As shown by them, prison can be simply a spot for the treatment of arraigned individuals. According to the human rights law for the affirmation of confined individuals, kept individual strategies an individual denied of individual opportunity in view of his conviction on any offense and confinement means such condition of a kept person. This will help with giving all the more clear pictures regarding the issues looked by a prisoner when in doubt, an under starter prisoner and a kept person.

The developed idea with respect to prison has been pictured by choice through the powerful collaboration. In reality, even open penitentiaries have been created by time. Now don't jails have the option to be called as an establishment passing on terrible experiences. Krishna Iyer, J thought prison as: A reformative perspective capable of providing rehabilitative strategy, accommodating prison treatment and energizing of prisoner's character through a development off ostering the culmination of being an especially inventive claim to fame of social watchman and remedial measure starting fundamental confirmations of prisoner's rights is the certain note of public prison system struck by the constitution and the court. Thus now all the respectability that humans hold can moreover be benefitted inside the four dividers of prison. The customary definition and thought regarding the prison is inappropriate for the time. The normal opportunities rule contributed much for the remedial changes and comparable had its impact in India.

LACUNAE IN PRISON AS AN INSTITUTION

- **CONGESTED PRISON CELLS :** It is a grounded reality that prison in numerous bits of India is full. Blockage in remedial offices, particularly among under primers has been a wellspring of concern. The Law Enforcement Assistance Administration National Jail Assessment of 1970 uncovered that 52% of the jail prisoners were expecting primer. Obviously, if prison stuffing should be chopped down, the under-fundamental people should be diminished certainly. This, clearly, can't happen without the courts and the police working couple. The three wings of the criminal value structure would have to act in concordance. Convenient primers are astounded by a significant court obligation, police weakness to convey eyewitnesses speedily and an unmanageable defend lawyer who is bowed in the wake of searching for suspensions, whether or not such techniques hurt his/her client. Speedy track courts have served to a certain extent, yet have not made a quantifiable differentiation to the issue of pendency.

Extending the amount of courts can't accomplish an ideal differentiation as long as the current delays culture continues. The juvenile transgressors who are kept in remedial offices because of deficiency of elective spots where they can be bound, come into contact with hard punks and are likely going to become capable blameworthy gatherings. Moreover, after release from jail they may cause harm in the overall population. The law commission in its 78th report made a couple of ideas for working to stop up to the correctional facilities. These thoughts recollect progression of conditions of conveyance for bail, particularly appearance of explicit classes of under fundamental on bail.

- **ATROCITIES TOWARDS PRISON INMATES :** Death of a detainee includes certified concern for prison association. Now and again, the public takes to the streets to challenge such passes. It invites fire from the media, Non Governmental Organizations stressed over basic opportunities and the Human Rights Commission. Passings in penitentiaries have been extensively requested into two classes for instance Common Deaths and Unnatural Deaths[2]. Unnatural passings join Suicides, Execution, Murder by prisoners, Due to ending, Due to lack of regard or excess by jail staff, etc Potentially the most striking and positive features of these prisons, in any case, is that they do have ambulances for use in emergencies.
- **POOR HEALTHCARE ESTABLISHMENTS ESPECIALLY IN THE PANDEMIC OF CORONA :** For an individual entering a prison curiously, the experience can be pathetic. The shut dividers, the kept living space, the unpleasant memories of misuse in light of the police, the barring looks from spectators, and nerves about wandering out from home incessant every prisoner for the underlying relatively few days. No spot are readied mental educators more in demand than in the shut settings of a prison. It is impossible to hope to name specialists in all of the confinement offices of the state; in any occasion all the seven central correctional facilities should be centered around. The all out lack of arranged guides says a ton of the reckless disposition towards the mental health of prisoners[3]. The general shortfall of food or genuine exercise, the superfluous lock-up hours due to nonattendance of staff, strong smoking and certain pressure among the prisoners, unlawful cooking inside the residence, and unhygienic everyday conditions generally speaking, all adversely influence the physical and mental sufficiency of the prisoners. Fearing the spread of the COVID 19 pollution in prisons, governments have clearly conveyed enormous amounts of prisoners in various countries. In any case, with respect to everyday rates, the conveyances have been less basic.
- **Non Appearance of Legal Aid and Overstays :** Induction to value for everything is unfathomable without permission to free legal help by the more delicate spaces of society. The fundamental wellspring of the legitimate help thought, Article 39-A was inserted in the Constitution of India through the 42nd Amendment[4]. The article orders the state to propel value on the grounds of identical opportunity and give free real manuals for "ensure that openings for getting value are not denied to any occupant by reason of monetary or various debilitations". In Hussainara Khatoon & Others v. Home Secretary State of Bihar, the highest court read the advantage to legal guidance as irrefutable in Article 21 of the Constitution of India. The Court, paralyzed by the path that under starters were reflecting in the prisons of Bihar for a serious long time without legitimate depiction, declared: "There can be no vulnerability that speedy starter, and by quick primer, we mean reasonably fast starter is an essential and crucial piece of the key right to life and opportunity treasured in Article 21".

SUGGESTIONS FOR IMPROVEMENT

Distinctive helpful assessments we have in India are open prisons, thought of parole, probation, prison work, etc Instruction in prisons are in like manner obliged models. Fundamental educational guidance expected to give the insightful gadgets needed in assessment and planning, and in ordinary day by day presence. Proficient tutoring, proposed to get ready for an occupation. Prosperity tutoring :Social preparing : Social tutoring.

CONCLUSION

It might be said that the prisoners are moreover equipped for all their essential rights while they are behind the confinement offices. Indian Constitution doesn't unequivocally obligate the prisoners' advantages yet Articles 14, 19 and 21 is irrefutable to guarantee the prisoners' advantages and the plans of the Prisons Act, 1894 contains the courses of action for the public authority help and affirmation of prisoners[5]. The Court has concluded that it can intervene with prison associations when holy rights or legitimate arrangements are abused to the injury of the prisoner. The High Court overall held that the prisoner is an individual, a trademark individual and besides a genuine person. Being a prisoner he doesn't stop to be an individual, basic individual or legal person. Conviction for a bad behavior doesn't reduce the person into a non-person, whose rights are subject to the motivation of the prison association additionally, hence, the burden of any critical order inside the prison system is prohibitive upon the setback of procedural assurances.

References :-

1. Prison Laws In India: A socio-legal study by Mudasir A. Bhat
2. Nidhi Beniwal, Role of Judiciary in Protecting the Rights of Prisoners, retrieved from http://www.legalservicesindia.com/article/article/role-of-judiciary-in-protecting-the-rights-of-prisoners-1616-1.html, accessed on 07/05/2021.
3. National Human Right Commission, Annual Report 2004-05, New Delhi, 2005, p. A17,retrieved from http://nhrc.nic.in/Documents/AR/AR04-05ENG.pdf, accessed on 08/05/2021)
4. M.P. Jain, "Indian Constitutional Law", 5 thEdition, Vol. 1, Wadhwa and Company, Nagpur, 2003
5. Nitai Roy Chowdhury, "Indian Prison Laws and Correction of Prisoners", Deep and Deep Publications, New Delhi , 2002, Pg.75.

Transgressing the Boundaries: Resistance in *The Autobiography of a Sex Worker*

Dr. Anju K. N.*

Abstract

Foucault's much contentious remark on resistance asserts the interconnection between power and resistance: "Where there is power, there is resistance" (web). Resistance emerges when there is discontent with the established power relations whether it be social, economic, cultural, religious or even gender related. Nalini Jameela's *The Autobiography of a Sex Worker*, a work widely criticised and condemned as 'a prurient money-spinner' (Devika, Foreword xi) demonstrates resistance playing a major role in the identity formulation of the individual. Dynamics of resistance at work in the autobiography has been contextualised and analysed in the present paper.

Keywords: power, oppression, resistance, sex work, harassment, independence

As Gramsci observes, the elites often control the ideological sector of the society which includes culture, religion, education and media, thereby subtly creating a discourse defining and establishing their concepts of what is true, moral, fair and legitimate (qtd. in Scott 39). A culture is built wherein the subordinate are led to believe in and practise these concepts. The engendered culture of oppression and exploitation is thus subtly perpetuated. Resistance alters and restructures the power discourse giving voice to the subjugated and the subdued.

Resistance as a way of coping finds voiced in Nalini Jameela's work. A much criticised piece of life writing, the work reflects not merely the subtext of resistance, it becomes the text itself. As opposed to Foucault's docile body, here the body assumes power obtaining subject stature.

The system of hierarchical power relations established by patriarchy has forever idealised and eulogised the dominant female ideal of the family oriented, submissive, nurturing woman, the epitome of female virtue and purity. In a social context where sexism is pervasive and deeply internalised by both men and women, woman is normally expected to play only the traditional role of a servile wife, a caring mother and an efficient caretaker of household affairs. The sexist ideologies inculcated by tradition train the minds to treat women as objects for the use and pleasure of others, especially men, and never as dignified individuals with their own rights and goals. Defined by the powerful norms of patriarchy, the image of the Indian woman is forever that of a smiling and joyous being, eager to serve and please, never transgressing the boundaries of 'femininity'. Through psychological conditioning, the artificial, man-made gender roles and ideologies are transmitted to younger generations as inviolable rules of social welfare and peaceful life.

The phallocentric system resists the subversion of the roles of the male and female. But Jameela's autobiography challenges the entrenched gender ideals and explodes the cultivated myth of the self-effacing virtuous woman ever docile and subordinate to patriarchy. Instead of woman's acquiescence to patriarchal norms of femininity we find here the survival of one set of values at the expense of another. While the accepted norms of social behaviour gain one respect and social recognition, deviance puts one's reputation and identity at stake. Adhering to the codes of conduct may earn the reward of a 'good name' but it does not help feed an empty stomach. Nalini Jameela boldly refuses the constraining gender identities and creates a new pattern of existence for herself. She violates the traditional female behaviour expectations to escape from oppression, exploitation

*** Associate Professor of English, T.M. Jacob Memorial Government College, Manimalakunnu.**

and starvation. When she chooses sex work as her occupation, it being the highest paid job available to her at the moment, she does not go by custom and in refusing to call herself a 'prostitute', she denounces the concept of patriarchy which views sex work as a fallen woman's way of life.

As J. Devika, the translator of the autobiography originally published in Malayalam as *Oru Laingikatozhilaliyute Atmakatha* notes in her foreword, the Veshya- the prostitute figure- was treated the abhorrent Other (xii) in the society. But in taking up sex work, in claiming in it the dignity of a profession, and in coming up with an autobiography voicing the life and experiences of the poor women who take up sex work, Nalini Jameela has redefined the accepted concepts of gendered femininity. The stereotype of the feminine is challenged by the abhorrent other. It is remarkable that she never claims the victim status in her narration, rather she is the subject, deciding upon her actions and directing the course of events. In the context of women's lifelong contribution and dedication to the family being unrecognised and relegated as unworthy of claiming the dignity of labour, Jameela identifies sex work as labour, establishes her identity as a sex worker and claims for herself the dignity of a profession. The choice of the profession itself becomes an act of rebellion, a form of resistance to oppressive power. Devika points out: "In her very title, she calls herself a *laingikatozhilali*, a sex worker, claiming the dignity of *tozhil*, a word that can mean both 'labour' and 'profession' in Malayalam" (Foreword, xiii- xiv). When she rejects the description of herself as a 'prostitute' in line with the forces of morality and claims the status of a working woman, she attempts to be the representative of the labouring class of women who are forced to make both ends meet by engaging in the profession of sex work. She deliberately chooses a description that describes her in terms of workforce rather than the definitions of gendered identity. 'Public' life becomes a choice for her within the circumstances. As we observe, the power to choose resides here with the woman. Once into it, she decides to hold her head up and carry on with her profession which is a means of livelihood for her. She never considers sex work as demeaning but only as one among the many professions which are available to the working class. She never takes it as a moral condition either.

Through her candid and unusual autobiography, Nalini Jameela gives an insider perspective of the life of sex workers, delineating the hassles of the job and the troubles, dangers and harassments they face. Also, she rejects stereotypes when she inserts her roles as a daughter, wife, mother, lover and friendly guide in the different stages of her narration. A 'public' woman is not supposed to have a personal life but she makes us familiar with the varied facets of her life. A sex worker's autobiography is expected to be filled with pornographic episodes but the narrative is domestic in nature. Quite contrary to the conventional narrations where the male-female relationship is construed as one of master-slave relationship where the woman's body is fucked, sucked, raped, whipped, humiliated and tortured, (Ruthven 87), the work treats sexual relations as just episodes in the life of the story teller who assumes control over her body. Here the realities of life are explored from a different vantage point, a perspective never made explicit before.

Jameela writes 'resistance' when in her chapter on her clients, she attempts to resist the power of the client over the sex worker, by laughing at him. The client may be domineering at the beginning, but by the end of the game, his power is subtly taken away from him. From the one who sets rules, he is relegated to the one who obeys the rules set by the woman. She dethrones them from their roles as 'distant masters'.

Encountering invisibility and powerlessness leads Nalini to the initial act of resistance. The nine year old girl from the 'big house' when decides to work in the clay house, the motive is financial independence and self-assertion. Finding her mother's position in the family weaken due to her loss of job and consequent financial constraints, Nalini learns the first lesson of her life: "to be one's own boss, one had to work" (5). Pride and dignity came only out of having money. As she changes jobs in due course for better pay and resultant economic security and ends up by chance in a marriage which proved an utter disaster, she realises that life is a fight, that too, an incessant one, and she decides to fight it her own way. The onus of taking care of the two children falls squarely

on her shoulders after husband's death and the mother in law's demand for five rupees per day for the upkeep of the children makes her take the decision to turn to sex work, which she calls 'a new job'. The other jobs paid much less, not even half, and she had to live on and provide for her children.

Jameela hits hard at the double standards of the society when the clients – the men who come for her – are always respectable, and she or the likes of her are *whores* – a blight on the society, whose very existence may jeopardize the moral fibre of the society. The gender duplicity embedded in the society is pitiable. It is because of the men that the demand for sex work has flourished. Still they don't realise that they are the clients. The autobiography explicitly lays bare the innate hollowness of the hypocritical male world. She also shows how men can be both tender and cruel at the same time. The very first night that she spent with a client gave her the sweetest memories but the same handsome man, himself a police officer of a high rank, handed her over to the police the next morning! The enraged woman, in between the canings, shouts: "Police to sleep with by night; police to give a thrashing by day!" (26) From then on, the survival tactics of the woman makes her entertain policemen as clients.

She draws a neat parallel between the domestic women-the elite and the respectable-and the sex workers, the detestable moral blots. Discussing the prospect of her new job, when she is asked to go along with a man who will afterwards pay her, she understands that this was to do with using a woman just as the husband 'uses' a wife. When her friends pity her for her plight and express concern for the way in which she might be treated by her clients, she retorts that those were the same things that their husbands did to them every day. We are reminded of Savitri in R.K. Narayan's *The Dark Room* who takes marriage to be legalised prostitution.

She comes up forcefully with her own arguments of how a sex worker is different from other married women, able to exist independently and individually. The views she advances strikingly put forward her radical thoughts. "We are free in four respects. We don't have to cook and wait for a husband; we don't have to wash his dirty clothes; we don't have to ask for our husbands' permission to raise our kids as we deem fit; and we don't have to run after our husbands, claiming rights to their property to raise our kids" (106-7).

She lays bare the moral hypocrisy of the society where the sex worker is penalised for her act but never the partner. In her first public speech, she blatantly points her accusing fingers at the society: "We aren't the only people to commit this crime. There are lawyers who come to us; there are doctors and businessmen. It isn't fair that all of them are considered respectable and we alone are made into criminals" (87). The woman here is not ready to suffer in silence, rather she wants to create awareness, to engage in consciousness raising which is the initial step of change.

She also dares to speak against the injustices the sex workers suffer in the society. In ancient India, Devadasis were an integral part of the society. They had their own status. Nalini Jameela demands that as sex workers, though they are not given the status and dignity of the olden days, they should not be mistreated and harassed. While they can be legitimately called 'sex workers', hurling bad words like 'koothicchi' or 'tevidishi' or 'petti' or 'tatti' should be avoided at any cost. She voices for the rights of her class in the society, and 'naming' essentially becomes a part of identity formulation. She claims the right for existence for all sex workers who are living a subhuman existence.

Being a part of 'Jwalamukhi' an organisation which worked for the rights of sex workers fuels her enthusiasm and resistance. Never preferring to assume victim status, she discourages the sex workers reiterating their tales of harassment and mistreatment. She attempts to find a solution to the problems they face than harping on the same note. The sex worker arrested for her 'immoral' act is forced to approach the lawyer and pay a fine at the court every time she is detained. In the context, Jameela boldly states that sex work is just an occupation, not an offence to be punished: "Why did one need a lawyer to pay a fine? We hadn't really committed an offence. So we had to fight our case claiming that we shouldn't be punished" (85). Jameela strongly

advocates for decriminalising sex work. Sex between consenting adults should not be a matter of societal concern.

She does not subscribe to the idea of rehabilitation of sex workers either. The concept of rehabilitation sounds hollow to her. The job offers will remain hollow promises when even the healthy and the educated are queuing up for jobs. The sex worker devoid of family and close circles, when rehabilitated, will be in a greater vacuum which may be suffocating and calamitous, apart from the financial constraints they may face. Dragged off to some slum areas, they will be forced to live on the dole. What Jameela demands for the group is not sympathy or compassion, but understanding and acceptance from society, an assimilation into the main stream culture.

Jameela's autobiography is not just an attempt at publicity but a search for dignity, empowerment and freedom on her own terms. While establishing Nalini Jameela as a public person, the work testifies to the oppression of sex workers who live on the fringes of the society. It voices the silent protests and sufferings of the subjugated, humiliated, marginalised group of sex workers. As Devika remarks, the autobiography highlighted the ordinariness of sex work in the lives of the poorest women, its place alongside other strenuous, exploitative and demeaning work – situations quite invisible to Kerala's educated elite (Foreword xiii). The work is not a scream for help but a statement of one's stand and a demand for justice, dignity, autonomy and right for existence. When exploited or oppressed, people attempt to create unique solutions to avoid further victimization. Here we find powerlessness redirected, transforming and reconceiving persons as compellingly assertive. Redefining the limits of power and powerlessness, Jameela creates a new vision of femininity wherein there is *space* for the subjugated, the marginalised and the dehumanised.

References of Works Cited :-

1. Foucault, Michel. *The History of Sexuality*. Vol I. <https://criticallegalthinking.com/2012/02/07/in-defence-of-foucault-the-incessancy-of-resistance/>
2. Jameela, Nalini. *The Autobiography of a Sex Worker*. Translated by J. Devika, Westland ltd, 2007.
3. Ruthven K.K. *Feminist Literary Studies: An Introduction*. Cambridge University Press, 1991.
4. Scott, James C. *Weapons of the Weak*. Yale University Press, 1985.

Quest For Freedom In Mark Twain's Select Novels - A Pragmatic Study

Chappali Vijaya Kumar*
Dr. V. Ravi Naidu*

Abstract :- Mark Twain is considered one of the great literary artists of America. His concept of freedom is derived from his personal experiences, the contemporary socio-political scenario of America and the writings of the European thinkers. Born as Samuel Langhorne Clemens in a slave holding white family, Mark Twain, spend his childhood in Hannibal and saw how the negro slaves were ill treated besides he saw children of his age ruthlessly controlled by the parents. Aware of the writings of Russo, he sincerely felt that children should be allowed to grow naturally and in the formative years they need love and sympathy not order and punishment. His endeavors of making freedom an important social issue is clearly visible as one of the major themes in his writings. The great quality of Mark Twain is that he posited this idea of freedom in his novels in the most entertaining way that is his novels are in the form of adventures farce or fantasy. The paper elucidates the quest for freedom of the protagonists in the three novels of Twain viz, *The Adventures of Tom Sawyer, The Prince and the Pauper, The Adventures of Huckleberry Finn.*

Key word's :- *Freedom, liberty, Aristocracy, Nigger, Slavery, Customs etc.*

In short, freedom is the requirement to be free if an individual is not under any other person's control. Free refers, in other words, often to the individual's characteristics but not his actions. Freedom is a multiple term that can be explained as self-fulfillment, freedom, right and independence. American Literature has been an art with the power to move religion, a rebellious role. It did justice not just in today's literature but in the past. Previous events have not been forgotten, nor have they been brought alive in current writers' literature. Looking deeper into it, we discover that American literature is a mix of the past and the present with its roots in fighting for freedom and the following independence declaration.

Mark Twain tried to create many characters that were born out of his childhood experiences. *The Adventures of Tom Sawyer* published in December 1876 is one of the masterpieces of Twain a milestone in his literary journey. It is the first novel that Twain wrote without a co-author and therefore it is considered his first solo flight in fiction. He said, 'Tom Sawyer is simply a hymn put in the prose to give it a worldly air.' This remark of the author leads us to the conclusion that Twain took the book seriously and made it the very folklore of childhood. The novel concerns a long summer in the life of an ordinary young boy living in Missouri in the early 19th century. It is set in a village modeled closely on Twain's home town. The world of Tom Sawyer consists of four essential elements. The figure of Tom himself stands at the centre first of all. Second, the background is St. Petersburg's summer world. Thirdly, St. Petersburg's audience, which includes both adults and children, work as the audience of Tom within the action at one time or another. There is finally the narrator who acts himself as a complacent audience. When Tom Sawyer's adventures begin, we meet Tom as a child who stays with his Aunt Polly. For him, she is a tough and strict lady, while Sid, Tom's so-called half-brother, is a soft one. Tom tries to hide from his aunt, because his discipline never suits him. He wasn't his village's model boy. An important aspect of Tom is in him Twain can be searched at this point. Tom is always looking for an opportunity to escape all of this and enjoys his own freedom when punished or sometimes

* **Research Scholar, Dept. of English, S.V. University, Tirupati.**
* **Professor of English, DDE, S.V. University, Tirupati.**

beaten by teachers. It was simply that as a child his brain needed more, a wide space, a wide open space to allow his mind to grow, his thoughts to move as he liked it. Twain wants his thoughts to be high, to fly above his head, and to look for the sky below his feet. He wants to be more thinking than what is there in the book. Twain's constant search for this freedom came to him in adulthood.

Nobody likes Huckleberry Finn, the outcast kid, but all the boys enjoy and admire him. Huck, always in full-grown man's cast clothes, is free to himself. Whenever he feels like, he can sleep and get up. No one is able to command him or any master to follow him to a time table. Huck has all in one sentence he makes life precious. Within *The Adventures of Tom Sawyer*, however, he serves primarily as a foil to Tom. Like the rest of the respectable boys, Tom admires Huck because he is 'the only boy in town who is completely free.' Of course no one is ever 'completely free' -not even- Huck, who is frequently dominated by the powerful personality of his friend. But compared to Tom, Huck seems to be in control of his own life. Tom must undergo some strange circumstances in this novel because his relationship with Becky is not smooth and at the same time he saw a killing, which very much scares him. He, Joe Harper and Huck are planning to flee from the police and the murderer Injun Joe to a remote place. Tom tries to be clear in comparing the life of a pirate, who can go walking, act in his own free will and sleep and eat freely, whereas a hermit must lead a restricted and disciplined life, even if he has to escape from the society or is completely alone. Nobody loves them, nobody wants them, or cares for their wishes – they are carried away by this feeling of being ignored. This story dictates not only children's adventures or a child's expectations from society, but also a deep look into their soleness. Tom wishes to distinguish himself from the island and for this he has even hidden three of them, so that people think they are dead. But Joe Harper couldn't stay, and Huck went with him, and Tom must return with them as well. In the meantime the Sunday prayer was dedicated to the dead boys when they were declared dead in the village. But as the prayer continued, suddenly the door of the church opened, and three dead boys came to the aisle as a great surprise. They were the prominent boys now. Tom and Joe were told at school that the two heroes had almost flown high by the children. They were eloquent. The black slaves who never gained freedom could never be avoided by Twain.

The Prince and the Pauper published in December 1881 is a historical romance of Twain, "which can be seen as an effort to unite the apparently contradictory democratic and aristocratic sentiments. The prince and the pauper exchange places, and consequently the prince becomes more aware of, and sympathetic towards, his common subject, while the pauper attains 'his due of reverence."(Stonelay 82) The novel's plot is based on a double theme, the pauper a boy in his ordinary life and the prince who is royal and executive. In the first chapters, two different kids who were born in the atmosphere were introduced to us, which was a dream only for the other. The representative of the poor was Tom Canty and the rich class was Edward Tudor. They were born the same time on the same day in town was just a coincidence. However, their fortune was truly different. Every citizen was glad to see the birth of Baby Edward celebrated. Baby Tom too was given then party of tears from his mother and sisters. Both of these boys grew up in their respective surroundings. Tom was living with his family in a foul little place, called Offal Court, it was decayed and rickety, but many poor families accommodated the place. Tom knew his father was going to beat and curse him badly on the day he came back without money. Only a good and learned man, who had a little pension, was a good old priest who taught Tom to read and write some Latin. He even told them stories full of courteous luxury. Tom began to dream the life of that real prince and of the way in which his servants, his clothes of silk, surrounded him. In a totally different atmosphere, Edward Tudor grew up at the same time. He lived a life of luxury, almost all one could dream of. However, they both were not happy with their lives. It was difficult for Tom to be happy in an unhealthy atmosphere in which he lived, and Prince was unhappy, because his

atmosphere was very healthy. Both were looking for freedom; only to live their lives as they wished. They both wanted freedom. They felt as if everything had been trapped in their life, their activities. Life continued and Tom grew up with his dreams, when he was really stunned one day to be among the crowd that watched the real Prince Edward going in front of him. He did not know that the crowd was pushing him and he stood at the bars of the big palace entrance. The troops tried to cast him away, but the Prince ordered Tom to go in. The Prince met him warmly and brought him to his room of which Tom dreamed. On meeting Tom, Prince was curious to know all about him, his life and almost all of it. Tom also described his moments of joy, fun and adventures with enthusiasm and respect. This description is too tempting for the Prince, he can't believe that this can be the life of the boys of his age, he is very happy and excited to listen all this from Tom's mouth and is ready to give Tom everything he owned. The Prince was very glad to wear Tom's ragged clothes and to give him his costly dress. When the real Prince is on the road he knows that he will enjoy all of his fantasies about the real fun of childhood without the restrictions of the fort. And by the end of the day when he is enough tired and couldn't reach the Offal Court, his heart starts feeling sick, and he remembers the treatment he got from those hospital boys.

There was a real difference between the treatment for poverty and children on the road and what it looked like. He was in the street where the crowd was very different from the image he felt, he lost all and felt disabled. And Edward saw every day that the dream of being poor, hungry and homeless in London, was far remove from reality. Now we move to Tom Canty, who is living in the fort. He could not believe that something that seems impossible happened to him in his life to-day, and his dreams were true now. He is treated like the Prince and they respected him. He tried to tell them that he was obliged to be very grateful and aristocratic, but they should leave him now and let him go home. Prince Edward heard the news of king's death and knew that he should become the King, and he reached the gate of the Gilded Hall, and declared himself to be the real Prince of Wales. But this time, the crowd couldn't accept everything and wanted to attack and kill him. He was rescued by Miles Heldon. This poor boy was for Hendon like a little brother, whose memory has been lost and who now considers himself to be the real King.

Now with the vagabonds, the real King had an opportunity to move here and there. Now, in his life as a King, Tom had adjusted so well, he tried to forget all. He lost his fear; his fears faded and died; his pain went away, gave way for a comfortable and trustworthy wearing. The day of crowning came and Tom Canty slept in his rich bed one night before, as he was going to become King of England, with peace and happiness. Tom Canty went on a procession to the coronation, finally, was the mock King in the abbey. When the crown was about to stand on his head, he was terribly shivering. He just wanted to stop this all, but he lost his energy and at that moment the real King appeared from the crowd in rags and said, that, "I forbid you to set the crown of England upon that forfeited head, I am the King." (Scott 472)

At one time, Edward thought he couldn't, but Tom helped tell him to all, the day he left the palace, where he kept the great seal of England. And once the seal was recovered, they all knew that he was the real king from the place that the poor boy was indicating in the rags. Edward finally reached his throne, but he hadn't forgotten anything. The king awarded and assisted all those he felt suffered because of poorness and adequate punishment for the cruelty. Twain gives the story a happy conclusion, but throughout the novel his messages are hidden. He succeeds in making the story more interesting by the way he presented the characters and their place in the story.

The Adventures of Huckleberry Finn is certainly Twain's masterpiece and is often considered as an 'American classic'. We saw Huckleberry Finn as the supporter of the main hero in *The Adventures of Tom Sawyer*, but we not only know his attitude towards his social structure,

but also his hidden sensations on a large platform in this book. He is adopted at the end of *Tom Sawyer* by the Widow Douglas, who trust that she will make a decent boy of him entirely. However, Huck is not comfortable with the way widow Douglas and her sister treated him in his guardian's place. Then he finally escapes that house and returns to his own jungle world. But Tom looks at him and asks him to go back with the promise to the widow that Tom will let him join the robbers band, which he will soon begin. Huck's escape from his house is his escape from social life full of rules, constraints and all those formal relations from which Huck wants to always be free. When he escapes at night, he goes to Tom, where rest of boys waited for them. They reach this part of the forest. This was not just a gang in which they were all joined, but the elders around them never feel like helping them. This was a great opportunity for Huck. Everything he enjoys. Huck can never escape his dreaming habits. Therefore, he and his gang begin to dream of robbing. One day Pap manages to steal him and takes him to the woods along the coast of Illinois. But Huck walks to the shore and takes a hidden raft and moves toward Jackson Island, proving his death. After staying on the island for three days, he finds a nigger, Jim, a slave to Miss Watson who ran away from home and they become allies. The most exciting and interesting part of the novel is the tour of Huck and Jim down the river to Cairo Island. By the quality of his beliefs, Twain dramatises his bondage. Jim is helpless in slavery before dark forces, because the battle against them is difficult for him. He is too weak and timid to stand and easily bear the brunt of any chance or accident. Jim and Huck start their odyssey from the House of Death. Jim can act now like Huck's father, and Huck's first act, like a son, is to protect him. And for both of them, this relationship that arises from a small gesture of sympathy became very important. Huck, for the first time, is concerned about a slave that's very different from him, someone other than himself. Both of them began to understand the need of each other. Now that Huck has learnt how inseparable he and Jim are, circumstances immediately push it apart. The following chapter runs a paddlewheeler through their raft; he finds himself alone when he reaches the shore and cries out for Jim. He gets into the Grangerfords and finds Jim only after he was shot. For Huck his independence is very important. He can never think of losing it. He always tries to keep himself aloof from the social barriers. Twain's mode of novels is usually a fantasy, farce, or adventure of children, but the definition and defense of liberty for all people in the whole American society and the world is always a serious objective. Twain, a humorist and satirist of the first rate, is in the line of Whitman, Thoreau, Hawathorne, Melville and Emerson, the great builders of American democracy.

Reference :-

1. Scott, Arthur L. *Mark Twain at Large.* Chicago, Henry Regency Company, 1969.
2. Stonelay, Peter. *Mark Twain and the Feminine Aesthetic.* London, Cambridge University Press, 1992.

Psychological Distress : Origin and Expression

Salvi Singh*

Dr. Seema Singh **

Abstract :- Spectrum of conscious and unconscious mental activity arise the origins and expression of psychological distress. To some degree it is necessary for people to function with psychological distress but the continuous experience of psychological distress can became the experience of disorder or illness and it is these shades of spectrum explore in this research paper. Of course, there are so many points which are open to debate like which shade of human experience constitute disorder or which type of disorder occur by continuous feeling of distress etc. Researcher do not draw conclusion in this respect but encourage the reader to consider an integrated explanation of human experience and thus, of mental disorders. This paper includes models of mental disorder its classifications with some key symptoms and user perspectives.

Introduction :- Psychological distress is a phenomenon that exists since ancient times and even today we still seek to know more about it since it has not yet been completely understood. The major dispute among students of psychological distress has been over the meaning of the concept, and about what actually is meant by the assertion that a person is psychologically distressed. Interpersonal theories attribute psychological difficulties to dysfunctional patterns of interaction (Carson et al., 1996). They emphasize that we are social beings, and our thoughts are the products of our relationship with others.

Psychological distress is described as the maladaptive behavior observed in relationship which is caused by unsatisfactory relationships of the past or present. Psychological distress is identified when examining the distressed person's different patterns of interpersonal relationships.

Models of Mental Disorder :- As night can only be understood in relation to day, black to white, in a same way 'mental health' can also be understood in relation with 'mental illness. Both terms are inseparable, it's a term of relation not of reality, and the reality they describe is human experience. Different models of mental disorder are following: *The disease model* Scadding(1967) define disease as the presence of abnormal phenomena displayed by a group within a species, that sets the group apart from its species in so far as the disease places them at a biological disadvantage. In lay term, a disease is only present if it harms the individual or reduces his or her capacity to reproduce (Tyrer and Steinberg 1998). Disease theorists attribute mental disorders, or psychiatric illnesses, to physiological and chemical changes in the individual, particularly in the brain but also in the other parts of the body (Tyrer and Steinberg 1998).

The disease model follow traditional medicine endeavours to identify through scientific objectivity the presence of stable phenomenon that we call 'mental illness. Clinical syndromes become refined into diagnoses, which are essentially codes for heterogeneous and often unstable collections of symptoms (Craig 2000). Medicines are prescribed to balance chemical imbalances, electroconvulsive therapy is administered to shunt neural pathways into shape, positron emission tomography may be requested to check those temporal lobes and, in the most extreme of cases, pieces of the brain may be removed.

The psychodynamic model :- The psychodynamic model is more accurately described as a style of human interaction and understanding that draws on a broad philosophy, which includes clinical, biological and evolutionary theory as well as religion and the arts (Tyrer and Steinberg 1998). Ideas and feelings behind the word and actions are the primary focused human behavior constituted in the

*** Ph.D. Student, Faculty of Education (K), Banaras Hindu University, Varanasi (U.P.) India-221010.**

**** Professor, Faculty of Education (K), Banaras Hindu University, Varanasi (U.P.) India-221010.**

psychodynamic approach. Psychiatric disorders are not viewed as illness with disease-based aetiologies but as conflicts between different levels of mental functioning.

There are so many different theories which have been put forward in the field of psychodynamic tradition to explain human experiences but the founding father of the psychodynamic school was Sigmund Frued (1856-1939). Frued was a biological thinker interested primarily in an organism's attraction to pleasure and repulsion from pain. Application of the pain/pleasure continuum to the human mind and its development led Frued to divide mental life into the *n*eeds (id), wishes (ego) and a conscience (superego) and, perhaps not surprisingly, psychological distress arises from the struggles that take place between them. Many of these struggles take place in the unconscious and Fruedian analysts are concerned with healing the radical split between the conscious and unconscious, thereby creating a strong and healthy ego that is an accurate and acceptable selfimage.

The behavioural model :- The behavioural model has a scientific basis in Learning Theory. Symptoms are considered to be learned habits arising from the interaction between external events or stressors and an individual's personality. Persistent, distressing symptoms are considered maladaptive responses rather than being markers for some underlying disease or illness. For the behaviour therapist the symptoms and their associated behaviours are the disorder (Tyrer and Steinberg 1998). The behaviour therapist is interested in replacing maladaptive responses with adaptive behaviour patterns. This is usually done by gradually removing the fear response through such techniques as graded exposure and systematic desensitization. An important principle of behaviour therapy is a collaborative working partnership between client and therapist.

The cognitive model :- The cognitive model posits that people interpret their thoughts, which in turn are the main determinants of behaviour (Tyrer and Steinberg 1998). This stands in sharp contrast to the behavioural or disease models, which do not accommodate the cognitive mechanisms involved in behaviour and illness. An important framework used by many cognitive therapists is the ABC model first described by Ellis (1962). A stands for 'activating event', B stands for 'beliefs' about the 'activating event', and C stands for the emotional or behavioural 'consequence' that follows B, given A. The use of this model to manage distressing delusions, hallucinations and feelings of paranoia that people may experience in the course of a mental disorder (Kingdon and Turkington 1993; Chadwick *et al.* 1996).

The social model :- The social model is concerned with the influence of social forces as the causes or precipitants of mental disorder. While the psychodynamic model is principally concerned with the individual and their personal relations, the social model focuses on the person in the context of their society as a whole (Tyrer and Steinberg 1998).

Evidence that social forces are central to the aetiology of mental disorder can be traced to the work of Emile Durkheim (1897) who demonstrated that social factors, particularly isolation and the loss of social bonds, were predictive of suicide. We may be more familiar with associations between poor living circumstances in deprived geographical areas and the incidence of physical health problems (Whitehead 1992). However, this relationship holds also for mental disorders, perhaps because the associated deprivation is usually accompanied by unemployment, loss of social role and a subsequent sense of alienation from mainstream society (Hirsch 1988; Thornicroft 1991). At the heart of this model is the premise that we are all prone to mental disturbance when unpleasant events strike us without warning. This fact led Holmes and Rahe (1967) to develop the social readjustment.

There is an intuitive appeal to the social model since we are all likely to have experienced major upheavals in our lives that may have caused us to feel psychological distress. Anxiety and low mood. The social model provides also a rationale for the origin of other types of psychological distress in which delusions, hallucinations and an apparent loss of contact with reality occur. Supporters of the social model aim to help people take up an acceptable role in society once more, rather than to correct a chemical imbalance or recondition specific behaviours (Tyrer and Steinberg 1998). This may involve social skills training (Liberman *et al.* 1993), some systemic family therapies (Barker 1981) and more

general family interventions involving education on the influence of critical 'expressed emotion' (Brooker and Butterworth 1991; Lam *et al.* 1993; Falloon 1995).

Classification of mental disorder :- Systems for classifying mental disorder or 'illness' stem from the medical model, which as Tyrer and Steinberg (1998) point out is not an aetiological model itself but an approach to diagnosing individual disorder. In a general sense all models apply this process, with exception perhaps of the social model, although the systems that are used for classification purposes vary between models. For example, when discussing the cognitive model we described Ellis's (1962) ABC framework for defining specific cognitive problems that arise between an activating event and the behavioural or cognitive consequence. Medical diagnosis is another classification system, which represents the dominant frame of reference for most mental health workers internationally.

These diagnoses are described in two classification systems; the *International Classification of Disease* (ICD-10 World Health Organization (WHO) 1992); and the *Diagnostic and Statistical Manual for Mental Disorders* (DSM-IV American Psychiatric Association (APA) 1994). Ideally each diagnosis should be mutually exclusive and stand independently of other symptoms associated with other diagnoses. Rarely in practice is this achieved.

Symptomatology of mental disorder :- The mental disorder can affect a person's mood, thought processes, perceptions and behaviours. Common symptoms associated with mental disorders are described below:

Mood :- Anxiety :- Anxiety is distinguished from general tension by its accompanying physical sensations (autonomic nervous system arousal), including palpitations, sweating and tremor. Anxiety may also occur abruptly for short periods during which the person experiences marked fearfulness and may feel they are losing control (panic attacks).

Depression :- 'Sad','gloomy' and 'low spirits' are synonymous with depressed mood. More severe forms of this experience encompass additional features including a reduced emotional response to the ups and downs of life (flattened or blunted affect). The individual may also experience disturbed sleep patterns, loss of appetite and a lack of interest in and engagement with life. More extreme forms of this experience can be accompanied by feelings of hopelessness, possibly leading to suicidal thoughts.

Elation :- Individuals who experience elation in the course of a mental health problem may feel euphoric and excited but also irritable and impatient

Thought processes :- Obsessional thoughts :- A person's thoughts are considered obsessional when they become intrusive, unwanted and no longer amenable to self-control (obsessional ruminations).

Delusions :- A delusion is a false impression or belief that we can all be subject to from time to time.

Thought possession :- Some people with mental health problems encounter the sensation that the innermost workings of their mind are amenable to outsiders (Craig 2000).

Perceptions :- Perception among people who experience mental health problems can become diminished, heightened or distorted (Craig 2000). Hallucinations are a key symptom in this respect, which are defined as false perceptions in so far as there is no adequate external stimulus for the experience.

Behaviour :- The behaviour and appearance of people with mental disorders may appear strange or unusual.The specific patterns and qualities of a person's speech are more useful indicators of a mental disorder. Symptoms may include *pressure of speech* (a rush of words that is difficult to stop), *flight of ideas* (skipping from topic to topic with no logical association), and *poverty of speech* (speaking freely but in such a vague manner that no meaningful information is communicated).

User perspectives on mental disorders :- When people who have experienced mental disorders describe the connections that are important to them in the expression of their distress, their needs, and thus the imbalances that have led to their condition, there are striking similarities across individuals and groups. Users value common things such as respect, choice, self-help and advocacy. Their expressed

needs include intimacy and privacy, satisfying social and sexual lives, happiness and meaningful activity (Repper 2000). A survey of more than 500 service users, conducted by a research team of service users, concluded that 'while many users suffered from the side effects of psychotropic drugs, most also appreciated the benefits and lessening of symptoms' (Rose 2001: 6). The evidence points to an integrated understanding of the origins of human experience and a corresponding focus on those areas where care and attention is required.

Conclusion :- This paper starts by suggesting that mental illness and mental health are terms of relation that describe the reality of human experience. We have, therefore, given an account of one side of human experience (or at least some shades of its spectrum). To conclude, we summarize the main points of this paper below:

- Mental disorders represent shades in the spectrum of human experience, which comprise a subjective and objective sense of self and community.
- Feelings and ideas behind the word and actions of human behavior shows their psychological distress level when there is conflict between different levels of mental functioning.
- Models of mental disorder describe a etiology and treatment implications in relation to different levels of human functioning: bio physiological organism (disease); the unconscious (psychodynamic); thought processes (cognitive); actions (behavioral); and self in context (social).

References :-

1. Barker, P. (1981) *Basic Family Therapy*. London: Granada.
2. Carson, R. C., Butcher, J. N., & Mineka, S. (1996). *Abnormal Psychology and Modern Life* (10thEd.). New York: Harper Collins.
3. Chadwick, P., Birchwood, M. and Trower, P. (1996) *Cognitive Therapy for Delusions, Voices and Paranoia*. Chichester: John Wiley and Sons.
4. Craig, T. (2000) Severe mental illness: symptoms, signs and diagnosis, in C. Gamble and G.
5. Brennan (eds) *Working with serious mental illness: a manual for clinical practice*. London: Bailliere Tindall.
6. Durkheim, E. (1897) *Le Suicide*. Paris: Alcan.
7. Ellis, A. (1962) *Reason and Emotion in Psychotherapy*. New York: Stuart.
8. Falloon, I. (1995) *Family Management of Schizophrenia*. Baltimore: Johns Hopkins University Press.
9. Hirsch, S. (1988) *Psychiatric Beds and Resources: Factors Influencing Bed Use and Service Planning*. London: Gaskell.
10. Holmes, T. and Rahe, R. (1967) The social readjustment rating scale. *Journal of Psychosomatic Research* 11: 213–18.
11. Kingdon, D. and Turkington, D. (1993) *Cognitive Therapy in Schizophrenia*. New York: Guilford Press.
12. Liberman, R., Wallace, C., Blackwell, G. *et al*. (1993) Innovations in skills training for the seriously mentally ill: The UCLA Social and Independent Living Skills Modules. *Innovations and Research* 2: 43–60.
13. Repper, J. (2000) Adjusting the focus of mental health nursing: Incorporating service users' experiences of recovery. *Journal of Mental Health* 9: 575–87.
14. Rose, D. (2001) *Users' Voices: The Perspectives of Mental Health* Service *Users on Community and Hospital Care*. London: SCMH.
15. Scadding, J. (1967) Diagnosis: the clinician and the computer. *Lancet* II: 877–82.
16. Sturt, E. (1981) Hierarchical patterns in the distribution of psychiatric symptoms. *Psychological Medicine* 11: 783–94.
17. Thornicroft, G. (1991) Social deprivation and rates of treated mental disorder, developing statistical models to predict psychiatric service utilisation. *British Journal of Psychiatry* 158: 475– 84.
18. Tyrer, P. and Steinberg, D.(1998) *Models for Mental Disorder: Conceptual Models in Psychiatry* (3rd edn). Chichester: John Wiley and Sons.
19. Whitehead, M. (1992) The Health Divide, in P. Townsend, N. Davidson and M. Whitehead *Inequalities in Health*. Harmondsworth: Penguin.
20. World Health Organization (1992) *International Classification of Disease* – 10th edition. Geneva: WHO.
21. World Health Organization (2001) *The World Health Report 2001: Mental health; New Understanding, New Hope*. Geneva: WHO.

Topic of Research Paper : The Plight of the Marginalised and Gender Discrimination in *Mahesh Dattani's Play 'Tara'*

Subhadeep Talukder*

Abstract: Modern feminist movement brings new literary theories like gender studies which primarily deals with the social evils like gender discrimination, plight of women etc. This paper is an attempt to study Mahesh Dattani through his popular play 'Tara' which brings the consequences of gender discrimination in the lives of Chanda and Tara. Both the children remains crippled throughout their lives following the unsuccessful medical experiment of the patriarch family. Through this play Dattani tries to exposes insensitive behaviour of society towards the physically disabled persons. Dattani also portrays how being in a noble profession Dr. Thakkar misuse his knowledge for monetary gains. The play also shows how today generation fights back gender injustice is strongly.

Keywords: *gender discrimination, Mahesh Dattani, patriarch, siamese, domination, suffering*

Introduction : - It was the women's liberation movement of the 1960s and 1970s that brings the new era of feminist movement in social, cultural and literary field. Thus, feminist movement brings more feminist theories that leads to the thinking of gender as well as gender studies. It was French philosopher Simone De Beauvoir in her book ''*The Second Sex*'' shows us the gender of femininity as well as how psychoanalytically women is considered as 'others' in patriarchal society. On the other hand, prominent researcher and writer on gender Michael S. Kimmel in his book ''*The Gendered Society*'' (6th Ed.) explores current thinking about gender, both inside the academia and in our everyday lives. He believes that gender is not limited to women's experience only. He includes both masculine and feminine perspective of the study of gender. He states that boys and girls become gendered because they learn appropriate behaviour and traits as it is associated with hegemonic masculinity and exaggerated femininity.

In modern India, girls have proved themselves repeatedly their competence for every profession. But still women folk in India, even, in educated, urban cities have to face gender discrimination at its ugliest ways. Popular dramatists like Mahesh Dattani in his plays tries to bring out the issues of this gender discrimination, plight of women, homosexuality in an elaborate manner. This paper tries to analyse Mahesh Dattani's presentation of the plight of women in modern society through the character of Tara. Tara and Chandan are Siamese twin, but, Tara has to face the social injustice in the sibling as she is a girl child.

Dattani introduces Tara as ''Twinkle Tara'' through the address of Dan. Tara means star; thus Tara, the character is attributed as 'shining star'. The Play centres on the happy life of the Patels, the Gujrati family and the start of the problem with the birth of their Siamese children Chandan and Tara. The chance of survival of both the children is very thin. This causes the family to be traumatic. Asha K. Chaudhuri analyse this scenario in the following manners:-

> ''The play looks at the battles, the victories and the defeats of an Indian family coping with the trauma of freak children and their survivals, while also exposing the existing patriarchal stereotypes of the Indian mind-set, which has always preferred a boy child to a girl child.'' (Asha K. Chaudhuri 37)

*** Research Scholar,Tilka Manjhi Bhagalpur University, Bhagalpur, India.**

It is decided that after the birth of the twins Dr. Thakkar would undertake the operation of 'separating' the twins. But the case is very complex. Thus Dr. Thakkar says:

''You see, there is something even more remarkable about this case.''
''Conjoined twins – your Siamese twins- developing from one fertilised ovum are invariably of the same sex. Well, almost invariably. But here these two were obviously from different fertilised eggs.'' (CP 332)

Though both the children have sufficient organs to survive but the problem arises when it is found that both the children have one leg and the third leg is common. It is also revealed that major part of blood supply to the third leg is provided by the girl. Therefore, chances are that the third leg should naturally survive on the girl. But the decision of the socially and economically powerful grandfather to give the third leg to Chandan ; thus makes both Chandan and Tara cripple and have to wear one artificial 'Jaipuri' leg each for the rest of their lives. This incident showcases the patriarchal hegemony where the medical science and nature's preference for the third leg is being altered and biasedly given to the male child knowing it could not be able to survive on the male body. Dattani here also portrays the material greed of a reputed doctor who has done this unethical surgery.

After this initial gender discrimination both the children has to face this issue as they grow. Both the children wants to persuade career in their own desired field, where Chandan wants to be a writer and Tara to be a successful businessman like his father. Here also Dattani showcases how traditional patriarchal Indian society fails to accept the natural talent and pressurise children to select profession according to their gender proficiency. Chandan, himself knows that Tara is more capable of joining his father's business. Thus says: '' She'll make a great business woman.'' (CP 328)

But Patel does not agree with his view and says: ''Chandan, I think I must insist that you come,'' (CP 328) and says ''no'' to Tara, therefore, '' looks at Patel slightly hurt.'' (CP 328). She tells Patel: '' I'm going to hate you anyway." (CP 376)

But she misunderstands Patel. He loves Tara equally well. On an instance, he mimes talking to a doctor on phone: ''Yes, Dr. Kapoor. I am happy to hear that... ……. She is very lucky girl……..'' (CP 343)

In this play apart from Tara, Chandan has to face this gender biasedness. His father does not appreciate Chandan when he finds him helping Bharati, his mother in knitting work. He belongs to a generation when knitting was assigned to women only. He thinks that this is not the job of a boy. He asks Chandan to concentrate on his studies. But he differs. Chandan does not find any harm in it. He reacts to his father's charges that Bharati has asked him to do so:

''Patel (to Bharati): How dare you do this to him …?
Chandan: Wait a minute, Daddy…
Patel: Can't you even look after the children? ..
Patel: Bur you can't think of turning him into
A sissy teaching him the knit!'' (CP 351)

Patel has always given importance to Chandan's career but fails to plan for Tara as she is a female. Bharati's father is portrayed in the play as a patriarch who has given all his property to Chandan and not to Tara as he finds in Chandan the male hirer to his property. Though Chandan disagrees his idea and asks his father why his grandfather has not given Tara the money as she is also his grandchild. But Patel says: '' It is his money. He could do what he wanted with it.'' (CP 360) Gender discrimination in Patel's family is not a new phenomenon. Roopa, thus once said to Tara:

''The Patels in the old days were unhappy with getting girl babies –
You know the dowry and the things like that – so they used to

draw them in milk. So when people asked about how the baby died,
they could say that chocked while drinking her milk.'' (CP 322)

Mr. Patel has never allowed Bharati to tell Tara about the injustice happened with her. Though she requests Mr. Patel frequently, ''Then let me do what I want to do.'' (CP 345). But Bharati has no power to resist against these social forces. But Chandan knows this discrimination happens to Tara. That is why he shows more respect and love towards Tara. In an intense conversation between Chandan and Tara their affection is revealed:

''Tara: it's all the same. You, Me, there's no difference.
Chandan: No difference between you and me?
Tara: No! Why should there be?
Chandan: That's the nicest thing you have ever said to me.'' (CP 361)

When Patel tells her about the third leg and how it was not given to her, though it should only to be given to Tara, she is devastated by the revelation. She is also shocked to think of Bharati's behaviour in this matter. She says, '' and she called me her star.''

In presenting gender discrimination, Dattani is never found to be biased towards 'Tara'; rather he equally sympathises with 'Chandan' who also bare the guilt of being the cause of injustice towards 'Tara' throughout his life. Even he has to leave India and settle in London to escape this feeling of guilt. The name 'Dan' is also an attempt for him to curb his guilt consciousness. The most striking event happens when he even refuses to come to India after his mother's death, though Patel insists him to return. This turmoil in the lives of the characters in the play is brilliantly describes by Sangeeta Das. She says:

"Tara is neither Chandan's tragedy nor is it really Tara's. Tara is sacrificed because she was a girl and had no right to have a better life than her brother. The idea of a complete girl child and an incomplete male child is so shocking that sacrifice of the girl child is acceptable than a handicapped male child. The tragic events depicted in the play are tragic actions belonging to everyday life." (Sangeeta Das 115)

At the end of the play we see Chandan apologizing to Tara saying: ''Forgive me, Tara forgive me for making it tragedy.'' Thus, the play ends with the spirit of Tara and older Chandan, Dan hugging and reconcile each other.

Conclusion:

To conclude, it can be said that Mahesh Dattani is one of the most prolific writer whose portrayal of gender discrimination is far reaching. Here, Tara does not mere represents an individual, rather she is the voice of modern Indian women who fights for her right in the patriarchal society. Dattani becomes successful in depicting gender discrimination against women from the womb of her mother to the final end of her life. Thus, this play becomes immense success when women folk relates themselves to a large extend to Tara.

References :-

1. De Beauvoir, Simone. ***The Second Sex*.** London: Vintage, 2011.
2. Kimmel, Michael S. ***The Gendered Society, Sixth edition.*** New York: Oxford University Press, 2016.
3. Chaudhari, Asha Kuthari. ***Mahesh Dattani : An Introduction.*** New Delhi: Foundation, 2005.
4. Dattani, Mahesh***. Collected Plays Vol-II.*** New Delhi: Penguin Publishers, 2005.
5. Das, Sangeeta. ***Identity Crisis of Women in Tara, The Plays of Mahesh Dattani:A Critical Respone***.
6. Ed. R.K.Dhawan, Tanu Pant, New Delhi: Prestige Books, 2005.

Adverse Effects of Covid-19

A Psychological Pandemic on The Way

Dr. Anil Kumar Teotia*

ABSTRACT :- Today we are facing a pandemic create by a novel coronavirus.Covid-19 is an infectious disease that SARS-CoV-2 causes. It is a contagious disease, and it spreads in the same way other coronaviruses do. However, the primary spread way is person to person spread. This virus was reported in December 2019, and it quickly spread out to the whole world. To contain the spread of this novel coronavirus, many governments around the world imposed a lockdown. Thus, all the schools and other places of children's interests were closed, making them alone and upset.

The present article explores the risk of psychological pandemic post this corona pandemic. Children are at risk of feeling worried, anxious, and fearful. The current world has experienced a tremendous loss of lives in this pandemic, threatening children as adults. The fear of catching an infection and dying from this virus is causing much stress among children. The bad part is that all the counselling centres and schools are closed; hence, children are not sharing their feelings, which is a negative sign again. In the present article, the researcher analyzed the impact of coronavirus pandemics on children's psychological state and tried to explore the post-COVID-19 psychological crisis. Some suggestions for helping the children from this psychological crisis have been incorporated in this article. These include giving children love and attention; explaining to them what is happening around them more straightforwardly; parents can be role models; helping children expressing themselves in creative ways, and many more.

KEYWORDS: COVID-19, Psychological Crisis, Pandemic, Children, Effect, School

INTRODUCTION :- The new decade has started with a pandemic called coronavirus Disease 2019, popularly known as COVID-19. It is similar to the SARS 2003 outbreak, but it has been more devastating concerning the number of affected patients. The coronavirus outbreak was started in China and then spread to other parts of the world. This prompted the researchers to study the effects of this disease without further delay. As a result, the World Health Organization declared it a pandemic on 11 March 2020, increasing fear and anxiety among the general public. According to the research literature, the current understanding shows that massive scale disruptions are directly linked with ill effects on people's mental health. PTSD, i.e., post-traumatic stress disorder, is the most found disorder. Other effects include depression, fear, anxiety, and other behavioural disorders. So, the COVID-19 pandemic is on its way to posing a psychological crisis and psychiatric morbidity. Moreover, "45% of Americans tell that the coronavirus pandemic and crisis is harming their psychological and mental health (19% felt it had a "major impact")."-Kaiser Family Foundation.

Today, the vaccines and drugs for curing this disease are under trial. The most effective method of containing the spread of this disease seems to be quarantining people in houses, reducing physical interaction (now referred to as social distancing). Because people failed to quarantine themselves, government-imposed curfews and lockdown to contain the spread led to stoppage of all kinds of social interaction and closure of public places, even schools, and other educational institutions temporarily closed. As we are opting for lockdown and social distancing, a new psychological crisis is on its way. Social distancing should be replaced by physical distancing to make people feel less isolated and less lonely. As per the data available, Meta-analysis concludes that loneliness is the main factor for increasing risk factors for all-cause mortality. In addition, people living away from loved ones have a higher chance of developing mental health problems. Children and older people away from families for any work have more chances of developing depression and anxiety.

*** Principal, District Institute of Education & Training (SCERT), Dilshad Garden, Delhi, India.**

MENTAL HEALTH OF PEOPLE

The role played by social media: Social media helped in connecting people even in a pandemic situation. Social media platforms were available for social interaction while following physical distancing. However, social media also contributed to psychological or mental health problems. The false information and rumours are not new on social media. These create unnecessary tensions among children and the general public. The hourly updates on the cases of coronavirus and deaths due to COVID-19 are also consuming people. This can mainly be more serious for those already suffering from mental health issues or medications for psychiatric disorders. A pandemic is not only a scientific marvel; such influences people yet society yet motives interruption, tension, stress, disgrace, yet xenophobia. The conduct of a man or woman so a one of class and a partial vicinity effectively influences the factors about a pandemic that consists of the dimensions regarding seriousness, degree of the stream, yet tardy consequences. durability stability

Economic Aspect: The lockdown and curfew have resulted in the closure of manufacturing industries, and many business industries are shut down. All the economic activities are suffering from severe losses, and the un-employability rate is rising sharply. This is causing financial insecurities and stress among the population. This insecurity is indirectly contributing to mental health illness. Most affected ones are daily wagers and labourers who do not possess sustenance incomes. The children in these families are most vulnerable to develop fear and anxiety. They are afraid of dying from hunger.

Stigma: the suspects of the coronavirus and confirmed that patients of coronavirus suffer from stigma. They are stigmatized by people around them (society) for carrying an infection that affects other people. Thus, these people are not meeting with their close ones and family members; they are isolated, which adds to their suffering. In addition, no certainty about treatment and un-sureness of recovery are creating anxiety among people.

HOW ARE CHILDREN COPING ? :- We all are working from home, and our children are at home learning from home; we are taking care of kids in all possible ways. Now it is mandated to stand at least one meter apart from the next person if we are buying some essential items from shops, covering the face is also compulsory; hence, you are not recognizable, spending time on the internet to interact with people while maintaining screen time limit. All these things are not easy for our children. School closure (because it was necessary) lessens the opportunity for children to interact with each other and with their friends. They can no longer get social support, which is considered necessary in maintaining a good mental state. Children are in self-isolation without any sign that this coronavirus pandemic is not ending soon. They are now begun to question whether they will be able to go out? How long will it last? Should I devour as like a lot of cereal and milk as we chronic to? Will we cordially play, including their friends, suffice back according to shaking hands, etc.? Quick human-to-human transmission of the SARS-CoV-2 brought as regards the want about local lockdowns to stem the in addition length about the illness. Segregation, neighbourly separating, yet the ending regarding instructive establishments, labour environments, and enjoyment settings sent men and women in imitation of remaining between their residences in conformity with assist break the band regarding transmission. Be that as much that may, the prohibitive measures, except a doubt, have influenced people's social and emotional health no rely upon what thou seem to be at it.

To assist offset poor behaviours requires parents to stay cool, calm, deal with the situation intelligently, or reply every over the child's questions according to the auspicious concerning their abilities. Parents may smoke half era after speak after their teens touching the COVID-19 outbreak then piece some positive facts, figures, or information. Parents do assist after reassuring them as they are Immune at home and then motivate them to imitate partial wholesome activities, including indoor sports or partial bodily and intellectual exercises. Parents may also improve a domestic timetable to help their kids conform with preserve over including their studies. Parents need to show less strength and anxiousness at home as they discover and experience destructive power besides their parents. The involvement regarding dad and mom among healthy things to do, including their adolescents, reduces

emphasis yet anxiety and conveys alleviation after the ordinary situation. "In the latest Global Advisor survey of nearly 14,000 people across 15 major countries, more than two in five (43%) of the respondents said they are impatient to return to normal life. Another third (34%) are anxious about their health, while 15% are lonely, and 12% are angry about restrictions on their freedom."

In the equal study, such was located so much greater than partly (55%) are worried because of these who are inclined yet weak, while simply underneath a 0.33 (31%) are colourful to embezzle era with family. Another certain into 5 (22%) is inspired using whether humans are adapting. As an ever-increasing number concerning persons are compelled according to domestication between self-isolation following forestall and progression regarding the bacillus at the cultural level, governments need to drink the quintessential measures after assigning psychological well-being guide advocated by way of the specialists. Stability

SUGGESTIONS FOR HELPING PEOPLE :- The judicious use of social media is beneficial. In the words of Professor Stewart Shankman, "if human beings are nevertheless retaining contact with friends, colleagues and circle of relatives members online, they are not going to feel socially remoted," i.e., studies have shown that online relationships are comparable in lots of methods to face-to-face ones.

Professionals assume that there is no right or wrong manner to cope while quarantining. One element you may do is hold an everyday routine and comply with it. Take time for interactions so that this isolation does no longer end up your habit. We need to create new habits because antique ones are destroyed. we need to consciously cope with no longer falling into behaviour that disrupts our intellectual nicely-being. Greg Gwiasda, Vice President at IPSOS, said, "Installation a time to have lunch and or dinner collectively and stick to it. Do not work through meals or eat at the computer," and "Take some time to sit down and talk with those you are isolated with. If you are alone, set up a schedule to talk to a friend via video call." isolation and self-isolation can, in all possibility, cause an unfavourable effect on one's psychological health. a survey disbursed within the lancet stated that the division between friends and family, lack of possibility, fatigue, and vulnerability could motive a crumbling in a person's psychological properly-being fame. To overcome this, moves at the individual and cultural stages are required. Under the cutting-edge worldwide situation, the two children and grown-united states are encountering a blend of emotions. They may be put in a circumstance or weather that might be new and conceivably harm their well-being. Researcher Tiago Correia featured in his book as the properly-being frameworks are gathering entirely to warfare the covid-19 episode, which could appreciably impact the management of various diseases, including psychological well-being, which by and large intensifies for the duration of the pandemic. Someone's mental circumstance contributing to the direction of the local place's health fluctuates from man or woman to man or woman and relies upon his experience and expert and social standings.

Children and even the adults should maintain some routine as same of the routine; you were following before forced to isolate, such as waking up in the morning at the usual time every day, taking a bath and getting dressed for work like you used to do regularly, and doing some physical exercises such as morning or evening walk. If you are noticing some significant changes in your attitude and not focusing on work, it might be a time to ask for help. According to Prof. Brinkley-Rubinstein, "The increased availability of mental health therapy provided online or by telephone is essential right now." The legislature should determine the fee structure of mental health treatment not to have to worry about the high fees and expenditure. Some physical exercise is essential for all of us. It can boost our physical and mental health. It also decreases stress, which damages cells and tissues. Mindfulness and breathing techniques help improve mood and sleep quality. It also helps manage anxiety and concerns; adding this to daily routines can reduce mental illness among people. Children should realize that they should focus on every day and what they can do and take actions, no matter how small. They should realize that if the world seems uncontrollable, focus on that part only that you can control. Go outside and appreciate nature. Call that relative or friend you have not spoken to in a while.

Some ways in which the government is expected to contribute are creating a plan of action for rehabilitation, setting up the lines for clarifications of doubts and interpreting misinformation, providing online and offline counselling to people at reasonable prices. In addition, residential welfare associations can form online neighbourhood groups; these can be voluntary helping group. There is a strong need to conduct research and studies to evaluate psychological repercussions for children, healthcare workers, patients, elders, and the general public. Moreover, after it, some suitable actions should be taken to improve the current situation.

CONCLUSION :- The coronavirus outbreak was started in China and then spread to other parts of the world. This prompted the researchers to study the effects of this disease without further delay. World Health Organization declared it a pandemic on 11 March 2020, increasing fear and anxiety among the general public. The large-scale disruptions are directly linked with ill effects on people's mental health, so this pandemic is directly linked to mental illness. Because people failed to quarantine themselves, government-imposed curfews and lockdown to contain the spread, this leads to stoppage of all kinds of social interaction and closure of all public places; even schools and other educational institutions are temporarily closed. As we are opting for lockdown and social distancing, a new psychological crisis is on its way. The impacts of social media, economic conditions and stigmatization have been discussed. Children are in self-isolation without any sign that this coronavirus pandemic is not ending soon. They are now begun to question whether they will be able to go out? How long will it last? This situation is not easy for children.

In the last section, some valuable suggestions have been discussed for improving current conditions. Judicious use of social media is beneficial, i.e., studies have shown that online relationships are similar in many ways to face-to-face ones. One thing you can do is maintain a daily routine and follow it. Take time for interactions so that this isolation does not become your habit. Some physical exercise is essential for all of us. It can boost our physical and mental health. Children should be taken outside and appreciate nature; they should call that relative or friend they have not spoken to in a while. The government can plan some actions for rehabilitation, and researchers should conduct research and studies for evaluating psychological repercussions on children, healthcare workers, patients, elders, and the general public. In this way, this devastating situation can be dealt with intelligence.

REFERENCES :-

1. American Psychiatric Association. New Poll: COVID-19 Impacting Mental Well-Being: Americans Feeling Anxious, Especially for Loved Ones; Older Adults are Less Anxious. 25 March 2020. Available: https://www.psychiatry.org/newsroom/news-releases/new-poll-covid-19-impacting-mental-well-being-americans-feeling-anxious-especially-for-loved-ones-older-adults-are-less-anxious.
2. Correia T. SARS-CoV-2 pandemics: the lack of critical reflection addressing short- and long-term challenges. *Int J Health Plann Manage*. 2020;35:1-4. 10.1002/hpm.2977. May 03, 2020.
3. Galante O, Avni YS, Fuchs L, Ferster OA, Almog Y. Coronavirus NL63-induced Adult Respiratory Distress Syndrome. Am J Respir Crit Care Med. 2015;193: 100–101. pmid:26720790
4. Huang C, Wang Y, Li X, Ren L, Zhao J, Hu Y, et al. Clinical features of patients infected with 2019 novel coronavirus in Wuhan, China. The Lancet. 2020;395: 497–506. pmid:31986264
5. Shah K, Kamrai D, Mekala H, Mann B, Desai K, Patel RS. Focus on Mental Health During the Coronavirus (COVID-19) Pandemic: Applying Learnings from the Past Outbreaks. Cureus. 2020
6. Shereen MA, Khan S, Kazmi A, Bashir N, Siddique R. COVID-19 infection: Origin, transmission, and characteristics of human coronaviruses. J Adv Res. 2020;24: 91–98. pmid:32257431
7. WHO. Mental health and psychosocial considerations during the COVID-19 outbreak. World Health Organization; 2020. Report No.: WHO/2019-nCoV/MentalHealth/2020.1. Available: https://www.google.com/search?q=mental+health+and+psychosocial+considerations+during+covid-19+outbreak&oq=me&aqs=chrome.2.69i59l3j69i57j0l4.5107j0j8&sourceid=chrome&ie=UTF-8
8. Xiang Y-T, Yang Y, Li W, Zhang L, Zhang Q, Cheung T, et al. Timely mental health care for the 2019 novel coronavirus outbreak is urgently needed. Lancet Psychiatry. 2020;7: 228–229. pmid:32032543
9. Yao H, Chen J-H, Xu Y-F. Patients with mental health disorders in the COVID-19 epidemic. *Lancet Psychiatry*. 2020;7(4):e21 10.1016/S2215-0366(20)30090-0. May 03, 2020.

Githa Hariharan's Female Protagonists in The Thousand Faces of Night: Shifting Identities and Creating New Paradigms

Dr. Naveen K. Mehta*

Soumya Tiwari **

Abstract

Post-Independence, women novelists of India have minutely analysed the psychological, emotional crises experienced by the women in the Indian society. Through their tremendous work, they present the issues of Indian womanhood. The women novelists of the current century have thematic consideration; however, the treatment taste of their own. The image of women in Indian English novels has undergone a through a radical change from ancient unselfish women characters to characters that think over and urge for identity, which indicates the emergence of new women. They drive their role models from the great epics of India -The Ramayana and the Mahabharat. Githa Hariharan's novel The Thousand Faces of Night explores the journey of three women whose different but similar stories cut across generations and cross walls of sophistication. The young well-born western-educated girl named Devi, her sacrificing mother Sita, and the caretaker of house Mayamma. This paper discusses the journey of women characters in The Thousand Faces of Night.

Keywords- Domination, Society, Identity, Tradition, Patriarchy.

Introduction

> "Indian writing in English has been acclaimed around the world for its innovation, radical new approaches to the art of storytelling and reworking of language. While the older generation continues to produces literary masterworks, a newer generation of writing talent has emerged, ensuring that the fount of imagination in the country has not run dry. Women writers in India are moving forward with their strong and sure Strides, matching the pace of the world" (Nawale, 1)

The portrayal of women in Post-Independence Indian novels in English changed dramatically. The traditional ideal woman, who meekly accepted traditional, domestic, and sexual oppression and had her mouth muzzled, speech arrested, and activities restricted by patriarchal norms and power, was replaced by the "new woman," who began to reject customs, orthodox ideas, and values. The status of Indian women has undergone drastic changes from home-bound to professional. She is not 'abala', she is shakti now.

Novelists like Kamala Markandeya, Anita Desai, Arundhati Roy, Nayantara Sahgal, Manju Kapoor, Namita Gokhale, Gita Mehta, Githa Hariharan have added new dimensions and depth to the Indian English Novels. The exploration of self and the psychological state of the human mind is found mostly in the works of Anita Desai. Her writing communicates the true significance of self. Bharti Mukherjee works show women caught in the flux of conventional and contemporary. Shashi Deshpande focuses on the working of the psyche of her female characters. They desperately struggle to assert their individuality. Sensitive to the changing times and

*** Associate Professor and Head, Department of English School of Language, Literature, and Arts, Sanchi University of Buddhist-Indic Studies, Academic Campus Sanchi, MP-INDIA.**

**** Research Scholar, Department of English,School of Language, Literature, and Arts, Sanchi University of Buddhist-Indic Studies, Academic Campus Sanchi, MP-INDIA.**

situations, they revolt against the traditions. Manju Kapoor's works throw light on gender discrimination in the social-cultural milieu in Indian Society. Namita Gokhale has a gift of seeing common characters from within and revealing them on their own plane. Namita focuses on women and their condition in contemporary society.

Githa Hariharan is a novelist who is extreme, fearless, and sensitive. She has a large body of work to her name. "She advocates for women's empowerment and examines women's issues with care. She observes human life with detail and care. With her writing and committed activism, she has earned a unique place in the English literary world. She has received a Commonwealth writer's award in 1993 for her work the Thousand Faces of Night". "The novel represents female characters, with varied wishes and frustrations, desires and agony, searching for self-identity or self-liberation. Githa Hariharan vast output includes novels, short stories, essays, newspaper articles and columns. Her other works are The Ghost of Vasu Master, When Dream Travel, In Time of Siege and Furtive Histories.

Sita: An Epitome of Sacrifice

Sita (mother to Devi) is married at the age of twenty. Once, while she was playing the veena very keenly, forgetting everything, her father-in-law gave a mild, but firm warning against her not giving enough care and attention towards her household chores and duties. He shouted with anger at Sita "put that veena away, are you a wife, a daughter in law?" (Hariharan, 30) "Traditional Indian society limits woman's individual development and growth. She has to abide by many rules and restriction as she is controlled by man throughout her life" (Dhalayat,30)

After hearing these words from her father-in-law, she was shocked and for some time she stares over the veena, and finally, she pulled the strings out of the wooden base. Through her grandmother, Devi heard the story of her mother as an act of killing one's interest which was similar to the vow taken up by *Gandhari (*One of the female characters in the Epic *Mahabharat*. She is known for the vow to spend the rest of her life in a blindfold as her husband was blind.by blindfolding herself.) From that day onwards, Sita She sacrificed everything and devoted herself to keep up the prestige of the family. Geetha defines the term Patriarchy as-

> "Patriarchy rests on defined notions of masculine and feminine is held in place by sexual and property arrangements that privilege men's choice, desires and interest over the above those of women in their lives and is sustained by social relationships and cultural practices which celebrate heterosexuality, female fertility and motherhood on the one hand and valorise female subordination to masculine authority and virility on the other."

Sita learned that her husband lacked high hope of life and was opposite to her. At this stage of life, a daughter was born and she was Devi. For her baby was a new *veena* she could play. Besides, this time she was not going to abandon it easily. At one time, Sita, along with Mahadevan went to Africa on a prestigious overseas assignment with proper arrangements of the journey. And on the other hand, Devi was made to go to America for higher studies. On reaching Africa, Mahadevan proved to be more exhausted than what Sita had thought. In his fifties, he was a sick old man and he had no taste of his time of beauty and energy. One day Sita saw her husband on his chair with his head resting upon some papers on his disk and found him dead. She saw everything silently and without uttering a single word she burnt the papers and "in a modern, sanitized crematorium" the body was also burnt. (Hariharan,106)

Devi belongs to a Tamil Brahmin Family. She has been sent to America for studies. There she develops a relationship with Dan. She was happy with him but cannot take her relationship with Dan to a marriage. On her mother's call, she was back to India as suggested in lines-

*"*Amma's letters brought with them an unspoken message of loneliness, poignant in its quiet dignity… But the image of her alone by the sea teased me like a magnet. (Hariharan,16)

Devi: Voice of New Women

Devi's stay in the U.S. makes it impossible for six prospective grooms to accept Devi as a wife. Marriage is a sacred and important custom. Devi recalls her grandmother's stories at the time of her marriage. Devi's grandmother narrates stories from Ramayana and Mahabharata that include an ideal woman who follows the footprints of her husband. In Devi's grandmother's stories, there are only heroes and heroines, the sun shines brightly and everything is done in pomp and splendour. Devi is happy that her grandmother is not active to see her wedding. She declares, "I am glad she is not here to see me at my Swayamvara, the princess robe she lovingly stitched for me frayed round the edges and two sizes too large". (Hariharan, 20).

When she returns to Madras from America. Firstly, she confronts difficulties in making adjustments to the realities in Indian society. She realises that it was difficult to change the older norms with her radical thinking and ideas. Her mother wishes to arrange her marriage. Then Devi is married to Mahesh. He is a Regional Manager in MNC. Devi tries hard to fit in the new role of wife and daughter-in-law.

Mahesh is an eligible man having a good job, a big house in a city like Bangalore and he comes from a well sound family. Devi is provided with everything but she finds that something is lacking. Mahesh's cold behaviour upsets Devi. Her marital life lacks the colour that she expected. Devi told about Mahesh's attitude towards her. "Devi was not allowed to work outside the house. Mahesh discourages her and asks what will you do when the baby comes?" (Hariharan, 64)

"It seems that Mahesh is completely insensitive towards Devi possessing a personality because of long tours of her husband and total absence of sexual desire."[i] Hariharan works in synchronization with Beauvoir. Devi's decision not to have children is also feminist. When she asks Mahesh why he wants children, Mahesh answers because everyone has them. Devi does not want to produce children because everyone is doing so.

This is a condition where she tries to overcome the pressure of society or expectations of femininity by her independent decision. Here, Hariharan's perspective matches with Shulamit Firestone (The Dialectic of Sex, 1970) who believed that women's capacity for reproduction was the source of their oppression. This distinction allowed her to examine reproduction as the driving force in history. "Women should seize control over the means of reproduction in order to eliminate sex class discrimination. This can be achieved through wider access to contraception, sterilization, and abortion."

"Devi finally decides and walks out of Mahesh's life. She is drawn to Gopal, who was the singer and a visitor to her neighbourhood. Devi elopes with Gopal. Initially, Devi's relationship with Gopal was affectionate but later he shows his true colour, Devi found that Gopal is not any better than Mahesh. Her feelings are described within the following lines Devi found that Gopal is no better than Mahesh." [ii]Her feeling is described in the following lines. *"*The power unleashed by Gopal's voice, the promises his music had made, had lost very little of their earlier potency. The images of his music evoked in her were no longer uplifting, or even neutral." (Hariharan, 129)

Devi thinks that her walking out of Mahesh's life is her solution. But, after her disappointment with Gopal, she decided to run no further and return to her mother to start a new inning of life. "Devi knew the time was right, if she did not act now, she would be forever condemned to drift between worlds, a floating island detached from the solidity of the mainland." (Hariharan,138)

Devi's journey back to her home is a sign of self-assertion. She has a tale of her own, she is free to reach her new world now, as Mayamma says *'...*go, Devi, search for the forest you crave in your delirious youth. Go deep, deep, into its hollows, and into the wild terrors of its dark stretches. Yours, thirsty, seek the river, miles away, where the dim forest gives way to a clear, transparent flood of light.' (Hariharan, 126)

Devi at this time has to decide whether she wants to remain in a false image throughout her life or she wants to be free and liberated. She decides to be bold and face the world with conviction. She recalls that she has never taken her own decisions, 'I have made very few choices, but once or twice, when a hand wavered, when a string was cut loose, I have stumbled on-stage alone, greedy for a story of my own' (Hariharan, 137).

> "The new woman is inching towards freedom and she has been trying to learn bonding with one another. She concentrates on the theme of meaninglessness and sexual confusion suffered by her in traditional oriented society, asserting thereby that the inequality of sexes is neither a biological given, nor a divine mandate, but a cultural construct. She is aware that her life is succession of traps created by mothers, lovers and finally herself, by accepting the confinement of marriage." (Gahlawat 78)

Mayamma: Symbol of Suffering

Mayamma is an old housekeeper in Mahesh's house, she has not got a proper education. She is the greatest sufferer in the novel, she never complained of the grief and suffered silently, and is tortured by her mother-in-law for not bearing a child. Finally, after a long time, she gave birth to a baby boy, one day her husband takes all the money and leaves the house. His son grew up in the bad company and indulge in gambling. At last, she was left with nothing. Then she came to Mahesh 's house as a maid cum caretaker and lived there. All her life Mayamma has sacrificed her desire and suffered mutely to attain ideal womanhood in a patriarchal world. "Mayamma had been thrown into the waters of her womanhood well before she had learnt to swim. She had learnt about lust, the potential of unhidden bestial cruelty, first-hand. She had coveted birth, endured life, nursed death." (Hariharan,136)

Concluding Remarks

The novel ends impressively, as Devi returns to her mother. She decides to start a new life and this time Sita is there to give her all her support. "Suitcase in hands, Devi opened the gate and looked wonderingly at the garden, wild and overgrown, but lush despite its sand choked roots. Then she quickened her footsteps as she heard the faint sounds of a veena, hesitant and childlike, inviting her into the house*." (*Hariharan,139)

"One is not born, but rather becomes a woman. No biological, psychological, or economic fate determines the figure that the female presents in a society, it is civilization as a whole that produces this creature…which describe as feminine." (Beauvoir,16)

Githa Hariharan's Devi, when positioned in this tradition, attain a symbolic position and her quest becomes an attribute of the whole community of women. It presents a voyage to the geocentric past, a time when the goddess was representing Devi as the centre of all creation. She can liberate herself from the desire of attaining motherhood. The desire to conquer herself is the strongest in her. She is educated and knows that she needs to find her own identity before motherhood. She is marginalized and alienated to such an extent that she loses faith in herself. She is completely exhausted by giving her desire, her self-respect. Finally, decided to introspect and work upon her strength. Nayar says-

> "The women is 'interpellated' as girl-child, daughter, mother, wife but made to believe that these are her 'natural' roles. In fact, she is carefully nurtured into these roles -a

process of culturation by being made to adopt certain postures, prefer certain kinds of function, and behave in certain ways. Her position as women is created in advance of her; she is simply inserted into the ideology of patriarchy even though she never realises this."

According to Subhashree Mukherjee- "The parameter of satisfaction has altered tremendously leading to highly individualistic personalities who fight out the odds rather than succumbing to them. The writer has proved through the text as well as the intertext, that women have emerged through the out of age-old domination and oppression and rejuvenated themselves to enjoy a meaningful coexistence with man. Hariharan has shown the marginality and traditionality of all the textual as well as intertextual characters but has also shown their revival. She has not merely concentrated on the struggle and quest of women, but has shown how they overcome the predicament and seek salvation." (52)

Reference :-

1. Dhalayat,M.M. Women of the Ultramodern Era as Depicted in the Fiction of Manju Kapoor, *Feminine Fragrance: Reflection on Women's Writing in English,* ed Dr. Arvind M. Nawale, Gnosis,2012.
2. Aparan,P.and B. Bindu Madhavi.*Use of Myth in Githa Harihran's The Thousand Faces of Night, RJELAL ,Vol 5 (3),2012 pp.2321-3108.*
3. Jenainati, Cathie. and Judy Groves. *Feminism: A Graphic Guide*, Icon Books,2007.
4. Tiwari, Soumya and Dr. Naveen K.Mehta. *Emergence of New Women amidst Traditional Setting in Githa Hariharan's "The Thousand Faces of Night", A Journey of Transformation in Indian Perspective,* Vol 5(1) June 2020, pp.65-71.
5. Gahlawat, Dalvir Singh.*New Women Inching Towards Freedom:Predicament of Woman in the Novels of Shahi Despande, Women's Voice in Indian Fiction In English, Ed Dr. Vijay Kumar Roy, Adhyaayan Publishers,2011.*
6. Hariharan, Githa. *The Thousand Faces of Night*. Penguin Books, 1992.
7. Geetha, V. *Patriarchy.* Bhatkal and Sen, 2007.
8. Beauvoir, Simone de. *The Second Sex,* Tran e H.M Parshley, Picador classics, 1988.
9. Nayar, Pramod. *Contemporary Literary and Cultural Theory,* Pearson Longman 2010. pp.135.
10. Mukherjee Subhashree. Marginality and Quest for Identity of Women in The Thousands Faces of Night: A Textual and Intertextual Analysis, *Three Indian Novelist*. Edited by P.D. Nimsarkar and Dharampal Fulzele. Creative Books,2012.

Role of ICT in Secondary Teacher Training Program with special reference to Kumaon Region

Dr. Anita Joshi*
Dr. Maya Joshi**

Teaching is becoming one of the most challenging profession in our society where knowledge is expanding rapidly and modern technologies are demanding teachers to learn how to use these technologies in their teaching. According to UNESCO (2002) "ICT is a scientific technological and engineering discipline and management technique used in handling information, its application and association with educational, social, economic and cultural matters." Thus, we can say that in this era of globalization and use of information and communication technology,it is essential to be globalized. Information technology has a great impact in learning process as people get information quickly through this technology. After the addition of communication technology, the process of learning is going to be faster, as ICT has given opportunity to everyone to communicate with anyone at any time within a few seconds. ICT include personal computers, laptops, printers, LCD projectors, iPod, Fax machines, cell phones, internet and intranet (Zhang&Martinonic2019). The concept of e-learning /blended learning/mobile learning is entered in educational process. With the help of ICT Education is going to be student centric as the student is ready to discuss any topic in classroom after getting related information from internet. It is a to be said that there is a revolution in education after adopting technology. Asbhby(1967) has called it is fourth revolution and summarized that it enables the teacher to teach less and the learner to learn more. India is going to be digitalized. The process is started and every person is supposed to use ICT in daily life. The Teacher has always played an important role to change the society.so ICT is included secondary Teacher training programme Teacher Training Programme is divided in two categories. Use of ICT is essential to make both the programmes effective.

What is ICT-Information and communication technology (ICT) as applied from previous terms such as information technology (IT) that describes new technologies for transmitting sharing and manipulating information (Anderson and Boskin 2002) ICT in their broad sense include long –term used non digital- technologies such as writing, painting ,drawing, and printing but in the late 20^{th} century, electronic means of communication such as telephone, television and digital media such as computer and the internet have dominated public perception of communication technology. Now -a-days, ICT is commonly defined as those technologies that enable creating, accessing, gathering, managing, presenting and communicating information through electronic and digital means (Toomey,2001)

Objective of the study : - The objective of the study is mentioned below:

1-To find the role of ICT in Pre –service training programme.

2-To find the role of ICT in in –service training programme.

Methodology :- Purposive sampling method is used to collect data. Self-prepared open ended questionnaire was used to collect data from Pre-service training programme(B.Ed students) of M.B.G.P.G.College,Haldwani and L.S.M.G.P.G.College Pithoragarh. Interview is scheduled to collect data from In-service training programme. Content Analysis method was used to analyze data.

*** Associate Professor, B.Ed Deptt. M.B.G.P.G. College Haldwani.**
**** Assistant Professor,B.Ed.Deptt. M.B.G.P.G. College, Pithoragarh**

Findings :-

ICT and pre-sevices Training Programme: - Keeping in view the importance of ICT, NCTE has revised the syllabus of B. ED and started computer education as an optional subject in B. ED programme. With starting of two year B.Ed course in 2015 the syllabus is revised again and educational technology and ICT is added as a compulsory subject with the aim of familiarizing the teacher with fundamental of ICT and to get aware about the use of it in education, as in future it's impossible for the teacher to sustain in education system without the knowledge of ICT. ICT transform all aspect of education and teacher education. World Wide Web(www)has transformed teaching from broadcast mode to an interactive mode (Singh and Keshari,2016). Future teachers are supposed to use information and communication technology to solve educational problems. They have to learn how and when to use internet and other tools to get information and to make their teaching effective. E-learning technologies can facilitate greater interaction and collaboration for students and their teachers in teaching and learning process (Kumar and Kumar,2016).

As a practical part of the program students have to prepare lesson plans. With the help of internet, they can add some new facts in the interesting manner other than books. They can provide latest knowledge to the students regarding the content added recently in syllabus and not available in books. Table-1 shows the use of ICT in planning phase of teaching-

Use of ICT in planning phase of teaching

Purpose of use	Total No	Frequency	Percentage
To get online content	80	51	63.75
To prepare TLM	80	36	45
To learn style of teaching	80	23	28.75
Not used	80	03	3.75

Table -1 reveals that 94 percent student teachers use ICT for teaching purpose. only 04 percent students have not used ICT in teaching process. With the help of ICT student teachers can get videos, books and other related materials from different websites. In B.Ed. course students from different streams learn together the theories related with teaching. Students from science background feel difficulty in understanding philosophical, psychological and historical aspect of teaching. These aspects are totally different than that they have learnt in earlier classes. Here the role of ICT is important. The teacher trainer can present the content in form of PPT. where he can add picture, audio clip, video clip to make the presentation effective. Though initiative of different universities a teacher can connect the `classroom to any other university where students can get answers of their quarries from the expert of the subject. Data presented in Table-2 shows that student-teachers are benefitted in theory classes when topics are delivered with the help of ICT.

Table-2
Benefits of ICT

Benefit of ICT	Total No	Frequency	Percentage
Easy access to content	80	33	41.25
Updated knowledge	80	11	13.75
Accurate knowledge	80	15	18.75
Content become easy and interesting	80	43	53.75
Much knowledge in short time	80	10	12.5

It is clear from the above table that 41.25 percent of the students accept that with the help of ICT content become easily accessible.13.75 percent accept that updated knowledge is provided and 18.75 percent accept that they get clear cut knowledge. According to 53.75 percent content become easy and interesting while 12.5 percent accept that they get much knowledge in shorter time.

Some new concepts are introduced in B.Ed. programme. OER is one of them. Teacher-trainer and student-teacher both can use OERs for their own benefits. With the help of OER teacher-trainer can prepare presentation and student can prepare notes on different topics. Another important concept is Computer assisted instruction. It is a type of educational programme designed to serve as a teaching tool. CAI use tutorial, drill and question –answer type session to present a topic. Programmed learning is a part of B.Ed. syllabus. It can be presented in form of computer assisted instruction. Where the Student can be motivated to learn by showing sign of smiling face, sound of clapping. Student teachers have accepted that they have learnt about so many resources and terms regarding computer that are presented in Table no.-3.

Table-3

Topics Student teachers found as New Content for themselves

ICT related material	Total No.	Frequency	Percentage
EDUSAT	80	5	6.25
CCTV	80	29	36.25
LCD Projector	80	18	22.5
OHP	80	18	22.5
Online Learning	80	31	38.75
OER	80	02	2.5
Copyright	80	05	6.25
Networking	80	10	12.5
Smart class	80	09	11.25
Educational Games	80	05	6.25
Educational TV	80	04	5

Table -3 shows that during B.Ed programme student teachers got knowledge about EDUSAT(6.25), CCTV(36.25 Percent), LCD Projector(22.5 Percent),OHP(22.5 Percent),Online Learning(38.75 Percent),OER(2.5 Percent),Copyright(6.25 Percent),Networking(12.5 Percent), Smart classes(11.2 Percent),Educational games (6.25) and Educational TV(5 Percent) have no knowledge about them. Kushwah (2016) accepts the importance of all above tools saying that with the help of overhead projector, laptop, computers, internet aching can be effective. Students may be prepared for group work. Teachers can be motivated to substitute traditional method with innovative methods. Teaching is an important aspect of teacher-training program. So, to develop teaching skill among trainees; related videos, audios should be presented in the classroom the student may learn the style of speaking, question, monitoring the class and presenting the content. A teacher can develop a webpage and get connected with the world along with his student. He can add content, video lectures and other related content. If student have some specification, they can also create a page and can make access to sites. Student can visit google.com to download required content. Teacher should have higher order thinking skill and ICT is helpful in developing it. To solve and educational problem student search related matter from web sources. After that he combine fact, synthesize, explain and arrive at some conclusion to solve the problem. Table-04 shows ICT tools used by student teachers for educational purpose.

Table-04

ICT tools used by student teachers for educational purpose

Name of the Tool	Total No.	Frequency	Percentage
Mobile	80	54	67.5
Computer	80	55	68.75
T.V.	80	44	55
Radio	80	29	36.25
Internet	80	55	68.75
Newspaper	80	9	11.25

The above table shows that 67.5 percent student- teachers use mobile phones and 68.75 percent use computers, while T.V. is used by55 percent. Radio, Internet and Newspaper is used by 36.25percent,68.75 percentand11.25 percent accordingly.

In-Service Teacher-Training Program me and ICT-

Different commissions have emphasized in service training for teacher to cope with developed in educational system. Learning is very much technology dependent. So, Teachers need to have computer skills as well internet if they want to be good teacher. Teacher appointed ten years ago are not so much habitual of using ICT. So, they use traditional methods of teaching but to prepare them for using new technology ICT related training programme should be organized.

Visualization of text, image, recorded materials are much more effective than traditional classroom teaching and it gives chances to improve to slow learner. So, teacher should have proper knowledge of using OHP.LCD etc. Many schools are using multimedia application in their school for the purpose of teaching and learning. Different video in different subjects are uploaded in u tube, which can be used in teaching learning process, if ICT facility is available in school. Though technological resources are not available in Govt schools not only in Uttarakhand but all over in India. NCF2005 has also pointed it. Otherwise teacher can upgrade himself through internet material. During the training programme they should be motivated to be familiar with ICT tools. Teacher should give knowledge of discovering ICT tool, learning of using tools, specializing in the use of ICT tool. They should be motivated to connected through what's app, face book with their teaching community for the sake of learning. Table-5 shows the content to be included in training programme as per data collected from In -service teachers.

Table No.05

Content for In-service Training Programme

Content	Total No.	Frequency	Percentage
Importance of ICT	50	02	04
How to use ICT tools	50	10	20
MS office	50	22	44
Smart classes	50	04	08
Basics of Internet	50	12	24
Practical Teleconferencing	50	05	10

Above table reveals that regarding the content of the training program 04 percent teachers suggest importance of ICT, while 20 percent want to know the use of ICT tools practically,44 percent are in favor of MS Office,08 percent has suggested about Smart Classes.24 percent want Basics of Internet while 10 percent are in favor of teleconferencing.

The teacher can visit Uttarakhand knowledge bank, the portal of Uttarakhand Govt. at ukbhub.in and can access videos, books and other related links. They can resister themselves as a mentor under Uttarakhand mentorship programme. Examination system is going to be computerized so it is necessary for the teacher to be computer friendly. They should be made aware of the different scholarship scheme of the government a start level a well as central level so that they may be able to help the students to avail different schemes of the government. All these should be apart in service with special reference to Uttarakhand Teacher can visit: --www.socialjustice.nic.in / -http:/scholarship.uk.gov.in / -www.schooleducation.uk.gov.in / -ubsc.uk.gov.in / -www.inspire-dst.gov.in / -mhrd.gov.in

Working teachers can see educational games and apply these games to make learning as fun. Some adventure search techniques can be shared with teachers. For example, for searching the content, content should be kept with "". It will search the material what they really want, otherwise a lot of irrelevant material will be available with the related matter and a lot of time will be wasted in search process. Different schemes of the government can be accessed with the help of ICT.

According to Netherlands Country Report (2010) Teacher Trainers also believe that it is important to use ICT for communication with students, parents and the management of the school.I CT is important for their own education and study.

It is to be concluded that the teachers are future creators and future is based is based upon Information and communication technology. So, ICT and Teacher-Training Programme cannot be separated.

References :-

1. Ashby Eric (1967) in Teaching of computers, Singh Y K & Ruchika Nath (2008APH) Publishing Corporation New Delhi
2. Kumar Gaurav (2016) Use of ICT in Higher Education, In issues in Higher Education, Durga Pocket Book Meerut.
3. Kumar Gautam and Madhav Kumar (2016) E-Learning in Quality Education, Issues in Higher Education, Edited by Neeraj Shukla, Durga Pocket Book Meerut.
4. Kushwah S.Chandra(2016)
5. Issues in Higher Education, Edited by Neeraj Shukla,Durga Pocket Book Meerut.
6. Netherland Country Report (2010) ICT in Initial Teacher Training,Zoctmeer January2010,www.oecd.org
7. Singh S.P.and Rakesh Kumar Kesla(2016)Innovative Teaching of Teacher Education in Distance Mode,Issues in Higher Education,Edited by Neeraj Shukla,Durga Pocket Book Meerut.
8. X-PDITTE (2007) Handbook for teacher Educators, published by NCTE.
9. Zhang Zuochen and Dragana Maaartinovic(2019)ICT in Teacher Education :Examining needs,Expactions and Attitudes,Canadian Journal of Learning and Technology retrieved from www.cjit.ca
10. Anderson,N,and Baskin(2002) can we leave it to change,Now learning technologies and the problem of professional Development International Education Journal3(3) 126-137.
11. Toomey. R.(2001).Schooling Issues Digest: Information and Communication Technology For Teaching and
12. Learning. Australian Government Department Of Education Science and Training
13. UNESCO (2002). Information and Communication Technologies in Teacher Education, A Planning Guide. Paris: UNESCO.

Challenges and impact of online Education during Covid19

Dr. G. Sowbhagya*

Abstract :- In the history mankind has witnessed a numerous catastrophes, including the calamitous outbreak of diseases. However, the enormity of the hazardous impact of corona virus that is Covid-19, and the uncertainty of finding an antivirus/preventive, has created havoc among people, in all the field of the society and also all around the world. The rapid spread of the virus has left the people with no way out but to seek safety and isolate ourselves in the confines of our respective homes. Educators, administrators, service providers, parents and students round the world are feeling the extraordinary ripple effect of the novel corona virus as educational institutions has shut down amid the public health emergency. Like every sector, education is suffering at all levels, for both created and rising economies, information and development will progressively drive upper hand, as advanced education is a key part of future upper hand in the information and development circles. This paper will look at the difficulties as how education will have an impact on economic and societal consequences due to the closure of schools, colleges and universities which has disrupted the flow of learning of the students and existing method of imparting knowledge across the world. Several unforeseen challenges have erupted in the education system not only in India but all over the world, which needs to be addressed in a collaborative manner. It is indeed a challenge for the educational institutes and the teachers on how to reach out to students and ensure continuity of education through remote learning. In many countries around the world, schools are switching to the online mode. The challenge of online education is unequal access to internet, reliable internet connectivity and availability of computer at home. This paper will highlight how education should change in the long term, what are the measures that government should adopt to channelize the education with proper academic planning which may prevent and protect our children suffering due to this pandemic

Keywords :- Covid-19, online Education, challenges, Pandemic.

Introduction :- As a result of the COVID-19 outbreak, colleges and universities around the globe are shifting to online learning as a replacement for on-campus delivery that is from virtual to online classes. Consequently, catering to the needs of all stages of education from pre-primary to university level, online education has emerges as an alternative to ordinary face to face classes. Recognizing that education is a pathway out of poverty, various stakeholders such as government and private organization have made significant progress in increasing access to learning in communities around the world by sprucing up their existing online platforms, apps and providing training to teachers to use these apps and platform to the optimum level. The UN Sustainable Development Goals, a blue print for creating a more just world, has named “quality education” as its fourth goal. One target of that goal is ensuring that by 2030, all children have a completer a “free, equitable, and quality primary and secondary education”.

It should be noted here that missing from all the narratives of online education is the question of equity and equality, the cornerstone of the Constitution of India. Envisioned in the Constitution of India is the aim of providing equality of education opportunities to all citizens

*** Assistant Professor Department of Education Karnataka State Akkamahadevi Women's University, Vijayapur, India.**

irrespective of caste, class, gender and religion. Article 29 (1) provides for equal access to educational institutions maintained by the State without discrimination on grounds only of religion, race, caste, language or any of them. Similarly, the Right to Education Act 2009, mandates to provide equitable quality education to all children from six to 14 years of age. However, all the efforts of the government to facilitate education processes during the pandemic draws attention to the fact that the milieu of public/government education system, and low fee private school or affordable private schools, are out of the purview of government initiatives of online education. Even people from disadvantaged communities- be it, teachers, students or parents-have been left to fend for themselves while Government is making provisions for online learning or planning to resume offline on-campus school post-COVID. Alarming is the fact that the government is oblivious to the stark realities of social inequalities which are proving to be the greatest barrier to access online education.

Online Learning is encouraged due to following reasons during lockdown period for Covid-19.

- One can acquire knowledge staying at home and can maintain social distancing.
- Outbreak of Covid-19can be minimized due to social distancing
- It offers highly effective learning environments.
- It offers complementary interactive support that allows students to study 24/7 Work at their own pace.
- It offers flexible scheduling.
- It is available in any location, with an internet connection and students can attend Using their devices (mobile, computers, tablets, etc.).
- Deals with real-time student monitoring as well as reporting.
- Improves the image of institution by offering technological solutions that solve real problems

Challenges and impact of online Education during Covid19

The closing down of schools will not only impact students, teachers and parents, it will also have a far-reaching economic and societal consequence. According to a UNESCO report, over 1.3 billion learners are out of school due to corona virus. The closure of schools, colleges and universities has disrupted the flow of learning of the students and the existing method of imparting knowledge across the world. Several unforeseen challenges have erupted in the education, which needs to be addressed in a collaborative manner. As per the Ministry of Human Resource Development, Government of India, 11.59 crore children of the country are enrolled in the mid-day meal scheme. This indicates an additional burden on the parents of the children to provide them food. As these parents are from economically weak backgrounds and most of them may be daily wagers, it will definitely create a very adverse scenario, with parents struggling to provide food for the family.

The uncertainty will have an impact on the delay in fee payment of the students, which will directly impact the revenue generation of respective schools, in turn affecting the financial condition of the educational institutions and impacting the salary flow of teaching and non-teaching staff in the long run. It is indeed a challenge for the educational institutes and the teachers on how to reach out to students and ensure continuity of education through remote learning. There are millions of students from various economic segments of the society and most of them do not have access to computers or the internet. Some of them do not even have access to phones. In the given condition, where isolation is the only remedy to not get affected by the virus, ensuring the education of children has become a real challenge.

Students and teachers also have their own struggles while accessing these online platforms. Due to financial constraints, students are not able to access the internet, and are devoid of electronic gadgets and laptop, phone or computer or even radio and TV. Those students who have facilities to attend to online classes face barriers in terms of unavailability of physical space, which is equally applicable to teachers who are supposed to conduct online classes from their home. There are also social barriers such as discrimination against girls as they are expected to do household chores instead of attending online classes in the mornings. In rural areas, boys are often expected to work on the family farmlands. In homes where TV and radio are available, the question of who has control over these gadgets is important. Most of the time, girls are not allowed to watch educational programmes

Free online platforms that support live-video communication

Online learning is beneficial because it is instantly accessible and offers flexible scheduling. In this system, learners use Internet technology to communicate virtually with their teachers and fellow learners through E-mail, WhatsApp, Videoconferencing, Instant messaging or using other tools. However Videoconferencing may be effectively used in online learning to enhance group collaboration with sense of community between learners which may replace face to face class room learning to some extent.

There are many live-video communication platforms are available in web, but some of the free online platforms are as listed below which can be used by learners of all categories:

- **Zoom** – Cloud platform for video and audio conferencing, collaboration, chat and webinars.
- **Google Meet** – Video calls integrated with other Google's G-Suite tools. Video meeting recordings, Screen sharing, Join calls using Google Calendar
- **Skype** – Video and audio calls with talk, chat and collaboration features.
- **Facebook Live**- is a great fit for businesses, influencers, or individuals who are looking to broadcast demos, videos, or showcase their company culture while streaming live, followers on Facebook can comment and chat live, schedule videos ahead of time to gain excitement.
- **YouTube Live**-is a platform for demonstrating a product with live interaction, hosting an educational session to teach audience with screen sharing or using a whiteboard, having features with Location tags and advanced scheduling.

Accordingly, various stakeholders such as government and private organizations are trying their best to assist each other by sprucing up their existing online platforms, apps and providing training to teachers to use these apps and platforms to the optimum level. Moreover, efforts are being made by both government and non-government organizations and edutech companies to support the school system to make a smooth transition to the virtual world. Up skilling and motivating teachers, organizing counseling sessions for stakeholders such as teachers, parents and students are some of the important measures taken by the administration in the recent past. Making a continuous effort to provide customized teaching-learning material suitable for online classes is another way of facilitating the schooling of children.

Merits and demerits of online learning during lockdown :- Merits of online learning during lockdown

1. **Learning from the safety of your home**
2. **Online courses offers Immense flexibility and are convenient**
3. **Learning at your own pace because online learning** encourages more productive use of time which keep individuals safe from pandemic situation like spread of Covid-19.

4. **Online courses bring education right to home and it has a greater affordability in the education sector**
5. **Learning through online offer more individual attention and it connects you to the global village**
6. It is a cost-effective technology which is quite affordable and enhances communication between educators and students.
7. Online class/conference session can be saved in website for future reference e.g.class notes can be saved and distributed via network for references by students. The digital recordings of the classes/meetings can be uploaded in website to review later.

Demerits of online learning during lockdown

1) Online classes require more time than on-campus classes
2) Not all children have the necessary knowledge, skills and resources to keep themselves safe online
3) Learners from low-income families and disadvantaged groups are the more likely to suffer during online learning as they may not afford high-speed internet connection and required technical gadgets.
4) Online classes require good time management skills
5) It may create a sense of isolation
6) Online classes require you to be responsible for your own learning
7) Online Classes Are Prone to Technical Issues

Conclusion :- Online learning has played a vital role during this pandemic, as it has become the best platform to keep students engaged and safe by maintaining social distancing, but its consequences cannot be ignored because it cannot be accessed by each student due to the unavailability of Smartphone's, laptops and mobiles network to especially poor families and remote areas. Government of India has initiated different online learning platforms to continue educational activities during lockdown period which are also recognized by UNESCO and World Bank. Both Governmnet and Educational institutions should adopt the policy to provide free internet and free digital gadgets to all learners in order to encourage online learning to remain safe from pandemics. Online learning is considered as future learning process and this platform has a potential of overall change in pedagogy of teaching learning in the modern world. Due to the outbreak of Covid-19, online learning is the best method of learning during lockdown period.

References :-

1. Dhawan, S. (2020). Online learning: A panacea in the time of COVID-19 crises. *Journal of Educational Technology*, 49(1), 5–22. https://doi.org/10.1177/0047239520934018
2. Guidance Note on Education Systems' Response to COVID19 . (2020, March). p. 6. Google Scholar
3. United Nations . (2020). *Policy brief: Education during COVID-19 and beyond*. United Nations. Google Scholar
4. www.google.com

Caste in a Foreign Land : Changing Aspects of an Indian Cultural Institution in the Caribbean

Kiran Jha*

Religion has always been the core of Indian culture. For the Indians who emigrated to distant lands, religion was the means to organize and orient their lives. The Indian enclaves of the Caribbean were the reservoirs of the traditional cultural institutions of India. However, these institutions came in close contact with the British and Dutch institutions on one hand, and the alien cultures of the people of African origin on the other. The plantation life, its hardships and a hostile environment changed the very nature of religious practices among the Indian migrants. Though religion continued to have a far-reaching influence among their descendants, its nature, form and content has undergone remarkable changes.

There is a close relation between Hinduism and the caste system. The notions of purity and pollution is central to the social relations between groups and individuals (Dumont 1971). But over time, the key notion of "purity" underlying both religion and society become a mere sentiment among the Indian migrants (Van der Burg and Van der Veer 1986:516). The disappearance of caste boundaries implies the integration of a group with a common Hindu identity. The so-called lower castes abandoned their distinctive practices, gave up animal sacrifice and discarded the entire gamut of spirit possession and demon invocation to come under the banner of the "higher caste cult" of the Sanatan Dharma (Jayawardena 1966:227-28). Brahmanical ideas came to dominate and the so-called low caste religious activities were marginalised (Cors Van der Burg and Van der Veer 1986). This led to the dwindling of the so-called low caste sects in Trinidad, Guyana and Surinam. Thus, a process of Sanskritization was in progress in the Caribbean which resulted in a religious universalization that cut across geographical, linguistic and caste differences.

This paper is divided into two main sections. The first section is concerned with the analysis of caste, covering the aspects of pollution and hierarchy. The second section deals with the aspects of commensality, endogamy and occupation. It must be noted that this paper explores caste as an aspect of a cultural institution in the Caribbean amongst overseas Indians, especially with respect to circa 1940-1970 and thus presents a historical account within an anthropological perspective.

Caste Pollution and Hierarchy :- Caste is one of the institutions which has been unable to withstand the pressures of the multiracial society of the Caribbean. Van der Veer and Vertovec (1991: 155) are of the view that the absence of state policies that emphasized caste went a long way in diminishing its credibility among the overseas Indians in the Caribbean. This is in complete contrast to what was witnessed in British India where colonialists categorized and listed various castes in order to smoothen their own administrative responsibilities.

The Indian immigrants in the Caribbean came from a wide variety of caste groups at different levels of the Indian caste hierarchy. By 1940, the Indians in the Guyanese society had nearly ceased to consider caste as an important criterion for the evaluation of social status and esteem. The aspects of income, occupation, education, race and the standard of living gradually became more relevant in assessing the social status of an individual. Even when high caste individuals performed certain sacred ceremonies, they abstained from publicizing their high ritual

*** Assistant Professor Department of Social WorkCSJM University, Kanpur.**

status because performance and not caste determined the social prestige of the Indians in the multiethnic society of Guyana. Only those Brahmins who lead a respectable life were accorded the honorific title of "Maharaj." At the same time, non-Brahmins who were vegetarian and lead a pious life were also awarded the traditional respect due to a Brahmin (Smith and Jayawardena 1967:61). Niehoff (1967:153), in his study in Trinidad, maintains that the Indians had a vague awareness of the hierarchical order of various caste groups, and the main castes were placed in a certain order of their social prestige. This hierarchy was not rigid in nature as caste ideas were not explicit enough to establish unanimity about gradations. Distinctions were focused mainly on the high and so-called low castes while the ranking of middle castes remained ambiguous. There still existed a feeling among the Hindus that Brahmins were somewhat special and the term "panditji" was used frequently to refer to Brahmins (Niehoff 1967:155). On the other hand, members of the so-called low castes still carried some of the stigma of their traditional position. Clarke (1967 :196), is of the view that caste as a determinant of social status affected only those Indians who were located at the "extremities of the caste scale" and those "who aspire to religious and political leadership in the community."

In the Indian community of Surinam, caste as the basis for social hierarchy carried very little weight. Speckman (1967:209) is of the opinion that distinctions were made between Brahmins and the so-called Untouchable castes till about 1940. But after this period, as the Indians were drawn into the social system of the Surinamese society, the significance of the internal stratification system decreased. Brahmins and Kshatriyas continued to remark with pride on their caste identities and maintained a distance with regard to members of the low castes. However, status differentiation had increasingly come to be based on education, profession, economic position and political influence. A fundamental feature of the Indian caste system is the notion of pollution, and the relation between pure and impure. But Smith and Jayawardena (1967:61) hold that in Guyana, the notion of pollution was restricted and apart from a few exceptions, it no longer served to classify castes. Activities traditionally regarded as impure no longer lead to the loss of class prestige.

As far as the Indian society in Trinidad was concerned, Schwartz (1967:122) is of the view that pollution practices were not very rigid and that a great many of the insulative and isolative aspects of caste had decreased in importance. Clarke (1967:156:59) supports this line of argument and maintains that there was a dilution of the concepts of purity and pollution as Untouchability had disappeared. However, Niehoff (1967:156-159) presents a conflicting view when he reports that aspects of purity and pollution were practiced by Indians in Trinidad. Food taboos regarding the non-consumption of beef and pork, the practice of touch pollution and restricted residence of lower caste were some of the customs which still prevailed.

Commensality, Endogamy and Occupation :- Caste rules regulating commensality were violated right from the time when the emigrants ate with others on board ship or ate food cooked or served by others on their way to the Caribbean from India (Jayaram 2006: 149). In Guyana, there were no restrictions on commensality on public occasions, although sometimes restrictions did operate in private. Smith and Jayawardena (1967:62) maintain that on public occasions such as weddings and religious ceremonies, guests ate together, but for private dinners, high caste families often expressed reluctance to entertain people of so-called low castes. Brahmin priests, after performing ritual ceremonies, often ate at the homes of so-called low caste clients. This was a reversal of the orthodox caste practice where the high castes offered food to others but refrained from accepting it. Among the Indians of Trinidad, though commensality was the norm, Clarke (1967:192) reports about some restricted commensality as an exception rather than the rule.

The Indian community in Guyana practiced exogamy more often than not. There were no prohibitions regarding inter-caste marriage, and children were ascribed their father's caste. Income

and education were often balanced against caste considerations when a spouse was chosen. At times, these factors would override the principle of caste as revealed in the examples of Brahmin youth making economically advantageous marriages with low caste girls (Smith and Jayawardena 1967:64). Schwartz's (1967:130) survey in Trinidad shows that the highest incidence of endogamy was found among the so-called low caste groups. He explained this trend on the basis of their association with the basic subsistence pursuits and their low position in the economic hierarchy. Niehoff (1967:160-161) maintains that caste endogamy was on its way out. Though families tried to avoid marriages between widely separated castes, instances of alliances between Brahmins and the so-called low castes had been reported. Clarke (1967:189) shows that caste endogamy was practiced by only half of his informants, most of whom belonged to the two highest varnas. Caste pride and parental control over marriage were reasons attributed for this. Caste values had become more relevant in the case of varna endogamy. Clarke argues that caste endogamy was slowly being replaced by varna and class endogamy. Speckman (1967:210) found that caste was not an important criterion in mate selection in Surinam. The significance of varna was also on the decline. The Brahmins and Kshatriyas attached some importance to varna categories but this aspect was often confused with other considerations like financial position, education and profession of the spouses.

In Trinidad, among the Indian, marriage partners were selected on the basis of class, status and religion (Nevadomsky 1983:197). Caste considerations were not important. Though Klass (1961:122) remarks that preference for town and village exogamy were shown. While Indian marriages before 1940 were said to have been arranged, in the later decades, marriages were contracted on the basis of personal choice. But Smith and Jayawardena (1958:179) report of instances where even Brahmins married off their daughters to wealthy or professional so-called low caste persons. Thus, education and occupation of a prospective husband were probably his most important attributes. Marriage by choice had replaced the pattern of arranged marriages. Ideally, Indians adhered to the rules of local exogamy while contracting marriage but because of the factor of personal choice, local endogamy was quite common. Speckmann's (1965:65) extensive field work in Surinam, reveals that caste endogamy no longer existed among the Indians there.

Among the Indians in the Caribbean, one also noticed a dissociation of occupation from caste and the disappearance of occupational segregation and specialization along caste lines. Workers of different caste backgrounds had similar occupations and were paid the same wages. This led to the breakdown of the jajmani system, which bound certain castes in patron-client relationships. Thus, caste was functionally a matter of only a little concern in the Indian communities of the Caribbean. The concepts of purity and pollution had almost disappeared and consequently also the links between occupation and caste. Endogamous unions were not of sufficient frequency to allow the existence of caste, much less its perpetuation. Other factors responsible for the dilution of the caste system were a work schedule in the plantation that did not encourage caste rules, proselytizing efforts of the Christian missionaries, opportunities for social and economic advancement and cultural assimilation (Roopnarine 2006: 3). The general view is that caste endogamy was being replaced by varna endogamy.

Conclusion :- The most striking feature that emerges is the differential change that aspects of caste among the overseas Indians in the Caribbean has undergone. While some institutions have withered, others have shown greater persistence and resilience, thus proving their indispensability to the general structure of Indian society.

Only two features of the "ideal" caste system still remain in these Indian communities. These are separation of castes and varna through endogamy and a notion of hierarchy. Caste is not

the primary basis for activities and relationships, except to some extent in marriages. It reflects upon a person's prestige, but fails to govern his status. Status is derived from other elements such as education, occupation, wealth and political power.

Thus, there is no structural link between caste in India and caste in the overseas community. Even when caste is primarily viewed as a system of social relations, the overseas social system is different and though former caste names may be used in some of these new relations, this does not result in a caste system. Some of the ideas (notions of hierarchy) and relations (endogamy) which lay behind caste relations in India can also be found here. These have not only become highly marginal but are now parts of another society giving rise to new interpretations. Thus, it is not the structural characteristic of caste that has been retained, but a cultural ideology.

REFERENCES :-

1. Clarke, Colin. 1967. "Caste among Hindus in a town in Trinidad: San Fernando," in B. M. Schwartz (ed.), *Caste in Overseas Indian Communities,* Chandler Publishing Company, California, pp. 165-199.
2. Clarke, Colin. 1986. *East Indian in a West Indian Town—San Fernando, Trinidad, 1930-1970,* Allen and Unwin, Boston and Sydney.
3. Dumont, Loius. 1971. *Homo Hierarchicus: The Caste System and Its Implications.* Chicago and London: The University of Chicago Press.
4. Jain, R. K. 1986. "The East Indian Culture in a Caribbean Culture: Crisis and Creativity," *India International Centre Quarterly,* Vol. 13, No. 2, pp. 153-164.
5. Jayaram, N. 2006. "The Metamorphosis of Caste Among Trinidad Hindus," *Contributions to Indian Sociology*, Vol. 40, no. 2, pp. 143-173.
6. Jayawardena, Chandra. 1966. "Religious Belief and Social Change: Aspects of the Development of Hinduism in British Guiana," *Comparative Studies in Society and History,* Vol. 8, No. 2, pp. 211-240.
7. Klass, Morton. 1961. *East Indians in Trinidad: A Study of Cultural Persistence.* New York: Columbia University Press.
8. Nevadomsky, Joseph. 1983. "Changes Over Time and Space in the East Indian Family in Rural Trinidad," in George Kurian and R. P. Srivastava (eds.), *Overseas Indians,* Vikas Publishing House, New Delhi, pp. 180-213.
9. Niehoff, Arthur. 1967. "The Function of Caste Among the Indians of the Oropuche Lagoon, Trinidad," in Barton M. Schwartz (ed), *Caste in Overseas Communities,* California, Chandler Publishing Company, pp. 149-163.
10. Roopnarine, Lomarsh. 2006. "Indo- Caribbean Social Identity," *Caribbean Quarterly,* March, Vol. 52, No.1, pp. 1-11.
11. Schwartz, Barton M. 1967. "The Failure of Caste in Trinidad," in Barton M. Schwartz (ed), *Caste in Overseas Communities,* California, Chandler Publishing Company, pp. 117-147.
12. Singh, Kelvin. 1974. "East Indians and the Larger Society," in John Gaffer La Guerre (ed.), *From Calcutta to Caroni,* London: Longman; Longman Caribbean, pp. 39-68.
13. Smith, Raymond T. 1959. "Some Social Characteristics of Indian Immigrants to British Guyana," *Population Studies,* Vol. 13, No. 1, pp. 34-39.
14. Smith, Raymond T. and Chandra Jayawardena. 1967. "Caste and Social Status Amongst the Indians of Guyana," in Barton M. Schwartz (ed), *Caste in Overseas Communities,* California, Chandler Publishing Company, pp. 43-92.
15. Smith, Raymond T., and Chandra Jayawardana. 1958. "Hindu Marriage Customs in British Guyana," *Social and Economic Studies,* Vol. 7, No. 2, pp. 178-194.
16. Speckmann, Johan D. 1965. *Marriage and Kinship Among the Indians in Surinam,* Assen, Netherlands, Van Gorcum.
17. Speckmann, Johan D. 1967. "The Caste System and the Hindustani Group in Surinam" in Barton M. Schwartz (ed), *Caste in Overseas Communities,* California, Chandler Publishing Company, pp. 201-212.
18. Van der Burg, Cors and Peter Van der Veer. 1986. "Pandits, Power and Profit: Religious Organizations and the Construction of Identity among Surinamese Hindus," *Ethnic and Racial Studies,* Vol. 9, No. 4, pp. 514-528.
19. Van der Veer, Peter and Steven Vertovec. 1991. "Brahmanism Abroad: On Caribbean Hinduism as an Ethnic Religion," *Ethnology,* Vol. 30, No.2, pp. 149-166.

Environment and Development : A Theoretical Study

Kumar Prashant*

Abstract :- Political economy is used to refer to an approach to development which is derived principally from Marx, although the Compass was shared by other contemporary Social scientist. This approach locates economic analysis within specific social formations, and explains development process in terms of the benefits and costs they carry for different social classes. Politics is for the amelioration of poverty.The protection of environment is regarded as the outcome of a struggle between class interest, negotiated by, and with the state.[1] The theoretical study is trying to understand the relationship between environment and development.

Key words :- surplus value, Capitalism, Class struggle, conservationist, eco-development

Introduction :- Industrialization was progressive force which harnessed technology to natural resources and permitted a reduced dependence on agriculture. In the third volume of capital Marx said:- "One of the major results of the capitalists mode of production is that…… it transforms agriculture from a mere empirical and mechanical self-perpetuating process employed by the least developed part of society, into the conscious scientific application of agronomy". According to Marx capitalism developed through the more efficient production and appropriation of surplus value, which implied new land and resource uses. The environment performed an enabling function, but all value was derived from the exploitation of labour power. It was impossible to conceive of 'natural', limit to the material productive forces of society. From an historical materialist perspective, it was society not since, which placed restrictions on human potential.[2] Lenin elaborated on this view in his discussion of the relationship between man and nature. Man was a product of nature, but also a part of nature: "Matter is primary, and thought, consciousness, sensation are products of a very high development such is the materialist theory of knowledge, to which natural science instinctively subscribes."[3] In two rather neglected essays written in 1875 and 1876, Engels puts forward a more contemporary-sounding version of the relationship between man and his environment. First, in his, "Introduction to the Dialectics of Nature" angels asserts that man had shaped nature from his beginning.[4] After the publication of the Darwin's "origin of species" in 1859, The new conception of Nature was complete in its main features…… and whole of nature shown as moving in internal flux and cycles. He adds that man alone had succeeded in impressing his stamp on nature and, by better understanding the laws of nature, was capable of reacting to what he had done.[5]

What remains interesting in the second essay, 'The part played by Labour in the Transition from Ape to Man', expels recognition that man's mastery of nature might pore a threat in the changes he makes in his, environment implies new responsibilities towards nature. In his insistence on man's need for caution in his treatment of the environment angles finds an echo in our time:[6] "Let us not, however, flatter ourselves over much on account of our human victories over nature. For each such victory nature takes its revenge on us – we are reminded that we by no means rule over nature, like someone standing outside nature, but then we …… belong to nature, and exist in its midst, and that all over mastery of it consist in the fact that we have the advantage over all other creatures of being able to learn its laws and apply them correctly".

Marxist Development Theory and the Environment :- As we have seen, Marxist writing about the development process has accorded a secondary role in the natural environment. The reasons for this are not difficult to establish. In the development of the industrialized societies natural resources facilitated

*** Associate Professor, Shyam Lal College, Department of Political Science, Delhi University, Delhi.**

economic growth, but the unique contribution of capitalism lay in the way labour was employed in extended reproduction. Imperialism, wherein Lenin referred to as 'the highest stage in the development of capitalism', promised to reproduce this process in periphery.[7]

There are certain points concerning the Marxist approach to development theory in the environmental crisis in south. First it was suggested that environmental conciveness was itself an important element in the ideological superstructure of modern society and, as such, capable of influencing the pursuit of economic growth. Second, it was argued that the role of science and technology in development was more problematic than Marx and the early Marxist envisaged Human society's urgent need to control in own technology and to develop more socially beneficial technology is an important element in environmentalist thinking, but tends to be treated as a dependent variable in political economy. Third, under development can no longer be represented largely in the terms of the way labour is exploited in dependent capitalist countries. In these countries natural resources are systematically depleted in the accumulation drive by both private multinational capital and the state. The costs of development are expressed not only in terms of class conflict and economic exploitation, but also in the reduction of the natural resources base on which the poor depend for their livelihoods.[8]

Relationship between Environment and Development :- A close connection between environment and development is implicit in the definitions of the environment (as the conditions and influences that interact with man) and of development (as the process to improve human welfare) just arrived at. The environment can be considered to be an integral part of development, since any impact on man's environment also influences his state of well-being or welfare, environment and development are thus linked together so intricately that separate approaches to either environmental or development problems are piecemeal at best. In the past, just such an approach has typically been followed, and tools of decision-making have been developed and used independently in the fields of economic development and environment. An analysis of the inter-relationships between the environmental and economic system will confirm the need for integrated policies.[9]

Environment and Development: The international discussion :- The failure of traditional economic theory and policy to prevent or remedy environmental degradation let to the appearance of the "doomsday view" of the environmental problems. Zero (or even negative) growth was advocated to avoid the disastrous consequences of transgressing the physical limits of the Earths resources. Another pessimistic "conservationist" view focused on the preservation of ecosystems and endangered species to the neglect of socioeconomic conditions and consequences. These policies could not be accepted by countries that were still in the early stages of socioeconomic development. Proclamations of global solidarities of spaceship earth were thus met with suspicion and distrust by the developing nations. The only view rich and poor countries seemed to share was the conviction than environmental conservation and economic development are in conflict with each other.[10] But this consciousness opened a dialogue on the environment-and-development issue between developed and developing nations.

The secretariat for the United Nations Conference on the Human environment organized a seminar on development and environment at Founex, Switzerland.

(United Nations Conference on the Human Environment, 1972)

The seminar concluded that environmental problems do not only present from the development. Poor water facilities, inadequate housing and sanitation, malnutrition, disease and natural disasters were cited as important examples. The term "pollution of poverty" was later used to be describe this aspect of the environmental questions. Consequently, it was suggested that environmental goals provide a new dimension to the development concepts itself, requiring an integrated approach to environment and development.

The declaration of Stockholm Conference includes the elimination of colonial and other forces of oppression and exploitation as the number-one principle. Eight years later, however, an investigation of the world wide North-South relations found that the process of decolonization was not complete, and countries were still fighting for political as well as economic and cultural independence.[11] In the Stockholm Conference, Maurice Strong used the term Ecodevelopment and the establishment of the United nations Environment Programme (UNEP) as a follow up of the conference. After then, LANDSAT-1 launched providing valuable data on environmental resources and publication of the monumental work The Careless Technology in the same year. The Nairobi speech of the Governor of the World Bank in 1973 emphasized the basic needs strategy to alleviate absolute poverty and indicated a structural shift in the aid programmes. The establishment of the Environment Liaison Central (ELC) in Nairobi in 1974, the United Nations Conference on Human Settlement and Habitat in Vancouver (Canada) in 1976 and as a consequence, the establishment of Habitat, the UN centre for Human settlement as well as a large number of conferences related to various aspects of environment, human settlement, energy and technology and dimensions of development contributed in their own way in developing and understanding environment – development interconnections.

The Brundtland Commission's Report issued in March 1987 marks a watershed in the environment and development dialogue and puts forth "Our Common Future" which consists of three parts – Part I, "Common Concerns", Part II "Common Challenges", and Part III, "Common Endeavours". The Report identified four interlinkages. First, environmental stresses are linked one to another and hence different problems must be tackled simultaneously. Second, environmental stresses and patterns of economic development are linked one to another. Thus economics and ecology must be completely integrated in decision making and law making processes, not just to protect the environment but also to protect and promote development. Third, environmental and economic problems are linked to many social and political features. For example, the rapid population groups that has so profound an impact on the environment and on development is many regions is driven partly by such factor as the status of women in society and other cultural values. Therefore, nation have become so porous that traditional distinction between matters of local, nation and international significance have become blurred.

Limits to Growth :- In April 1968, a group of thirty individuals from ten countries – scientists, educators, economists, humanists, industrialists, and natural and international civil servant – gathered in the academice die lincei in Rome. One of this meeting grew The Club of Rome an informal organization that has been aptly described as an "invisible college". The Cluo of Rome initiated a project – The project on the Predicament of Mankind. The intent of the project is in examine the complex of problems troubling men of all nations: Poverty in the midst of plenty; degradation of the environment; loss of faith in institutions, uncontrolled urban spread; insecurity of employment; alienation of youth; rejection of traditional values; and inflation and other monetary and economic disruptions. These seemingly divergent parts of the world problemtique, as the club of Rome calls it, have three characteristics in common; they occur to some degree in all societies; they contain technical, social, economic and political elements; and most important of all, they interact.[12]

Amit the walter of enthusiasm for lead-free petrol and green consumerism it is often forgotten that the foundation-stone of green politics is the belief that our finite Earth places limits on industrial growth. Green ideologues faith in the scarcity of resources and it provides the fundamental framework within which any putative picture of a green society must be drawn. The guiding principle of such a society is that of 'sustainability'[13]. The researchers pointed to what they described as '5 rends of global concern' accelerating industrialization, rapid population growth, widespread malnutrition, depletion of non-renewable resources, and a deteriorating environment[14]. They then, created a computerized world model of the variables associated with these areas of concern, i.e. industrial output per capita,

population, food per capita, resources and pollution and programmed the computer to produce pictures of various future states of affairs given changes in these variable. The first computer seen, then assumed 'no major change in the physical, economic or social relationships that have historically governed the development of the world system.[15] The green movement started in course of time after this report. The limits to growth are reached due to scarce of resources.

Earth Summit :- Socialist International committee on the environment declared at Rio De Janeiro that a sustainable and equitable development is a major challenge of our time. Democracy is a precondition for sustainable development. It must be voiced through public participation and regular consultation between governments, environmental organizations, trade unions and the public. Preventing environmental protection and the management of natural resources on the basis of sustainable development have to constitute the foundations of social and economic progress[16]. Achieving environmentally sustainable growth and development means findings practical solutions to:

- The widening economic and technological gap between the developed and the developing world.
- Supporting a world population which is projected to double over the next 50 years, from 5 to 10 billion.
- Growing demands for food, energy and raw material resources while minimizing the environmental impact of products, industrial processes, waste and effluent.
- The need to preserve natural habitats, eco-systems and biodiversity without unduly constraining social and economic development worldwide.
- The understanding, diagnosis and treatment of disease.

The UNCEP Agenda :- Civilization has experienced two important non-political revolutions throughout its history. The Agricultures revolution and the industrial revolution. The agricultural revolution came about when people turned from a homedic lifestyle to characterized by moving location to location in search of food, to one based on farming. This revolution also brought along with it the concepts of permanence, ownership of property, accumulation of possessions, & special skills. The industrial revolution was based on the use of machines and fossil fuels and it led to substantial concentrations of people in cities, large-scale transportation of food, the increased importance of science & technology, and multiple types of leisure activities. A basic factor in both of these revolutions was the inability of the previous lifestyles to sustain the needs and desires of the population. Each revolution was associated with increase in land, water and air pollution[17].

Conclusion :- We are currently on the verge of the another great revolutions, which, call the Environmental revolution. It will also occur in large part because of the pressure of population growth, activities and aspirations. And it will also lead to major changes in social and economic patterns.

References :-

1. Michael Redcliff, "Development and the Environmental Crisis: Red or Green Alternatives", London, Metheun & Co., 1984, p.5.
2. M. Redclift, "Development and the Environmental Crisis", p.17-87
3. V.E. Lenin, "Materialism and Empiro-Criticism", Moscow, Progress Publishers, 1952, p.69.
4. E.Engels, "Introduction to the Dialectics of Nature", in Marx and Engels selected works, Volume I, London, Lawarence 2, Wishart, 1970, p.66.
5. V.I. Lenin, "Imperialism, The Highest Stage of Capitalism", Moscow, Progress Publishers, 1972, p.
6. M. Redelift, "Development and the Environmentalism", pp.18-19
7. I.S. Abdaller, Development Planning Reconsidered in Surveys for Development, a multidisciplinary approach, J.J. Nesich (ed.), Amsterdam, Elsevior, 1977, p.151-67.
8. UNEP, 1978.
9. W. Brandt, et al, "North-South: A programme for Survival". Report of the Independence Commission on International Development issues, Cambridge, MTT Press, 1980.
10. Donella H. Meadows, D. L. Meadows, Torgen Randers, William W. Behrens III, The Limits to Growth, London, Pan Books Ltd., 1972, pp.4-12.
11. Andrew Dobson, Green Political Thought, London, Unwin Hymen Ltd., 1990, p.73.
12. D.H. Meadows, Limits to Growth, London, Pan Book Ltd. 1983, p.21.
13. Socialist International, Rio De, Janeiro, 11 June, 1992.
14. G.O.P. Obasi, The UNCED Agenda, in the United Nations Conference on Environment and Development, Rio, De Janeiro, Brazil, June 11, 1992.

Mother as Oppressed Oppressor : Conceptualizing Internalized Oppression in the Novels of Shashi Deshpande

Mariyam Parveen*

Abstract :- One of the enmeshed relationship women share is of mother and daughter. The present paper aims to interrogate the concept of internalized oppression, patriarchy and misogyny in the context of the mother-daughter relationship as portrayed in Shashi Deshpande's novels *The Dark Holds No Terror* and the *Binding Vine*. In her novels, Deshpande explores the role mother plays in moulding the gendered psyche of daughters and maintaining and perpetuating patriarchal oppression. Due to the internalized misogyny and oppression, a mother reinforces the patriarchal status quo in her daughter's life and in doing so, knowingly or otherwise, she becomes the oppressed oppressor.

Keywords: Patriarchy, misogyny, oppression, mother-daughter relationship

Shashi Deshpande is an eminent Indian novelist who is known for her immense contribution to the Indian literary oeuvre. She started her literary career within the publication of her novel *The Dark Holds No Terror* in 1980.In her novel *The Binding Vine*(1993) she creates a binding vine between different women characters through their shared experiences of violence, humiliation, and oppression.In both the novels the theme of the mother-daughter relationship is dominant where she explodes the romanticized and idealized notion of motherhood and explores the strange, hostile, oppressive mother-daughter relationship. The mother-daughter duo in these novels is caught in the web of hegemonic gender ideology, internalized oppression, misogyny and sexist socialization process. Before scrutinizing how mothers propagate and maintain patriarchal domination let us first understand the concept of internalized oppression.

G.Pheterson (1986), in her work *Alliances between Women*, defines internalized oppression as the "incorporation and acceptance by individuals within an oppressed group of the prejudices against themwithin the dominant society" (p. 148).According to her, internalized oppression is a state in which a person not just accepts oppression but reinforces it on its own oppressed group. Speaking in the context of gender, when the subaltern or oppressed groups (women) are led to believe and accept the sexist stereotypes, gender inequalities and act as the dominant group (patriarchs)allows them to act, it is called internalized oppression. It plays a crucial role in ensuring, maintaining and perpetuating patriarchal oppression. To make patriarchy function better women also play an important role as Bhasin (1993) says that, "Without the tacit cooperation of slaves, slavery would not have lasted for so long. It is the same with women. They are very much part of the system. They have internalized its values, they are not free of patriarchal ideology…" and that is why the system of patriarchy is still dominating the lives of subalterns because consciously or unconsciously women enable their own subjugation (para. 43).Usually, when a person is oppressed he/she tries to resist the domination and free oneself. But generation after generation, women have been taught by their mothers and mother-in-laws the rules of patriarchy. Due to the sexist social conditioning, oppression is so embedded in their psyche that they see oppression as natural, it has become their way of living and they carry the institutionalized oppression to other generations of females as well. To carry on the intergenerational transmission of its domination, patriarchy uses *motherhood* as a tool. It molds the

*** PhD Research Scholar, Department of English, Maulana Azad National Urdu University, Lucknow Campus, India.**

psyche of the mother in a way that she devalues her own gender, forms a hostile relationship with her daughter and in doing so becomes the oppressed oppressor. This is perceptible in Shashi Deshpande's novel *The Dark Holds No Terror* and *The Binding Vine*, in which she has captured the uncanny of the mother-daughter relationship and brings forth the consequences of internalized oppression, misogyny and patriarchy. In these novels, the mothers are portrayed "at once as victims and perpetrators of the despotic regime" (Bande, 2015, p. 140).

In the novel, *The Dark Holds No Terror*, the relationship between Saru and her mother, Kamala, was devoid of any motherly love, warmth, affection and filled with antagonism, hatred, rebel and sorrow. Saru's growing up years was suffused with the extreme gender biases of her mother. As an oppressor of her own gender, Kamala always gives preference to her son Dhruva over Saru. She poured all her motherly affection on him, pays no heed to Saru's emotional turmoil and makes her feel unwanted and worthless. In their house, even the birthday celebrations were gender-biased; for instance, there was always a *Pooja* on Dhruva's birthday, not on Saru's.The father also showers his love entirely on his son and neglects Saru's existence. This kind of hostile treatment that Saru received, especially from her mother,moulds her psyche to believe that women are unwanted, unloved and worthless. Kamala's hatred towards her own daughter reached a crescendo when she blames Saru for Dhruva's accidental death. Enraged with pain, she cursedher, "*whydidn't you die? Why are you alive, when he's dead*?" (Deshpande, 1980, p. 191).She shows utter contempt to her only living child just because she was a female.

In a patriarchal society, marriage is the only destiny offered to a woman, and the most important point in the list of prerequisites for marriage is fairness or beauty. Saru was a dark-complexioned girl, and time and again, her mother makes her feel ugly. Saru recounts, "I was an ugly girl- at least my mother told me so. I can remember her eying me dispassionately, saying- you will never be good looking. You are too dark for that" (Deshpande, 1980, p. 61).Patriarchal society treats women as sexual objects and emphasizes only their physical appearance. As the motherherself has grown in such a society withregressive notions,it is natural on her part to be worried about the prospects of her daughter's marriage. She always tries to make sure that her daughter doesn't get aneven darker skin tone which will further diminishher chances of getting married.She even forbids her to play in the sun. In Saru's mother's admonition for not playing in the sun, there is implicit internalization of the patriarchal view of a woman's beauty. She makes her daughter aware of the hierarchy of marriage and her place within that hierarchy. Her negative comments on Saru's skin color not just lower Saru's self-esteem, self-concept but also endorsethe exploitation of dark-skinned women. In protecting her daughter from future humiliation and oppression she reduces her ability to resist such regressive cultural norms. Not only this, but Kamala also endorsed women's subjugation by denyingSaru's right to education and right to choose. She resisted Saru's decision to go for medicine. She sees her daughter's desire to get a professional degree as crossing patriarchal boundaries. She warns her husband over the 'unnecessary' expenses on Saru's education. She doesn't even approve of Saru's decision to marry Manubecause it was transgressing the boundaries of the caste system. WhenSaru rebels and marriesManu, Kamalacurses her, "I will pray for unhappiness. Let her know more sorrow than she has given me" and also disowns her,"Daughter? I don't have any daughter. I had a son and he died. Now I am childless" (Deshpande, 1980, p. 196-197).Such contemptuousness, abhorrence towards her daughter is quite unimaginable.

The kind of relationship Kamala shares with her husband serves as a guide for Saru to be an ideal woman in a patriarchal society. Kamala always eats after her husband. She never complained aboutanything; evenwhen she was suffering from cancer, she never told anyone about her pain. Kamala's silent endurance of pain leads her to death but it was praised by female patriarchs like Mai-kaki. She called Kamala "a brave woman, a woman of courage" and told Saru

"She was immensely strong. There aren't many women like her now. For the smallest pain, they rush off squealing to doctors" (Deshpande,1980, p. 108). The mother serves as the example of an ideal wife, or woman in a patriarchal societywho lives for others, who bears all pain, exploitation silently, and who serves her duty in maintaining the patriarchal hegemony.

In the novel The *Binding Vine*, the propagation of patriarchal culture through internalized oppression is perceptible in Shakutai's (mother)and Kalpana's (daughter) relationship. Kalpana wasbrutally raped by her uncle Prabhakar and remains comatose throughout her life after the incident. Through Shakutai's conversations with the narrator Urmi, we come to know about her contemptuous view ofher daughter in particular and her own gender in general. She always restricted her daughter's movement and kept an eye on the way she walks, she talks, and she dresses. Being a product of patriarchy, Shakutai assimilates the sexist stereotypes of women, patriarchal value-system and wants to transmit the same assimilations to her daughter. She blames her own daughter for her rape as she tells Urmi that Kalpana:- …was so self-willed. Cover yourself decently. I kept telling her, men are like animals. But she went her way. You should have seen her walking out, head in the air, caring for nobody. It's all her fault...We're all disgraced because of her… "I 'am not afraid of anyone," she used to say. That's why this happened to her… women must know fear" (Deshpande, 1993,p.147-148).

Shakutai believes that Kalpana was raped because she defied the patriarchal norms. When the doctor informed her about Kalpana's rape, she doesn't want to report the case because she knew that it will dishonor her family and annihilate her daughter's chances of getting married. Shakutai's view of 'honour' and 'marriage' is the manifestation of patriarchal society's reaction to rape victims. Due to the vulnerability and helplessness of women, Shakutai feels that daughters are 'trouble' and says that, "Why does God give us daughters?(Deshpande, 1993, p.60).

Kamala and Shakutai propagate and reinforce misogynistic behavior towards their daughters due to internalized oppression and the sexiest social conditioning. The process of internalized oppression can be traced back to their childhood and early life experiences that nurtured them to become patriarchal agents. Both Shakutai and Kamala have very traumatic early-life experiences where they were made to live a humiliating life just because of being a woman. Kamala's mother was deserted by her husband a few years after her marriage and left alone to raise two daughters one of them was Saru's mother. Kamala' maternal grandfather had taken their responsibility, looked after them and managed to get both the girls married, "But there had been, obviously the burden of being unwanted, of being a dependent" (Deshpande, 1980, p. 70). Kamala never heard her mother complaining about whatever happened with her, "It's my luck she said. My fate. It was written on my forehead" she used to say(Deshpande, 1980, p. 70). Through her mother, Kamala internalizes that an ideal woman should never complain, never resist, and accept oppression, exploitation and humiliation as her fate. The bitterness towards her own gender, her own daughter is comprehensible as Sangeeta Sharma (2016) observes that, "Saru's mother's childhood had influenced her adult personality. Perhaps her childhood feelings of insecurity and being 'unwanted' had conditioned her to an extent that she started regarding girl-child a burden"(p. 23).

Like Saru's mother, Shakutai's early life was full of humiliation, oppression and struggles. She was married to a jobless man at a very young age. Her husband left her with three children and married someone else. She becomes a single parent and did all kinds of odd jobs; from working in a grocery to cleaning the filth of an old paralytic woman to fulfill her children's basic needs. All of these factors influenced Shakutai's psyche so much that she starts believing that being born a woman is a great sin and the root cause of all problems. So it was not that Shakutai hates her daughter, but her own pathetic life experiences of being a woman, her social and cultural conditioning in a patriarchal society make her abhor her daughters. The traumatic and humiliating

experiences that both Shakutai and Kamala had in the early stage of their life never really healed, and the continuous degradation of their gender damaged their self-esteem, caused anxiety, anger and learned helplessness, which is then passed on to the subsequent generations.

Shakutai, and Kamala don't hate their daughters, but their psyche is shaped in such a way that they fail to show motherly love, and it creates a conflicting relationship between them. Despite the continuous inculcating of patriarchal values in the minds of their daughters, Shakutai and Kamala fail to protect them from resisting the patriarchal norms. Saru resents her mother's regressive view on girl's education and marriage, and Kalpana hates her mother's restrictions on her lifestyle. They resist patriarchy by living their life on their own terms. As opposed to her mother's expectations, Saru becomes a doctor and marries a man outside her caste. Kalpana ignores her mother's restrictions and lives a carefree, fashionable life. The oppressed mothers create a niche in their psyche that, to prove their womanhood and motherhood, they have to raise their daughter as per the norms of patriarchy. But when their daughters betray them, these women feel they have failed not just asmothers but also as women. The consequences of intergenerational transmission of internalized oppression are perceptible in Saru and Kalpana's case. They were the victims of rape and (marital rape) but were unable to resist because of their learned helplessness from their mothers, the degraded and subjugated social conditioning.

In both the novels *The Dark Holds No Terror*and *The Binding Vine*, Deshpande has not just shown how women as mothers contribute to women's subjugation, but she further problematizes the mother's early life experiences, contextualizing their internalized oppression andmisogyny in the hegemonic restrictive social conditioning. Shakutai and Kamala find the reflection of their own victimized self in their daughters, and their first-hand experience of oppression makes them dominate and possess their daughters' lives, and in doing so, they perpetuate non-egalitarian gender norms. In passing on the societal values they have imbibed as women,theydisempowered their daughters and it becomes an obstacle in eradicating gender-based violence. Thus, to mitigate the century-old subordination, and exploitation of women, to create an egalitarian society, women first need to dismantle internalized oppression and misogyny, embrace their humanity and stop endorsing regressive patriarchal ideologies.

References :-

1. Bande, U. (2015). *Writing Resistance: A Comparative Study of the Selected Novels by Women Writers.* Shimla: Indian Institute of Advanced Study.
2. Bhasin, K. (1993). *What is Patriarchy?.* New Delhi: Kali for Women.
3. Deshpande, S. (1990). *The Dark Holds No Terror.* India: Penguin Books.
4. Deshpande, S. (1993). *The Binding Vine.* India: Penguin Books.
5. Pheterson, G. (1986). Alliances between Women: Overcoming Internalized Oppression and Internalized Domination. *Signs, 12*(1), 146-160. Retrieved from http://www.jstor.org/stable/3174362.
6. Sharma, S. (2016).*Gender Issues: Fictional World of Shashi Deshpande*. New Delhi: Atlantic publishers and Distributors.

Reflection of Artistic Thoughts and Moral Vision in Iris Murdoch's *Under The Net:* A Critical Discourse

Dr. Naveen K. Mehta*

Muskan Solanki **

Abstract:- Jean Iris Murdoch is an eminent female novelist and thinker of twentieth-century British Literature. Through her first published novel entitled *Under The Net* (1954), Murdoch attempts to serve a solipsistic flavor to readers via picaresque adventure. The novel focuses primarily on the egotistic and self-centered nature of humans. Being a philosopher, she tries to free people trapped in their own troubles and tussles of life. She advocates that moral values, goodness and virtues are of prime importance in life. The present paper aims at exploring the reflection of artistic thoughts and moral vision in the novel *Under The Net* by Iris Murdoch. Besides, the paper also tries to highlight the novelist's vision through examining various themes and narrative techniques in the novel.

Keywords: solipsism, moral vision, artistic thoughts, goodness, virtues.

Introduction :- Jean Iris Murdoch is a well-known twentieth-century novelist and philosopher of Britain. Her writings fall in the era of the post-war period i.e. the era post World War II. The period implies the Postmodernist period in British Literature. Postmodernism refers to the cultural and literary phenomenon that emerged after modernism in the field of architecture, music, literature and criticism. It is somehow a rejection of the modernist ways of thinking and the 'post' in postmodernism suggests a 'next phase' after modernism. Early postmodernism emerged around the late 1950s and early 1960s in America, but a full-fledged movement appeared in the 1980s dominantly by French thinkers, philosophers and sociologists.

The basic structure of postmodernism was established by two noteworthy figures, namely, James Francois Lyotard and Jean Baudrillard, whose seminal works *The Postmodern Condition* and *Simulations* respectively provided a theoretical framework. Besides, other writers such as Frederick Jameson, Ihab Hassan, Linda Hutcheon, Michel Foucault, Terry Eagleton and Martin Heidegger also contributed to postmodern thought.

Postmodernism has had deeply affected literature and literary theory. It incorporates the use of writing techniques such as metafiction, intertextuality, pastiche, magic realism, fragmentation, hyperreality and so on. The renowned postmodernist writers are Kingsley Amis, Iris Murdoch, John Fowles, William Golding, Martin Amis, Doris Lessing, Angela Carter, Joseph Heller, Thomas Pynchon and the like. Iris Murdoch is the most influential writer globally, who contributed new insight and vision in the realm of philosophy and metaphysics. She set out her own thoughts and radically different views, challenging the chaos and upheavals of that time Britain. The present research paper strives to explore and discuss Murdoch's artistic thoughts and views on morality and goodness reflected in her novel *Under The Net,* by taking into consideration the dominant themes, narrative technique and style of the novel.

***Associate Professor and Head, Department of English, School of Language, Literature and Arts,Sanchi University of Buddhist-Indic Studies,Academic Campus, Sanchi, Raisen, MP.**

****Ph.D. Research Scholar, Department of English, School of Language, Literature and Arts, Sanchi University of Buddhist-Indic Studies, Academic Campus, Sanchi, Raisen, MP.**

Iris Murdoch as a Novelist :- Iris Murdoch (1919-1999) is one of the most acclaimed and influential writers of the twentieth century. She started writing at a very young age. She is reckoned as a post-war novelist of Britain. Her literary output is quite significant and of great importance to literature. Her first published novel *Under The Net* appeared in 1954 and since then as per Richard Todd remarks, "she has emerged not only as one of the most productive and influential British novelists of her generation but, equally important, as a powerfully intellectual and original theorist of fiction (13)." She is a realist writer of fiction and has clear views and expertise over her form of writing. She is highly inspired by the writings of Shakespeare, who she has described as the 'patron saint' of novelists.

Her novels are deeply psychological as well as depicts the philosophy of her mind. Following the war, she studied and embraced the philosophy of Sartre and his existentialism. Though she drifted her interest from that and later, derived her inspiration from the philosophers and novelists such as Ludwig Wittgenstein, Simone Weil and Raymond Queneau. Her writing career is divided into a number of phases and stages as per her writing style from post-war existentialist fiction to her own philosophy as a novelist.

She writes with great depth and variety and produced nearly twenty-six novels including *The Bell* (1958), *The Severed Head* (1961), *The Black Prince* (1973), *The Sea, The Sea* (1978) and so on. She tried her hands in almost every genre and form of writing ranging from writing novels to plays, collection of poetry, short stories and essays and criticism on philosophy. She is considered as Britain's leading moral philosopher as Todd remarks, "which resulted from a habit of reading and thought displaying a carefully cultivated, historically aware, and genuinely international literary sensibility (14)."

A Critical Analysis of the Plot :- Murdoch's first work – *Under The Net* (1954) is a novel of ideas and thoughts, reflecting a world of confused and self-centered characters having a solipsistic view of life. Murdoch suggests that there is more to life than just being selfish and egotist. The novel is rich in its topographic description and landscape. It provides beautiful imagery to its readers. The novel revolves around the adventures of James Donahue (Jake), a male protagonist and the narrator of the story. Cheryl K. Bove describes Jake as a "failed artist and picaresque hero (36)." The novel is hailed as one of Murdoch's best works by critics. The characters in the novel are in the endless struggle to organize and shape their life. Jake, a man in his thirties is a talented but lazy man, who does little work and struggles to survive by translating works of a French author. After experiencing a series of bizarre events, towards the end, he finally realizes and resolves his inner conflicts, decides to settle down and get a job. He finally believes that he is smart and capable as others have also pointed out. He shifts his fragmentary life to an ordered and structured life. "Murdoch expresses the spiritual sublimation and self-evolution brought about by the dynamic and spiritual power that people should have (Liu, 1985)." Murdoch's moral vision is depicted through the character of Jake, becoming a virtuous man and leaving his vices. The other characters such as Finn, Hugo, Anna, Sadie, Madge and so on appear as a consequence and in relation to the actions taken up by Jake. All the characters are somehow connected with Jake and his past life. Hugo Belfounder and Dev Gellman represent the philosophical range of characters. The novel is rich in its subject matter dealing with moral goodness and artistic thoughts.

Thematic Concerns :- The theme of Unrequited Love is quite dominant in the novel. It shows one-sided and often unreciprocated love affairs between characters. Inspired by Shakespearian drama such as *As You Like It*, the novel weaves an interesting chain of love among characters. Love, at times, acts as a motivational force for the characters and sometimes, withdraws the character from achieving their desired goal. Jake, who likes to live an individualistic life and clear of relationships, falls in love with a former lover again, Miss Anna Quentin. Anna, who was

infatuated with Jake, instead falls in love with Hugo. Hugo, being a contemplative character, impresses Anna through his intellectual talks. Hugo, on the other hand, finds Anna's sister, Sadie Quentin more intelligent, bold and becomes obsessed with her. Sadie, being left aloof, searches for safety and protection in Jake.

The theme of silence is very effectively assimilated and implemented in the novel. The word silence is used exhaustively in the novel but implying a different meaning altogether at different utterances. The emotion of silence or the 'Shanta rasa' implies a state of peace and tranquility of internal self, where the individual can unite with the divine and self. The silence has various forms as per the situation's demands. In the novel, Jake publishes a single book entitled *The Silencer*, based on his friend, Hugo's thoughts and ideology. Hugo suggests in the novel that the language is incapable of expressing the deepest and significant views. Hugo remarks, "the language just won't let you present it as it really was." (UTN, 70) He further adds, "the whole language is a machine for making falsehoods." (UTN, 71) Here, Hugo reflects the philosophy of Wittgenstein, from whom Murdoch was greatly influenced. The use of Mime Theater in the novel is also a sign of silence, as in mime the actors do not speak rather use facial cues and expressions to transmit their thoughts and similarly audience is also not allowed to applause. Jake's companion, Finn is pictured as a shy and silent character, humble and self-effacing, who barely speaks and takes second place. The character of Mister Mars is quite unique, being a canine, he too rarely barks and chooses to stay silent. Jake, who is a translator and wishes to write his own original work, is unable to communicate his ideas.

Murdoch incorporates the use of the first-person narrative in the novel, who is a rogue named Jake. Murdoch uses a male voice and perspective as the character of Jake is quite unpredictable and spontaneous. It also helps the readers to dive deep into the psyche of Jake, his thoughts and his perception of the world. The Setting always plays a highlighting role in the novels of Iris Murdoch. Murdoch always stresses on describing the surrounding places and country in the novel. The reader is offered with each and every minuscule detail from where the character belongs or is situated; whether the place is London or Paris. In the novel, Murdoch mentions the names of streets as well so that the reader can get familiar with the places. The names of rivers, pubs, coffee houses, neighborhoods and so on are mentioned.

Concluding Remarks :- Murdoch presents her novel *Under The Net* in a form of a great quest and pursuit. The events in the novel are set with utmost sincerity by the novelist. Every action taken by the character leads him/her to a consequence following other events in their lives. It is a chain of reactions and consequences, set in a thoughtful chronology of events by Murdoch. From the beginning, the protagonist Jake along with his friend Finn is in search of a place to live. Their quest for home leads them to find a home, Jake encountering her first love Anna and later the plot diverts to the story of an old book and lost transcript. Later, Jake decides to confront his old friend, Hugo. The writing style of Murdoch is quite engaging as the reader is tossed between the suspense and unanswered questions till the culmination point of the novel. The writing style of Murdoch, thus, is quite realistic as it is the philosophy of life that a person surely pays for his actions and faces the repercussions accordingly. The happenings in Jake's life are the consequences of his own actions. Murdoch aptly plots a chain of love affairs among the characters. Reflecting on the notion that the characters are so engrossed in their own thoughts and views that they negate and fail to accept their own true feelings. Here, the self-centered notion of characters is being criticized, as they fail to understand the self, which Murdoch regards as the prime goodness in the human being.

The silence is very intriguing in the novel and makes readers curious at times. Jake as the narrator only provides the narration but is unable to communicate his true ideas. He publishes a book but remains skeptical as the ideas in the book were not originally his and rather copied from

Hugo. He thinks of publishing his work but it is only towards the end when he is finally being challenged by an event, where the original author receives an award and as a result, Jake decides to break the silence and pen down his thoughts. Hugo makes a remark in the novel, "For most of us, for almost all of us, truth can be attained, if at all, only in silence."

Therefore, Murdoch's novel reflects on artistic ideas and thoughts concerning philosophy, propagating moral values and providing a moral vision to enlighten the self and soul of the readers. She is a realist and offers her readers a true sense of human life. In Murdoch's writing, "the theme of goodness often appears. Only through fighting the confusion and self-evolution, can we reach the "good" situation. Her works are extremely philosophical and strive to propose a rescue strategy for social morality and social contradictions (Chen, J. and Gao, J.,39-43)."

Murdoch is deeply influenced by the Picture Theory of Language (Gale Group, 1983) proposed by Wittgenstein. The novel is also full of symbolism and even the 'net' in the title is symbolic of the web created by words and language, that may entangle an individual without asserting the power to decipher and read the implicit meanings that language imparts. She questions her readers to think how to use language to describe the complexities of the world and reach the constructive truth. "Under the Net is Murdoch's first novel, but it contains profound artistic thoughts and moral philosophical meaning (Yin, 1999)."

Works Cited :-

1. Todd, Richard. *IRISH MURDOCH.* Methuen London and New York, 1984, 13.
2. *IRISH MURDOCH.* Methuen London and New York, 1984, 14.
3. Bove, Cheryl K. *Understanding Iris Murdoch.* University of South Carolina Press, 1993, 36.
4. Liu, F. T. *New Modern Western Philosophy*. 1985, Beijing: People's Publishing House.
5. Murdoch, Iris. *Under The Net.* Vintage Classics, 2002. (UTN)
6. Chen, J. and Gao, J. *The Goodness and Truth-Analysis on the Thesis and Value of Iris Murdoch's Novels.* Advances in Literary Study, 7, 39-43, 2019. doi: 10.4236/als.2019.72005.
7. Gale Group. Contemporary Authors, New Revision Series, 1983, (p. 375). Vol. 8, London.
8. Yin, Q. P. *Treating Contemporary Novels—On Murdoch's View of Novels.* Foreign Language and Foreign Language Teaching, 1999, No. 8, 44-46.

Works Consulted

1. *A Study Guide for Iris Murdoch's "Under The Net".* Gale A Cengage Company, 2003.
2. Bajaj Kum Kum. *A Critical Study of Iris Murdoch's Fiction.* Atlantic Publishers and Distributors, 2001.
3. Baldanza, Frank. *Iris Murdoch.* Twayne Publishers Inc., New York, 1974.
4. Bhandari, Geeta and Vikas Bembi. *The Novels of Iris Murdoch.* Creative Books, 2009.
5. Spear Hilda D. *Iris Murdoch.* Macmillan, 1995.

An Analysis of Fake news on social media and its impact during covid-19 in India

Ravi Shankar Maurya*
Dr. Tasha Singh Parihar**

Abstract :– The situation of covid.19 is becoming uncontrollable once again in India from March 2021. This new form of covid is creating fear in many other countries. The world has controlled many epidemics, but the dangers of this epidemic are increasing while the world is finding ways to live with it. Efforts are being made to make vaccine doses available. In such a situation, even due to fake news or misinformation, people are not able to fully trust the new vaccine. There was a lot of fake news going on social media at the time of outbreak of this pandemic; in March 2020 people were unknowingly sharing false news. The same conditions are coming to the fore in second wave time as well. Then you have to prepare to deal with the flood of fake news. However, this research analyzes various aspects of the spread of fake news during the pandemic and its impact on society and its management. Hence the importance of this research increases.

Keywords: Fake news, online fake news, online yellow journalism, fake news education etc.

Introduction – There is more dangerous misinformation than the epidemic. The world has faced many horrible situations due to these misinformation. According to news18 channel's website UN (United Nations) Chief Antonio Gutareras was issued a warning to all the countries of the world that the fake news related to Corona will have to be reinforced or else it can take many lives. Corona virus itself is as deadly as it is, even more deadly than it is, there is misleading information being spread through social media. In Iran, more than 1000 people drank industrial alcohol and 600 died due to one such fake message. According to Times of India news website, for a long time, Markzukervarg etc. believed that Facebook Twitter is a platform, so they do not have to answer for misinformation published on their platforms. But right now, they are removing such posts which promote wrong information or violence content.

Speech disruption and rumours of hate speeches have been responsible for violence and deaths in India for some time. On 16 April 2020, two sadhus and their driver were killed in Gadchinchal village in Palghar, Maharashtra. The WhatsApp rumours had spread in the area and a group of villagers killed three passengers as thieves and several policemen who intervened in this bus were also attacked in which they were caught. In Palghar district, 19 more people have been arrested in connection with the beating of two sadhus and their car driver by a mob in April. One of them is 70 years old. an officer gave this information on Wednesday. According to Times of India website A 2019 Microsoft study found that over 64% of Indians face fake news online, the highest among the 22 countries surveyed. Add edited images spread through social media platforms and messaging services like WhatsApp. A staggering number of broken videos and bogus text messages are making it difficult to distinguish between misinformation and credible facts. In 2014 According to world economic Forum Fake news is a matter of deep concern not only for India but for the world. In India, in the era of increasing internet usage and social media, the problem of fake news is becoming more frightening. Examples such as these exist that misinformation results in a major loss. Acording to the Print Recently, Information and Broadcasting Minister of India Prakash Javadekar remarked that fake news is more dangerous than paid news. The second wave of Corona is spreading. Many cities including Delhi, Mumbai, Lucknow are facing severe conditions in India. During this epidemic last year, the flood of fake news had further

*** Research Scholar, School of Media and Communication Studies, Galgotias University, Greater Noida, Uttar Pardesh.**
****Associate Professor, School of Media and Communication Studies, Galgotias University, Greater Noida.**

affected the situation and made the problem more serious. In such a situation, we need to think of an appropriate solution to overcome the problem of fake news. India's news channels did a lot of meaningful work last year to break the confusing web of fake news that needs to be understood.

Research Objectives – The aim of the research is to assess the fatalities at the time of the epidemic. To check the available fake news items regarding corona infection on social media. Collect Information about news channels' awareness-raising programs.

Research Methodology :- Case studies with observational methods have also been used in research studies. And the case study studied qualitatively has been tried to authenticate the research topic from the awareness programs and news websites of news channels, and it is important in authenticating the secondary data subject.

Data analysis –

Fake news floods during the Corona epidemic :- According to "aa.com" Experts said at a summit in New Delhi. Fake News is a serious challenge. Fake News is not just fake news, fake news misleads people. At this summit, Nazakat said that many new studies published during the covid epidemic do not follow the standards of scientific research that flow misinformation in medicine which is very harmless. The two-day summit covered a wide range of topics including the global response to the epidemic, initiatives taken by social media platforms and facts checkers to fight medical misinformation. We get unverified health information from family and friends through digital platforms. Thus it is very important to reduce the spread of misinformation for social media during Covid -19. According to Aljazeera new website India's fight against corona virus is not easy; there are many obstacles in it. The increasing number of patients is a matter of concern. In which the huge crowd a spread health system and inadequate infrastructures, a risks of infection are increasing. But misinformation and fake news are making the situation more serious.

The post on social media of unverified home remedies for dealing with the virus is making the epidemic more difficult for the medical world. In these posts, people will be found with various kinds of things to avoid food items like ice cream and chicken, that the phone and social media of Indians are being filled with misinformation by the messages and posts. The flow of fake information became so much that on March 7, 2020; India's Prime Minister was forced to appeal to the citizens. He said that people do not need to pay attention to rumours and Fake News. According to Aljazeera news website the web of misinformation spread on social media is making the fight against Covid more complicated. WhatsApp is the largest market in India with more than 400 million users. Indians used 468 million smart phones in 2017. Rumours circulating on WhatsApp have killed dozens of public abductors, including many minor ones, by angry mobs over the past four years. According to hastakshep.com, India stands amid such a crisis in Corona time today. Where the whole world is fighting the epidemic with limited resources, in addition to the medical challenges of Corona in India, it is facing many problems due to Falke News and false propaganda.

According to caravanmagazine.in On April 7 2020, rumour spread in the Sisai block of Gumla district, about 120 km from Ranchi, the capital of Jharkhand, to spread Coronavirus by spitting the place, the rumour turned into Muslim clashes and fighting in Sisai and nearby Kudra village. In which many people were injured and 50-year-old Bhulwa Oraon died. Gumla's police superintendent on spitting rumours; SP Hrudeep P Jarnadhan said, "will anyone do this? It is just a rumor. The rumor of spitting is all over India. There was nothing that spread rumours of coronavirus spreading in two groups." A mentally deranged man died in the clash. Four newspapers of Jharkhand had published this fake news. According to dw.com Last year, a post regarding the lockout released in India went viral on social media and WhatsApp, claiming that the lockout in India has been done as per WHO lockdown protocol of the World Health Organization; the message said that on 20 April 2020 The third phase will come into effect from May 18, 2020. This message claimed that the WHO has divided the lockdown period into four phases and India is also following it. The lockdown in four phases was false and it was just a fear of people. It was spread with the intention of generating WHO, along with the Government of India, also called this message false.

If you are getting information about any scheme named 'PM Yojana' and 'Pradhan Mantri Lone Yojana' by the Central Government through social media or SMS on your phone, then do not get caught in that. People are being cheated by this scheme. The Central Government has not run any such scheme. Both these schemes are fake. This information has been given by the Press Information Bureau's PIB Fact Check via tweet. According to the PIB Fact Check, an attempt is being made to fool the general public in the name of both these schemes, so be careful. Government is not running any scheme named 'PM Yojana' and 'Pradhan Mantri Loan Yojana'. In this way, there is a lot of fake news and wrong news on social media. It has been causing many kinds of problems.

Conclusions :- The idea of misinformation or propaganda is as old as old history, but with time, the new thing is technology. It helps fake news spread quickly. In the era of social media, it is difficult to find out which news is right and which is wrong. And this is a big problem. The reason for the problem is the people who are busy creating false news and spreading it for their disgusting purposes. In India, covid-19 has brought its own brand of misinformation, in which common people among the people who created a conspiracy theory are also included in the media of India. Wrong news takes our social and cultural prejudice in a negative direction. Dealing with these is a big challenge in which society will have to play a key role through education and awareness itself. Inaccurate information like the covid -19 epidemic is also becoming extremely deadly. It is important for us that our information system be like this. In addition to transparency, which promotes the flow of authentic and reliable information faster, these steps will create antibodies that will respond to the propaganda.

References :-

9. *UN warning - Fake news being spread about Corona can take lives.* (2020, April 15). News18 India. https://hindi.news18.com/news/world/world-faces-misinformation-epidemic-about-virus-un-chief-3017911.html
10. Popat, D. (2020, July 7). *There is a pandemic of fake news and hate on social media. You can help fight it*. Times of India Blog. https://timesofindia.indiatimes.com/blogs/toi-edit-page/there-is-a-pandemic-of-fake-news-and-hate-on-social-media-you-can-help-fight-it/
11. *Making the outlook on the global agenda 2014*. (n.d.). Outlook on the Global Agenda 2014. https://reports.weforum.org/outlook-14/making-the-outlook-on-the-global-agenda-2014/
12. *Fake news more dangerous than paid, self-regulation needed, says I&B minister Javadekar*. (2020, August 27). ThePrint. https://theprint.in/india/fake-news-more-dangerous-than-paid-self-regulation-needed-says-ib-minister-javadekar/490080/
13. *India: Flood of misinformation amid pandemic*. (n.d.). Anadolu Ajansı. https://www.aa.com.tr/en/asia-pacific/india-flood-of-misinformation-amid-pandemic/2051576
14. Purohit, K. (2020, March 10). *Misinformation, fake news spark India coronavirus fears*. Breaking News, World News and Video from Al Jazeera | Today's latest from Al Jazeera. https://www.aljazeera.com/news/2020/3/10/misinformation-fake-news-spark-india-coronavirus-fears
15. Amlendu (2020, April 4). *Indian news media affected by corona virus, fake news*. Hastakshep, hastakshep. https://www.hastakshep.com/corona-virus-fake-news-and-affected-indian-news-media/
16. Khan M A (2020, April 22). *There are neither spitting nor those who were spit on but four big newspapers of Jharkhand printed fake news.* The Caravan. https://hindi.caravanmagazine.in/media/hindi-newspapers-spread-fake-news-in-ranchi
17. Deutsche Welle (www.dw.com). (n.d.). *Fake news floods during the pandemic.*DW.COM. https://www.dw.com/hi/india-whatsapp-fake-news-pandemic/a-53063003
18. Hindustan (2020, March 2). *Alert! If you fall under the guise of 'PM Yojana' and 'Prime Minister's loan scheme', then the deposits and capital will go away.* Hindustan. https://www.livehindustan.com/business/story-big-alert-pm-yojna-pradhan-mantri-loanyonjanaare-fake-3061622.html

Criminology in Literature : Exploring the Subtle Crimes in Shakespeare's Plays

S. Jenosha Prislin*

Dr. J. Santhosh Priyaa*

Abstract :- "E. Sagarin contends that the only difference between criminologist and literary writers is "method"' (Time 5). To fill this difference, a model of comparison with the focus on the dramas of Shakespeare helps to examine the argument that criminology and literature are interconnected. Innumerable dramatists and writers have expressed some fictional and theoretical scenarios that have labeled many of the criminological thoughts today. The paper explores one of the most prominent classicists of all time known to be the Bard of Stratford and his well-known plays are a fine example of his contribution to crime in literature. Some of Shakespeare's memorable characters are not always noble kings and princes; rather he had a deep impact with his villains and their crimes.

Key words: Criminology, interconnected, fictional scenarios, crime in literature, villains

The biggest question that ponders over everyone's mind is how far crime is embedded in literature. Is it just a heedless description of uncanny incidents or more realistic embodiment of authenticity? To clarify this many writers of literature had come up with different techniques to expound crime. The deep rooted idea of literature in the field of criminology is undeniably extensive. Innumerable dramatists and writers have expressed the fictional and theoretical scenarios that have labeled many of the criminological thoughts today. Many centuries have passed since Shakespeare ruled the theaters yet the influence of his genius continues to impact the world. Some of Shakespeare's memorable characters are not always noble kings and princes; rather they were villains and their crimes.

"E. Sagarin contends that the only difference between criminologist and literary writers is "method"' (Time 5). To fill this difference, a theoretical model of comparison with the focus on the dramas of Shakespeare helps to examine the argument that criminology and literature are interconnected. The paper explores one of the most prominent classicists of all time known to be the Bard of Stratford and his contribution to crime in literature. Also the connection between criminology and literature are highlighted through the dramas of Shakespeare.

"The first texts in English that focuses on crime and criminals appear in the 16th century." (Danyte 6) Many critics believed that crime fiction began with the publication of Willie Collins *Moonstone* (1868) but even before that crime had been a prominent part in literature. Writers of Victorian and Renaissance played a huge role in promoting crime based works through literature, writers such as Thomas Dekker, Robert Green, Awdeley and dramatists such as Shakespeare, Marlowe, Ben Johnson all had their share of crime explicitly explored in their works as a subtle theme. It took years for the genre to outshine the other genres and get its own recognition.

Later through the years many works had crime as their main focus. Such as *Crime and Punishment* (1866) but not only that many other works such as Poe's *The Murders in the Rue Morgue* (1841), Sherlock Holmes series (1887), Aagatha Christie's *The Mysterious Affair of Styles* (1916) also has crime as their key element. Crime is addressed rather as a multifaceted social conduct which changes through time. Because through the ages crime had been a part of culture, a measure of honour,

*** PhD Research Scholar (English), PSGR Krishnammal College for Women, Peelamedu, Coimbatore.**

*** Assistant Professor, Department of English, PSGR Krishnammal College for Women,Peelamedu, Coimbatore**

a means for survival, an act of self-defense, a symbol of poverty, a ladder for social power, or a means for fun.

In order to substantiate their dependency on each other there are numerous aspects of crime that are stated in the literary texts. For centuries many writers had come up with many different scenes and scenarios in their work which had indefinite amount of background works or foreground scenes about murder or transgression. But none had the artistry of Shakespeare to portray an act of crime through the eyes of a criminal. It is said that, "One of the earliest to conceptualize crime in fictional writing was William Shakespeare." (Time 3)

During the Elizabethan age Shakespeare's plays proclaimed crimes of the age. His works are a reflection of the ongoing themes present in the society during his time. Shakespeare also explains the reasons why his characters seek oasis in crime and deviance. Criminology also does the same by trying to understand the reasons for a certain deviance. The themes of crime in the classics have always been overshadowed for centuries. Timeless subjects that have prevailed in the society for centuries are family, love, politics, revenge, ambition, justice but Bard also inculcates retribution, transgression and punishment in his plays. Playwrights' idea of crime and punishment is not vivid but effective.

Some say that Shakespeare expresses human nature more legitly than any criminologist ever did. While looking into Shakespeare's crime, the age background also plays a vital role. Crime and justice was reflected in the words and deeds of his characters. Shakespeare has penned some of the most dangerous usurpers and betrayers in literary history. These villains are no different from anyone because they are the embodiment of human need and greed. They were motivated by their evil needs and this moves the plot forward. From Richard the third to Macbeth there were many disturbing villains. Some of Shakespeare's villains are as compelling as his heroes.

It was believed that Shakespeare drew his idea for crimes based on the true events such as histories -that has happened in and around England in 1551in a play called 'Arden of Faversham' which was the first play based on true but later his works were filled with references to murder and treasons by compiling the concept through histories. The histories portray a series of events which has treasons, dethronement and executions in its every page. This gave Shakespeare the idea of building his own crime scene with the real incidents as the background. But building up a crime from true events was not an easy task for Shakespeare because he preferred historical crimes to domestic crimes. Ovid and Plutarch have been one of his biggest influences and Shakespeare always turned to their chronicles of England and Scotland for his sources. This does not deny that Shakespeare did include some domestic tragedies in his works such as *Othello* (1603), *Hamlet* (1603) and *Macbeth* (1606) had a domestic world which was familiar to the audience of his time.

During Shakespeare's time punishments were a form of entertainment to people, where people gathered around markets to look at a person being hanged. Crimes such as treason were punishable by hanging and dismemberment while petty crimes like pickpocketing resulted in the offender's fingers being cut. Unmarried and poor women living with a cat would be suspected of witchcraft and would be drowned as punishment.

Being one of the greatest dramatists of all ages, Shakespeare was one of the writers to introduce the subtle theme of crime in his plays. Shakespeare has also included many legal terms and the problems of law in his works. Shakespeare's plays encompass a wide array of 'genre mixture' from beginning till the end. During his time his plays were divided on the basis of tragedy and comedy. Even now this categorization is followed. But a closer look at his plays can prove that there are more genres that are hidden than what meets the eyes. His plays are truly an embodiment of 'mixed genre'. His work has at least three to four different genres incorporated in them. Such one concealed genre that is present in most of his plays is crime. Many of his plays are an evident representation of crime.

Transitioning from simplistic to skeptical criminology Shakespeare has explored it all. Crime plays are made famous by many writers and Shakespeare undoubtedly can join the list. The characters in his dramas are no saint but ordinary human beings with emotions like jealousy, vengeance, revenge and honour well displayed through their acts of plotting, lies, manipulations, and betrayal leading to poisoning, murdering and execution. The acts of indulging in illegal activities such as murder, theft or disguise are considered to be an act of crime. Based on this the quantity of crime present in his plays can be divided into three degrees of crime as expressed in Shakespeare's plays: violent, moderate and petty crime.

Firstly the 'violent crimes' are present in his most famous tragedies where there is no less for gruesome bloodshed. Many of his plays reflect a strong crime theme; they are *Macbeth, Othello, Hamlet, Titus Andronicus* (1594) and *Richard* III (1597). These works are considered to be 'Violent crimes' because there are many 'hate crimes' which are dreadfully violent in nature. These violent crimes bring harm to the physic, emotion and psychology of the victim.

Shakespeare's criminals are not gender biased, a good example for that would be Lady Macbeth and Tamora. Lady Macbeth from the play *Macbeth* is greatly addressed for her clever solicitation, manipulation and non-compassion. Her dark desire for power drives her to ponder her husband into murdering the king. Tamora in *Titus Andronicus* is a vengeful Roman Empress who avenges her son's death by conspiring against Titus Andronicus. Aaron, a partner in all her crimes, promises to return Titus' sons better later beheads them. Claudius in *Hamlet* being a notorious criminal exhibits murder, manslaughter, adultery and regicide. He first usurps the throne by killing his own brother and later marries his sister- in-law. He also makes several attempts to murder his nephew Hamlet.

One of the most hated villains of Shakespeare is Iago from the play *Othello*. Iago being a manipulative character kindles purest manifestations of evil is Iago in *Othello* making him the most hated villains of Shakespeare. Iago is a cunning manipulative character, who kindles Othello's suspicion which leads him murder his own loyal wife. His jealousy for power motivates him to plot against Othello himself resulting in the tragic end of the play. The protagonist in *Richard III* murders his two nephews, his wife's brother and father in order to get the throne while falsely accusing his own brother of these murders. Violent crime mostly revolves around gruesome bloodshed and tragic ends with many people dying.

Shakespeare also includes 'Moderate crimes' which encompasses as a small part of the story that are not too violent. Such crimes can be seen in *Julius Caesar* (1599), *King Lear* (1606), *Merchant of Venice* (1600), *Measure for Measure* (1623) and *Romeo and Juliet* (1597). These plays have a background story and crime is just a part of that story but not a dominating one, making them a little less gruesome.

Cassius in *Julius Caesar* plots against Julius Caesar with the help of Caesar's most trusted friend Brutus, by manipulating false evidence against Caesar and framing him for being too ambitious, in the end they kill Caesar. In the end Cassius himself gets killed for his selfish motives. *Measure for Measure's* Angelo is known for his hypocrisy who fails to follow the law decreed by him. In *King Lear* the king's daughters Regan and Goneril's desire for power and family wealth drove their father insane in the street. Edmund on the other hand was jealous of his brother, Lear and was ready to kill his father and brother for the title. He even manipulates Lear's daughters to give an order to kill Lear and Cordelia. Edmund is thus seen as a villain who plotted against the king of England for his personal gains.

Shakespeare's famous play *Merchant of Venice* is a typical play where law and order is involved. Shylock lends money to Antonio who fails to pay it back within the stipulated time. As a result, he asks for a pound of flesh from Antonio's body as stated in their agreement. Upon meeting at

the court to reach a compromise, Shylock insists on the pound of flesh. But Shylock's daughter's clever argument favors Antonio. For centuries there has been a debate whether Shylock is truly a villain or if he is a fair merchant, however that doesn't explain his insignificance towards the human body. Tybalt in *Romeo and Juliet* belongs to the Montague family, he detests the Capulet. He challenges Romeo in many instances. His inclination towards violence makes him kill Romeo's friend Mercutio and finally in return Romeo kills Tybalt leading to a tragic end. Family feud becomes a driving force here for Tybalt's murder.

Shakespeare's comedies also have its fair share of misdemeanors. Unlike tragedies or histories, his comedies did not contain many violent materials but still as far as the law is concerned during the time of Shakespeare's it was a crime to wear a disguise and deceive someone. Even though these acts do not cost much life threatening incidents it creates a slight disturbance in the plot, but since it is a comedy there is always a happy ending with the villain either sent to prison or he escapes when he is found. These works can be categorized into 'petty crime dramas' by Shakespeare.

In *Much Ado About Nothing* (1600) Don John, the bastard brother of Don Pedro had always been jealous of Don Pedro's trusted friend Claudio. He fabricates a lie about Claudio's fiancée to call off the wedding. But just like most of the comedy plays this ends with everyone getting to know about Don Pedro's involvement. In *Twelfth Night* (1602) Viola disguises herself as a boy to work under the Duke. As a result, many confusions arise making the plot intriguing. But it does not deny the fact that she could be jailed for manipulating through false identity. In *The Tempest* (1623) Caliban is a magical creature doomed on an island and was loyal to Prospero and carried out all his evil commands. Both these characters have a dark past which drives them to conspire against Prospero's brother Antonio.

Shakespeare's works in general have always stood the test of time and so have his works on crime and criminals. From petty crimes to gruesome murderers he developed his characters. The characters' evil motives and their deceptions make the plots more intriguing. Crime is nevertheless an art for many writers of today but to Shakespeare and his characters it was a pure form of artistry to express their conceived emotions and evil deeds. We can thus conclude by saying Shakespeare was a crime dramatist and he played a huge part in being an inspiration to modern crime fiction.

Works Cited :-

1. Danyte, Milda. *Introduction to the Analysis of Crime Fiction*. Vytautas Magnus University, 2011.
2. Goll, August. Criminal Types in Shakespeare. Journal of Criminal Law and Criminology, vol. 29, no. 4, 1938, pp 492-516.
3. Shakespeare, William. *Titus Andronicus*. Penguin books, 2000.
4. Time, Victoria M. *Shakespeare's Criminals: Criminology, Fiction, and Drama*. Greenwood Press, 1999.

References :-

5. Herbert, Rosemary. *The Oxford Companion to Crime and Mystery Writing*. Oxford UP, 1999.
6. *MLA Handbook: Eighth Edition*. The Modern Language Association of America, 2016.
7. Priestman, Martin. *The Cambridge Companion to Crime Fiction*. Cambridge UP, 2003.
8. Rzepka, Charles J., and Lee Horsley. A Companion to Crime Fiction. Wiley Blackwell, John Wiley & sons publications, 2010.
9. Wilson, Jeffery R. "Shakespeare and Criminology." *Crime, Media and Culture : An International Journal*, 18 June. 2014, https://doi.org/10.1177%2F1741659014537655.

Attitudes of U.G. Studeants Towards Social Media in Education

Dr. Samir Kumar Lenka*

Abstract :- This study was conducted to determine the use of social media in education based on the attitudes and practices of students studying at undergraduate level. The ever-growing social media has the potential of improving the quality of instruction in education. Some basic features of social media could have a great impact on the development of the teaching-learning process. This study focuses on the role of social media in education for undergraduate level in Khorda District of Odisha. It sought to discover the use of social media in teaching by investigating the profile of the teachers, the role of social media in education in different collage activities and the acceptance of the role and use of social media in education. The results of the study showed that social media contributes to learning. It is recommended that students blend social media with other free learning management systems

Keywords:- Practices ,Attitudes, Social Media, .

Introduction :- The use of social networking sites has been widespread in each and every field. Because of its ease of use, speed and reach, social media is fast changing the public discourse in society and setting trends and agenda in topics that range from the environment and politics to technology and the entertainment industry (Asur and Huberman, 2010). In the last one decade, the digitized world has changed dramatically by exchanging feeling, ideas, personal information and videos among people at a rapid rate. According to social media statistics of 2014, 100 million people of India adding in social media since 2014. Twenty three percentages of teens consider instagram as their favorite social network, Weekends are the most popular time to share vibes .Number of Snaps send per day on Snap Chat is 400 Million and 40% of YouTube traffic comes from mobile. Today, technology provides a lot of opportunities for education that can be accessed by everyone around the globe. The educational field has completely transformed ever since the Internet and technology are included in the equation. Due to the growth in social networking websites, educators are looking for their potential for use in education, having the conscious that social networking sites may have the ability to endorse both collaboration and active learning. Thus, the affirmative effects of social networking in education are perceptive. In a study by Helou (2014) revealed that majority of university students agreed that social networking sites have a positive impact on their academic performance and simultaneously provide opportunities for communication between administrators and teachers. Social media are considered as an ideal source that helps us to wider our knowledge. Recent survey says that millions of people accessing social networking sites for their educational requirements. Thus, the field of education has undergone a drastic shift and hence gained a new dimension of digital technology in the field f education. So it is important to assess the views, attitude and attitudes of students towards it is urgent need. The purpose of this study was to examine role of social media in education as perceived the students.

Research Questions

1. What are the attitudes of undergraduate students towards social media tools for their academic development?
2. What are the difference attitude of students towards social media sites with respect to genders, stream and type of courses?

Research Effort in this Areas :- Akyildiz And Argan (2011) found that almost all students have a Facebook account and this network is used .for social and daily activities rather than educational and school related purposes. In a study by a **Tiryakiogiu and Erzurum (2011)** revealed that 74% instructors have a Facebook account and they spend less than half an hour per day on Facebook. The main purpose of using Facebook is to communicate with friends. They also observe that Facebook can

* **Head, School of Education, M.S.C.B. University, Baripada, Mayurbhanj, Odisha.**

provide important contributions to social interactions among students as well as to communications between instructors and students. Furhter, in a study by **Lim (2010)** found that Facebook does have the potential to draw distance learners to engage in meaningful academic conversations but the quantity and quality of posts very much depends on the timing as well as the topics of discussion. A study carried by **Roblyer (2010)** found that students are more likely to use Facebook for communication with friends and favour to support classroom work rather than faculty. As compared to students, faculty favour in using email technology. **Xia (2009)** found that the success of Facebook Groups can be controlled by the active organization of librarians and by using more general topics to keep discussions alive. It also finds that Facebook Groups should target not only students but also faculty and staff in support of their research and-teaching. In addition, Boogart and Robert (2006) declared that use of SNSs and Facebook have detrimental impacts on academic performance of student users. Subsequently. Dickson and Holley (2010) examined the use of the Social Networking Sites in academics in the USA in order to examine the concerns about their use both from students and teachers. The study finds that Social Networking Sites can be an effective method of student outreach in academic performance. The study of Brady (2010) found out that education based upon social networking sites can be used effectively in distance education courses. They are an excellent technological tool for improved online communications among students in higher distance education courses. However, a study conducted by **Bowers-Campbell (2008)** stated that Social Networking Sites were used as a tool for improving academic motivation among university students enrolled in a developmental reading course.

One Indian studies carried out by **Haneefa & Sumitha (2011)** found that majority of the students are aware about these sites and used for communication purpose with friends. Orkut is the most used site among the respondents. The students' activities on these sites are sending messages and meeting new friends. Lack of security and privacy is the main hindrance in using these sites. Further**, Kuppuswamy And Narayan (2010)** studied the impact of social networking sites on the education of youth. The study finds that social networking websites have both positive as well as negative impact on the education of youth, depending on one's interest to use it in a positive manner for his or her education and vice versa.

Interpretation of the result Table-1

Significance of difference in attitude between arts and science graduate students towards social media

Variable	Group	N	Mean	S.D.	S.Ed.	T-test	Level Significance
Attitude towards social Media	Arts	62	124.98	6.96	1.15	1.45	N.S
	Science	58	126.65	5.68			

TV at. 05 and .01 Level: 1.96 and 2.58

It is revealed from the Table No-1 that the mean scores of arts and science graduate students towards social media are 124.98 and 126.65 with S.D.s 6.96 and 5.68 respectively. The t-ration came out from above two groups is 1.45, which is not significant at any level of significance. That means there is no significant difference between arts and science graduate students on apperception towards social media. Further, the mean score of science graduate students is higher than the arts students on attitude towardssocial networking tools, it indicates that science graduate has better and positive attitude towards social media tools than their arts counterparts.

Table-2 Significance of between boy's and girl's graduate students in Attitude towards social media.

Variable	Group	N	Mean	S.D.	S.Ed.	T-test	Level Significance
Attitude towards social Media	Boys	54	125.42	7.24	1.2	0.24	N.S
	Girls	66	125.71	5.61			

TV at .05 and .01 level: 1.96% and 2.58

It is revealed from the Table No-2 that the mean scores of boys and girls graduate students towards social media tools are 125.42 and 125.71 with SDs 7.24 and 5.61 respectively. The t-ratio came out from above two groups is 0.24, which is not significant at any level of significance. That means there is no significant difference between boys and girls graduate students on apperception towards social media. Further, the mean score of girls graduate students is higher than the boys students on attitude towards social media, it indicates that girls graduate has better and positive attitude towards social media tools than their boys counterparts.

Table-3

Significance of difference in attitude between Professional and General Course Graduate Students towards social media

Variable	Group	N	Mean	S.D.	S.Ed.	T-test	Level Significance
Attitude towards social Media	Professional course students	29	124.72	5.52	1.23	0.91	N.S
	General course students	91	125.85	6.64			

TV at .05 and .01 level: 1.96 and 2.58

It is revealed from the Table No-3 that the mean scores of professional and general graduate students towards social networking tools are 124.72 and 125.85 with SDs 5.52 and 6.64 respectively. The t-ratio came out from above two groups is 0.91, which is not significant at any level of significance. That means there is no significant difference between professional and general course graduate students on attitude towards social networking tools. Further, the mean score of general course graduate students is higher than the professional course students on attitude towards social networking tools, it indicates that general course has taken by the graduate has better and positive attitude towards social networking tools than their professional counterparts.

Discussion and Conclusion :- As a result of the researchers close observations and findings from the results of this survey, it could be inferred that undergraduate students spend a higher percentage of their time daily by surfing the net chatting with peer groups on non academic related issues along with academic issues. There is no significant difference exists between in stream, gender and types of courses in using social networking sites.

However, science and professional courses students used social sites for educative purpose more as compare to their counterparts. However, the researcher found three basic activities common to all students involved in using Social Networking Sites for academic purpose as; communicating with the faculty and university/college authority, communicating with lecturers and supervisors, making academic discussions with classmates and chatting with friends in respect to topics of educational interest. Although considering results from participant's responses, majority informed that the use of Social Networking Sites does not impact negatively on their academic performance.

The best advice to educational policy makers is that they should device a methodology to officially incorporate the use of social networking sites in the teaching and learning processes of the universities and other institutions of learning as this will encourage the students to use the social networking sites positivelyin such a manner that will benefit their academic pursuit. Also parents and guardians have a responsibility to monitor and know what their wards are doing on the internet with the aim of guarding and advising them appropriately, as charity they say begins at home. Government should make concerted effort to ensure there is availability of high speed internet connectivity and steady electricity supply for the learners, as this will go a long way to

enhance academic activities among youths and prevent them from engaging in other social services.

Reference :-

1. Akyildiz, M. and Argan, M. (2011)- Using Online Social Networking: Students' Purpose of Facebook Usage at the University of Turkey, *Journal of Technology Research*, 1(2), 1-11.
2. Bowers-Campbell, J. (2008). Cyber 'pokes': Motivational antidote for developmental college readers,*Journal of College Reading and Learning*, 39(1), 74-87.
3. **3**-Brady, K. P. (2010). Lifting the limits on social networking sites, *The School Administrator*, 67(2), 8.
4. Dickson, A. & Holley, P. P., (2010). Social networking in academic libraries: The possibilities and the concerns, *New Library World*, 111(11/12), 468-479.
5. HaneefaK, Mohammed & E, Sumitha, (2011),Perception and Use of Social Networking Sites by the Students of Calicut University,s *DESIDOC Journal of Library & Information Technology*, 31, 295-301.
6. Helou, A. M. (2014) The Influence of Social Networking, Sites onStudents'Academic Performance in Malaysia, *International Journal of Electronic Commerce Studies*, 5(2), 247-254.
7. Helou, A. M., Ab. Rahim, Z Z., & Oye, N. D., (2012), 'Students' perceptions on social networking sites influence on academic performance',*International Journal of social Networking and Virtual Communities*, 1(1), 7-15.
8. Kirschner, P A, & Karpinski, AC-2010-2010 Facebook and academic performance Computers in Human Behavior, 26(6), 1237-1245.
9. Kuppuswamy, S. & Shankar, P. J., (2001). The Impact of Social Networking Websites on The Education of Youth, Retrieved 25 September, 2014.
10. Lau, A. (2010). 'Web 2.0 as a catalyst for rethinking teaching and learning in tertiary education: A case study of KDU College (Malaysia)', In Proceedings of the 5th International Conference onE-Learning (pp. 197-206).
11. Lim, T. (2010) The use of Facebook for online discussions among distance learners', Turkish Online Journal of Distance Education, 11, (october), 72 81.
12. Mack, D., Behler, A., Roberts, B.,& Rimland, E., (2007).Reaching students with Facebook: Data and best practices,*Electronic Journal of Academic and Special librarianship*, 8(2).
13. Roblyer, M. D., Mc Daniel, M., Webb, M., Hermon, J., & Witty, J. V. (2010). Findings on Facebook in higher education: a comparison of college faculty and student uses and perceptions of social networking sites. *Internet and Higher Education*, 13(3), 134-140.
14. Sachdcva, R, (2013). Kanpur: Impact of Social Networking Sites (SNS) on the Youth of India: A Bird's Eye View: URL: http://www.aisectimiversity.ac.in/ntisandha.
15. Social Media Statistics (2014). Digital Insights available a blog.digitalinsights.in/social-media-users 2014-status-numbers/05205287.html Assessed on 15-01-15.
16. Subrahmanyarn K., & 1,in, G. (2007). Adolescents and the net: Internet use and wellbeing. Adolescence, .42(68), 659-675.

Spiritual Intelligence in the realm of Education : A Study on General Review

Mr. Sandip Sutradhar*
Prof. Nil Ratan Roy**

Abstract :- The study focused on understanding the core meaning and concept of Spiritual Intelligence. The main objective of the study was to analyze and synthesize the concept of spiritual Intelligence from the Review of related literature on Spiritual Intelligence. The investigator depended on many electronic libraries and publications to cover the largest spectrum of relevant information and review. From the different reviews of related literature on Spiritual intelligence, it was found that Spiritual intelligence imparts higher conscious knowledge to an individual. It promotes an individual's holistic development and leads to greater self-awareness and conscious living. Spiritual Intelligence is about moving on in life peacefully and is about having a direction in life; spiritually intelligent educators can create more meaningful work and working environments.

Keywords:-Spiritual Intelligence, Review of related literature, self-awareness, conscious living, holistic development.

Introduction :- "Spiritual intelligence refers to the intuitive knowledge of the self, others, situations and techniques to achieve the desired objectives. Hence, it can be called the soul of all intelligence " ---- --- A. Singh

Intelligence is one of the essential components of the human survival process. Without intelligence, human life is just like a body without consciousness. We survive in this world with an understanding of the different, complex and mysterious aspects of life. We face a variety of problems and difficulties in our daily lives, and sometimes we solve and face those problems and difficulties very efficiently. That's because of our level of intelligence. Spiritual intelligence is the highest form of intelligence, which helps us to become more competent and skilful in every domain of our lives. A spiritually intelligent person can be delighted and can live a life free of conflict. Education is a lifelong process; it starts in the mother's womb and goes right up to the end of life. Life is smooth and beautiful if we are able to live it in the proper manner. Without a proper understanding of life, it becomes a curse instead of a blessing. Education is one of the most powerful tools for helping us live meaningful lives and gain a proper understanding of ourselves. Spiritually intelligent people always find a way out of a difficult situation and can answer all existential questions. With a proper understanding the reality of the world, we can make every piece of education and knowledge a proper utilization in life.

Danah Zohar coined the term "spiritual intelligence" and introduced the idea in 1997 in her book '*ReWiring the Corporate Brain*'. In the same year, 1997, Ken O'Donnell, an Australian author and consultant living in Brazil, also introduced the term "spiritual intelligence" in his book *Endoquality - the emotional and spiritual dimensions of the human being in organizations*. In 2000, in the book *Spiritual Intelligence*, author Steven Benedict outlined the concept as a perspective offering a way to bring together the spiritual and the material, that is ultimately concerned with the well-being of the universe and all who live there. Howard Gardner, the originator of the theory of multiple intelligences, chose not to include spiritual intelligence in his "intelligences" due to the challenge of codifying quantifiable scientific criteria. Instead, Gardner suggested an "existential intelligence" as viable. However, contemporary researchers continue to explore the viability of Spiritual Intelligence

*** PhD Research Scholar (JRF) Dept. Of Education, Tezpur University, Tezpur, Assam, India**
*** * Professor & HOD Dept. Of Education, Tezpur University, Tezpur, Assam, India**

(often abbreviated as "SQ") and to create tools for measuring and developing it. ("Spiritual Intelligence", 2021)

Significance of the study :- This paper basically focused on the different research papers on 'Spiritual Intelligence' and thoroughly reviewed many research papers from different sources for analysis and to understand the deep meaning of Spiritual Intelligence, especially its importance in the realm of education. For this, the researchers have mentioned evidence and significance from the research papers on Spiritual Intelligence. In this regard, one explanation has been given by Rao, Bellamkonda Uma Maheswara. (2008):-

At present, the world is becoming more and more competitive. By virtue of the advent of modern technology and current globalization, the complexities of teacher living or life have increased manifold. The quality of teaching has turned out to be one of the imperative factors for individual development. Parents think that their offspring (children) are competent to perform extremely high and this longing puts a lot of pressure on the learners, teachers, schools, and the educational system. These environmental stressors necessitate an appropriate combination of intellectual, spiritual, and emotional wealth to set innovative standards in school education. The occupation of teaching requires high levels of spiritual and emotional capabilities, which comprise of good rapport, comfort, and harmony while dealing with the learners. The huge number of comprehensive reviews of related research has consistently revealed that the social, spiritual, and emotional competencies of teachers have an influence on the behaviour of students. In the classroom situation, students have a tendency to draw a lot from their teachers' indirectly and directly. (Rao, Bellamkonda Uma Maheswara. 2008, Pp.69). Spiritual Intelligence can give teachers, students, and every individual the proper direction to live a meaningful life.

The Need for Developing Spiritual Intelligence of Student Teachers mentioned by Vadivelu, P.(2009):- The following are the glimpses of spiritual intelligence gathered from ancient wisdoms, religious ideas and cultures from all around the world. These are, 1. Total and absolute personal honesty to self and others, 2. The capacity to be flexible and spontaneous., 3. A high degree of self-awareness., 4. The art of transforming pain and suffering into happiness and joy, 5. A belief that everything, no matter how bad, happens for a reason and it serves us. 6. The quality of being inspired by visions and strong core values. 7. A reluctance to cause unnecessary harm to anyone or anything. (Vadivelu, P.2009, Pp-19-20).

Objectives of the Study

The study's main objective is to analyze and synthesize the concept of spiritual Intelligence in the realm of education from the Review of related literature on Spiritual Intelligence.

Methodology :- This paper is basically a general review on Spiritual Intelligence, to understand the fundamental concept of Spiritual Intelligence in the realm of education. To cover the largest spectrum of relevant information and review, the investigator depended on many electronic libraries and publications, namely Sodhganga: a reservoir of Indian Thesis @ INFLIBNET, Google Scholar, I EEE Xplore Digital Library, Science Direct, and Springer Link for review.

Indicators of Spiritual Intelligence:- The indications of a highly developed SQ include: 1.The capacity to be flexible (actively and spontaneously adaptive), ,2.A high degree of self-awareness, 3.A capacity to face and use suffering, 4.A capacity to face and transcend pain ,5.The quality of being inspired by vision and values, 6.A reluctance to cause unnecessary harm, 7.A tendency to see the connections between diverse things (being 'holistic'), 8.A marked tendency to ask 'Why?' or 'What if?' questions and to seek 'fundamental' answers, 9.Being what psychologists call 'field-independent' – possessing a facility for working against convention.

A person high in SQ is also likely to be a servant leader – someone who is responsible for bringing higher vision and value to others and showing them how to use it, in other words, a person who inspires others. (Zohar, Danah & Marshall, Ian. 2012). (Pp. 15-16).

Major Findings and discussions

Imparts and Direction of Spiritual Intelligence:-

Spiritual intelligence imparts higher conscious knowledge to an individual. It promotes an individual's holistic development and leads to greater self-awareness and conscious living. We are at the pinnacle of human evolution and living a standard life in this technological era because we have all of the equipment and processes that make human life more convenient than previous generations have ever been in this world. Though we are at the pinnacle of evolution, we are also at the pinnacle of intelligence, which we have accumulated over many generations in this world. However, due to a lack of proper knowledge and conscious awareness, we deviated from our actual life tasks and began to give more importance to the external, materialistic world dominated by mechanical machines. Human beings with these influences become compulsive in life and are not able to utilize all their potential in a better manner due to compulsive living. Spiritual intelligence is the highest level of intelligence and is a combination of rational and emotional intelligence. The primary concerns of spiritual intelligence are to be aware of everything in the universe. This cosmos is made up of energy, which is the unified form of the spirit. In Maslow's' 'A Theory of Human Motivation, ' one of the five essential needs of an individual is' 'self-actualization, ' which means becoming fully conscious and aware of one's own self. Spiritual intelligence enables us to recognize and accept our true selves.

The above-mentioned lines clearly indicate the direction of spiritual intelligence; it primarily leads us to become fully aware of ourselves as well as others. It is directed at the untidiness of everything in this world. We are all somehow related to each other, which makes us able to realize the true meaning of life. It is directed towards the minimization of conflict within and between others. It spreads love, joy, happiness, brotherhood, delight, and blissfulness to everyone. It is aimed at improving the mental health of the entire world. It enables us to minimize our psychological conflicts in the mind. It channelizes our thought processes in the proper direction. It makes us understand and distinguish between the body, mind, and the spirit or the pure consciousness of an individual. It clears our minds, allowing us to devote more time to productive and interesting work.

Educators as Spiritually Intelligent leaders use compassion and wisdom together, to form a manifestation of love. They focus on how well they maintain their peaceful centre, stay calm and actually treat others with compassion and wisdom. Spiritually intelligent educators motivate first themselves and then their students to balance work schedules to spend time with significant others and friends. Since Spiritual Intelligence is about moving on in life peacefully and about having a direction in life, spiritually intelligent educators can create more meaningful work, and working environments. (Khurana, 2010).(Pp-212). Intelligence is understood as the ability to learn or understand from experience or to respond successfully to new experiences, the ability to acquire and retain knowledge. Its possession implies the use of reason or intellect in solving problems and directing conduct. Conventionally, the measurement of intelligence was done with intelligence tests that gave the results in the form of IQ or intelligence quotient. Almost three decades ago, the concept of emotional intelligence was conceived in the footsteps of Edward Thorndike, who used the term social intelligence to describe the extent of one’s ability to relate to other people, which he considered distinct from the typically-discussed verbal and mathematical abilities. Emotional intelligence, measured in terms of EQ or emotional quotient, was popularized by Goleman, who wrote a book on the same. Emotional intelligence refers to the interpersonal and intrapersonal abilities of an individual which help him to understand relationships and the world better and, furthermore, act wisely in human relations. The intelligence of the latest invention is spiritual intelligence, measured as SQ or spiritual quotient.

Since spiritual abilities underlie aspects of spirituality, it would be appropriate to start off with the definition of spiritualism (spirituality) and then come to the definitions of spiritual intelligence. The word ‘spirit’ is derived from the Latin word ‘spiritus’, which means' ‘breath ’or' soul’. Prior to the emergence of spirituality within psychological literature, the words religion, religiosity and/or religiousness were more commonly used to describe all spiritual aspects of the human psyche (King, 2008 quoted in his study James, 1902/2002). While religiosity may have been equated with spirituality at one time, psychologists now make sharp distinctions between the two. (King, 2008).

Conclusions:- The researchers have reviewed Doctoral theses, books, Research Journals and websites on Spiritual Intelligence from different sources according to the needs and requirements of the study. This paper is basically based on a general review of the different papers on Spiritual Intelligence. Spiritual Intelligence is a higher form of intelligence which helps every individual to understand the real concerns of life. It is very clear from the above mentioned findings and reviews that a spiritually intelligent person is more competent in every aspect of life. In this paper, the researchers have tried to mention all those points and significances which are important for the educational realm. The educational realm is considered one of the significant realms of our lives. Everyone utilises their educational knowledge through their intelligence, because without intelligence, the person can not regulate his/her mind. Without the mind, the body can not regulate and function. With the gradual passing of time, different studies have been done on this topic of intelligence and different dimensions of intelligence have been introduced by many prominent personalities in the world, such as Charles Spearman, Robert J Stemberg and so on. In this era, Zohar has popularised and very scientifically elaborated on the term spiritual intelligence. The researchers have tried to give a brief general review of the core topic of spiritual intelligence in terms of its meaning, definitions, significance, and the concept of spiritual intelligence and its significance in the realm of education. By nature and according to the sources of review of related literature, the term Spiritual Intelligence is a very significant and important domain of human intelligence. Due to the objective and requirements of the study, the researchers have done research with a very limited number of research papers, but the same type of research can be done with a large number of reviews of related literature.

Reference :-

1. **Deb, S., McGirr, K., & Sun, J. (2016).** Spirituality in Indian University Students and its Associations with Socioeconomic Status, Religious Background, Social Support, and Mental Health. *Journal of Religion and Health, 55(5), 1623–1641.*Retrieved from doi:10.1007/s10943-016-0207-x.
2. **Emmons, Robert A. (2000).** Is Spirituality an Intelligence? Motivation, Cognition, and the Psychology of Ultimate Concern, *The International Journal for the Psychology of Religion*, 10:1,Pp- 3-26,Retrieved from DOI: 10.1207/S15327582IJPR1001_2**.**
3. **Khurana, Veenu.(2010).** *Study of spiritual intelligence of adolescents in relation to their self esteem gender and personality*. (Doctoral Thesis, Department of Education, Panjab University, Chandigarh, India).Retrieved from http://hdl.handle.net/10603/80150. Pp. 212.
4. **King. D. B. (2008).** *Rethinking claims of spiritual intelligence: A definition, model and measure*. (Unpublished Master’s Thesis. Trent University, Peterborough, Ontario, Canada). Retrieved from http://www.thestateofus.net/msc-thesis.pdf**.**
5. **Rao, Bellamkonda Uma Maheswara. (2008).** *Spiritual intelligence emotional intelligence and teacher effectiveness of the secondary school teachers.* (Doctoral thesis, Department of Education, Acharya Nagarjuna University, India). Retrieved from http://hdl.handle.net/10603/286327. Pp.69**.**
6. **Singh, Awdhesh**. **(2017).** *Practising Spiritual Inelligence for Innovation Leadership and Happiness*. Published by Wisdom tree, 4779/23, Ansari Road, Darya Ganj, New Delhi-110 002**.**
7. **Spiritual Intelligence. (11 January2021).** *In Wikipedia***.** Retrieved form https://en.wikipedia.org/wiki/Spiritual_intelligence.
8. **Vadivelu, P.(2009).** *A study of teaching aptitude and spiritual intelligence of student teachers in Tamilnadu*. (Doctoral Thesis, Department of Education, Bharathiar University, Coimbatore, Tamilnadu, India). Retrieved from http://hdl.handle.net/10603/101837. Pp.19-20
9. **Zohar, Danah., & Marshall, Ian. (2012).** *Spiritual Intelligence*. .[Kindle Edition].Bloomsbury Publishing. Retrieved from amazon.com.

Social Media Use and Its Impact on School Going Children

Dr. Sapna Kashyap*
Aarti **

Abstract :- In the current scenario in this global world, Social media plays a major component in life of children and young people. They are using the Internet based social media applications in different ways and different entry point like tablets, desktops and smart phones. A large number of children and adolescent interacting with their friends and other relatives through these sites. This study will help to explore the usage of social media and its application among the school going children on their social competence. 300 school going children of Govt. and private school voluntarily participated in this research. Social competence was assessed using social competence scale, constructed by Latika Sharama and Punita Rani. T-test was applied for analysis and interpretation of data. The study revealed that the social competence of private and government school children who use social media application facebook not affected by its use or are equally affected.

Keywords- Social media, Facebook, Social competence, School going children, Adolescents

Introduction :- Social media is increasingly used by children and young people. Social media and networking tools offer the opportunity of school going children to communicate get in touch, access information, chat and research (Abdulahi, et al., 2014, Ahn, 2011). Social networks such as Facebook, Snapchat, WhatsApp and Instagram are their primary interface with the internet. Generally we can connect via smartphones and tablets to with these portals, many such children are constantly connected through these portals to their virtual social networks, continuously receiving and checking feeds, and posting their updates regularly (Boyd, 2014). Mehmood and Taswir, 2013 noted that "the use of social media networks and the Internet is one of the most important factors that can influence educational performance of students positively or adversely." For example, Facebook and similar social media programs allow students to gather outside of class to collaborate and exchange ideas about assignments. Some schools successfully use blogs as teaching tools (Borja, 2005) which has the benefit of reinforcing skills in English, written expression, and creativity.

Social competence is a globally defined by different people in term of a manner such as the ability to manage the positive social outcomes by organizing the resources belongs to personal and environmental resources (Anderson-Butcher, Iachini & Amorose, 2008; Boyom & Parke, 1995; Dirks, Treat & Weersing, 2007; Ladd, 1999; Semrud-Clikeman, 2007). Social competence defined Orpinas and Horne (2006) "as a person's age-appropriate knowledge and skills for functioning peacefully and creatively in his or her or her own community or social environment" (p. 108). Here are some examples in this regard like promoting relationships, sensitive interaction, helping and sharing with others users also and handling conflict situations (Smart & Sanson, 2003), therefore Social competence also refers the absence of antisocial behaviour, it means

***Assistant Professor, Department of Psychology, Dharmanand Uniyal Government Degree College, (Sri Dev Suman University), Narendra Nagar, Tehri Garhwal, Uttarakhand.**
**** Research Scholar Motiram Baburam Govt. Post Graduate College, Haldwani, Kumaun University, Distt- Nainital, Uttarakhand, India.**

antisocial behaviour has negative social consequences, which can be either intentionally or unknowingly, and which can be directed towards the other or towards oneself (Farmer, 2000). Thus social competence defines is the ability of social performance and interpersonal behavior, when people spent their more time with SNSs those social network with society may be affected that may also affects their social competence.

Review of the related literature :- Earlier researches have been done to known the impact of social media on children. Here researcher has collected some related researches which proved the positive or negative effects of its. Badri et al., 2016 enquired that how to social media devices and applications performed among the students. Results showed that children mainly used social media to keep contact with friends and family members and also for learning purposes.

Malaney (2005) found in multiple studies in 2000 and 2003 and reported that those students who spend their too much time in social media, their result had suffered as a low grades and marks. Tynes, (2007) described that using social media has benefits, such as opportunities for expansion in community, enhanced communication with friends and family, exchange of ideas, health information accessibility, development of cognitive abilities, and facilitating the exploration of identity. O'Keafee et al., (2011) discussed that it is very controversial to use and consequences of Internet-based social media and gain too much attention of researchers, because it's showed both risks and benefits for younger users. Benefits include the ability to increase (online) sociability, increased learning opportunities and greater access to information among others that promotes health.

Casle and Fioravanti (2015) showed that addressing social needs face-to-face, such as being socially competent, and being assertive in communication, can drive problematic social networking sites use. Khan, A., et al., (2019) explored that poor sleep pattern was found among adolescents due to in access amount use of social media. Parents reported about their child's sleep disturbance in a self-administered survey.

Woods and Scott (2016) found that those using social media were found to have a positive relationship with anxiety, depression, low self-esteem, and poor sleep quality. Adolescents who have an emotionally involved with social media were found increasing number of risk for anxiety and depression because of feeling of isolation and distressed when they are not using social media. In this study Turkle, (2011) suggested that unhealthy relationships between parents, children, friends, and with others was the cause of new technology and social media use. It is also creating negative issues in our society that's why we are unable to understand the importance of community, privacy, and intimacy. O'Keeffe & Clarke-Pearson (2011) examined that access use of social media can have negatively associated with social and psychological difficulties. The consequences of its like sexting, cyber bullying, privacy violation, internet addiction, stalking, threatening, depression, loneliness, poor sleeping pattern, and legal risks etc. All these aspects cab be dangerous and all can affect the physical and psychological health of user.

Thus, prior studies suggest that consequences of social media can both positively and negatively but it is very difficult for children to choose the best. So, Parents and teachers can play an important role in this situation.

Objective of Study :- In today's world, scientific innovations proceed to make one's life easier and competent while the service provider makes a multibillion-dollar business against it. Social media is one of the latest innovations and current age technology. We know very less about the impact of this latest technology in society since this is new to understand. There could be many aspects in many ways. It's playing an invaluable role in individual's life. Children spend most of time their daily routine on social media applications without knowing their affects in their life. The

purpose of this study was to identify the effects of social media use on social competence of school going children.

Research Question :- Is there no significant difference in social competence of school going children of private and government school who use social media application facebook? Is there no significant difference in social competence of school going children of private school who use and do not use social media application facebook? Is there no significant difference in social competence of school going children of government school who use and do not use social media application facebook?

Methods

Procedure and Participants :- In the present study the researcher has taken 300 (both male and female) school going adolescents those are studying in Govt. and private senior secondary schools in Nainital district of the state of Uttarakhand. Participants in this research include, who mainly used facebook. All the participants were divided into two parts as following.

1) School children age group between 14 to 17 yrs., user of Facebook.
2) School children age group between 14 to 17 yrs., non-user of Facebook.

Sampling :- Participants of both groups were recruited by stratified random selection techniques. They voluntary participated in this research. All the participants who filled the scale went to the age group of 14 to 17. There was no time limit to fill the questionnaire for the participants, but they filled it and returned within their set time.

Tools/instrument :-To assess the competence of social networking sites user and non-user researcher will use the social competence scale which is constructed by Latika Sharama and Punita Rani which can be administered on student of senior secondary school. This scale consist 47 items divided into three competencies- Personal Adequacy, Interpersonal Adequacy, Communication Skills. It is a five point rating scale.

Data analysis :- After the administration of test on students, the collected data were arranged, tabulated and analyzed. T-test was applied for analysis and interpretation of data. Findings of analyzed data interpreted in next topic.

Result and discussion :- The objective of presented study to investigate the social competency of those children of private and government school who use social media application facebook. It is known from the result of table no. 1 that facebook use has no effect on the social competence of children because the value obtained by the data was found to be less than the value given in t-table. It proves that social media does not affect the social compatibility of both groups or affect them equally. The result was presented in table 1. According to second research question, children those were studying in private schools divided into two groups, one who used facebook and the other who did not. There no difference was found in the result on social competence of two groups. Findings of this showed in table no. 2. In table no. 3, further children who studying in government schools were divided into two groups, one who used facebook and the other who did not. There no difference was found in the result on social competence of two groups. Findings of this showed in table no. 3.

Conclusion :- Findings of this study represents that there no significant difference in the social competence of private and government school-going children who use social media application facebook. This study along with the fulfillment of its hypothesis, also refuse of early researches but most of the researches have been concluded in western context where persons mostly followed the law of nuclear family. Along with this, the inflow of children with their parents and other relatives is less, due to which children have attracted to social media and also affected by its positive or negative effects. Dodge et al., (2011) found that increasing numbers of young children

are the internet without adult supervision at least some of the time. With this, if we talk about the Indian perspective the civilization believes in the importance of collective events and relationships with joint family practice, due to which the social values in children also grow with their age, which gives maturity to their social competence. That may be the reason that in Indian perspective social media has no positive or negative impact on the social competence of children.

Acknowledgement :- I would like to express my deepest gratitude to my supervisor Dr. Sapna Kashyap and indebted to my parents who raised and nurtured me.

Table. 1

Social Media User	N	Mean	SD	t-ratio	d.f
Private School	150	145.5	12.76	1.44	1.97
Govt. School	150	143.12	16.29		

Table. 2

Social Media	N	Mean	SD	t-ratio	d.f
Private School User	150	145.5	12.76	1.47	1.97
Private School Non-user	150	143.01	11.02		

Table. 3

Social Media	N	Mean	SD	t-ratio	d.f
Govt. School User	150	143.01	16.29	1.03	1.97
Govt. School Non-user	150	140.96	13.17		

References:-

1. Anderson-Butcher, D., Iachini, A. L., & Amorose, A. J. (2008). Initial reliability and validity of the perceived social competence scale. *Research on Social Work Practice, 18*(1), 47-54.
2. Badri, M., Alnuaimi, A., Al Rashedi, A., Yang, G., & Temash, K. (2016). School children's use of digital devices, social media and parental knowledge and involvement-the case of Abu Dhabi.
3. Borja, R. (2005). Blogs. *Catching on as Tool for Instruction: Teachers Use Interactive Web pages to Hone Writing Skills. Education, 25, 15.*
4. Boyd, D. (2014). It's Complicated: The Social Lives of Networked teens. Yale University press.
5. Boyom, L. A., & Parke, R. D. (1995). The role of family emotional expressiveness in the development of children's social competence. *Journal of Marriage & Family*, 593-608.
6. Casale, S., & Fioravanti, G. (2015). Satisfying needs through Social Networking Sites: A pathway towards problematic Internet use for socially anxious people? *Addictive Behaviours Rep*orts, 1, 34-39.
7. Dodge, A. M., Husain, N., & Duke, N. K. (2011). Connected kids? K-2 children's use and understanding of the internet. *Language arts, 89*(2), 86-98.
8. Farmer, T. W. (2000). The social dynamics of aggressive and disruptive behavior in school: Implications for behavior consultation. *Journal of Educational and Psychological Consultation, 11*(3-4), 299-321.
9. Khan, A., Uddin, R., & Islam, S. M. S. (2019). Social media use is associated with sleep duration and disturbance among adolescents in Bangladesh. Health Policy and Technology, 8(3), 313-315. https://doi.org/1016/j.hlpt.2019.05.012
10. Ladd, G. W. (1999). Peer relationships and social competence during early and middle child. *Annual review of psychology, 50*(1), 333-359.
11. Malaney, G. D. (2004). Student use of the internet. *Journal of Educational Technology Systems, 33*(1), 53-66.
12. Mehmood, S., & Taswir, T. (2013). The effects of social networking sites on the academic performance of students in college of applied sciences, Nizwa, Oman. *International Journal of Arts and Commerce, 2*(1), 111-125.
13. O'Keafee, G. S., & Clarke-Pearson, K. (2011). The impact of social media on children, adolescents, and families. *Pediatrics, 127*(4), 800-804.
14. Orpinas, P., & Horne, A. M. (2006). *Bullying prevention: Creating a positive school climate and developing social competence*. Washington, DC: American Psychological Association.
15. Smart, D., & Sanson, A. (2003). Social competence in young adulthood, its nature & antecedents. *Family Matters, (64)*, 4.
16. Semrud-Clikeman, M. (2007). Social Competence in Children. *In Social competence in children* (pp. 1-9). Springer, Boston, MA.
17. Tynes, B. M. (2007). Internet safety gone wild? Sacrificing the educational and psychosocial benefits of online social environments. *Journal of Adolescent Research, 22*(6), 575-584.
18. Turkle, S. (2011). Alone Together: Why We Expect More from Technology and Less from Each Other. New York: Basic Books
19. Woods, H. C., & Scott, H. (2016). # Sleepyteens: Social media use in adolescence in associated with poor sleep quality, anxiety, depression and low self–esteem. *Journal of Adolescence, 51*, 41-49. Retrieved from http://dx.doi.org.ezproxy.liberty.edu/10.1016/j.adolescence.2016.05.008

Role of yoga for the mental and Emotional well being

Kaushal Kumar*

Abstract :- Pain and suffering are linked with every creature of this universe since their birth. All other creatures except human beings face the world as it is. But, the human being has the curiosity and intellect to get rid of this suffering. Though human beings have discovered many sciences and techniques to make themselves free from pain, suffering and problems. But, all of them except yoga gives the only temporary solution to the problem. With this, all other systems try to work on the gross body and symptoms. But, yoga goes into the root cause of the problem and with removing the cause effects automatically vanishes permanently. Maharshi Kanad founder of Vaisheshik philosophy puts it like this- 'कारणाभावात् कार्याभावात्' The root cause of all our problems are within our minds. Generally, our mind is made of uncontrolled thoughts, actions, behavior, desires and attachments and aversions. It governs our every activity. Our thinking, food habits and lifestyle are fully governed by our mind. So, to change our wrong lifestyle, unnatural food habits, sleeping habits and working habits which are the root cause of all our problems, change in mind and emotion is a must. Management of mind is the only solution to every human problem..

Key Words:- Mind, Emotion, Sufferings, Psychosomatic diseases, Cause-effect, The root cause of our problem.

Introduction :- Yoga is a Sanskrit word that is etymologically derived from the verbal root "Yuj", which has two meanings. One is 'yujir yoge' which means union, integration, or addition while the other one is 'yuj samadhau' which means samadhi or disintegration. According to Yoga-Yajnavalkya, 'sanyogo yoga ityuktah jivatmparmatmano' means union of the individual soul with universal self is yoga. Maharshi Patanjali defines yoga as 'yogashchittvritti nirodhah' which means stopping all the fluctuations or vibrations of conscience or mind is a state of yoga. In other words, cessation of all mental modifications or activities is called yoga. The word Chitta means mind or conscience. There are two ways of getting knowledge- external and internal. Whatever knowledge we get through our knowledge senses ie eyes, ears, nose, tongue and skin are the perceptive or outer source of knowledge. The inner source of knowledge is our mind (manas), intellect (buddhi) and ego (ahamkar). The term chitta of Maharshi Patanjali is the collection of all the three mentioned above i.e. mind, intellect and ego.

The Physiology of Mind (Chitta)

To go into the depth of yoga, we have to understand the very meaning of 'Chitta'. Since Patanjali's chitta is the collection of mind, intellect and ego, these terms need more elaboration. The mind has two sub-parts which are referred to as the thinking mind and the analytical mind. Our knowledge senses i.e. eyes, ears, nose, tongue and skin encounter with its objects respectively sight, word, smell, taste and touch. After its encounter, whatever one thinks about that particular object is called thinking mind here. After thinking about the particular subject one starts analyzing it. Many questions arise in the mind automatically like what, why, when and how? This is the work of the analytical mind. After analyzing it, one reaches a conclusion. It is the work of buddhi or intellect. It is also called the decisive mind. One's decision may be right or wrong. In the end, one accepts his or her decision. The acceptance of one's decision is called ego. For example, one eats a mango. Just during eating one starts thinking and analyzing about it, that is called mind. After thinking and analyzing its taste and differentiating it from other fruits one reaches the conclusion that it is the king of all fruits. Here buddhi made the decision and one started saying from everyone that mango is the best fruit of all. That is ego.

The way to control the Mind (Chitta)

**** Research Scholar, Singhania University,* A3/903, Gardenia, Glory, Sector- 46, NOIDA, UP 201301.**

There are two aspects of yoga Hatha yoga and Raj yoga. Hatha yoga basically deals with the gross body and its vital functioning. It is the settlement of ida, pingala and sushumna nadis. Though this is a very important aspect of our personality but we human beings are not physical bodies merely. Our life is a mixture of Prakriti and Purush. Hatha yoga rarely goes beyond gross body and prana. Raj yoga deals with the subtler part of our personality that is Chitta. Though Hatha yoga knows its limitations. That is why the writer of one of the finest hatha yoga text " Hatha Pradipika" Swami Swatma Ram himself says in the second shloka of the first chapter-

प्रणम्य श्री गुरुं नाथं, स्वामी स्वात्मरामेण योगिना। केवलं राजयोगाय हठ विद्योपदिश्यते

Means with bowing to the Guru humbly Yogi Swami Swatamaram preaches hatha yoga just to attain raj yoga. Here he clearly means that hatha yoga is not an end in itself. It is only a means to achieve the highest goal Raj yoga. Raj Yoga which is the synonym of Patanjali Yoga deals with the chitta only. It says that with the cessation of modifications one can experience his highest grandness. All our Indian system of philosophies accepts ' man eva manushyanam karanam bandhmokshyoh' means the mind is the root cause of bondage and liberation of all of us. All our three types of sorrows adhi bhautik, adhi daivik and adhyatmik can be resolved by the cessation of mental fluctuations. Patanjali again says in the second chapter of his great treatise "Yoga Sutra" **दृष्टृ दृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः।।** 2/17 means the union of the observer (soul, drishta) with the inert world (drishya) is the cause of all our sufferings. He further says that the cause of this combination is ignorance in the sutra 2/24. He eloquently refers in the next sutra 2/25 - ' तद्भावात्संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यं ' means when the ignorance, which is the root cause of the combination of Prakriti (inert nature) and Purush (consciousness), is removed then the combination is broken. This is a state of bliss and enlightenment. In brief, this ignorant Chitta is the root cause of all our sorrows and sufferings.

Now, we will deal with our physical problems. If we think rationally and subtly about the cause of our physical problems, it is the ignorant mind which plays a major role. If we have thought and acted rationally this problem would have been completely averted. The real problem is in our way of thinking. If our way of thinking is linked with desires and attachments, no one in this world can save us from suffering. But, if our thinking and actions are guided by causality and rationality, no one and nothing in this world can give us suffering. Bhagavadgita says it aptly-

'ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते, संगात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोअभिजायते।
क्रोधात्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः, स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।। 2/62–63

This means, the man dwelling on sense-objects develops attachment for them; from attachment springs up desire, and from desire (unfulfilled) ensues anger. From anger arises delusion; from delusion, confusion of memory, loss of reason; and from loss of reason one goes to complete ruin. This ruinousness leads one towards many physical and psychosomatic diseases. Most of our so-called physical problems are basically psychosomatic. Their root cause is the mind. Since the mind is very subtle, invisible and difficult to understand, we think it is a physical disease. For example, high or low blood pressure, heart disease, diabetes, arthritis, asthma, back pain, digestive problems, headache, pelvic pain, impotence, dermatitis and ulcers, etc are examples of psychosomatic diseases. There is no medical science in this world except yoga which can solve the mental or emotional problems of a human being. This is why there is no permanent cure for almost all except a few physical diseases. Modern medical science recommends medication for lifelong diseases. This further complicates the problem with many side effects. In the last, the patient is caught in the vicious cycle of many lifelong diseases which started with one. While the practice of yoga which ultimately deals with the root cause of the problem helps the person to come out of it permanently. Here, we did not mean that medicine is of no use at all. We only mean that in the beginning one can consult a doctor and take his medicine accordingly but that is not the permanent solution. The permanent solution is to change the mindset and lifestyle, which is impossible without the practice of yoga.

But, we are really sick. If not, then rebirth is not possible. Anger, lust, ego, pride, greed, violence, desires, ambitions, attachments are the habits and tendencies we all possess. In the

previous paragraphs, we have quoted the shloka of Gita which tells us the root cause of our every problem is attachment and unwarranted desires. This leads us to anxiety, worry, stress, depression, behavioral and emotional disorder, dissociative disorder, eating disorders, obsessive-compulsive disorders, sexual dysfunction, paranoia, psychosis, post-traumatic stress disorder, bipolar affective disorder, parkinson and schizophrenia. Relationship problems, loss of memory, irritative behaviour, insomnia etc are examples of our mental problems. There is no end to this list.

There is one science in this world Yoga that was discovered by our ancient sages and great seers, has the permanent solution to these chronic problems. Patanjali has advised many solutions to this problem. The first and foremost is abhyas (practice) and vairagya (detachment). This means the mind (Chitta) can be effectively quelled by it. The other ways are the surrender to God, the practice of concentration, the practice of pranayama, the practice of friendliness, compassion, happiness and indifference, etc. Ashtanga yoga is relevant for common people. With the sincere practice of ashtanga yoga- Yama, niyama, asana, pranayama, pratyahara, dharana, dhyana and samadhi. Here asana is very beneficial and fruitful to remove our physical ailments. Pranayama is also very relevant to remove our physical and mental diseases. Pratyahara means Yoga- Nidra which is a very good and powerful technique to remove stress and anxiety. Dharana, Dhyana and Samadhi are the inner parts of yoga which gives us the power to control our mind. Once the mind is controlled, health, excellence, efficiency, productivity, peace of mind follow us which results in complete control of body, mind and emotion.

The objective of the study :- 1. Understanding the concept of yogic practices from ancient scriptures. **2.** To study the effect of selected yogic practices on senior citizens. **3.** To evaluate the persistence of the effect of yogic practices in aged people. **4.** Correlating health issue of aged peoples with yogic practices mentioned in ancient scriptures & Classical texts for taking necessary measures to lead a happy and peaceful life.

Research Methodology :- A random sampling is done in the urban and semi urban area of Delhi and NCR of the age group of 60 to 70 years, in which both males and females are included. This group is divided in two parts as experimental and control.

Inclusion criteria :- In order to study the effect of selected yogic practices on mental, emotional and physical parameters of senior citizens, the primary criteria for the selection of the subjects are, they would be suffering from any one of these symptoms as mentioned below and strictly, not others- **1.** Stressed from some physical and mental reasons. **2.** Insomnia, nightmares and disturbing nights. **3.** Lack of concentration. **4.** Frequent headaches, jaw clenching, or pain. **5.** Dementia, disorganization and confusion. **6.** Cold or sweaty hands and feet.

Exclusion criteria:- 1. Long term serious medical condition for which they are on medication, **2.** Severely hypersensitive. **3.** Major operative history **4.** Alcoholic and chain smokers.

Intervention table

S.no.	Name of the Practices	Round	Time/Round	Total
1	Prayer + Om Chanting	01	02	02
2	Joint loosening	01	09	09
3	Tadasana + Tiryak Tadasana + Kati chakra asana	02	04	08
4	Paschimottan asana + Bhujanga asana	02	04	08
5	Pranakarshan Pranayama	02	01	02
6	Bhramari Pranayama	02	01	02
7	Nadi shodhan Pranayama	02	01	02
8	Guided relaxation	01	06	06
9	Om chanting followed by shanti path	01	02	02
	Total			41 Mins

Independent variable :- 1. Prayer **2.** Joint loosening Practices, which has been developed by Bihar school of Yoga, Munger, Bihar. **3.** Tadasana + Tiryak Tadasana + Kati chakra asana as described in the asana Pranayama Mudra Bandha, Published by Bihar school of Yoga, Munger, Bihar **4.** Paschimottan asana + Bhujanga asana, as described in the asana Pranayama Mudra

Bandha, Published by Bihar school of Yoga, Munger, Bihar **5.** Pranakarshan Pranayama, as described in the Gayatri Mahavigyan, Published by Yug Nirman Yojna vistar trust, Gayatri Tapobhumi Mathura. **6.** Bhramari Pranayama, as described in the Gherand Samhita, Published by Bihar school of Yoga, Munger, Bihar **7.** Nadi shodhan Pranayama as described in the Yoga-Vijnanam, Published by Divya

Yoga Mandir Trust, Haridwar. **8.** Guided relaxation, as described in the asana Pranayama Mudra Bandha, Published by Bihar school of Yoga, Munger, Bihar **9.** Om chanting followed by shanti path.

Dependent variable :- In order to assess the efficacy of the Yogic interventions it is very much needed to first check their vitals on a daily basis to evaluate the difference and to estimate the panic situation of anyone of the participants as they are senior citizens so we have to be cautious with their given vital signs to avoid any unexpected incidents - **1.** Respiratory rate **2.** Pulse rate **3.** Overall body weight **4.** Body Temperature **5.** Spo2

Conclusion :- In these days of overemphasizing only allopathic medicines and surgeries for the effective cure of human diseases and ailments, concrete evidence of showing positive changes in the health of long term yoga practitioners, has forced modern scientific and medical world to rethink about the efficacy and relevance of Yogic practices in the cure of all human ailments. Doctors, health care professionals and health educators should be persuaded to adhere and include yogic practices in the perfect cure of diseases. Here, care must be taken to ensure that holistic yoga should be taken into consideration not only the physical side of it should be taken into account.

References :-

1. Gregory, R. J. (2007). Psychological testing: History, principles, and applications (5th ed.). Boston: Pearson Education, Inc.
2. Zawadzki B, Popiel A, Praglowska E. (2009) Psychometric properties of the polish version of the Aaron T. Beck's depression inventory BDI-II. Psychol Etol Genet;19: 71–95.
3. Farinde A. (2013) The Beck depression inventory. The pharma. Innovation J; 2: 56–62.
4. Shafer AB. (2006) Meta-analysis of the factor structures of four depression questionnaires: Beck, CES-D, Hamilton and Zung. J Clin Psychol; 62: Pg.123–46.
5. Rahbar S; Blumenfeld O; Ranney HM (1969). "Studies of an unusual hemoglobin in patients with diabetes mellitus". Biochem. Biophys. Res. Commun. 36 (5): 838–43.
6. Erna, L. W., Roger K. S. Henk J. Bilo, Robbert J. S. (2013), Haemoglobin A1c: historic overview and current concepts, Diabetes research and clinical practice, Vol 99(2), P. 75-84.
7. S. Amita, S. Prabhakar, I.Manoj, S. Harminder, and T. Pavan, (2009) Effect of yoga-nidra on blood glucose level in diabetic patients. Indian J of P. P., vol. 53: 1; pp. 97-101.
8. M. V. Bhole and et.al. (1970) Effects of Yoga practices on Vital Capacity – A Preliminary Communication, Ind. J. Chest Dis., Vol.XII: 1&2; pp.1-2, 1970.
9. V.A. Kulkarni and et.al. (1997) Effect of Short-Term Yoga Training Programme on Peak Expiratory Flow Rate, Yoga –Mimamsa, Vol. 32, No.1&2, pp.14-20.
10. P.V. Karambelkar and et.al. (1982) Some Respiratory Studies in Respect of Kapalbhati and Voluntary Hyperventilation, Yoga Mimamsa, Vol. XXI: 1&2; pp.54-58.
11. P. V. Karambelkar and et.al. (1981) Effect of Yogic Practices on Cholesterol Level in Females, Yoga-Mimamsa, Vol. XX: 1&2; p.1,
12. Tiwari, S. & Verma S., (2016) Impact of Yoga on obesity management of corporate personnel. Int. J. of Y & A. Sci. Vol. 5(2); Pg. 152-7.
13. Verma S, Kumar K. (2020) Evidence-based comparative study of group and individual consciousness on life satisfaction among adults. Yoga Mimamsa; 52: Pg.34-7.
14. Verma, S. and Gurvendra, A. (2016). A Study on the Effect of Collective Yogic Practices on Social Adjustment of Collage Students in Urban Area. Int. J. of Sci. & Con.; 2(1): Pg. 36-40.
15. Verma Sudhanshu, Kumar Kamakhya & Meena Ruby (2017), Evidenced Based Study on General Wellbeing Through Hath Yoga, Int. J. of Sci. & Con.; 3(4); 78-83.

Reviewing the status of Psychological behavior and food security in india during post covid management practices

ILMA Rizvi*
Ateeqa Ansari**
Prof. Shahid Ashraf***

Abstract :- With the WHO declaring Covid-19 as a global epidemic in March, whole of the nation went under complete lockdown with each and every economic activity coming at halt. There was complete shutdown of market excluding only some grocery stores and medical stores dealing with necessities. Though this lockdown was necessarily required in order to curb the spread of this virus, but it came with many unwanted aftereffects. People were mentally disturbed, rather they are facing mental instability during this phase. Fear, worry, stress and apprehension among the public related to supply of basic amenities emerged as the most common response of the peoples. Also humans faced new realities of working from home, temporary unemployment, home-schooling of children, and lack of physical contact with other family members, friends and colleagues. Out on the frontlines are our healthcare professionals who have to confront with a merciless mixture of having limited resources and rapidly increasing illness. All the nationals were undergoing different problems- financially, mentally and socially and they are at the core end of their non-ability in dealing with their problems. Some had severe symptoms of the disease whereas others witnessed some financial crisis. This research paper stands unique in a way that it implies the theory of planned behavior and behavioral economics in analyzing its approach to successfully deal with post Covid management practices and enlighten some light on the possible post covid-19 management practices that can be adopted to restore the economic progress back onto the track.

Keywords :- *epidemic, economic loss, social distancing, financial crisis, mental instability, Indian economy, management.*

Introduction :- According to the WHO, Coronavirus disease (COVID-19) is an infectious disease.It is fatal and newly discovered. The symptoms include mild to moderate respiratory illness and common cold. This virus mainly spreads through droplets of saliva or discharge from the nose, it can blowout when an infected person coughs or sneezes. The economic consequences of the pandemic are already being felt, as companies let their staff go in an effort to save their businesses, or indeed shut down completely (in extreme cases). Fear, worry, and stress are normal responses to perceive or are the real threats at times when we are faced with uncertainty or the unknown. There can be fear/apprehension among the public related to supply of basic amenities like groceries and milk supplies, medicines, care of previously sick persons in the family due to other medical causes, elderly persons staying alone, restriction of free movements, having a prevailing sense of being imprisoned in one's own house or "being in house arrest," etc. Moreover, lockdown lead to a "panic" mode of hoarding essential commodities without maintaining social distancing as advised by many advisory bodies. Emotions like fear and sadness are associated with less desire or motivation to eat and also with lessened enjoyment during eating. People faced new realities of working from home, temporary unemployment, home-schooling of children, and lack of physical contact with other family members, friends and colleagues. Out on the frontline of

*** Research Scholar, Economics, JMI, New Delhi.**
****Research Scholar, Psychology, LNMIIT, Jaipur.**
***** Professor and Supervisor, Department of Economics, JMI, New Delhi**.

the pandemic, our healthcare professionals have to confront with a merciless mixture of having limited resources and rapidly increasing illness. The ecology of adversity and resilience demonstrates that substantial stressors, such as inadequate nutrition, can lead to long-lasting effects that are linked to health. The lockdown announced so abruptly in many countries around the globe, with a limited number of essential services. People were advised to stay home and avoid contact with other people. These had effects on both food access and utilization. It's been suggested by many studies that confinement to one's home has direct effects on one's lifestyle, including dietary habits, eating, and physical activity patterns. It increases sedentary behaviors that involve activities with very low energy expenditure. The low physical activities had negatively affected our both physical and mental health. It led to irregular eating patterns and frequent urge to have snacks both of which are linked with higher caloric intake and increased risk of obesity. In many ways the whole situation of lockdown and pandemic had led to '*hoarding*'. Pandemic created the state of uncertainty and volatility among the people. Hoarding could lead to extreme shortages in markets, ultimately leading to rapidly rising prices. Another threat posed was on older adults and patients with chronic diseases becoming particularly vulnerable due to nutritional imbalance. Available research indicated that 'adults 60 years and older and patients with pre-existing medical conditions, especially heart disease, lung disease, diabetes or cancer are more likely to have severe coronavirus infection than other groups. Labeled as a black swan event and likened to the scene of economic World War II, this outbreak by COVID-19 has caused detrimental effect on people's pocket and intake. Moreover countries with heavy dependence on imported food are likely to meet the demand with some inconsistent risk from supply chain failures especially during the border closures. All these increased prices affected the vulnerable section of society, for example, in Bangladesh the food price hikes of 2007–08 pushed an additional 13 million people below the poverty line. As per the reports, people in South-Asian countries preferred consuming cheaper and less-nutritious foods, often sacrificing on quality.

Literature Review

- Neja F., Hamedah R. (April,2020) in their paper mentioned that the health of the individual became a direct function of his own awareness and choices, the unity of the community, the preparedness of the government, and ultimately the global engagement all are interconnected and one gets affected with the other.
- Kestel D., Director of the Department of Mental Health and Substance Use at the WHO claimed that the isolation, fear, uncertainty and economic turmoil surrounding the pandemic are capable of causing psychological distress. She urged, "The mental health and wellbeing of whole societies have been severely impacted by this crisis and are a priority to be addressed urgently." 0
- One of the UN report pointed out that depression and anxiety cost the global economy more than $1 trillion every year pre-pandemic and also there is only one mental health professional for every 10,000 people. While the mental health issues like depression affects 264 million people around the world. Also the report mentioned that the countries around the world are just spending 2% of their healthcare budget on mental health on average.
- Alvi M, Gupta M (2020) in their study titled as 'Learning in times of lockdown: how Covid-19 is affecting education and food security in India' looked on food and nutritional security of children who depend on school feeding and supplementary nutrition programs. They argued that the impacts are likely to be much more severe for girls as well as for children from already disadvantaged ethnic and caste groups.
- Muzakki F. in his study, on Global Political Economy from Covid-19 Global Pandemic, underlines the role of China for both pre and post pandemic era. He further writes that coronavirus had affected great number countries, which led to travelling ban, supply chain, and even oil prices. The role of China in combating Covid-19 had considerably become a model

for the world. On the other hand, there remains a big question regarding China's role both domestically and globally.

Discussion

The majorly faced problems by most of the developing nations are because of certain infrastructural bottlenecks and that too especially in health sector. Non-accessibility of people of developing nations with much of hospital needs resulted in heavy economic loss. As per the data of World Bank, there has been comparatively less expenditure incurred by these nations on health services. The figure below gives a clear picture of this claim.

Figure :- Per capita Expenditure on Health by South-Asian Countries

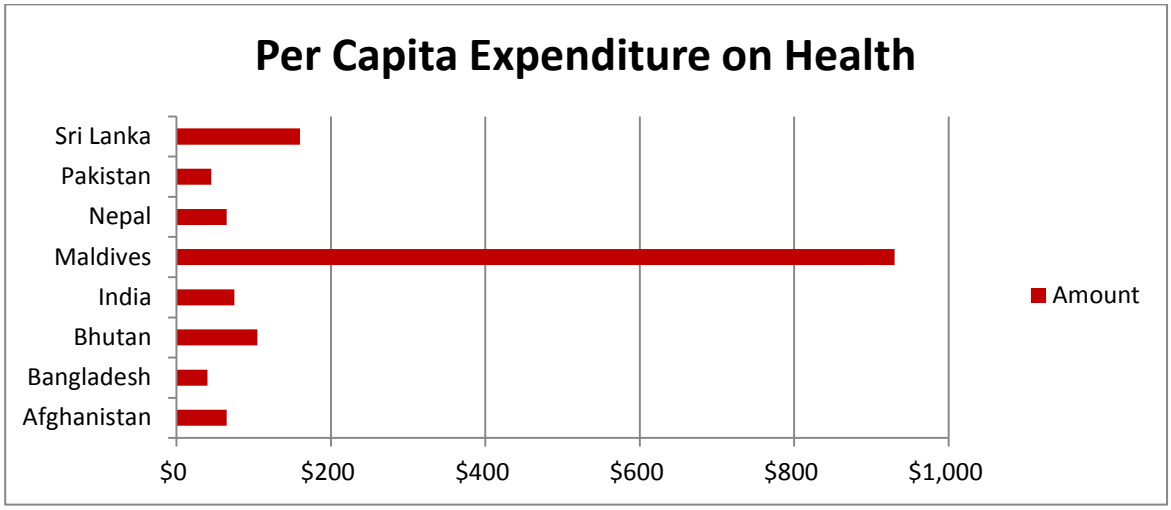

Source: Our World in Data, Johns Hopkins Corona Resource Center, World Bank.

This piece of research can be directed towards the theory of planned behavior, where emphasis is levied on people's behavioral intentions towards this outbreak and pandemic as an outcome of the several beliefs. As per the ascertained theory of planned behavior there is a prediction about the people's intentions towards a health compromising behavior and also the perceived control behavior of the individuals (Ajzen, 1985, 1988, 1991). Shared below are suggested measures to curb the impact of this pandemic.

1. Government needs to work and focus more on the policies and practices adopted by neighboring countries' governments and other administrative bodies.
2. Hoarding is becoming a compulsive behavior. There are uncertainties, irregularities and insufficiency but one should understand that one's convenience to buy in bulk is taking away other people's necessity. Therefore, one should try to buy things as per our need, and avoid the forthcoming situation of price hike or non-availability of those food items.
3. Committees must be appointed specific to regions with certain tasks assigned to them in context with tracking symptomatic persons.
4. Certain board of members must look upon food supply in containment zones where there is restricted reach and economic stability must be ensured by making a significant amount of payment to jobless peoples.
5. Favorable polices like low interest rate, direct bank transfers and efficiency in government launched policies can add feathers in this fight against pandemic.
6. Revival of industries, incentives to small and medium scale enterprises and motivating and promoting self-help groups can definitely do wonders in the revival of economy.

7. Trade should be promoted and the goods imported should be sanitized and hygienic factors should be considered as foremost and utmost important. Food commodities should be provided without trade restrictions.
8. Job creation, better work from home facilities, improvised and clean on-desk works, enhanced trust ability will further ensure a fast track economic growth.
9. Meditation, yoga and other mindfulness activities are important to include in the daily schedule of the people to maintain mental stability.
10. A healthy lifestyle include a balanced diet, healthy diet practices, regular exercises and not indulging in health degrading habits like substance abuse, smoking, binge eating, etc.
11. Mental health is as important as physical health. People facing any sort of mental health problems should seek help from professionals. Many counseling services are also available online. Spreading awareness about such helping online desks and services should be promoted.

Conclusion :- From all the ongoing discussion it can be worth to conclude that Indians, specifically labors and migrants, didn't fear of corona at a pace at which they feared of hunger and poverty. This fear was no less than the fear of losing dearer ones. We should always learn from the pas and history is a proof where economies have successfully fought against such pandemics even prior than coronavirus. A safer and comfortable work zone with all the necessary precautions, easy accessibility to online service providing platforms and a healthy social and mental state is the need of an hour. Government should aim at regulating economic activities by implementing monetary and fiscal policies under the expert's guidance. An eye must be kept on certain malpractices of hoarding and stockpiling of food items. Rather a committee must be appointed and held responsible for all the short comings during this time. Also free sessions of counseling should be arranged by psychologists where in the lessons should be provided on self-importance, social environment, ways to cope mental stress and many such health related issues. With all the major tasks discussed in this paper leaves the scope for future studies to work upon and come up with some new researches and results.

Declaration of Author(s) :- It is hereby declared by the author(s) that all the details/content of this research paper is original, has been written by us and has not been submitted for publication in any other journal. Though, the constant help is taken from the below mentioned references.

References :-

1. http://e-journal.unas.ac.id/index.php/jsps/article/view/11
2. https://www.rand.org/blog/2020/04/weekly-recap-april-03.html
3. https://www.nature.com/articles/s41430-020-0634-3
4. https://www.cnbc.com/2020/05/14/the-coronavirus-pandemic-is-causing-a-mental-health-crisis-un-warns.html
5. ADB Briefs, 6March2020, No.128; The Economic Impact of the CoVid-19 outbreak on Developing Asia.
6. Alvi, M. & Gupta, M. (2020); Learning in times of lockdown: how Covid-19 is affecting education and food security in India. Food Security, 12(4), 793–796. https://doi.org/10.1007/s12571-020-01065-
7. Amjath Babu,T.S et al,2020: Key indicators for monitoring food system disruptions caused by the COVID-19 pandemic: Insights from Bangladesh towards effective response.
8. https://www.researchgate.net/publication/309539555

Cultural Archetypes in select novels of Achebe, Mohanty and Ngugi - a Disclosure

Dr. B.S. Selina*

Abstract :- Political power for supremacy and for self-rule dominates the colonial novels. The three writers viz, Achebe, Ngugi and Mohanty, the paper focuses on have emerged under similar conditions as torch bearers of the Third World literary response. The motifs of power and struggle run as an undercurrent in all the novels under discussion here and provide a connection through juxtaposition. At a crucial literary level, through the prism of social and cultural discourse, the vision of these three novelists are identical in that they envision the fragmentation of a primitive community under the impact of a new religion and a new value system.

As such their writings serve as enrichment of the Postcolonial insights of critics like Edward Said, Frantz Fanon, Homi Bhaba and others who have asserted in their discourses that western culture is not the universally chosen destination. These three writers have further adumbrated a critique of both colonial modernity and tradition, functioning thereby as critical insiders. The paper highlights the cultural archetypes in the select novels of the three writers.

Key words :- *Culture, Archetype, colonialism, Third World.*

At the beginning of the colonial discourse in the 19th and early 20th centuries, which took the form of a head on one or two encounters symbolised by the African machete against guns, the indigenous souls of the third world have now entered its subtle, more deadly battle with fiction. Too changed were the images of 'Me Jane' and 'You Tarzan.' Archetype themes, perspectives and characters generally symbolise fictional postcolonial transactions. The term 'archetype' plays a key role as novels in this study of the convergence and divergence of the ethnic mores of Igbo (Achebe), Gikuyus (Ngugi) and Parajas (Mohanty) explore the artistic sensitivities of the African and Indian communities, which today still influence myths on life. The three authors have the shared characteristics of raising the local to the universal standard; therefore, these authors Gikuyus, Igbos and parajas need to be analysed in depth.

In Nigerian, Kenyan and Indian societies several cultural archetypes emerge through a surreal narrative configuration as well as the narrative content. The novels selected for study gain a range of heterogeneous characteristics that make the works attractive and similar to the attractiveness of the traditional world in the different cultures. Typical for the Third World Novelist's attempts to get rid of the Eurocentric approach to fictional writing could be considered narrative strategies taken by the three novelists. It was an enlightening experience for Afro-Asian readers to rediscover themselves from a genuinely indigenous perspective by appreciating the method and meaning of culture. In harmonising traditional oral culture and speech, these novels express the voice of the collective inconscient through a mythical language and structure, and lead us to the vital fields of collective awareness of the distinct cultural entity which belongs to the respective traditions. This is a feature that can be opposed to the trend towards a new competitive order in the new millennium. Satchidanandan, the critic-poet in his article '*Will Literature Survive'* comments on the triumph of discontinuity and divisibility in the modern world and also in literature. He says that "Post-modernism extols 'difference' while Post-structuralism celebrates

*** Academic Officer, Academic Cell, Andhra Pradesh State Council of Higher Education, (APSCHE) Mangalagiri, Guntur Distict, Andhra Pradesh.**

'discontinuity and deconstruction' … mankind is beginning to understand how to demonstrate and reassemble the most complex and unpredictable of all its machines - language" (p. 9).

Achebe, Ngugi and Mohanty speak in the Third World. The aim of this comparative study is to make the works a distinct variety of fictions from the Third World, which bear the stamp of mythical attributes. In their novels, history of colonial and Postcolonial times is a wide-ranging tool for the discovery of Achebe and Mohanty's metaphysical values and the discovery of Ngugi's traditional values. An in-depth study of the vision and aesthetics of these three novelists, their faith in the role of cultural tradition and their treatment of themes, narrative techniques and styles related to the myths and motifs of literary novels can contribute to a deeper understanding at ontological level of the nature of the genre as a whole. The strength of these three is a fictional style based on a mythical understanding of the truth, which is fundamental to the cultural traditions of the respective geographical regions of the Third World.

In this study, an attempt is carried out to analyse tradition, myth and culture in Igbo, Gikuyou, Mau-Mau and Paraja through the prism of the existing milieu and ethos in Nigeria, Kenya and Orissa. It is not wrong to describe the truth that the study progresses even from an early and sometimes intrinsic Third World binary or is easy to think of in Achebe, Mohanty and Ngugi that has become crucial in the contemporary context of a globalised populist culture. Just like Achebe, Ngugi Wa Thiong'o has also attracted a large number of critical texts on the works of Ngugi from various parts of the world. 'History' has a major impact on the fiction of Ngugi. His first four romances cover six decades (1920s), 'drawing on the historical fact documented as a background.' Achebe and Ngugi concentrate in their fiction on the historical aspect. In addition, Killam explains Marx and Fanon's influence on the writings of Ngugi and, in particular, *A Grain of Wheat* and *Petals of Blood*. Lawrence and Conrad are two other influences on Ngugi mentioned by Killam. Killam is very thinking-provoking in his evaluation of A Grain of Wheat. He says: "*A Grain of Wheat* is not a political novel in the fullest sense. The political theme is balanced against the exploitation of human fallibility the novel offers. Ngugi's humanism, revealed by his care for his people and his understanding of what prompts them to action, dominates the novel". (p.72).

Ngugi acknowledges that his fiction upto *A Grain of Wheat* and *Petals of Blood* belong to this tradition of Afro-European novel. He says, "After I had written *A Grain of Wheat* I underwent a crisis. I knew whom I was writing about but whom was I writing for?" (p.72). Ngugi feels duty bound to nurture and enrich African languages. He wrote, "(We) African writers are bound by our calling to do for our languages what Spenser, Milton and Shakespeare did for English; what Pushkin and Tolstoy did for Russian." (p. 73) These statements of Ngugi are very explicit and seek to explain his stand on English vis-a-vis the languages of Africa. Ngugi's *The River Between* and Achebe's *Things Fall Apart* fulfil the dedication of these authors to show to the western world and to their own that Africa has a glorious history and cultures of which they can be proud. Achebe's essay 'Novelist as teacher' has helped the authors to eliminate their racial inferiority and to restore their historical and cultural legacy, humanity to them. It is not acceptable to notice that the trio portrays the experience of the white man's soul. These works attain greater importance since their craftsmanship exudes a freshness and vitality to bring relief and prevent elements of self pity and 'you Cain and me Abel' attitude.

One of Africa's most famous writers is Chinua Achebe. He has been recognised as one of his lifetime's most original literary artists. In the plot structure of his first novel *Things Fall Apart*, this Nigerian novelist first shaped the literary reaction to his colonial reminiscences. Two years before Nigerian Independence, this novel was published in 1958. It documents the way of the Igbo people in Nigeria, the homeland of Achebe, before the arrival of missionaries and the colonial government. His main concern is the assessment of the impact of western customs and values on traditional African society. This novel has honestly defined the disruptive effects of European

colonialism and traditional Africa. In order to follow the storey of Igbo's conversion to the modem nation state, Achebe wrote two more novels, *Arrow of God*(1968) and *No Longer at Ease* (1960). Wiping out a whole village (Abame) in *Things Fall Apart* as a retaliation for the killing of a single whiteman; the irony involved in the formation of a Confederation of six villages of Umuaro for reasons of safety and security against the marauders from a neighbouring country in *Arrow of God*, Mr. Green's simplification of the natives' psyche and fallibility as "victims of the worst climate in the world" (p. 62) in *No Longer at Ease* — signify much more than what meets the eye. Each incident has an endless tale to tell.

Gopinath Mohanty is a prominent Oriya writer, the winning author of 25 novels, short stories, essays and plays. In 1945, he had written *Paraja*. It's a traditional, nearly mythical simplicity storey. Sukru Jani the central character is a dirty-poor indigenous tribe of the Paraja tribe that lives in the mountains of Orissa in East India. *Dadi Budha* (1944) has been one of Mohanty's short novels, which tells the moving story of tribal disintegration under the influence of modern civilization, and has the distinction of being his first novel on a foundation for tribal life. Mohanty's concern for the oppressed and the poor is not shaken even when he changes his focus from the hills to the plains. His novel, *Harijan* (1948), addresses the untouchables of slums and their brutal exploitation by rich people. For its subtlety, the language of Mohanty is outstanding. Through nuanced and evocative descriptions, characters and landscapes come alive vividly. The lyrics of his language are unique.

These three authors have also criticised colonial modernity as well as tradition and functioned as critical insiders. The three writers value their native culture to promote their cultural identity and to rewrite history, as well as to give counter-discourses to reveal representational politics that were responsible for constructing the colonized's debased identity.

Reference :-

1. Achebe, Chinua. "Where Angels Fear to Tread", *Nigerian Magazine*, No 75, Dec 1962.
2. Killam, G.D *An Introduction to the Writings of Ngugi.* London, Heinmann, 1980.
3. Ngugi, James. *Decolonizing the Mind: the Politics of Language in African Culture. Nairobi*, Heinemann, 1986.
4. Satchidanandan, K. "Will Literature Survive" *Indian Literature*, July-August 1998.

G. K Mhatre : Revolutionary sculptor of Pre-Independence India

Binoy Paul*

Abstract

19th century India witnessed a great renaissance in arts. G K Mhatre, who left his permanent path in the field of sculptural arts, was considered to be the greatest of all sculptors to have lived in British colonial India. From amongst those who have any taste for Fine Arts there must be few persons in India, who have not heard of the famous Bombay Artist, Mr. G K Mhatre is known today to be the acknowledged leading Indian sculptor

Keywords: G K Mhatre, Sculpture, Painting

Introduction:

From the middle of the nineteenth century, when Western academic art began to be formally trained in India, various art schools and centers like Bombay, Calcutta, Madras began to emerge in the country which differed significantly from its royal tradition in its important kingdoms. Not only was the education in art vastly different from conventional practices. There is no doubt that most of these centers were established in the new cities of India like Delhi, Baroda, Chennai, Lahore, Nagpur, Indore, etc. where the vocabulary of art-composition was previously virtually unknown. They soon grew into centers where art flourished with artists, patrons, galleries, awards, and training institutes establishing an eco-system that led to its practice and promotion.

Creative voyages as a sculptor:

The development of contemporary art mainly in Bombay and from Bombay spread to other centers of India. Bombay, well known between the 1920s and 1930, saw a frenzy of imitative art activity like portraiture, landscapes, still-life, and pictorial scenes in an accomplished academic style. This is evident in the works of Painters like M. F. Pithawalla, Pestonji Bomanji, J. R. Lalkaka, A. X. Trindade, M. V. Dhurandhar, V. A. Mali, V. S. Gurjar, S. L. Haldankar, Gopal Dueskar, and also sculptors like G. K. Mhatre, V. P. Karmarkar, B. V. Talim, D. K. Goregaonkar, D. B. Jog, and S. Phadke. Sculptor like G. K. Mhatre was influenced by western antiques and academic realism, reflecting technical talent, skill, and craftsmanship. G. K. Mhatre (1879-1947); at a young age, Mhatre came and contacted idol maker G. B Gokhale from whom he imbibed the art of idol making his sculpture *To the Temple* which displayed Greco-Roman grebe much more appreciation. Other sculptures that he made include *Saraswati, Parbati* which also received many medals. Nineteenth-century India witnessed a great new beginning in arts and culture. GK Mhatre, who left his unforgettable footprint in the field of sculptural arts, G. K Mhatre was considered to be the furthermost of all sculptors to have lived in colonial India.

Ganpatrao belonged to the community of the Pathare Kshatriyas (also called the Pachkalshis). His father Kashinath Keshabji Mahatre (1838-1920) was transferred from Pune to Bombay and worked as a clerk in the Military Accounts Department. He first studied Marathi Medium School in Pune and later in Bombay up to 5th class in English.

* **Ph. D Scholar Department of Visual Art, Assam University, Silchar.**

The young Ganpat lived at Mangalwadi in Girgaum where he came in contact with the famous idol maker GV Gokhale, who was famous for making extremely and artistic Ganapati idols. Eventually, after much practice, he was able to create a bust of his younger brother that happily surprised the family members. In 1891 young Ganpat plan to join the J J School of Art for learned painting, encouraged by his father and elder brother Dwarkanath Mhatre. Painting students were sent to learn stone carving class under Sir Lockwood Kipling to gain knowledge in the principles of sculpture. Prominent painter Rao Bahadur MV Dhurandhar (1867-1944) in his book Kalamandiratil ekechalis varshe remembers the juvenile Ganpat as a good painter and praises his watercolor and still life.

G. K. Mhatre as a historical landmark:

Ganpath often missed himself from class because of the principal's annoyance. At the age of16 years, he presented to the world, a life-size figure of a young girl draped in a traditional nine-yard sari on her way to worship at the mandir, in Plaster of Paris, titled *"To the Temple".* In 1896, Ganpat K Mhatre was awarded the Victoria Medal for Sculpture and Mayo Medal for excellence in painting.

G. K. Mhatre's later works attempted to adapt Western Symbolism to Indian themes. For his extraordinary skill, he received many commissions from the princely states of Kolhapur, Gwalior & Mysore. One of Mhatre's brilliant *"Saraswati"* was awarded honorable mention, diploma, and a bronze medal at the Paris Universal Exhibition in 1900. He also executed abundant busts and a life-sized one of King George V which was installed at Apollo Bunder in front of the Gateway of India. Mhatre's remarkable work *"Parvat as Shabari"* shows his technical growth and mastery of neo-classical enormity and won many medals. He was the first Indian artist to have been commissioned to complete Queen Victoria's bust for the Kolhapur State and the full-size seated sculpture for the memorial at Ahmadabad. Some of the Remarkable marble sculptures included statues of *Sheth Gokuldas Tejpal (1911), and G K Gokhale (1921), Seth V Madhavdas (1902), Rao-Saheb V N Mandalik, Justice M G Ranade (1913).* Mhatre acquired the only photograph available to sculpt this statue – even the defect in the right eye is captured. Mhatre's clientele included several influential Parsis – *Dr. Tehmulji Nariman (1899), Nusserwanji JWadia (1900), Lady Jerbai Masina (1941), H J Rustomji (1901), Mr. Mody, Sir Pherozeshah Mehta (1917, 1924), Lady Pirojbai Broacha, Sir Shapoorji Broacha, Alpaiwala (1940-1), Sir Cowasji Jehangir (1936), and Sir Sorabji Pochkhanawala (1935).* Mhatre's famous *'Saraswati'* c 1900, Queen Victoria, Ahmedabad,*' Parvati as Shabaree'c 1902,* Issue sponsored by Abtin & Mehraf soon Sassanfar works - *"Art of the needlework", "After the Bath"* and *"Bairagi"* were displayed in exhibitions all over India.

The statue of H H Chamarajendra Wodeyar of Mysore was first made by William Colton, as it became controversial because it did not bear resemblance to the face of the Maharaja. Ganapatarao Mahatre, the famous Indian sculptor of that period, was hired by the royal family to make the necessary changes to the new family by sculpture. The whole area where the sculpture had been installed was walled off for some weeks. The head of the original sculpture was replaced because it was considered an unlucky omen to behead a monarch albeit in marble, although the joint line finally covered the strategic position of the necklace.

H H of Mysore and Krishnaraj Wodeyar, through many orders, patronized G. K Mahatre helped to buy land for setting up his studio at Sandhurst Bridge in Bombay. Many notable states including Panna, Rewa, Kolhapur, Ratlam, Porbandar, Jodhpur, Alwar and Gwalior came to him for executing marble or bronze works. The state of Gwalior had ordered eight Sculptures, including two from H H Mahadji Shinde. Ganpatrao Mhatre's equestrian statue of Prince Shivaji,

Kolhapur; Chhatrapati Shivaji, Baroda; Maharaja of Rewa, Maharaja Chhatrasal of Bundelkhand are all great masterpieces. In 1929, Mhatre was awarded the title of "Rao Bahadur" and was nominated "Justice of Peace". Rao Bahadur Mhatrelata moved from his studio from Gigaum Chowpatty to Vile-Parle

In 1945, the Indian Zoroastrian community erected a bronze statue (weighing 2.5 tons and in a sitting position) of the poet Firdausi on behalf of the Iran League. The statue was paraded in the vicinity of the Bombay-populated area where HRH Reza Shah unveiled it before sending it to Iran. Today it sits at the entrance to Tehran University. G. K Mhatre was a lifetime patron of the Arts Society of India and a founding member and President (1918-1929). He was also a visiting faculty member of the JJ School of Art. During his reign, there were students like Talim, Karmarkar, and Goregaonkar Brothers, all famous sculptors.

References:

1. *Bahrani*, Z. (2017). *Mesopotamia: Ancient Art and Architecture*, Thames and Hudson Ltd.
2. Barua, R. (2016). *Sarbari Roy Chowdhury 1933-2012*, in Vassels of fire, Visva- Bharati, page-53-57
3. Berkson, C. (2009). **Indian Sculpture: Towards the Rebirth of Aesthetics**, Abhinav Publications.
4. Lynn, D. M. (2005). *Sculpture, Glass and American Museums*, University of Pennsylvania Press.
5. Mosteller, F. J. (1991). *The Measure of Form (A New Approach for the Study of Indian Sculpture),* Abhinav Publications, *India*.
6. Mago, P. N. (2001). *Contemporary Art in India- A perspective*, National Book Trust, India, 2001.
7. Narzary, J. J. (1995). *Modern Indian Sculpture: A Brief History*, Lalit Kala Academy, New Delhi.
8. Narzary, J. J. (1978). *Some New Trends in Modern Indian Sculpture*, Marg Publication, Bombay.
9. Pathare, D. H. (2014). G K Mhatre (1879-1947): Pioneering Sculptor of Pre-Independence India. *Hamazor* , 48-50.
10. Subrahmanyan, K. G. (1987). *The Living Tradition-Perspectives on Modern Indian Art*, Seagull Books, Calcutta.
11. Saraswati, S. K. (1975). *A Survey of Indian Sculpture*, New Delhi: Munshiram Manoharlal.
12. Bottom of Form Shah, S. (1995). *Piraji Sagara Contemporary Indian Art Series.* New Delhi: Dr. Dinanath Pathy, Secretary, Lalit Kala Akademi, Nu-Tech Photo lithographers.
13. Vasudev, S. (1957). *Pilloo Pochkhanawala.* (S. A. Krishnan, Ed.) New Delhi: R. L. Bortholomew, Secretary, Lalit Kala Akademi.

Are we actually riding on the learning wave in an ocean of Webinars during this Covid-19 era?

Dr. Ashish Mathur*

Dr. Sona Vikas*

Introduction

Before Covid-19 hit the world, Conferences, Seminars, Symposiums and Workshops were a regular affair. Organizations across the world have been conducting these events to provide participants an opportunity to enhance knowledge and skills, expand networks and/or offer prospects to travel, not only within the country but even overseas. Event management companies had to cancel their events, both on national and international levels. Those companies which were thriving due to the domestic and foreign travel of delegates for the conferences, exhibitions, trade summits, cultural events and several other formats of meetings, all had to face huge losses due to the pandemic. Come 2020, and the dynamics of these events totally changed.

Covid-19 undoubtedly brought a halt to the whole world, but technology emerged as a true saviour. Neither work nor learning stopped, all thanks to the various platforms like Zoom, Teams, Google Meet, WhatsApp, Skype, WebEx, etc. A new online world arose, which made it possible to do things which no one had attempted before.

Networking during Covid-19

Physical Networking shifted to digital networking due to social distancing norms. Travel became a distant dream with the closure of national and international borders. And suddenly the whole world went online. From education to corporate, organizations globally have quickly adjusted themselves and 'virtual' has become the new norm. While corporate professionals were performing their regular official responsibilities in a 'work from home' mode, the educators too were ensuring learning through an online classroom setting. Physical meetings were conspicuous by their absence. The need to e-socialize and to be in touch with each other led to an increase in the frequency of e-meetings with internal teams, colleagues and management. So much so that even families and extended families whose members are not located in the same city, are organizing virtual get-togethers to celebrate important occasions or just to catch up with each other. Man is indeed a social animal, and he is leveraging technology to fulfil his basic needs of meeting with people.

Emergence of Webinars

Due to Covid-19, the inability to host events and physical meetups has given rise to a series of live online seminars or webinars, as they are popularly known. The availability of different platforms led to the rise of this format of events – Webinars. The word has been created from the words 'Web' and 'Seminar'. It implies an online seminar. Here, there is an exchange of information and real-time conversation but all on a virtual mode. There has been an unprecedented spurt of webinars across the world. These webinars are being conducted by everyone and anyone, on all possible topics, issues and themes. These online, real-time meetings are connecting individuals across various backgrounds and geographies. Winston Churchill had once said, 'Never let a good crisis go to waste'. Well it seems that we are taking his words a little too seriously. Every day, the WhatsApp messages and emails are literally flooded with webinar announcements and notifications. Whether it is institutions, organizations or industry bodies, all are trying to conduct webinars on seemingly innovative and contemporary subjects. In some cases, the objective of the webinars is knowledge-sharing and experience-sharing by professionals; in some cases, the aim is to provide a platform for deliberations in an e-roundtable by a distinguished panel of experts; and in some other

*** Assistant Professor, Department of Business Administration FCMS, Jai Narain Vyas University, Jodhpur, Rajasthan, India.**

*** Associate Professor, School of Management, IILM University Gurugram, India.**

cases, the primary goal is marketing, promotion and branding. While most of the webinars are free of cost and organizers have now started offering e-certificates to the attendees in order to boost participation, it cannot be denied that participants attending webinars in contemporary times are being charged a nominal registration cum participation fee.

Conducting the Webinars

One of the biggest challenges that is faced in conducting webinars is the marketing and promotion of these virtual events. Promoting these e-events on the appropriate channels helps achieve branding objectives and audience participation. Emails, personal networks and co-marketing can be effectively used for the webinar promotions. Once the promotion starts, the webinar has to enable capturing the registrations so that they can be sent reminders before the e-event. Another challenge is identifying the right time and scheduling the promotion. Technical issues need to be handled if the webinar has to be conducted seamlessly. Checking the audio, video, links, lighting, polls and background in advance can overcome any problems during the webinar. While every webinar has a different objective and agenda, what is common to all of them is engaging the audience. There is an innate need to talk with them during the event, not just talking to them as a monologue. Using polls, surveys, chat box, Q&A, emoticons, raise-hands feature, annotations, breakout rooms, videos, images and similar tools can pique the interest of the participants and get the audience engaged in the session. Conducting successful webinars is possible if the title is eye-catching, and if the content is not easily available. Audiences are looking for practical tips, experience sharing and real-world examples. They must feel it was worth their time. They must have the conviction that they would learn something out of that webinar, and it was a great learning session for them.

Where is the Learning?

At the end of the day, one really needs to ask a question: Are we actually learning? With the digital space flooded in an ocean of webinars, are we actually riding on the learning wave? Or have we reduced ourselves to certificate-hungry attendees? Are we genuine learners? Are there any learning outcomes that have been achieved? Can we measure the expected learning? Have we been able to apply the learning in our workplace? To answer some of these questions, the author conducted an online survey in the first week of June 2021. The primary objective was to find out if there was any learning during these webinars that were being conducted during the lockdown. The results have given us a food for thought. A total of 1500 respondents participated in the study. The demographics are given below in Table 1:

Table 1: Demographic data of survey respondents

Gender	Percent
Male	43.90%
Female	56.10%
Age group	**Percent**
15 - 22 years	18%
23 - 30 years	45%
31 - 40 years	12.30%
41 and above	24.60%
Region	**Percent**
North	83.63%
East	7.60%
West	5.85%
South	2.92%
Profession	**Percent**
Academia	7.02%
Business/ Entrepreneur	4.68%
Student	33.33%
Working Professional	54.97%

Key Highlights of the Study

Out of 1500 respondents, 91.8% had attended webinars during the lockdown. Of this, 38.6% respondents attended more than five webinars from March — May 2021. 15.8% respondents had

attended two webinars and 10.5% respondents had attended atleast one webinar during this period. The main reasons to attend the webinar were:

- Expected learning
- Speaker Profile

For 62.6% respondents, the primary motivation to attend the webinar was the expected learning. While 29.8% of the respondents did not want to pay for the webinars, 53.2% respondents shared that they could consider paying depending on the expected learning and value add from the webinar. Also, 63.7% respondents shared that they would be interested in a webinar even if it did not offer any certificate of attending. According to 81.9% of the respondents, webinars do contribute to their personal development.

The preferred duration of a webinar was 1 hour for 49.7% respondents while 26.3% of them preferred the duration of the webinar to be 1–2 hours. Only 4.1% respondents preferred the duration to be more than 2 hours. About 60.2% of respondents were of the opinion that there is an overload of webinars during the lockdown, though 77.2% wanted the webinars to continue during the lockdown.

In comparison to traditional seminars, 50.30% respondents found the webinars to be interesting, and 32.7% of the respondents felt they were the same. 69% of the respondents felt that learning is effective through the webinars. Only 48.5% of the respondents were of the view that the webinar experts were effective in their delivery. 50.9% respondents felt that their questions could be answered during the webinars. 53.8% of the respondent were of the opinion that sometimes the speakers were able to hold their attention during the webinars. In comparison to physical sessions, 28.1% respondents did not find the online webinars better. Amongst the respondents, 70.2% of them stated that were planning to attend a webinar in the near future. As far as the skill and knowledge of the respondents was concerned, 44.44% felt that there was a fair contribution of the webinars towards their learning.

Recommendations for the Way Forward

This study has brought out several gaps that need to be addressed. Given the mushrooming webinars everywhere, we need to look at addressing these inadequacies so as to ensure effective learning practices during the lockdown. Based on the feedback received from the respondents, given below are some of the recommendations to improve the quality of webinars:

a. ***Making Sessions Engaging*** **—** the organizers must make the webinars more interactive and engaging for the participants. The involvement of participants should be there rather than the webinar being just a monologue delivery by the expert. The number of participants should be limited so as to facilitate better interaction and learning. Brainstorming with participants on critical topics would make the webinar highly effective.

b. ***Time Management*** **—** managing the time is important in the webinars. A lot of time is spent in the introductions and organizer information. This kind of PR can be avoided in the interest of time. The speakers must also understand that time is limited, so they need to be very crisp and focus their talk only on the webinar theme.

c. ***Content*** **—** the content should be useful and relevant for the intended audience. This will also enable the attendees to keep away from endless distractions and will allow them to pay continuous attention on their laptops or screens.

d. ***Effectiveness of the Speakers*** **—** the participants tend to leave the webinars mid-way if the speakers are unable to hold their attention. The participants are seeking quality learning when attending these sessions. They are looking at the webinar experts for sharing practical and real-life examples which they can relate to and learn from. The experts should endeavor at providing deep and essential information and insights into the topic rather than bookish knowledge by just covering the basics. Speakers should set the agenda for the session and mention all the key topics that would be covered during the webinar so as to ensure an interested audience till the end.

e. ***Use of Technology*** **—** the best online meeting platform should be used that facilitates attendee interaction, usage of multimedia. A few slides and info-graphics can also be integrated during the session. This visual element helps in keeping the audience attentive. Use of poll questions to engage the audience can be one of the means to also ensure their attention and participation.

f. *Some other suggestions* –

-There should not be more than two speakers as the audience find it distracting and find it a cluttered platform.

-Organizers should provide recorded videos so that they can be heard again by those attendees who wish to.

-The ideal duration of the sessions is one hour. The attendees are not interested in long webinars.

Desired themes for the Webinars

Some of the webinar topics shared by the respondents indicate that they are interested in themes that concern their future. Discussions related to the current situation caused due to Covid-19 do not interest them anymore, rather they would like the focus of the webinars to be on post-lockdown issues, challenges, opportunities and threats of the unpredictable future. They are interested to hear about what the future of work looks like. They would like to have webinars on positivity, managing stress and depression, and improving mental health. They are concerned about work life balance and how to motivate themselves to work in an online world. They would like to enhance their skills so that they can grow and professionally cope up in the times to come.

Conclusion

There is no iota of doubt that this is a golden period to learn, unlearn and relearn. Webinars cannot replace physical meetings and experiences but since as of now it is not possible, only useful and relevant sessions need to be meticulously planned so as to make it worth the time of the attendees. The organizers must always consider this question: *Are we actually riding on the learning wave in an ocean of Webinars during this Covid-19 era?*

References:-

1. Nagarajul, K.C., Madhavil, K. & Murthy, J.N. (2020), Research on efficacy of webinars organized for faculty during lockdown of COVID-19, presented in CTE 2020: *8th Workshop on Cloud Technologies in Education*, December 18, 2020, Kryvyi Rih, Ukraine. [Accessed on March 5, 2021: http://ceur-ws.org/Vol-2879/paper15.pdf]
2. Chanana, N. & Sangeeta (2020), Employee engagement practices during COVID-19 lockdown. J Public Affairs. 2020; e2508 (https://doi.org/10.1002/pa.2508)
3. Dhiman, A.K. & Singh, S. (2020), Are Webinars Worthy: Analysis of Webinars Conducted in LIS during Lockdown 2020, Library Progress (International) Vol.40, No.2, July-December 2020: P.307-327 DOI: 10.5958/2320-317X.2020.00033.1
4. Bilawar, P.B. (2020), Lockdown Period and Information Sources, *International Journal of Engineering Research And Management (IJERM)*, ISSN: 2349- 2058, Volume-07, Issue-06, June 2020. [Accessed on March 6, 2021: http://www.unishivaji.ac.in/uploads/general/covid/bilawar/Bilawar%20Editor%20Final.pdf]
5. Preetee, H. (2020). *Learning without boundaries: a world of webinars. Dental Nursing, 16(6), 292–294.* https://doi:10.12968/denn.2020.16.6.292

Role of the Mauzadars in the British-Nyishi Relations

Dr. Tade Sangdo*

Abstract

The *Mauzadars* played an important role in the colonial revenue administration of Assam. They acted as an officer in-charge of a large division area, collected the revenue of that area and submitted their collected amount to the British government. The *Mauzadars* of north Lakhimpur and Darrang districts of Assam were assigned extra responsibilities to deal with the Nyishis who were settled in the northern border of these districts. Besides the revenue collection, they were also engaged as an intelligence to collect information about the hills Nyishis and submit their reports to the authority. The *Mauzadars* were also authorised to issue Inner Line passes to the plains Nyishis for emergency cases and acted as officer in-charges to maintain records of the frontiers trades. They played a role in maintaining peace and tranquillity in the Nyishi villages located within their *Mauza* and also helped the British military expeditions to the Nyishi hills. Hence, the present paper brings out the various dimensions of the *Mauzadar* in the British-Nyishi relations.

Keywords: British, Nyishi, Revenue and Mauzadar

Introduction

The British annexed lower Assam in 1826 after defeating the Burmese and whole Brahmaputra valley in 1838 A.D. The British established their colonial rule in the plains region of Assam but they adopted the different policies for hills regions of present Arunachal Pradesh. Initially, they followed the isolationist policy which intended to leave the 'tribesmen alone' '(Mackenzie, 2013:4-6)'. Later, the British government of India made a regulation called the Bengal Eastern Frontier Regulation Act of 1873 which is popularly known as Inner Line regulation. This regulation made for the British administrative convenience to identify their administration boundary line in the districts of Kamrup, Darrang, Nowgaon, Sibsagar, Lakhimpur, Garo hills, Khasi and Jaintia hills, Naga hills, Cachar and Chittagong hills. According to the regulation, British subjects were not allowed to cross the area beyond the Inner Line without a pass obtained from the British authority '(Sharma & Sharma, 2006: 47-49)'. The British administration in the foothills regions of Assam had frequently encountered with hills tribes of present Arunachal Pradesh who were settled in the northern border of Assam. Some of their clans had settled in Assam within the British territory but the maximum population of tribes were settled in the hilly regions of present Arunachal Pradesh. Among them, the Nyishi tribe was one of the major tribes who were settled in the northern part of Lakhimpur and Darrang districts of Assam. Maximum population of the Nyishi was settled beyond the Inner Line but a few villages of the Nyishi were located within the Inner Line who came under the British administration.

Presently, the Nyishis are the largest tribe of Arunachal Pradesh and have settlements over seven districts namely Kurung Kumey, Kra-Dadi, Papum Pare, Lower Subansiri, Kamley, East Kameng, and Pakke-Kessang. They are also settled in a few pockets of Sonitpur and Lakhimpur districts of Assam (Hina, 2012:15). During the Ahom's rule in Assam, the Nyishis were

***Assistant Professor, Department of History, Rajiv Gandhi University (A Central University) Arunachal Pradesh, India.**

mistakenly or without justification termed as "Dafla" or "Dumpla". Later, the British government continued to use the same nomenclature for Nyishi tribe and it was continued even in the constitution of independent India '(Rikam, 2003: 8-9)'. But according to the myths and legends, they call themselves as Nyishi since time immemorial '(Showren, 2009:58-59)'. The government of India by its Constitutional Amendment Act (Scheduled Tribes), 2008 has changed the term 'Dafla' to 'Nyishi'.

To trace the British-Nyishi relations, first time the British officer's encountered Nyishi people during the Anglo-Burmese war in 1825. Some British military officers gave references about them and their territorial extension up to the plains '(Panda, 1988:165)'. They found that the Nyishi people were settled both inside and outside of the Inner Line and those who resided outside of the Inner Line were independent in nature and followed their own sovereign but those who resided inside of the Inner Line followed the British rule and accepted the sovereignty of British authority. They were treated as British subjects and were protected by the British government against their enemy or hills raiders '(political proceedings: 1908)'. Numbers of feuds had happened within the Nyishis of hills and plains and the British used to intervene in their feuds to protect the plains Nyishis. The Nyishi villages in the plains located within the Inner Line became crucial issues for the British authority '(Bose, 1997:67-72)'. Hence, the *Mauzadars* posted in the border areas of the Nyishi were assigned many other works related to check and balance with the Nyishis and also maintained peace and tranquillity in the British-Nyishi relations.

Objective and methodology of the paper :- The main objective of the current research article is to review the various dimensions of *Mauzadars* in the Nyishi-British relations. The Mauzadars played an important role in establishing peace and tranquillity in the British-Nyishi relations. Hence, the present paper has attempted to review on three major issues as follows:

1. To understand the historical background of the colonial revenue administration in Assam.
2. To examine the role of *Mauzadars* in Assam and
3. To evaluate the various dimensions of the role of *Mauzadars* in the British-Nyishi relations.

In order to construct a systematic analysis and interpretation of the paper, both primary and secondary sources are used. Few relevant books use as secondary sources but primary sources mostly archival materials like the British Survey Reports, Tour Diaries, Official Correspondence and Political Proceedings collected from the National Archives, New Delhi; State Archives, Government of Arunachal Pradesh, Itanagar, Government of Assam, Guwahati, have come to great help to develop this paper.

In fact, many scholars had done work on the different dimensions of the Nyishi and their relations with the British but no one has done exclusively on the *Mauzadars* in the British-Nyishi relations. Archival materials and secondary sources of data are adding a lot of information in this research work which no one has covered so far. Therefore, my study area is new and original research.

Colonial Revenue administration in Assam :- Initial stage of British rule in Assam, the revenue was collected by the heads of the *Khels* or clans but the system failed to satisfy the authority due to the ineffective role of the heads of the *khels*. Therefore, in 1836 the scheme was introduced to create *Mauza* (division of area). It was a large division area and numbers of villages came under the *Mauza*. The person who held the responsibility as the officer incharge of the *Mauza* was called *Mauzadar*. The *Mauzadars* held responsibility for the collections of land revenue and submitted

the collected amounts to the British Government '(Mali, 1985:18)'. The British government in Assam was gradually modifying the revenue administration of Assam. They also introduced the cash payment system to the revenue of Assam which replaced the collections of kinds system.

The influential person from Mauza was generally appointed as *Mauzadar*. Their main duty was to collect the land revenue of the *Mauza* and deposit it to the British government treasury. They also acted as the officer incharge of *Mauza* and executed as assistant of District Collector. They used to implement the orders of the District Collector in their respective *Mauza*. Some identical functions of *Mauzadars* were to collect tax, issue notice and warn the peasants in case they failed to pay revenue and also confiscated their properties '(Guha, 2015:278-279)'. There were many circles in each *Mauza* and *Mandal* used to look after the circle. The main duty of *Mandal* was to assist the *Mauzadar* related to revenue collections of their circle, measurement of land and maintenance of village records. *Gaon Burah* and village headman also played an important role under colonial administration regarding the revenue collections of their respective villages. They get some revenue concession in lieu of their help to the *Mauzadars* and *Mandals* in their village. *Gaon Burah* belonged to the village and had direct contact with all peasants of the village. Hence, they played an important role to assist the colonial polity in rural areas. Thus, a chain of intermediates systems had existed in the colonial revenue collections from *Mauzadar, Tahsildar, Mandal, Kanungos* and *Gaon Burah* in Assam who had been supported to the colonial administration. The Peasants get a lot suffered from the exploitation and atrocity of these intermediates. Moreover, the land measurements were never done systematically and accuracy. Peasants repeatedly complained to the Collector and the Commissioner of Assam regarding the false measurements of land. However, in 1852, Captain Butler concluded the settlement and directed to measure the land in presence of the *Mauzadar* and peasants of the land and also agreed to examine the objections of peasants '(Kalita, 2018:464)'.

Role of Mauzadar in the British-Nyishi Relations :- The British government used the *Mauzadars* of Lakhimpur and Darrang districts to deal with Nyishi people. Few Nyishi villages were already settled in these two districts of Assam and villagers were considered as the British subjects who automatically came under the *Mauzadars.* Somehow, the Nyishis settled in the British territory were loyal to the British administration and also had cordial relations with their respective *Mauzadar.* But the hills Nyishis repeatedly gave trouble to the British subjects within the British territory. Hence, the *Mauzadars* of Darrang and Lakhimpur districts were empowered to deal with the Nyishi people who were settled within their jurisdiction and immediate boundary of their respective *Mauzas.* Besides revenue collections, they were assigned various dimensions related to the British-Nyishi relations. Hence, power and responsibilities of the *Mauzadars* of Darrang and Lakhimpur districts were enlarged.

In April 1905, British government viewed that the one of main causes of raids and outrages with the hills tribes of Darrang, Sibsagar and Lakhimpur districts were due to the inefficiency of their staffs like political Jamadars (Political informer) and *Kotakis* (Mediators) who were assigned to collect the information about affairs of the frontier tribes (present Arunachal tribes). They were inefficient to collects grievances of hills tribes including Nyishi and failed to submit reports to the authority. In many cases, the tribesmen carried off the British subjects simply to place their grievances before the British Government and they required the British attention on them. In this regard, the Chief Commissioner wanted to place a better arrangement, so that the Deputy Commissioners could get proper information about the attitude of the tribes. Thus, the small intelligence department was established for dealing with the frontier tribes. In this regard,

they required prominent representatives of the tribesmen, selected Assamese who were well acquainted with tribesmen and able to speak their language. In this regard, the British government engaged a large number of frontier *Mauzadars* as intelligence. Hence, the *Mauzadars* of North Darrang and Lakhimpur districts were largely engaged as an intelligence to collect information and grievances of hills Nyishi and report to the authority. The assistants of the *Mauzadars* were also appointed for hills Nyishi. But the British wanted to appoint whom they could trust and who could be able to render valuable services for them. The appointment was made to represent for different hills tribes '(Political Proceedings: 1905)'. Therefore, in 1905, the Chief Commissioner of Assam started to abolish the Nyishi *Kotokis* (mediators or interpreters) and replaced them by *mauzadars* as agents of the British government to keep informed of affairs beyond the frontiers '(Annual Report: 1905)'.

In 1909, the British government assigned another important task to the *Mauzadars* of Lakhimpur district and enlarged their power and responsibility. They authorized the *Mauzadars* to issue Inner Line passes (permits) for plains Nyishis who were settled in their mauzas within the British territory and who wanted to cross the Inner Line towards the hills. However, most of the Inner Line Passes for Nyishi were signed by the Sub Divisional Officer (SDO) of North Lakhimpur, but only in some emergency cases, the passes for plains Nyishis were signed by the Mauzadars. The *Mauzadars* used to issue the passes for those Nyishis who had relatives in the hills and also had properties like land, mithuns, (bos frontalis) and other things in the hills for which they needed to frequently visit. They issued the passes only on emergency purposes which was not possible for the Sub Divisional Officer due to shortage of time and overloaded work in the hills. It was impractical for Sub-Divisional Officers to issue frequent Inner Line passes to the Nyishi. Moreover, the Nyishis were irritated by the long process as well as difficulty to get passes from Sub-Divisional Officers. As a result, many times they used to visit the hills without the passes. Therefore, the Lieutenant-Governor authorized the *Mauzadars* of the Lakhimpur district to issue passes to the Nyishis residing in the British territory on ground of emergency (Political Proceedings: 1909)'.

The Mauzadars were also assigned the responsibility to look after the frontier trades. The seven Mauzadars (Area revenue Officers) of Darrang district were entrusted to carry out the trade records of Darrang district with the Nyishi and a few police officers were entrusted to keep trade records of Lakhimpur district. The British assigned *Mauzadar* and Police officers in every trade centre and entrusted them to keep a register for the trade records with the Nyishis except in the case of forest products. Later, from 1st April 1909 onwards, the British appointed registrars to maintain registration of the frontier trade which relieved the *Mauzadars* and police officers from trade related duties. It directly came under the supervision of the Director of Agriculture '(Strong Report, 1910)'.

The *Mauzadars* as an officer-in-charge of the *Mauza*, controlled the plains Nyishis settled within the British territory and diverted them to be loyal to the British administration. They used to implement the British government orders and also insisted to the Nyishis settled within their *Mauza* that they had to follow the government orders. Many a times, the *Mauzadars* used to settle the conflicts within the Nyishis of difference clans or family. Those days, raids and outrages within the different clans or families of Nyishis were common. Similarly, the raids and outrages from the hills Nyishis to the plains Nyishis settled within the British territory were more common. In this regard, the *Mauzadars* used to help the British police and military to restore the peace and tranquillity and also helped them to settle the cases. Some cases, they also accompanied an

expedition team towards the Nyishi villages of hills to punish the ring leaders of the raids. This shows that the *Mauzadars* played a crucial role for the British administration in the frontier regions to deal with the Nyishis in various dimensions.

Conclusion :- The above discussions reveal that the *Mauzadars* played a vital role in the colonial revenue administration of Assam. They controlled large areas as officer in-charges in implementing government orders and collecting the revenue of their respective area and also submitting the reports of *Mauza* as well as collected revenue amount to the authority. Some Nyishi villages located within the British territory of Assam directly came under the administration of *Mauzadars*. Therefore, the Mauzadars of the frontier regions of Darrang and Lakhimpur districts were entrusted to deal with the Nyishi and try to establish good relations with them. Besides revenue collections, the authority assigned them to collect the grievances of the Nyishis and submits its reports to the authority and also authorized them to issue Inner Line passes to the plains Nyishis on emergency purpose to cross the border. The *Mauzadars* were also of great help to the Nyishi people to place their grievances easily to the authority. They also acted as officer in-charges to maintain records of the frontiers trades. As an officer in-charge of the *Mauza*, they also look after all other problems of the Nyishis settled within their *Mauzas*. They helped the British military actions and expeditions against the hills Nyishis. Thus, the *Mauzadars* of northern Lakhimpur and Darrang districts were not only collectors of revenue, they also played an important role to establish peace and tranquillity in the British-Nyishi relations.

Reference

1. Alexander Mackenzie, (reproduced-2013), *North-East Frontier of India, Mittal Publications*, New Delhi.
2. Amalendu, Guha,(2015), *Medieval and Early Colonial Assam: Society, Polity, Economy,* Anwesha Publications, Guwahati.
3. Assam State Archive, Guwahati, F. W. Strong, Esq., ICS, Officiating Director of Agriculture, Assam" *Report on the Trade between the Province of Eastern Bengal and Assam and the adjoining Foreign tribes and Countries*, 1909-1910.
4. Bose, M. L (1997), *History of Arunachal Pradesh,* Concept Publishing Company, New Delhi.
5. Collected from National Archive of India (NAI), New Delhi, File No.-Political Proceedings-A, May 1908, Nos. 1-4.
6. Collected from State Archive, Government of Arunachal Pradesh, Itanagar, File No.-Assam Secretariat Proceedings, Foreign-A, April-1905, Nos.59-107.
7. Collected from State Archive, Government of Arunachal Pradesh, Itanagar, File No.-Government of Eastern Bengal and Assam, Political Proceeding, A, April 1909, Nos. 1-4.
8. Collected from State Archive, Government of Assam, Guwahati, File No.-Annual Report on the Native States and Frontier Tribes of Assam, 1904-05, Printed at the Assam Secretariat Printing Office, Shillong, 1905.
9. Hina, N. N (2012), *Customary Laws of Nyishi Tribe of Arunachal Pradesh*, Authors Press, New Delhi.
10. Kalita, Dhanmoni, (2018), *Revisting Mauzadari System in Assam,* Proceedings of North East India History Association (hence after PNEIHA), thirty nine Session, Synod College, Shillong, Meghalaya.
11. Mali,D,D, (1985), *Revenue Administration in Assam*, Omsons Publications, New Delhi.
12. Panda, S (1988), '*Anglo-Dafla Unrest: A Cause and Factor Analysis'*, Proceedings of North East India History Association (hence after PNEIHA), Ninth Session, Guwahati.
13. Rikam, N.T (2003), *Changing Religious Identities of Arunachal Pradesh: A Case Study of the Nyishis since 1947*, Ph. D. Thesis, submitted to the Department of history, Rajiv Gandhi University, Doimukh.
14. Sharma, S.K. & Sharma, Usha (2006), *Documents on North-East India: An Exclusive Survey, Arunachal Pradesh*, Vol.II, Mittal Publication, New Delhi.
15. Showren, Tana (2009), *The Nyishi of Arunachal Pradesh: An Ethno historical Study*, Regency Publications, Delhi.

Contextualizing Jyotiprasad Agarwala's Political Ideology of Beauty and Culture in the Light of Female Protagonists depicted in his Dramas

Dr. Umakanta Hazarika*

Abstract :- The Present paper is an humble attempt to explore the political ideology and philosophy of Jyotiprasad Agarwala - a dramatist, political activist, freedom fighter, nationalist, a Gandhian, a socialist, a communist, an artist (a silpi) and a cultural genius of Assam, the north eastern province of India. Being a visionary and revolutionary thinker he used art and culture as an instrument for social change and transformation. He understood culture in broader sense of making society beautiful both internally and externally. Such philosophy of social transformation has been equally expressed even in his dramas. Especially female protagonists depicted in his dramas have been projected as cultural crusaders against dominant discourse of all evil forces or anti-culture.

KEYWORDS: Visionary, Transformation, Cultural, Crusader, Protagonist etc.

Introduction :- Jyotiprasad Agarwala, a political activist, a freedom fighter, a nationalist, a Gandhian, a socialist, a communist, an artist (a silpi) and a cultural genius was born in 1903 at the Tamulbari Tea-Estate of erstwhile Lakhimpur district of Assam. He was born in the noted Agarwala family, which had played a significant role in shaping the cultural ethos of modern Assam. Jyotiprasad Agarwala was a thinker. He was a man of ideas. He was also a man of action. During his time, he tried to put his ideas into action. In order to put his ideas into action Jyotiprasad Agarwala made use of the medium of culture. As a political activist and an artist he realized the importance of Cultural Revolution to awaken the consciousness of the exploited masses in Assam. He had a positive conception of art, literature and culture. His positive conception of art and culture are revealed through his writings – **Silpir Prithivi** (**Artists' world),** Natun Dinar Kristi (New days culture), Natunar Puja (Worshipping the New) etc. Jyotiprasad believed that devil mind is the main cause of exploitation. Therefore he said that pursuance of all arts is meant for bringing peace and prosperity in the world. To him, real peace and prosperity will be available only when the political control is rested upon the artist – philosophers**.** Being a visionary and revolutionary thinker he used art and culture as an instrument for social change and transformation. He understood culture in broader sense of making society beautiful both internally and externally. Such philosophy of social transformation has been equally expressed even in his dramas. Especially female protagonists depicted in his dramas have been projected as cultural crusaders against dominant discourse of all evil forces or anti-culture.

Objectives of Study:

The basic objectives of the paper are

- To understand political ideology of Jyotiprasad Agarwala in the light of Female Protagonists depicted in Plays.
- To rediscover political activist Jyotiprasad Agarwala who realized that politics and culture are interrelated and the medium of culture can be used to transform his ideas into reality.
- To analyze the progressive role of women as the cultural crusader against dominant discourse of patriarchy and colonialism**.**

*** Assistant Professor, Department of Political Science, SPP College, Namti, P. O.-: Namtidole Pin No 785684 District: Sivasagar, Assam.**

- To examine and analyze Jyotiprasad's ideas on women and to try to find out whether he can be considered as a feminist in the context of his ideas and women characters as depicted in his plays.

Methodology :- The present study falls under the category of ex post facto and analytical research. The methodology adopted therefore, is historical and descriptive in nature. Hence, the study relies on both the primary as well as secondary data like books journals and electronic contents. Logic used here for justification of analysis is both deductive and inductive from general to particular and particular to general.

Result and Discussion

Theoretical Estimate on Political Ideology :- In the context of this study an understanding of political ideology is necessary. Political scientists do not agree on the exact definition of the term 'Political Ideology'. In the words of Mark N. Hagopian, Political Ideology is 'a programmatic theoretical application of some grandiose philosophical system which arouses men to political action and may provide strategic guidance for that action' (Mark N. Hagopian: Ideals and Ideologies in Modern Politics). Political ideologies are political ideas presented in a systematic and coherent pattern to achieve specific political goals through definite action programs. Fundamentally, Political Ideologies are programs for action ad instrument of evaluation and it seeks to motivate people to action. Political Ideologies evaluate the distribution and exercise of Political powers and the working of the political institution, to arouse people to action and to mobilize movements, to provide language and to provide some mental organization for the frequent confusion of socio-political life.

Ideologies assume the role of a savior when societies are in crisis. In such times, people look around for ideas which can help them to understand the present reality and hold promise of a better future. Political ideologists make attempt to change the existing socio-political order and some of them make use of medium of culture to popularize and spread ideas among the people. Jyotiprasad Agarwala was a thinker. He was a man of ideas. He was also a man of action. During his time, he tried to put his ideas into action. In order to put his ideas into action Jyotiprasad Agarwala made use of the medium of culture. As a political activist and an artist he realized the importance of cultural revolution to awaken the consciousness of the exploited masses in Assam.

Jyotiprasad's Views on Beauty and Culture :- Beauty and culture are the central theme of Jyotiprasad Agarwala's political ideas. To him, adoration of beauty is culture and culture is the meaningful use and realization of beauty in life. He says that the perfect development of culture creates peace and progress in human life. The progress of civilization is measured in terms of this movement which always ensures victory over anti- culture. Jyotiprasad Agarwala stood against anti-culture or duskriti in forms exploitation, oppression, and gender discrimination. Thus, his concept of beauty and culture are not abstract but related to the social reality. In 'Silpir Prithivi' he asserts that every policy in the society should be based on culture. So, Jyotiprasad Agarwala fought against anti-culture or duskriti informs of imperialism, capitalism, exploitation, gender discrimination in both colonial and post-colonial period. He was a sharp critic of evil forces which disturbed the progressive mission of artist culture.

Prominent intellectual Hiren Gohan has called Jyotiprasad Agarwala the architect of the future or *Bhabikalor Khanikar'*(Jyotiprsad Rachanwali 12). Certainly he was an architect of modern Assam who devoted his entire life for the reconstruction of the society. Political vision behind his cultural mission is expressed in his entire creative works and activities. Through his cultural mission Jyotiprasad Agarwala wanted to enable people to manifest all creative potentialities rooted in their heart. The political vision behind Jyotiprasad Agarwala's ideas is to

reconstruct a beautiful society devoid of duskriti informs of exploitation, oppression and subjugation.

Jyotiprasad Agarwala's cultural and artistic creativities had a political purpose of creating a new order and realizing transformation of the society. He has entrusted the responsibility of transforming society in the artist: Chabi Anka Shilpi nohou moi/Jodiu Anku Chabi/Gan-Kobitar Shilpi nohou/Jodiu Moiyei Kobi/Kolar Majot Jodiu Prokash /Mur Jeevan Kolak dhunia Kori /Manuhokei manuh kori thoi jaboloi Bastobor Kendrot/Loisu sthiti/ Junjiboloi duskriti durghur.

Or

I am not an artist who draws pictures/Though I do draw/I am not an artist who creates poetry/ Though I express myself though art/ To refine the art of life / To humanize mankind I take my place /In the centre of reality/ To battle against injustice. (Jyotiprasad Rachanawali : 120)

The association of politics with culture is one of the significant features of Jyotiprasad Agarwala's political ideas. To him, every individual who opts for waging fight against anti-culture or duskriti is an artist. According to Dhiren Bhagawati, the political practices of Jyotiprasad Agarwala indicate that art for him is a vehicle for human progress incorporating everything progressive in our heritage and refining and synthesizing these elements with what is universal and beautiful for humankind (Bhagawati 37). Bhagawati observes both nationalistic and universalistic outlook in the cultural ideology of Jyotiprasad Agarwala. Being a humanist his vision was to see beauty in man and society. His desire or thirst for beauty is expressed in his entire creative works like dramas, songs, poems and other activities. He said:

Prithivi dhunia Koribo lagibo - toi chakur panire, bukur tejere
kavita likhisu moi (Jyotiprasad Rachanawali: 129)

(You have to make this world beautiful with my tears; with heart's blood I have created verse

Jyotiprasad Agarwala's ideas and ideals were for based on people- oriented emotive culture. His ultimate vision was to beautify the world by humanizing the mankind. Chandrakumar Agarwala's saying - *Sundarar Aradhana jeevanar khela* or the worshipping beauty is the game of life highly mounded Jyotiprasad Agarwala's ever reflective mind dwelt on the total well-being of the masses. Thus, his idea of beauty was not an abstract one. It is related with a world from all forms of domination, subjugation and oppression. Therefore Jyotiprasad Agarwala's cultural mission had a broad political vision.

Jyotiprasad Agrawala's Drama : Instrument for social Transformation :- Jyotiprasad Agarwala was the pioneer of modern Assamese drama. The number of published plays of Jyotiprasad Agarwala is six. His other three plays Sonpakhili, Kanaklata and Sundar Konwar are available only in fragments. Jyotiprasad Agarwala could not complete the three plays and Atul Chandra Hazarika prominent dramatist completed the pay Soonpakhili. His published plays are Sonit Konwari (1925), Karengar Ligiri (1937), Rupalim (1938), Labhita (1948) Nimati Koina (1964) and Khanikar (1977) respectively. All his plays are centered on by divergent and dynamic women characters. Through these women characters Jyotiprasad Agarwala's political ideas can be understood. Through his women characters Jyotiprasad Agarwala examined his views about the position and status of women in the contemporary period of the surrounding world. Jyotiprasad Agrwala's political ideas of beauty and culture have been reflected in his plays. Especially the women characters depicted in his plays are the prospective pioneer of the cultural reconstruction of their respective time and society. They assert themselves against the dominant discourse of anti-culture in their own individual ways. Usha and Chitralekha in the play *Sonit Konwari* stood against the patriarchal authority and war hysteria of King Ban. King Ban's irrational zeal for war and power has been extinguished by the spirit of inner culture possessed by Usha and Chitralekha. Jyotiprasad Agarwala was the product of this fertile period. In this context of socio-cultural and political development, Jyotiprasad tried to discover the cultural glories and dignified position of women in the history. He saw his mother Kironmoyee Agarwala and other women who had shown

their social responsibility in the critical context of nation. Such situation helped him to look back to the cultural crusader like Chitralekha, Usha etc who launches silent and symbolic revolution against any sort of patriarchal authority and its, authoritative imposition upon individual liberty and freedom. Jyotiprasad Agarwala was one of the devotees of the romanticism. Romanticism as a broad philosophy of individual liberty, freedom, humanity, fraternity and respect for past glories highly encouraged Jyotiprasad Agarwala to see the world and life of people from the liberal point of view. He strongly opposes any sort of bondage, inhumanity. He considered these opposite elements as the anti-culture forces. He calls upon artist to fight against such anti-cultural forces. Thus, Chitralekha who symbolically transforms Ban, the war cult into the worshipper of Krishna, is the symbol of culture.

On the other hand Sewali and Kanchanmati in *Karengar Ligiri* had to assert themselves against the dominant discourse of patriarchal authority, conservative values and norms, gender and class discrimination in their own individual ways. *Karenghar Ligiri* (the palace Maid), the second play of Jyotiprasad Agarwala is one of the outstanding masterpieces in the history of Assamese dramas. The play standing on its own merit is constructed with eternal conflict and contradictions of individuals with the ongoing social system, values regarding class and gender. Jyotiprasad Agarwala examines the status and position of women as a gender and class in the play Karengar Ligiri. Jyotiprasad Agarwala depicts certain women characters in this play and someone of them is the representative and protector of decadent tradition of conservative and feudal social values controlled by monarchial political system and someone of them shows their moral spirit and power of truthfulness against patriarchal dominance and class discrimination within their limited purview. In the very initial stage we find Rajmao (Queen Mother), the representative of monarchial and feudal social system with domineering self upon the life of her son, Sundar Konwar who is also portrayed as the dominant figure in the name of bringing a new order and unfortunately two innocent women Sewali and Kanchanmoti have to become victims of these two dominant figures Rajmao and Sundar Konwar. Jyotiprasad Agarwala shows how the foundation of monarchial and feudal system based upon false pride and artificial vanity is shaken by the spiritual power and truthfulness. Similarly, Rupalim and Itibhen in the play *Rupalim* assert themselves against the dominant discourse of patriarchal authority, socio-political exploitation in their own individual ways. Rupalim is an outstanding female protagonist with higher moral spirit and spiritual power. She taught lusty and cruel Manimugddha that love cannot be consummated if it is not mutual. She has transformed Manimugddha in to a new man. Jyotiprasad Agarwala through his play *Nimati Kaina* portrays the cordial relationship between inner and external culture. Jyotiprasad symbolically asserts against the all forms the anti culture through the abstract character Nimati Kaina. Jyotiprasad's conception of an ideal state has been expressed in this plays. He wanted a spiritual and ethical transition along with the socio, economic and political transformation in the entire society. On the other hand, Labhita also plays an outstanding role in saving culture by fighting against the dominant discourse of colonialism and patriarchy. After all, Jyotiprasad Agarwala's political vision of establishing beauty and culture in the society has been reflected through the female protagonists depicted in his plays

Jyotiprasad Agarwala's Understanding of Women :- For Jyotiprasad culture is not autonomous. It is closely related to politics. He used culture that is the medium of drama to reflect the socio political reality of the then contemporary time. He aimed at establishing an ideal society based on liberty, equality, fraternity, justice and creativity to create a beautiful world.

Jyotiprasad tried to champion the cause of women in those days when women were hardly allowed to take part in the public domain .Jyotiprasad Agarwala,s political vision of establishing culture in the society is found to be expressed in women characters in his plays. Most of female protagonists depicted in dramas are active agents oh his cultural mission. He tried to dismantle the

bias myth about women by proving their cultural spirit and outstanding zeal in the entire political mission of reconstruction of society and nation building process. So, in order to transform the society Jyotiprasad used culture as a strong instrument. He believed in the realistic principle of social transformation. In his entire life, Jyotiprasad experienced and identified the nature and mode of anti culture in the forms of the discrimination, subjugation, injustice and gender biasness etc. At the same time, he tried to experiment the victory of culture over anti culture through his women characters in the plays like Sonit Konwari, Karengar Ligiri, Rupalim, Labhita etc. To him, king Ban's irresistible passion for power, conservative values, authoritative and anti-women behavior of Sundar Konwar, Rajmao, discrimination and oppression of Manimugddha, Rukmi King, Renthiang etc. are all the symbols of anti culture or duskriti. On the other hand, Jyotiprasad had shown how female protagonists like Usha, Chitralekha, Sewali, Kanchanmati, Itibhen, Labhita stood against all sorts of counter culter or duskriti. These female protagonists appear as the cultural crusaders in the mission of social reconstruction. Jyotiprasad tried to justify the position of women in the society by making them the active representatives of his cultural mission. He tried to send the political message through the women characters depicted in his plays. His Chitralekha, Kanchanmati, Sewali, Rupalim, Itibhen, Navamalini, Labhita etc. are the active representatives of his cultural mission. These female protagonists play the progressive role in protecting and preserving the culture.

Conclusion :- The aforesaid discussion reveals Jyotiprasad Agarwala's understanding of beauty and culture depicted in his dramas. Jyotiprasad Agarwala's dramas are the testimonies to his political and ideological penetrations into the socio-political and cultural issues. He championed the cause of women in the colonial and post colonial period. By projecting female characters as cultural crusaders against dominant discourse of patriarchy and other anti cultural forces he champions the cause of women in contemporary period. Jyotiprasad projects the issue of women empowerment in the discourse of nationalism, struggle against the anti culture in forms of gender discrimination and other socio political and economic exploitation. But least not the last Jyotiprasad Agarwala's significant role in the women emancipation movement in the 20th century of Assam makes him an unconscious feminist. By involving women in the socio-political and cultural area Jyotiprasad Agarwala tried to make a room for women in the public domain. His understanding of women can be understood through his dramas and Joymoti. In the days of colonialism Jyotiprasad Agarwala pioneered a cultural revolution and women were the active crusaders in his cultural revolution. During colonialism women were not allowed to take part in any public domain. But Jyotiprasad took the vibrant initiative in bringing women out of the four walls of the house. He showed the indomitable zeal and spirit of women by involving them in the socio-political and cultural programs. In his entire life Jyotiprasad Agarwala championed the cause of women.

References :-

1. Balassa, B. (1961). *The Theory of Economic Integration London*: Allen and Unwin
2. Agarwala, Jyotiprasad. (2003). *Jyotiprasad Rachanawali* Guwahati : Assam Publication Board.
3. Bardwell,David and Kristin Thompson. (2004). *Film Art: An Introduction* New York: McGraw Hill.
4. Brecht, Arnold. (1988). *Political Theory*, New Delhi: Surjeet Publication.
5. Bhagawati, Dhiren (2012) *Jyotiprasad's Politics and Ideology* in Akhil RanjanDutta(ed.) Culture Ideology Politics, Guwahati: DVS Publisher.
6. Gauba , O.P.(2018). *An Introduction to Political Theory* New Delhi: Mayur.
7. Gohain, Hiren.(2002). *Jyotiprasad Rachanawali* Guwahati: Assam Publication Boar

A Study of Attitude of Arts And Science D.El.Ed Trainees Towards D.El. Ed Programme in Kumaun Region

Swati Pant Lohni*

Dr. Maya Joshi**

ABSTRACT :- Teaching has been one of the oldest and respected profession in the world. Teacher education is a programme that is related to the development of teacher proficiency and competence that would enable and empower the teacher to meet the requirements of the profession and face the challenges therein. The success of teaching depends on teacher's attitude towards teaching profession, interest in profession, job satisfaction and teaching experience The present study is an effort to look into the working of D.El.Ed. program with the help of trainees. In this study attempts have been made to analyse the attitude of D.El.Ed. trainees towards teaching based on their stream with the help of an attitude scale. Therefore, descriptive research design has been employed for the current study. The present study is focused on Kumaun division of the state of Uttarakhand, India. A sample of 275 trainees were taken to investigate their attitude towards the D.El.Ed. programme. A questionnaire was prepared by the researcher herself based on the available past literature. The study revealed that science trainees have more positive attitude towards D.El.Ed. programme than arts trainees.

Keywords:- Attitude, teachers, trainees, D.El.Ed., teacher education.

INTRODUCTION :- Teaching has been one of the oldest and respected professions in the world. The role, functions, competence and preparation of teachers have undergone a dramatic change from time to time. In 1986, national policy on education was presented which laid stress on teacher education program. Training school were updated to DIETS and training colleges were upgraded into colleges of teacher education (CTEs) and institutes of advanced studies in education (IASEs). The revised national policy on education (NPE), 1992 also emphasized the functioning of teacher education institution. National council for teacher education (NCTE) was established in 1995. It is a regulatory body to regulate teacher education courses. NCTE has a crucial role in giving recognition to colleges for running these courses. Several factors affect the teacher quality such as status of teachers, attitudes, remuneration, work conditions and their academic and professional education. To run the schools more efficiently, and to play in the making of a teacher (NPE, 1986). Teaching being a dynamic activity requires a favourable attitude and certain specific competencies from its practitioners. Teachers' proficiency depends on the attitude he/ she possesses for the profession. The positive attitude helps teacher to develop a conductive learner friendly environment in the classroom. This also casts a fruitful effect on learning of the students. Attitude being a social construct is influenced by many factors like gender social strata, age, and stream of education and previous experience of the job.

The study of attitude of teacher towards teaching is also important to analyse the teaching as profession. Though 'attitude' is a familiar word and is used freely to express one's way of thinking, feeling or behaving, as a psychological and conceptual term, it is exceedingly difficult to define 'Attitude'. The term "attitude" has been used by psychologists in several connotations and there seems to be no agreed definition of the term. While conceptualizing attitude, Allport's' pointed out that the essential feature of attitude is "preparation or readiness for response" (Allport, 1929). Thurstone's (1931) defined attitude as "the affect for or against a psychological object". But subsequently developments in the operational measurement of attitudes by Thurstone, Likert, Guttman and others seemed to bring with them a slow change in the concept of "attitude" as an internal, one-dimensional, abstract and evaluative concept. As such, the positive attitude of the teachers brings a learner friendly environment in the classroom which has fruitful effect on learning of the students. Teachers need to

*** Research Scholar, L.S.M.G.P.G.C. Pithoragarh Kumaun University, Nainital**

****Assistant Professor, Education Department, L.S.M.G.P.G.C. Pithoragarh Kumaun University, Nainital.**

observe the sort of attitudes students form and should encourage them to culminate the healthy one. Teachers' smiling face, zest and enthusiasm, encouraging conversation, questions and even criticisms seemed to be more effective in changing attitudes than mere telling or reading. When a pupil loves and respects his teacher, he learns far more from him than books or subject matter. He acquires the attitude of his teacher. The current study attempts to analyse the attitude of D.El.Ed trainees based on their stream towards the D.El.Ed programme running in Kumaun region.

REVIEW OF LITERATURE :- Holt and Goodwin (1981) conducted a study on the relationship of need fulfilment to job attitudes of faculty in higher education. They found that a strong positive correlation existed between need fulfilment and job satisfaction. Academic discipline significantly affected only one dimension of need fulfilment esteem. Faculty in the natural sciences and mathematics showed lower scores than faculty in the humanities, social sciences and professional and applied field. Gupta and Jain (2013) undertook to assess and compare the attitude towards creative teaching of B. Ed. Pupil-teachers belonging to science and art streams. A sample of 200 B.Ed. pupil teachers was drawn by using stratified random sampling technique from 5 colleges of Sambhal district. Attitude towards creative teaching was assessed by employing Attitude Scale of Creative Teaching developed by Dr. R. P. Shukla. The study revealed that B. Ed. Pupil-teachers of science stream have more positive attitude towards creative teaching than their counterpart of arts stream.

Chakraborty and Mondal (2014) investigated the professional attitude of prospective teachers with reference to their gender, category, religion, locale, subject stream and academic qualification. The investigator developed the attitude scale to collect data. The findings yielded that prospective teacher with postgraduate degree have higher attitude towards teaching profession than that of prospective teachers with graduate degree. Further, the result also shows that there is no significant difference found for prospective teachers with reference to their sex, category, religion, demographic location and subject stream.

Bhargava and Pathy (2014) conducted a study and found that attitude towards teaching profession of non-tribal (male & female) student teachers of science as well as social science stream do not show significant difference. The study undertaken depicts that in tribal category significant difference at 5% level is observed between male and female student teachers of science and social science stream. Females possess more favorable attitude in comparison to Male tribal students in both the academic streams. While comparison of Non tribal (female) and Tribal (Female) students of science stream shows that tribal (female) have more favorable attitude towards teaching profession, while no significant difference in attitude towards profession was observed among Tribal and Non-tribal (Male) students of science stream, it also reveals that female student teachers of social science stream (Tribal & Non tribal) show no significant difference in their attitude towards teaching profession. Same is the case with male student teachers (Tribal & Nontribal) of social science. In all the three groups, Tribal (female) student teachers show favorable attitude towards teaching profession. Aparna (2015) examined the attitudes towards teaching profession with respect to their gender, areas of subject and location (rural and urban areas). The researcher took the sample of 100 B.Ed. students of different colleges of Ahmedabad district and stratified random sampling technique was used. The survey method was adopted to carry out the research work. The study revealed that both the teachers from general stream and science stream have a similar attitude towards teaching profession.

Kamran et al. (2015) examined and compared the attitudes of students from education discipline versus other disciplines (Physics, Chemistry, Biology and others) of Gomal University towards the teaching profession in Pakistan. The design of the study was quantitative survey with a sample of 292 students (178 males & 114 females) participated in the study. The study revealed that the students had positive attitudes towards the teaching profession which is very significant as this profession is seriously dependent on the attitudes of the students. The findings also indicated that students offering Education had the most positive attitudes towards the teaching profession and those who had the least positive attitude towards teaching were those who offered "other" courses. These were the courses other than Chemistry and physics.

PROBLEM OF THE STUDY :- Various studies have revealed that there exist a signific difference in attitudes of science and arts streamed teachers and trainees. No such study is conducted in Kumaun region till the date so the researcher tends to find out whether there is some difference in attitudes of

science and art streamed D.El.Ed trainees towards the D.El.Ed program,so the problem of study has been stated as below:

OBJECTIVES OF THE STUDY.

1. To compare attitudes of science and arts D.El.Ed trainees towards D.El.Ed programme.
2. To compare various components of attitudes of arts and science D.El.Ed trainees towards D.El.Ed programme.

HYPOTHESIS

1. There is no significant difference between attitude of science and arts D.El.Ed trainees towards D.El.Ed program.
2. There is no significant difference between attitude of science and arts D.El.Ed trainees towards various components of D.El.Ed program.

DELIMITATION :-The study was confined to six DIETS of Kumaun Region. The study was delimitated to trainees having science stream and arts stream during their graduation period.

POPULATION :- The study was conducted in Kumaun region of Uttarakhand. All the six DIETS were included and all the students enrolled in D.El.Ed programme constitute the population of sample.

SAMPLE :- A sample of 275 trainees from six DIETS of Kumaun region Uttarakhand were selected for the study using purposive sampling method.

DEVELOPMENT OF THE TOOL :- For the purpose of investigation, the researcher used a self-developed questionnaire which consisted 45 statements related to the D.El.Ed programmes running in DIETS.

DATA COLLECTION ;- The data was collected by the researcher from all the six DIETS. Questionnaires were distributed among the trainees and they were given 30 minutes to fill the questionnaires.

STATISTICAL TECHNIQUES USED :- To test the difference between the mean scores of attitude towards D.El.Ed program of the male and female D.El.Ed trainees , mean, median, standard deviation, standard error of mean difference and t- ratio were computed.

ANALYSIS AND INTERPRETATION OF DATA

Table 1: Stream wise distribution of D.El.Ed trainees

STREAM	FREQUENCY	PERCENTAGE
ARTS	138	50.2
SCIENCE	137	49.8
Total	275	100

To test the difference between the mean scores of attitude towards the D.El.Ed program of the art streamed and science streamed D.El.Ed trainees , mean standard deviation , standard error of mean difference and t-ratio was computed and shown below in the table 2.

Table 2: : Significance of difference between male and female trainees with respect to their attitude towards D.El.Ed program using t – ratio.

Gender	N	Mean	SD	SE	t-ratio	Significant at 0.05 level	Significant at 0.01 level
Arts	138	167.17	21.95	2.88	2.79	Significant	Significant
Science	137	175.20	25.62				

Findings :- Table 2 shows that mean score of Attitude towards D.El.Ed program of the Arts D.El.Ed. trainees is 167.17 and Science D.El.Ed trainees is 175.20. 't'-ratio of Attitude towards D.El.Ed program of the Arts and Science D.El.Ed trainees is 2.79 which is greater than 1.96 and 2.58. So, the mean difference is found significant at 0.05 and 0.01 level. Hence hypothesis "There is no significant difference between attitude of Arts and Science trainees of D.El.Ed program." stands rejected at 0.05 and 0.01 level. Thus, there was a significant difference between the mean scores of attitude towards the D.El.Ed program of Arts and Science D.El.Ed trainees. In addition, it is evident that the mean scores of attitude towards D.El.Ed program of Science trainees is higher than those of the Arts trainees.

Besides testing the above hypothesis researcher is also interested to find out significant difference between Arts and Science trainees in respect to different aspect of Attitude towards D.El.Ed program. The following Table 3 shows means and t-values of all the components of Attitude towards D.El.Ed program.

Table 3: Means and t-values of all the components of Attitude towards D.El.Ed program

Components	Stream	N	Mean	SD	SE	t-ratio	Significant at 0.05 level	Significant at 0.01 level
Curriculum	Arts	138	51.70	8.42	0.98	3.03	Significant	Significant
	Science	137	54.69	7.93				
Facilities in Institute	Arts	138	30.83	6.19	0.72	2.60	Significant	Significant
	Science	137	32.69	5.64				
Working of institute.	Arts	138	23.73	4.55	0.51	1.53	Not Significant	Not Significant
	Science	137	24.51	3.86				
Rules Regulations and Objectives	Arts	138	24.24	3.99	0.45	1.68	Not Significant	Not Significant
	Science	137	24.99	3.41				
Teachers and Qualities	Arts	138	20.55	3.52	0.43	2.46	Significant	Not Significant
	Science	137	21.61	3.63				
Practical and Internship	Arts	138	16.12	3.07	0.34	1.72	Not Significant	Not Significant
	Science	137	16.71	2.55				

Findings :- Stream and Curriculum: The value of 't' is found to be significant at both level of significance and hence it is concluded that there is significant difference between Arts trainees and Science trainees in respect to attitude towards curriculum. It is further observed that Science trainees (mean = 54.69) have more positive attitude towards curriculum than the Arts trainees (mean = 51.70).

Stream and Facilities in Institute: The value of 't' is found to be significant at 5% level of significance and hence it is concluded that there is significant difference between Arts trainees and Science trainees in respect to attitude towards facilities in the institute. It is further observed that Science trainees (mean = 32.69) have higher attitude towards facilities in the institute than the Arts trainees (mean = 30.83). Stream and Working of Institute: The value of 't' is found to be not significant at both level of significance and hence it is concluded that there is no significant difference between Arts trainees and Science trainees in respect to the attitude towards working of the institute. The result indicates that the attitude of Arts and Science trainees towards working of the institute is same. Stream and Rules, Regulations and Objectives: The value of 't' is found to be not significant at both level of significance and hence it is concluded that there is no significant difference between Arts trainees and Science trainees in respect to the attitude towards the rules, regulations and objectives of D.El.Ed program. The result indicates that the attitude of Arts and Science trainees towards rules, regulations and objectives of the D.El.Ed program is same.

Stream and Teachers and Qualities :- The value of 't' is found to be significant at 0.05 level of significance and hence it may be concluded that there is significant difference between Arts trainees and Science trainees in respect to attitude towards teachers and their qualities. It is further observed that Science trainees (mean = 21.61) have more positive attitude towards teachers and their qualities than the Arts trainees (mean = 20.55).

Stream and Practical and Internship :- The value of 't' is found to be insignificant at both level of significance and hence it is concluded that there is no significant difference between Arts trainees and Science trainees in respect to attitude towards practical and internships provided by the institute. The result indicates that the attitude of Arts and Science trainees towards practical and internship is same.

DISCUSSIONS :- In the present study it was found that science trainees have more positive attitude towards D.El.Ed. programme then the arts trainees. In addition, a study carried by Gupta and Jain (2013) found that B. Ed. Pupil-teachers of science stream have more positive attitude towards creative teaching than their counterpart of arts stream. It is very serious issue and practices should be made out to remove this difference in attitudes of trainees as well as teachers based on their educational stream as

the study of Aparna(2015) revealed that both the teachers from general stream and science stream have a similar attitude towards teaching profession in Ahmedabad.

SIGNIFICANCE OF THE STUDY:- Attitude being a dynamic entity gets influenced by variables like age, previous experience, beliefs, gender and stream of education. New teachers enter the teacher training program already established beliefs but Pre-service teacher training programmers help in shaping the attitude of teacher trainees by providing a series of experiences incorporated in their curriculum**.** It was found that science trainees are better in attitude towards D.El.Ed. programme in the Kumaun region. So, there is a need to bring some behavioural change in respective areas for science and arts trainees. Each subject is very important either its science or arts. Attempts should be made to remove this disparity related to stream among the students and trainees. If the attitude of trainee is positive towards the program, it can be assumed that in future trainees will try to bring out best in their students regardless the stream they belong to, and will surely help in all round development of students

Reference :-

1. Allport, G. W. (1929). The composition of political attitudes. American Journal of Sociology, 35, pp. 220-238.
2. Bhargava, A. and Pathy, M.K. (2014). Attitude of Student Teachers towards Teaching Profession. Turkish Online Journal of Distance Education, 15 (3), pp.27-36.
3. Chakraborty, A., Mondal, B.C. (2014). Attitude of Prospective Teachers towards Teaching Profession. American Journal of Social Sciences, 2 (6), pp. 120-125.
4. Government of India, Ministry of Human Resource Development (1986). National Policy of Education, 1986. (1986) Plan of Action, 1986. (1990) Towards an Enlightened and Human Society: Report of the Committee for Review of National Policy on Education (Ramamurti Committee).
5. Gupta, S. and Jain, A. (2013). Attitude of B.Ed. Pupil-Teachers of Science and Arts streams towards Creative Teaching: A Study. International Journal of Advancement in Education and Social Sciences, 1 (1), pp. 36-41.
6. Holt and Frances Goodwin (1981). The Relationship of Need Fulfilment to Job Attitudes of Faculty in Higher Education. Doctoral Dissertation Abstract International, 42 (9), p. 3882 - A.
7. Kamran, M., Abasimi, E., and Rao, C. (2015). Comparative Study of the Attitudes of Education and Non-Education Students towards the Teaching Profession in Gomal University, Pakistan. International Education and Research Journal, 1 (4), pp. 52-56.
8. Pancholi, A. (2015). Student- Teachers' Attitude towards Teaching Profession. International Journal of Research in Humanities and Social Sciences, 3 (8), pp. 40-43.
9. Thurstone, L.L. (1931). The measurement of social attitudes. Journal of Abnormal and Social Psychology, pp. 249–269.
10. Thurstone, L.L. and Chave, E.J. (1929). The measurement of attitude. Chicago: The University of Chicago Press.

Resistance through Persistence : A critical study of *The Vegetarian*

Dr. Anju E.A.*

ABSTRACT : The novel *The Vegetarian* is a Korean text that raises a lot of critical and disturbing questions related with female identity, the right to choose, cultural limits, liberation, violence, sanity, multiple dimensions of suffering and grief, psychological pain, and female sexuality. The novel revolves around the life of a woman who dare to kill herself to establish her own identity. This paper tries to showcase how does a woman, after a lot of suffering, attempt to express her protest to the patriarchal society in a unique way. In order to inform others of her protest, she asserts her sovereignty over her own body demands it as a private space. This paper will highlight the various reasons which make the heroine, Yeong hye, to break the shell of her passive behavior and how she converts this seemingly insignificant decision to be a vegetarian as a strategic site of resistance. The paper is an attempt to comprehend the subtle contours of identity politics and critically examines how an under privileged women could stand up on their own feet and resist the society by a shocking act of persistence.

Keywords : Patriarchy, Resistance, Persistence, Sanity, Body Politics, Self-affirmation.

Resistance literature includes and reflects the texts which actively resist oppression or oppressive systems in a discursive manner. In this sense, Han Kang's novel *The Vegetarian* is a resistance narrative. The novel narrates the life of Yeong hye and her sudden decision to be a vegetarian. This paper analyses the reasons which make the heroin to break the shell of her well nurtured habit of silence and obedience and how she converts this seemingly insignificant decision to be a vegetarian as a strategic site of resistance. The paper explores how Han Kong employs food politics and body politics as a discursive and subversive strategy to foreground the suppressed female self.

The Vegetarian demonstrates how an under privileged women become self-determining and resist the society by a shocking act of persistence. *The vegetarian* was originally published as three separate novellas: *The Vegetarian, Mongolian Mark, Flaming Trees* in 2007. Deborah Smith translated the novel into English in 2015 and it won the prestigious Man Booker International Prize in 2016. The novel is based on Kang's 1997 short story *The Fruit of My Woman* which illustrates the story of a woman who turned into a plant. The plot revolves around an ordinary South Korean woman Yeong hye's decision to be a vegetarian and it's drastic consequences. The novel is in three parts and each part narrates different phases in her life. The most prominent thing about this narration is that each part of the novel is narrated from the viewpoint of a different character, other than the Yeong hye herself.

Only if one explores the causes and implications of Yeong hye's choice with a critical insight, which results in the profound personal transformation of Yeong hye, one could comprehend the depth of her resistance. Joanne Brewis in her article "Refusing to be 'me'" explores the multiple struggles and strategies of female resistance. She critically observes that resistance lies in adopting a process of understanding the constraints on self and identifying the possibilities of alternative identity projects. Michael Foucault in his work *Politics, Philosophy, Culture* (1988) points out that freedom lies in making conscious choices which he calls "the practices of liberation" (50). In this sense, Yeong hye's choice to be a vegetarian is a performance of liberation. It is a potent reaction against the atrocities inflicted of hegemonic patriarchal power. All the men in her life were badly dominant. Therefore, her

***Assistant Professor, Department of English, Sri. C. Achutha Menon Government College, Thrissur, Kerala. Home Address: Karuvely House, Old Market Aluva. 683101.**

decision to be a vegetarian can be interpreted as her resistance to victimisation. Her craving to live as a tree is born out of her ardent desire to get a relief from all bonds and constraints. For that, she exercises her hitherto unknown sovereignty and spinning herself between sanity and madness.

Mr. Cheong, the narrator of the first part, is a typical patriarchal husband. He places himself as the centre of the narration and projects his own subject positions. This indicates the objectification which she suffers throughout her marital life. With her unexpected decision to become a vegetarian, first and foremost, Yeong hye disturbs the equilibrium of her husband's life. According to Yeong-hye's husband, her most distinctive trait is her passive personality. Actually, this passive nature was the root cause of his choice of her as his wife. He "always inclined a middle course in life" (4) and was completely satisfied with her behaviour after their marriage. He observes: "In keeping my expectations, she made for a completely ordinary wife who went about things without any distasteful frivolousness" (4). But to his surprise his passive and obedient wife suddenly decides to stop eating meat. The very first line of the novel describes his embarrassment: "Before my wife turned a vegetarian, I'd always thought her as completely unremarkable in every way" (3). When he realized that she is very much determined, he becomes very upset. In the patriarchal culture, a woman does not have the right to make or implement a decision on her own. By this defiant act, she expressed her unwillingness to continue her subjective position. She redefines herself as a powerful individual.

In her childhood her father, who is a war veteran, decides everything in the family. In his personal life he is a man with strong ideas and lacks compassion. In hye recalls an incident in childhood when she and Yeong hye went astray in the nearby woods. While In hye was trying hard to the ways to back home, Yeong hye has plead her sister that they should never go back home. Many years later, when she is sitting next to Yeong hye, In hye can understand the true meaning of that request to stay in the woods. In their family, In hye and her brother Yeong ho were her father's favourite children and Yeong hye had been the perpetual victim of their father's beatings. "Only Yeong-hye, docile and naive, had been unable to deflect their father's temper or put up any form of resistance. Instead, she had merely absorbed all her suffering inside her, deep into the marrow of her bones" (204). Now In Hye could understand that Yeong hye's resistance is unique and it is a creation of her tormented self.

Yeong Hye's decision not to eat is a disagreement with the patriarchal disciplinary forms of power. Her father has heard the decision of his daughter to be a vegetarian in utter disgust. He views his daughter decision as a defiant act. At no point in his life did he view her as a person to make her own decisions. Rather than listen to what she has to say, he screams and tries to force her out of her decision. Cheong narrates the conversation between the quick-tempered father and determined Yeong hye in the family get-together: "My father-in-law shouted at Yeong hye. "Don't you understand what your father's telling you? If he tells you to eat, you eat!" (38). Her decision to disobey father can be interpreted as her way of individualizing herself against the constraints of the patriarchal hegemonic power. While observing the interaction between the father and the daughter, Cheong asides "... a lifetime's rigid discipline unable to disguise his advanced age" (38). Her father had seen her till that day as a mere subjective species without an individual voice. Yeong hye's refusal to eat meat infuriates him. "He'd hit her so hard that the blood showed through the skin of her cheek" (39). He even goes to the extent of force-feeding her a piece of pork. This confrontation ends in the suicidal attempt of Yeong hye. Thus, Yong hye cast aside the veil of a subservient individual and violently resists the dominant patriarchal disciplinary power by her suicide attempt.

The predominant male character in the second part of the novel is In hye's husband. He is a video artist and he sexually attracted to Yeong hye. Excited by her Birth mark, he wants to make her a model for her sexually explicit film. But his objectification of her body also resisted by her, but in a discursive way. He is very much obsessed with Yeong hye's body. Thus, she is subjected to the male gaze. Her resistance challenges the patriarchal hierarchical structures which grants the male the sole ownership of female body. Though by painting flowers on her body, he wants to exploit the body, she dismantles the situation by stating that she permits that because she enjoys that. It is a golden

opportunity for her to live as a plant. She generates a new form of sexual pleasure during the shoot and it liberates her soul. In that way she subverts the ascribed role of a victim. When she confesses that she felt sexual arousal during the shoot she made her stand clear: "It wasn't he, it was flowers." (106). In order to gratify his sexual urge, he pleads her to replace him for the model. But her response even nullifies his very existence in her life: "She laughed. Faintly, as if there were nothing she wouldn't do, as if limits and boundaries no longer held any meaning for her. Or else, as if in quiet mockery" (107). Sexual harassment, rape, sexual abuse these are some forms of male violence of female sexuality. But in this episode, she nullifies these effects of patriarchal impositions on her sexuality. He cannot humiliate or degrade her as she challenges the objectification of her body and redefining it as a source of pleasure.

Yeong-hye's decision to become a vegetarian can be taken as a culmination of self-affirmation. She wants to distinguish her "self" from other one's around her whom she considers as animalistic. Yeong-hye gives others no more valid explanation for her sudden change of diet than "I had a dream"(8). Becoming a vegetarian is a tough decision for someone like her. Because as Bourdieu (1984) observes, food ways are integral part of an individual's cultural habitus. A human being's food taste and habits take a long time to evolve and maintained through constant practices and are cultivated only after a long period of time and incorporate various cultural and social elements. In this regard, Wetherell (2012:96) called food ways are "Affective Practices" (96). In a country like South Korea, it is rather unusual for someone to declare themselves vegetarian. Moreover, Yeong hye belongs to an orthodox nonvegetarian family. In normal case it is not easy for anyone to shift from one mode of food habits from another mode as Julies M. Parsens rightly observes: "… Because they are ongoing emotional, socially constructed, embodied, situated performances infused with sedimented social and personal history" (1). Thus, one's food habits, though evolved slowly; becomes a part of one's life. Hence Yeong hye's unexpected decision is not as simple as being a vegetarian only. Her proclamation of being a vegetarian bring about a liberation from the social and cultural environment that has oppressed her. In fact, it is an assertion of her suppressed self.

The process of this assertion of suppressed self was not an easy task. She has to confront with patriarchal hegemonic power everywhere. As Foucault observes power and power relations in a society is multifaceted. Yeong hye's straight forward decision to be a vegetarian is challenged and ridiculed by many. When she was invited to a hotel to have a meal with husband's boss and family, she has to face many normalizing judgements. They could not even agree that what to eat is a personal choice. She has to face various adverse comments like "Meat eating is a fundamental human instinct, which means vegetarianism goes against human nature, right? It just isn't natural.. . . It seems to be that one shouldn't be too narrow minded when it comes to food. . . . A balanced diet goes hand in hand with a balanced mind." (23-24). Though she is their guest she has to tolerate with their abusive remarks about her personal choice. Nonetheless she didn't say much against their comments, she has reached to a level to not to feed herself in the socially and culturally expected ways. Moreover, she enjoys a hidden pleasure in evading the norms of society for her own reasons.

Patriarchal society always refuses a woman's right over her own body. In this regard, Nadia Brown and Sarah Allen Greshon says that in a patriarchal culture female body is "both socially shaped and colonized" (1) and female body is "shaped by practices of containment and control" (1). Yeong hye's defiant decision to be a vegetarian also helps her implement body politics in a certain way. The strange behaviour her husband first noticed in Yeong Hye was her reluctance to wear a bra. "She tried to justify herself by saying that she couldn't stand wearing a bra because of the way it squeezed her breasts." (4). She always wanted to bathe her breasts and naked body in sunlight. Although for others it is a symptom of insanity, for her it is a claim of exclusion of her body from the patriarchal disciplinary forms of power.

One can interpret Yeong hye's madness as her counter hegemonic resistance. Foucault in his *History of Madness,* states that the madman is the figure who breaks the "fastidious conformity" of society and consequently brings disturbances in the society. He argued that mad people are more an

asocial factor than a mind empty of reason and recognition. Therefore, to be mad is to never lose sanity but to hesitant to accept the norms of the rest of the society. Moreover, mad people always question the validity of what others have accepted as social norms (346). The most obvious symptom of her insanity is her desire to become a tree. She is dreaming of living like a tree in a state of insanity: *"Look, sister, I'm doing a handstand; leaves are growing out of my body, roots are sprouting out of my hands"* (127). She tells In hye that she doesn't need food, only water. In her attempt to transform into a tree, she even abandoned her ability to speak. Though for others her behaviour is extreme symptoms of insanity, In hye realizes that this strange ambition to be a tree is her reaction to the atrocities of patriarchal society.

In reality, from her childhood onwards, Yeong hye has shown a tendency to take refuge in nature. Trees were her sole relief from her torturing father and uncaring siblings. Gradually she associates everything that hurts her with animals and wishes to discard all animalistic nature in her. Subsequently she even detests her human existence and wishes to live the life of a plant. The novelist here parallels the lives of these two sisters before readers. In hye views herself as someone who has forgotten to live because of self-inflicted endurances. At this point, she is jealousy of her sister. According to her, Yeong hye celebrates success in her own life by making and implementing tough decisions herself. Though, for others Yeong hye is insane and a person who violently destroys her very human existence, according to In hye, Yeong-hye has found a kind of serenity in life.

Patriarchal institutions and male dominated ideas thwart females from attaining their sexuality and identity. In this novel, Yeong hye's resistance is subtle and passive. She determines to enjoy the power and possess a strong feminine identity by developing a desire for freedom and change. Through the implementation of her decision to be a vegetarian she positions herself, in the words of bell hooks, "from margin to centre". Thus, the resistance of Yeong hye is intricately laced into her non-conformity to the social norms. Her decision to be a vegetarian is the consequence of an intimate experience of repression and oppression. It is her resistance through persistence which aims to invert and subvert all the patriarchal structures of domination.

References

1. Brewis Joanne. "Refusing to be 'me'". Edited by Thomas R, Mills A and Helms Mills J, Identity. Politics at Work. Routledge, pp. 23–39, 2004.
2. Brown, Nadia E and Sarah Allen Gershon. "Body politics." Politics, Groups, and Identities 5(1), pp. 1–3, 2017.
3. Foucault, M. *History of Madness*, Translated by Jonathan Murphy and Jean Khalfa, Routledge, 2006.
4. *Politics, Philosophy, Culture: Interviews and Other Writings 1977–1984*, Edited by L.D. Kritzman, Routledge, 1988.
5. "The Eye of Power." In *Power/Knowledge*, edited by C. Gordon, 55–62. Pantheon. 1977.
6. hooks, bell. *Feminist Theory*, Pluto, 2000.
7. Kang, Han. *The Vegetarian*, Translated by Deborah Smith, Granta, 2018.

Accessibility of Assistive Technology for Inclusion of Differently Abled Students

Amit Shanker*
Ravi Kant*

Abstract :- Every individual has unique property, so to make inclusive society everyone should be given equal opportunity. As per change in global perspective there became tremendous change in life style of differently able people, these people are playing their role for betterment and humanity. Assistive Technology may benefit different kinds of people; it includes differently able person and normal person too. To make Inclusive education successful, Assistive Technology plays significant role, Assistive Technology also support empowerment of these differently abled people. Although there are some issues with this assistive technology likewise availability, high cost, training, accessibility etc. There is provision for availability and accessibility of assistive technology at national and international level. Universal Design of learning also promotes for better accessibility of Assistive Technology. Assistive technology is a strong tool for increasing freedom and increasing participation in activities. From early morning to late night people are using Assistive Technology it may start with simple folding cane to advanced software too. SWAYAM MOOC is world largest e-learning portal which is also providing learning in easy and accessible form. Accessible Text book for all is also main focus area for national and international agencies. Different stakeholders are performing their role for making inclusive and accessible environment for differently able people, so that they can perform their role in effective and efficient way.

Key Words: - Assistive Technology, Accessibility, Differently abled students, Inclusion

Introduction :- Assistive technology encompasses everything that is used to aid differently abled individuals, whether directly or indirectly. Assistive products and technology are described as "any product, instrument, equipment, or technology adapted or specifically designed for improving the functioning of a person with a handicap," according to several definitions. “Any item, piece of equipment, or product system, whether purchased commercially off the shelf, modified, or customised, that is used to increase, maintain, or improve the functional capabilities of a child with a disability,” according to the International Classification of Functioning, Disability, and Health (ICF). Assistive Technology is helpful to students of all kinds of disability it promotes for their social and educational Inclusion. Assistive technology allows and encourages those with disabilities, the elderly, and those with non-communicable diseases to participate fully in society. The fundamental goal of an assistive device is to keep and increase a person's freedom. People with assistive devices can live healthy, productive, and dignified lives while also participating in school (World Health Organization, 2021). Some commonly seen assistive products include hearing aids, wheelchairs, spectacles etc. In daily life we are seeing different kind of assistive devices, which may be of low tech, mid tech and high tech, which we can see in our surrounding like wise folding cane, laser cane, smart cane, audio book ,mobile talk back function, software like JAWS and many more. The Right of Persons With Impairments Act (RPWD, 2016) aims to offer free books and other learning materials, as well as suitable assistive equipment, to students with qualifying disabilities up to the age of eighteen. Assistive devices and appropriate technology-based tools, as well as adequate and language-appropriate teaching-learning materials (for example, textbooks in accessible formats such as large print material and Braille), are all supported by the National Education Policy (NEP,2020), which states that assistive devices and appropriate technology-based tools, as well as adequate and language-appropriate teaching-learning

***Research Scholar, Department of Teacher Education, Central University of South Bihar, Gaya, India.**
*** Associate Professor, Department of Teacher Education, Central University of South Bihar, Gaya, India.**

materials (for example, textbooks in accessible formats such as large print material and Braille), are all supported by the National Education Policy (NEP,2020). This will apply to all school activities, such as athletics, the arts, and vocational training.

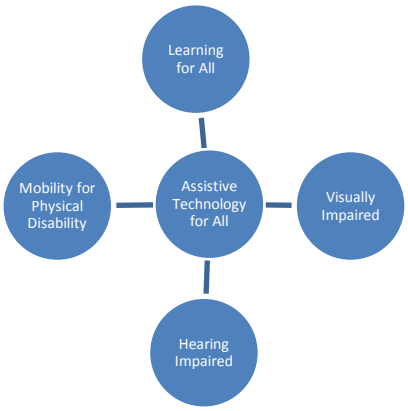

Figure 1 Assistive Technology provides Assistance to All

"Universal design" refers to the production of items, settings, programmes, and services that are usable by everyone, to the greatest extent possible, without the need for modification or specialised design on a global scale. The employment of assistive technology for certain groups of persons with disabilities is not prohibited by "universal design." (United Nations Convention on the Rights of Persons with Disabilities, 2006).

Accessibility and Inclusion :- Here Accessibility considered to the design of products, devices, services, or environments so as to be usable by all. Accessibility may be viewed as the "ability to access" and enjoy some system or entity. The concept focuses on enabling access for people with disabilities, or special needs, or enabling access through the utilization of assistive technologies so that everything are often accessed by all.

The Salamanca Statement and Framework for Action on Special Needs Education (1994) establishes the guiding idea that all children, regardless of their physical, intellectual, social, emotional, linguistic, or other problems, should be accommodated in schools. Disabled and gifted children, street and working children, children from remote or nomadic communities, children from linguistic, ethnic, or cultural minorities, and children from poor or marginalised places or groups should all be included. There should be worldwide cooperation to allow universal accessibility criteria in communication technology that supports the expanding information infrastructure.

The United Nations Convention on the Rights of Persons with Disabilities (2006) focuses on making information regarding mobility aids and assistive technology, including new technologies, available to people with disabilities, as well as various types of support services, assistance, and facilities. Access to assistive technology is seen as a prerequisite for achieving equality of opportunity, exercising human rights, and leading a dignified life. Disabled girls and boys have access to readily available and cheap assistive technology. It is both a national and an international obligation to protect this freedom.

Article 32 of the United Nations Convention on the Rights of the Child (2006) asks for international collaboration among states, international and regional organisations, and civil society. Persons with disabilities should be included and accessible in international development programmes. Capacity-building must be facilitated and supported through the interchange and sharing of knowledge, experiences, training programmes, and best practises. Appropriate technical and financial assistance, as well as technology transfer, including increasing access to and sharing of accessible and assistive technologies. In the Indian context, the RPWD (2016) has introduced measures to safeguard the rights of all people with disabilities. This legislation focuses on creating technology, assistive devices, and equipment to make recreational activities more accessible and inclusive for people with impairments.

The World Health Organization's (2021) strategy on access to assistive technology focuses on the growing demand for assistive technology as the world changes and the frequency

of non-communicable illnesses rises. The major problems in providing fair access to assistive technology are highlighted in this policy brief. It works to enhance access in five main areas: policy, goods, staff, and services, all of which are centred on people. The major target audience is policymakers interested in establishing assistive technology policies and programmes, particularly those involved in developing universal health care programmes. The main goals are to promote awareness of the individual and social benefits of universal health care and improved access to assistive technologies.

According to Ahmad (2015), accessibility may be both a celebration of diversity and a critical factor in ensuring students' participation in the learning process. With access to information, awareness, mainstream education curriculum, learning materials, assistive devices, and thus the necessary support services, students with disabilities can learn at the same level as their non-disabled peers in the common classroom, removing all barriers that prevent them from receiving a quality education.

According to studies, inclusion in education has been shown to increase educational effectiveness, resulting in improved educational results for students with disabilities in inclusive environments (Katz and Mirenda, 2002).

In their study, Shanker, Devi, and Singh (2019) discovered that school architecture is not a major barrier to accessibility and inclusion of differently abled students, which is also a key point of NEP (2020), which states that all buildings and facilities must be wheelchair-accessible and disabled-friendly.

Accessible Website/ Digital Content :- According to UNICEF (2015) in its discussion paper, some children with severe disabilities who are unable to attend school can obtain an education at home and communicate with others via the use of assistive technology, accessible information and communication technologies. ICTs provide new methods to overcome accessibility barriers, allowing children with disabilities to exchange information and communicate in ways they couldn't previously.

The National Education Plan (NEP) for 2020 focuses on online teaching platforms and technologies. Appropriate e-learning systems, such as SWAYAM and DIKSHA, will be enhanced to give instructors with an organised, user-friendly, and comprehensive collection of supportive tools for assessing students' progress. Tools for holding online lessons, such as two-way video and two-way audio interfaces, are a vital requirement in the current pandemic scenario.

The SWAYAM MOOCs platform, which is the world's largest online free E-Learning portal, was launched by the Indian government to achieve three cardinal principles of education policy: access, equity, and quality, by covering School/Vocational, Under-Graduate, Post-Graduate, Engineering, and Other Professional Courses. The goal of this platform is to give the greatest teaching and learning materials to everyone, especially those who are differently abled or disadvantaged. SWAYAM aims to close the digital gap for a variety of students who have been left behind by the digital revolution and have been unable to participate in the knowledge economy.

Accessible Text Book :- The National Development Plan (2020) emphasises that the federal and state governments would take efforts to ensure that books are made accessible and cheap to all people across the country, including those in socioeconomically disadvantaged areas and those living in rural and isolated locations. Both governmental and commercial sector agencies/institutions would be responsible for improving the quality and appeal of books produced in all Indian languages. Steps will be done to increase online library book accessibility and expand the reach of digital libraries.

A wide range of instructional software will be created and made available for students and instructors at all levels for all of the aforementioned reasons. All of this software will be available in all of India's main languages and accessible to a wide variety of users, including kids in rural regions and those with special needs. All states will continue to create teaching-learning e-content in all regional languages, and NCERT, CIET, CBSE, NIOS, and other bodies/institutions will upload it to the DIKSHA platform. This platform may also be utilised for online teacher training for teachers who employ e-content. CIET will promote and grow DIKSHA, as well as other educational technology initiatives. Teachers will be provided with appropriate equipment at their schools so that they may effectively incorporate e-contents into their teaching-learning processes. DIKSHA/SWAYAM and

other technology-based education platforms will be better integrated into school and higher education, and will incorporate user ratings to allow content creators to build user-friendly and qualitative material.

Conclusion :- For many children, parents, teachers, and administrators, the use of assistive technology in the teaching-learning process is a vital tool. The accessibility of assistive technology is a key problem when it comes to creating a more inclusive environment. In education, Universal Design is making a big contribution to covering all types of disabilities on the same platform, allowing for more inclusion and access for everyone. The main goal is to improve individual and stakeholder awareness in order to encourage access to assistive technology as part of universal health care. Access to assistive technology may change people's lives, including fostering healthier populations and future generations who can engage and contribute to society's improvement.

Several improvements in the teaching-learning process have been seen in the realm of education. Now a days, digital material and debate via digital platforms resources are being monitored. There are several virtual classes, meet ups, and webinars being planned. All of them are designed to give teaching and learning in urgent and pandemic situations. Several considerations must be made while developing and disseminating digital information in order to incorporate accessibility features. Otherwise, college students with impairments will find it worthless or pointless. As a result, to provide equitable education for everyone, accessibility in digital content, sharing platforms, debate forums, and assessment systems must be ensured. SWAYAM MOOC platform is also contributing to improved learning in an accessible format, which is important for successful inclusion.

References :-

1. Ahmad, F.K. (2015) Use of Assistive Technology in Inclusive Education: Making Room for Diverse Learning eeds. Transcience Vol. 6, Issue 2 ISSN 2191-1150.
2. Katz, J. and Mirenda, P. (2002). Including students with developmental disabilities in General Classrooms: Educational benefits. International Journal of Special Education vol. 17, no 2.
3. National Education Policy (2020) Ministry of Human Resource Development, Government of India Retrieved from https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf accessed date 15-07-2021.
4. Shanker, A., Devi, B. & Singh, M. (2019). A Study of Architectural Barrier Free Environment At Primary School Level In Gaya. Ayan (October-December 2019) ISSN : 2347-4491 315
5. Swayam, About SWAYAM, Retrieved from https://swayam.gov.in/about accessed date: 15-07-2021
6. The Rights of Persons with Disabilities Act, 2016, Gazette of India (Extra-Ordinary); 28 December. 2016. Retrieved from http://disabilityaffairs.gov.in/content/page/acts.php accessed date: 15-07-2021.
7. The Salamanca Statement and Framework for Action on Special Needs Education (1994), World Conference on Special Needs Education: Access and Quality Retrieved from https://www.right-to-education.org/sites/right-to-education.org/files/resource-attachments/Salamanca_Statement_1994.pdf accessed date: 15-07-2021
8. UNICEF (2015) Assistive Technology for Children with Disabilities: Creating Opportunities for Education, Inclusion and Participation A discussion paper Retrieved from https://sites.unicef.org/disabilities/files/Assistive-Tech-Web.pdf
9. United Nation Convention on Rights of Persons with Disabilities (2006), Retrieved from https://www.un.org/development/desa/disabilities/convention-on-the-rights-of-persons-with-disabilities.html
10. WHO, ICF Browser Chapter 1 Products and technology: Retrieved from https://apps.who.int/classifications/icfbrowser/Default.aspx accessed date: 15-07-2021
11. World Health Organisation (2021), Assistive Technology, Retrieved from https://www.who.int/health-topics/assistive-technology#tab=tab_1
12. World Health Organisation (2021) Policy brief: Access to assistive technology Retrieved from https://www.who.int/publications/i/item/978-92-4-000504-4

Justice delayed is justice denied : Prison and Multitudinal Traumatic Experiences

Smitha Mary Sebastian*

Abstract: Nineteenth-century witnessed a multifaceted addition to the British legacy, the Central Prisons. The prison system will undoubtedly be the only institution in the country that has not undergone any significant transition in its conduct. The disproportion between criminals and undertrials is alarming in Indian prisons. Jigna Vora, a crime reporter, was implicated for instigating the murder of J. Dey. Her memoir, "Behind Bars in Byculla: My Days in Prison" reveals the power play at work in Indian prisons, favouring those higher in the hierarchy. Arrested under the Maharashtra Control of Organized Crime Act (MCOCA), Jigna Vora's searing narration remains an eye-opener to the humiliation and trauma an innocent woman undergoes in prison. The paper purports to chronicle the pain while asserting the immediate need for social change and reforms in the deplorable state of prisons in the country.

Keywords :- prison reforms, undertrials, incarceration, women.

Introduction :- National Crime Records Bureau's latest prison data for 2019 reveals 19,913 women inmates lodged in Indian jails. Women undertrials (13,550) account for 68% of all female prisoners, with most of them i.e., 6,402 being in the 30-50-year-old age bracket, accounting for around half of all female undertrials. The data reveals the systemic delay in justice meted out to the undertrials, with most of them serving cumulative years in prison for crimes not committed.

"Behind Bars in Byculla: My Days in Prison" starts with the graphic description of the suicide of Himanshu Roy, a 1988 batch IPS officer. The reason stated being his vexation with cancer. He played a pivotal role in solving many sensational cases, but the one of markedness is the investigation of the murder of Jyotirmoy Dey, a veteran in crime journalism. It was proved that the murder was executed by the hitmen of underworld don and gangster Chotta Rajan. In a drastic twist of fate, an innocent female journalist was apprehended by the police – Jigna Vora. Himanshu Roy was instrumental in Jigna Vora's arrest. He claimed to have 36 transcripts of Chotta Rajan and Jigna Vora planning the murder of J. Dey. In a prolonged legal battle spanning nearly seven years, Jigna Vora emerged guiltless at the cost of her successful life and career. The memoir narrates Vora's life in detail with vignettes from her promising professional career to its utter destruction.

Maharashtra Control of Organized Crime Act (MCOCA) was passed in 1999 with the primary goal of regulating and controlling the rise of organised crime and terrorism in India's economic capital, Mumbai. The Act gives the State Government exceptional authority to deal with surveillance, procedural safeguards, criminal punishments, including the death sentence. Booked under the MCOCA, Jigna Vora steps into a very different environment, the prison, on 9th December 2011.

Vora unfolds the crude and primitive methods still under practice in Indian prisons. When she finds herself amidst a divergent group of incarcerated women, the narrative pans across from her personal life to other women's experiences, examining squabble and teamwork within the prison's inmates. She sets aside space for other inmates in an effort to shed light on the women's pasts and the circumstances that led to their incarceration. The book also addresses

* **Assistant Professor, Kristu Jayanti College, Bengaluru, Karnataka.**

the significant flaws in the system which always ally with the privileged.

Early life and Career :- The intense narration of prison life is often interspersed with anecdotes from early life and career. After studying law, Vora marries the man of her parent's choice to realize he lied about his academic qualifications. The abusive relationship is left behind, Vora and her child start their life from scratch. After completing her diploma from an evening college, she joins as a court reporter in Free Press Journal, then Mumbai Mirror, and later as senior correspondent in Mid-Day. J. Dey was the investigations editor at Mid-Day. Throughout Vora's career in journalism, she has never interacted with J. Dey other than for a customary glance.

Humiliation and Prison :- Jigna Vora's life behind bars begins with unexplainable humiliation, which any female inmate of a prison undergoes from the primal method of checking for contrabands, strip searches, and being addressed as 'whore' by other inmates (4). She becomes well aware of the prison's social hierarchy on the first day of her arrival. The 'dirtier than a warehouse' barrack housed around forty women with their own methods for assigning space to the newcomers (4). Those at the bottom of the barracks' social ladder had hardly enough room to sleep. Those at the top of the power structure were afforded comparable luxury.

Vora never forgets to mention the little acts of kindness conveyed to her. An African undertrial offers her a 'coarse piece of bread' when she cannot let herself in to consume the chapattis and watery dal with strands of black hair gliding in the dal or the brinjal with worms in it. Food is usually coarse, dry, and tasteless; hence wastage of food is routine. Since women were accused of stealing food for personal consumption, it was men who prepared food. There are also allegations that sedatives are added to the food to maintain discipline.

Every Friday, Jail superintendent's visit becomes a pretence since no inmate dared to voice their complaints or requests. They knew their life would take a vicious turn if spoken againstthe authorities.

Inmates and Prison :- Sangeetha, whom Vora comes across, was lodged in the prison for some silly transgression. She witnesses severe segregation from other inmates on account of her contracting AIDS. Inmates never interact with her for fear of contracting the disease, which manifests the lack of awareness among them.

On the other hand, Sapna Pereira goes to the extent of irking the prison authorities by climbing the walls of the barracks as a means of protest. Her vexation arises from the fact that police never showed up for her court visit. After vain assurances and promises by the authorities, Sapna relents to the police, only to be manhandled by them. Sapna's only intention whereas is to secure money for her visually impaired daughter's operation.

Vora narrates her stint with Pragya Singh Thakur, then indicted in 2008 Malegaon bomb blasts. Kept in high-security solitary confinement, Pragya's meeting with Vora presumes mention since it plants "the first seeds of spirituality" in her (31).

Poverty becomes the root cause of most of the African inmates' imprisonment. Many have contracted HIV since they are compelled to prostitution and be drug mules for meager amounts of money. For them, "Jail is better than home….We get three meals a day here. And this place is more hygienic (87)." For many of the underprivileged inmates, having a lawyer to fight their case is a luxury. Even corrupt NGOs loot the inmates with the promise of delivering a message to their homes for Rs. 500.

Privilege and Prison :- Social distinctions within Byculla Jail evolved from occupation, just as they did outside. There exist groups for pickpockets, robbers, and the like. Even though jail is conceived to be a rehabilitation centre, it plays its part unscathed in recruiting new members to existing gangs and reconceptualise their territory for future activities. Prison provides the ground and opportunity for criminals to expand their current organisations.

The prison is controlled by the powerful, who often gets away with privileges entitled to none. Jaya Chheda, a demi-god in prison, is one such influential figure that Vora encounters.

Everyone bows at Jaya's feet, and "upsetting Jaya Maa was a cardinal sin" that nobody would commit. Jaya was also spared from doing any works in the prison.

> In a world where others used their clothes as makeshift pillows, Jaya had the privilege of using a thick mattress, a fluffy cotton pillow, and even a quilt; all of which had been moved to Barrack No. 1 for her impending arrival. The way she looked around it seemed like she was the queen of the jail (54).

Jaya was unable to eat due to her weight-loss operation. Inside Byculla Jail, where edible food was scarce, she manages to get a court order which allows her home-cooked food three times a day. She distributed her meals to the less fortunate undertrials, thereby winning their eternal allegiance. She exacted revenge if any other inmate was held in high regard and had African undertrials by her side to carry out her bidding. "Inside the prison walls, there existed only one mantra for survival: J for Jail, J for Jaya" (58).

Conclusion :- A few occasions restore her lost dignity, be it Vora's meeting with Surinder Kumar, the Inspector General (Prisons), or the humility of Saji Mohan, an accused IPS officer. Vora finds numerous ways to let the embers of hope alive. She turns to spirituality, prayer and the withered tree becomes a symbol of her enduring anticipation of freedom. It is still ambiguous why Jigna Vora, of all the people, was wrongly accused of a crime she never committed. Whether it is professional jealousy or mismanagement of police, her life and those dependent on hers were abysmally affected. Police can devastate the life of anyone and the delayed legal proceedings in the country could entrap an innocent behind bars for years.

The narrative of resistance advocates for accountability and transparency in matters related to law enforcement agencies. Newspapers, magazines, and television channels played their part by savagely preying on Vora and celebrating not her acquittal but her arrest. Who will hold responsible for the years of unending trauma, pain, loss, and humiliation of the individual and the family? Prison has exerted its perpetual mark on Vora, transforming her, but her innocence and unyielding spirit have made her fight against injustice possible. Perhaps it has also made her "a better person," a warrior, in her own words and not a victim (159).

Reference :-

1. FP Staff. "Andhadhun makers to adapt journalist Jigna Vora's prison memoir, Behind Bars in Byculla, for screen". Firstpost, https://www.firstpost.com/entertainment/andhadhun-makers-to-adapt-journalist-jigna-voras-prison-memoir-behind-bars-in-byculla-for-screen-7507301.html. Accessed 17 July 2021.
2. FP Staff. "J Dey murder case: Chhota Rajan found guilty by special MCOCA court, journalist Jigna Vora acquitted". Firstpost, https://www.firstpost.com/india/j-dey-murder-case-chhota-rajan-found-guilty-by-special-mcoca-court-journalist-jigna-vora-acquitted-4453565.html. Accessed 17 July 2021
3. National Crime Records Bureau, ncrb.gov.in/en/prison-statistics-india. Accessed 15 July 2021.
4. NDTV, "Media Was Against Me: Journalist Jigna Vora To NDTV". *YouTube,* 15 September 2019, https://www.youtube.com/watch?v=Cmkco1cfW2c.
5. Press Trust of India. "J Dey murder case: Bombay HC upholds acquittal of Jigna Vora, cites lack of direct evidence against former journalist". Firstpost, https://www.firstpost.com/india/j-dey-murder-case-bombay-hc-upholds-acquittal-of-jigna-vora-cites-lack-of-direct-evidence-against-former-journalist-7237201.html. Accessed 18 July 2021.
6. PTI. "Journalist J Dey murder case: CBI files chargesheet against Chhota Rajan". Firstpost, https://www.firstpost.com/india/journalist-j-dey-murder-case-cbi-files-chargesheet-against-chhota-rajan-2937406.html. Accessed 18 July 2021.
7. Times Now, "A journalist's murder | Inside". *YouTube,* 15 September 2019,https://www.youtube.com/watch?v=nYAzdNV5_ZQ.
8. Vora, Jigna. *Behind Bars in Byclla: My Days in Prison.* Penguin Random House India, 2019.
9. Zaidi, Hussain. "Jigna Vora Book Launch." *YouTube,* uploaded by Hussain Zaidi Books, 6 October 2019, https://www.youtube.com/watch?v=Swj5N-PEwb4.

Gandhi's Concept of Religion

Tinku Khatri*

Abstract :- Paradoxical though it might appear today, it is the case that Mohandas Karamchand Gandhi, however, conceived and raised in an ardent Hindu family saturated with Vaishnavism, was not all-around educated about the religion of his introduction to the world till an extremely late age in his life. He has conceded in his life account that from his 6th or seventh year, till his sixteenth, while he was at school, he was shown a wide range of things except for religion. In any event, when he showed up in London in 1888, at nineteen years old, his insight about Hinduism was still exceptionally pitiful. It was distinctly towards the finish of his subsequent year is stay in England, when he ran over two theosophical siblings who welcomed him to peruse Edwin Arnoldís interpretation of the Gita with them, did he understand with the disgrace that he had not perused the Gita either in Sanskrit or in his first language, Gujarati. On perusing the Gita interestingly he was profoundly dazzled and as he says, the book struck me as one of inestimable worth.[1]

Keyword:- Gandhi's view, Gandhi's concept, Religion.

Introduction :- On the suggestion of the theosophical siblings, Gandhi additionally read Sir Edwin Arnoldís the Light of Asia, which listed the existence of Gautam Buddha. While in England, Gandhi was acquainted with the Bible by his English companions and he specifies in his personal history that the New Testament, especially the Sermon on the Mount, went directly to his heart. Gandhí's strict journey, which started in England, discovered satisfaction in South Africa, where he showed up in 1893. At the point when Gandhi was met by the lawyer Mr. A. W. Bread cook, who needed to learn his strict perspectives, Gandhi answered, I am a Hindu by birth but then I don't know a lot of Hinduism and I know less of different religions. Indeed, I don't have the foggiest idea where I am, and what is and what ought to be my conviction. I expect to make my very own cautious investigation of religion and to the furthest extent that I can, of different religions also.[2]

What is striking about Gandhi is that even when his insight about Hinduism was as yet restricted, he felt a nostalgic bond with the religion of his introduction to the world, as is clear from an occurrence that happened in Gandhi's life while he was in South Africa. Some Christian evangelists, who were likewise his companions, were making an honest effort to change Gandhi over to Christianity and needed him to disavow Hinduism, which they saw as loaded up with the strange notion and visually impaired confidence. One of Gandhi's companions, Mr. Coates, requested Gandhi to eliminate the Vaishnava jewelry from Tulsi dabs which Gandhi's mother had put around his neck. In any case, he would not do as such. The neckband was an image. Gandhi could no more dispose of Hinduism than the neckband he was wearing without adequate explanation, both having come down to him from his adored guardians.

Discussion :- Similarly, as his Christian companions were trying to change Gandhi over to Christianity, so were his Muslim companions like Abdulla Sheth attempting to instigate him to examine Islam. He bought Sale is interpretation of the Koran and started understanding it. He additionally acknowledged different books about Islam. It was during this time that Gandhi started strict correspondence with Edward Maitland whose books The Perfect Way and The New Interpretation of the Bible dazzled Gandhi. Additionally, Tolstoyís the Kingdom of God is inside you likewise had an enduring effect on him.

*** Research Scholar, Department Of Sociology, O.P.J.S.University, Churu, Rajasthan, India.**

When under tension from Christian Missionaries in South Africa, Gandhi started correspondence with a portion of his companions in India, prominent among who was Raychandbhai or Rajchandra. It was Rajchandra who provided a feeling of guidance to Gandhi's strict journey. He encouraged Gandhi to be patient and to examine Hinduism all the more profoundly. Rajchandra kept in touch with Gandhi: On an impartial perspective on the inquiry I am persuaded that no other religion has the unpretentious and significant considered Hinduism, its vision of the spirit, or its lucidity".[3] He sent Gandhi books on Hinduism which significantly affected him.

Thusly, Gandhi's strict mission conveyed him toward a path unthought-of by his Christian companions, however as he conceded in his life account, though I took away my Christian companions had not expected for me, I have stayed forever obliged to them for the strict journey that they stirred in me".[4] In his strict journey, three famous characters affected Gandhi the most: Rajchandra, Leo Tolstoy, and John Ruskin. Tolstoy's the Kingdom of God Is inside You presented to him the logical inconsistencies of coordinated religion and put forth Gandhi's inclination to oppose the converting attempts of the preachers in South Africa. The worth of existence of straightforwardness and the poise of difficult work was brought to him by Ruskin while Rajchandra supported Gandhi's confidence in Hinduism.

It was in South Africa that Gandhi made a relative investigation of various religions and reached the resolution that there was basic solidarity among them. For the remainder of his life, he stressed the requirement for conjunction and resilience among different strict networks. God, Allah, Rama, Narayan, Ishwar, and Khuda, he felt, were all portrayals of some being. Thusly, the investigation of relative religion, the perusing of different religious works, and numerous discussions and correspondences with learned strict figures carried Gandhi to the end that genuine religion was more a question of the heart than of the acumen, and that certified convictions were those which were drilled in their entirety in regular day to day existence. Hindus and Hinduism, during this time, we're going through a very changing time, opposing the pressing factor of Christian evangelists, who were effectively occupied with converting. While the Hinduism of the informed tip-top would, in general, be theoretical and mysterious, at the famous level Hinduism would, in general, be more formal. Gandhi tested many age-old thoughts and practices. He didn't stop for a second to rethink conventional convictions and reject rehearses that run against his explanation and heart. Hinduism, he accepted, could revive itself.

Gandhi's revisionist technique and his experience mind h Hindu universality is deserving of additional note. He, for the most part, didn't give unfit faithfulness to scriptural position, but instead, asserted the option to decipher strict texts in the light of reason, profound quality, and good judgment. His emphasis on the independence of human explanation and soul in the translation of strict texts, thoughts, and practices, for himself as well as for every strict individual, makes him, as indicated by B.R. Nanda, perhaps the most daring strict reformers of his time.[5]

Gandhi was to trust years after the fact to a gathering of Christian preachers that Hinduism as far as I might be concerned fulfills my spirit fills my entire being and I discover comfort in the Bhagavad Gita which I miss even in the Sermon on the Mount.[6] Ultimately his comprehension of Hinduism was decreased to a couple of principal convictions in the incomparable truth of God, the solidarity of all life and the worth of adoration (ahinsa) as a method for acknowledging God. There was no extension for restrictiveness or thinness in this bedrock religion. He accepted that Hinduism offers space for the love of the multitude of prophets of the world and was not a minister religion in the standard sense. In Hinduism, he accepted, everybody could venerate God as per their conviction or dharma and lives in harmony with different religions. In a 1927 article entitled why I am a Hindu, Gandhi put forward two reasons that attracted him to Hinduism:

I have found it to be the most tolerant of all religious... Its freedom from dogma… gives the rotary the largest scope for self-expression. Not being an exclusive religion, it enables the followers of that faith not merely to respect all the other religions, but… to admire and assimilate whatever may be good in the other faiths. Non-violence is common to all religions, but it has found the highest expression and application in Hinduism... Hinduism believes in the oneness not of merely all human life but in the oneness of all that lives.[7] The fact is that Gandhi's concept of religion did not have much in common with what generally passes as the dogmas and rituals of organized religion. Without these accretions, the religion of Gandhi was simply an ethical framework for conduct in daily life. He wrote in 1920:

Let me explain what I mean by religion... It is not the Hindu religion, which I certainly prize above all other religions, but the religion which transcends Hinduism, which changes one is very nature, which binds one indissolubly to the truth within and whichever purifies. It is the permanent element in human nature that... leaves the soul restless until it has found itself.[8] It has to be borne in mind, however, that Hinduism, as interpreted and practiced by Gandhi did not mean that he considered it superior to other religions. On the contrary, he preached about the unity of religions. The various religions, he said were as so many leaves of a tree, they might seem different but at the trunk they are one'.[9]

Conclusion :- For the duration of his life accordingly, Gandhi proceeded to emphasize the requirement for conjunction and resistance between the followers of different beliefs. Gandhi has been scrutinized from different quarters that his excessive accentuation on Hinduism estranged the Muslims from standard patriotism and made ready for the parcel of the country in 1947. It has been asserted that his utilization of terms like Ramarajy, Sarvodaya, Swaraj, Ahinsa, and Satyagraha, or the singing of the psalm Raghupati Raghava Raja Ram, had solid Hindu hints, which drove the Muslims to accept that autonomous India would be a place where there is Hindus in which h the Muslims would be underestimated. Such a charge doe's bad form to the convictions of the Mahatma who had all through his life battled for Hindu-Muslim solidarity and who eventually fallen a casualty to a Hindu patriot. Countering that charge, B. R. Nanda has called attention to that Gandhi's utilization of terms, for example, Swaraj or Sarvodaya had minimal strict significance.[10] For the duration of his life, Gandhi rehearsed this religion, targeting wiping each tear from each eye, and we can in any case view him as one who looked to join humankind through a religion of truth, love, solidarity, and fellowship.

Reference :-

1. Gandhi, M. K. (2001). An Autobiography or the Story of My Experiments with Truth. New Delhi: Penguin books. p. 76.
2. Ibid., p. 121.
3. Ibid., p. 136.
4. Ibid., p. 137.
5. Nanda, B. R. (2002). In Search of Gandhi, Essays and Reflections. New Delhi: Oxford University Press. pp. 18-19.
6. Harijan, 28 September, 1935.
7. Young India, 21 October, 1927.
8. Young India, 12 May 1920.
9. Nanda, op. cit., p. 21.
10. Nanda, ibid., p. 27.

Spatial Inequalities in the Distribution of Critical Household Infrastructure in Jabalpur City

Rambooshan Tiwari*

Prashant Tiwari**

Abstract :- The enormous size of the urban population and inadequate infrastructure is the feature characteristics of urbanization in India. The disproportionate concentration of urban population in metropolitan cities has aggravated the gap between demand and supply in critical urban infrastructure facilities and accessibility to household amenities in the cities such as Jabalpur. The inadequacy of many essential infrastructural facilities such as drinking water, toilet facilities, fuel for cooking and drainage connectivity is commonly observed in the city. Census data provides extensive and detailed information regarding the availability of these infrastructural facilities at the household level. The present study analyzes the household level changes in the availability of some essential infrastructure facilities based on 2001 and 2011 census data. There are substantial intra-urban spatial inequalities in the availability of these infrastructural facilities. Post census boundary changes due to the annexation of the new area in the municipal boundary have aggravated uneven distribution. All the nine new wards added in the Jabalpur Municipal Corporation (JMC) are lagging compared to the existing wards regarding the availability and accessibility of selected infrastructure facilities.

Keywords :- Drinking water facilities; fuel for cooking; toilet facilities; drainage connectivity; spatial distribution.

Introduction :- As per the Census-2011, India has a large urban population of over 377 Million living in 7935 urban centers, including 53 metropolitan/million-plus cities. The metropolitan bias is commonly observed in urban India (Laha, 2019) as 43% of India's urban population resides in these 53 metropolitan cities. These metropolitan cities are also serving as service centre at the local and regional level. The residents of these cities and commuters exerting tremendous pressure on the existing infrastructure. The city needs a different type of infrastructure to fulfil the conflicting demands of its residents and commuters. These household-level services are required to fulfil the demand in-situ. The increasing population in these million-plus cities has raised the demand for a better quality of infrastructure. This study focuses on the infrastructure required to sustain more than one million occupants of Jabalpur city.

The theoretical perspectives on unequal access to the urban household amenities and infrastructure can be drawn from the Chicago School of Urban Sociology (Smith, 1995). The core-periphery relation in spatial perspectives is the driving force behind analyzing an unequal distribution of urban infrastructure (Liu et al., 2020). Urban infrastructure and amenities are a widely discussed topic in academia that has become more prominent in the 21st century due to increased urbanization levels. The perspective to analyze the housing infrastructure varies significantly from one country to another. Bonnefoy (2007) has explored the impact of housing infrastructure on human health. The traditional factors such as caste cannot be overruled entirely in the inequalities related to the availability of infrastructure (Haque et al. 2018); however, in metropolitan cities, these are less prominent (Desai and Dubey, 2012), and other factors such as population density and slums have a more prominent role to play.

Very few studies related to Jabalpur city has been conducted earlier. The earlier studies are more concerned with the public infrastructure and neglect the availability of housing infrastructure. The study on public infrastructure facilities (Tiwari and Singh, 2010), slums (Tiwari and Singh, 2010; Singh

***Assistant Professor, Department of Geography, Indira Gandhi National Tribal University, Amarkantak, (M.P.)**

**** Research Scholar, Department of Geography, Indira Gandhi National Tribal University, Amarkantak, (M.P.)**

et al., 2013), and solid waste management (Jain et al., 2005; Tiwari and Singh, 2016) are notable among them. Tiwari and Singh (2015) have analyzed the quality of life in the city based on household amenities. However, the unit of analysis was administrative zones, and micro-level spatial perspectives are missing in the study. Overall the geographical works focused on Jabalpur city are limited, and none of them focuses on intra-urban inequalities. The present study is probably the first attempt to study the availability of household infrastructure in the Jabalpur city that consider spatial-temporal aspects of household-level infrastructure facilities.

Study Area :- Jabalpur city is among the 53 metropolitan cities of India and the third-largest city of Madhya Pradesh (Census, 2011). The city is the most populous urban center located on the right bank of Narmada valley and the largest in central Indian cities (CDP, 2005). As per the 2011 Census, the city is divided into 70 wards, and the Jabalpur Municipal Corporation (JMC) has divided the city into nine administrative zones. In the post census annexation, nine new wards have been added in the boundary of JMC, and the administrative zones have been increased from nine to fifteen. The city served as a service center and a regional hub of economy and industry that attracts many migrants. The city is connected with various cities of the country through roadways, railways and airways.

Objectives :- The study has conducted to fulfil the following objectives:

1. To analyse the decadal variation (2001-2011) in the essential household infrastructure in the city.
2. To describe the ward-wise spatial variation in the accessibility of basic infrastructure in the households of the city during 2011.
3. To identify the probable causes responsible for the spatial variation in the household infrastructure.

Data sources and Methodology :- The ongoing study relied on the census data of 2001 and 2011 (H-series data). The census data are the only reliable source of information about the availability and accessibility of household amenities. The household-level study involves the four parameters related to the basic infrastructure, i.e. availability of drinking water, latrine facilities, fuel used for the cooking and drainage connectivity. The details of the data used in the study are presented below in Table 1.

Table 1: Census data utilized in the study

S. No	Type of Information	2001	2011
1	Source of drinking water	H-12	HH-11
2	Type of latrine facilities	H-12	HH-8
4	Type of drainage connectivity	H-10	HH-9
5	Fuel used for cooking	H-11	HH-10

Source: Compiled from Census of India, 2001 & 2011

Other data sources, such as the City Development Plan of 2005 and Project Proposal of Jabalpur Smart City Project-2015 and different websites, have also been utilized as supplementary data source. However, these H-series data are not comparable at all; therefore, only comparable aspects of the H series census data (Table-1) are considered in the study. The spatial variation among the wards is based on the 2011 census data. Due to the non-availability of ward-wise data for the 2001 census, the spatial analysis for 2001 has not been included.

Table 2: Source of household drinking water facilities in Jabalpur city

Source	Households (2001)		Households (2011)		Change (2011-2001)	
	Number	Percent	Number	Percent	Number	Percent
Tap water	124412	73.46	158206	75.5	33794	27.16
Hand pump	23732	14.01	13055	6.2	-10677	-44.99
Tubewell/ borehole	10672	6.31	31093	14.8	20421	191.35
Other	10537	6.22	7098	3.5	-3439	-32.64
Total	169353	100	209452	100	40099	23.68

Source: Compiled from Census of India, 2001 & 2011

It is evident from Table 2 that more than forty thousand (23.68%) new households have been added to the city in a decade. The total households served by tap water facilities increased from more than 73% to about 76% during one decade. At first glance, it seems that only a little progress has been

made, but overall, 33,744 new households added in the tap water supply. This number is 27% higher than in comparison to the previous decade. Despite this increase, almost one-fourth of the city's households are not covered by municipal tap water supply in 2011. While hand pumps and other sources of the household water supply have reduced significantly. In contrast to it, the supply from personal means such as tube wells has increased rapidly. Tube well connections have increased from 10672 to 31093 (6.31 to 14.8 %) within a decade. Over the years, it was observed that people do not want a complete dependency on municipal water supply due to the uncertain nature of supply and quality concerns related to the water supply.

Table 3: Type of fuel used for cooking in the households of the Jabalpur city

Cooking Fuel	Households (2001)		Households (2011)		Change (2011-2001)	
	Number	Percent	Number	Percent	Number	Percent
LPG	98089	57.92	144915	69.2	46826	47.74
Fire Wood	36677	21.66	49373	23.6	12696	34.62
Kerosene	29152	17.21	9885	4.7	-19267	-66.09
Others	5435	3.21	5279	2.5	-156	-2.87
Total	169353	100	209452	100	40099	23.68

Source: Compiled from Census of India, 2001 & 2011

Table 3 shows that 46,826 new households took the LPG (Liquefied Petroleum Gas) connection during one decade. Due to this remarkable growth, the percentage of households under LPG/PNG connection has increased from 57.92% in 2001 to 69.2% in 2011. However, an unexpected fact observed from the data that firewood's use as a primary fuel source has increased during the decade. In 2011, 36,677 households were dependent on firewood, which has increased to 49,373 in 2011. An absolute increase of about 35% was registered within a decade. The use of firewood is exceptionally high in outer wards of the city.

Table 4: Availability of latrine facilities in households of Jabalpur city

Toilet	Households(2001)		Households(2011)		Change (2011-2001)	
	Number	Percent	Number	Percent	Number	Percent
Available	130854	77.3	176208	84.1	45354	34.66
Not Available	38499	22.7	33244	15.9	-5255	-13.65
Total	169353	100	209452	100	40099	23.68

Source: Compiled from Census of India, 2001 & 2011

Table 4 depicts that households with latrine facilities within the in the city (84.1%) are higher than the state average (urban), as well as the national average (urban), which is 71.54% and 72.57%, respectively (jsclijalur.org). Table 3 reveals that in 2001, 77% of the households reported latrine facilities with their premises, which has increased to 84% in 2011. A total of 45,354 new households were added under the category of 'households with their own latrine facilities' in a decade. This absolute increase was higher than the total number of households (40,099) added in the city during the first decade of the 21st century. The census also reveals that more than 96% of the household latrine facilities had connected with the modern flush based system during 2011.

Table 5: Households drainage connectivity in Jabalpur city

Drainage	Households(2001)		Households (2011)		Change (2011-2001)	
	Number	Percent	Number	Percent	Numbers	Percent
Closed Drainage	36153	21.34	77983	37.20	41830	115.70
Open Drainage	106045	62.62	112841	53.90	6796	6.41
No Drainage	27155	16.30	18628	8.90	-8527	-31.40
Total	169353	100	209452	100	40099	23.68

Source: Compiled from Census of India, 2001 & 2011

Table 5 reveals that households connected with the closed drainage facility have increased by 115.70% with a decade. 37% of the household had connected to the closed drainage system during 2011. Overwhelmingly higher dependency on an open drainage network is partly due to inadequate

infrastructure facilities and hilly terrain that generates a self-sustaining natural flow system. Most of the city's open drains are directly connected with the large *Nallah* (*OmtiNallah* and *SahNallah*). Nallah, along with many ridges, was a dominant control factor informing the city's initial settlement nucleus. Dependency on these natural flow systems (*Nallah*) indicates that the city needs much effort to move from evolution to planning. Households under no drainage facilities have decreased significantly from 16.30% to 8.90% from 2001 to 2011.

Spatial Inequalities in Infrastructure :- Intra-urban spatial inequalities in the provision of household amenities are presented in **Fig 1**. Spatial inequalities in the availability of selected basic infrastructure facilities will be discussed in subsequent paragraphs. The general scenario of the availability of tap water facilities in Jabalpur city households has already discussed earlier. General trends discussed earlier may not display the stark contrasts in the accessibility of tap water supply in the city. The pattern of tap water supply distribution indicates that a lower percentage of households of the outer wards covered with municipal water supply **(Fig 1a)**. At the one end, few wards are almost entirely served by tap water facilities. More than 95% of the households served with municipal tap water supply in ward numbers 17, 18, 31, 32, 34. The corresponding figure was only 36.6% and 39.1% in ward number 35 (dominated by slums) and 64 (peripheral area). The core-periphery relationship exists in the supply of municipal tap water supply. It is worth mentioning that almost similar trends were observed in providing all infrastructure facilities and household amenities, although not with the same intensity **(Fig. 1)**.

Ward-wise infrastructure facilities of households in the city

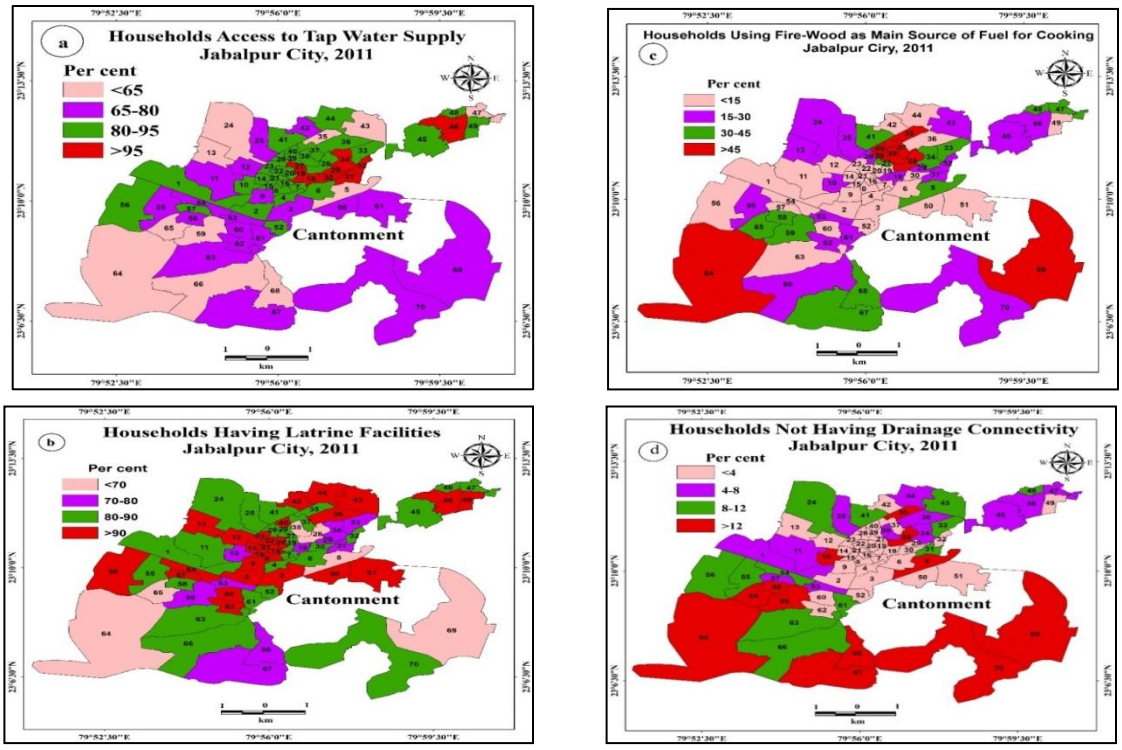

Figure 1

It can be seen in **Fig. 1b** that as many as 27 wards are having more than 90% of households recorded latrine facilities within their premises. On the other hand, in six wards, below 70% of the households have such facilities. Wards number 28 (dominated by slum) and 69 (peripheral ward) represent an extreme case where more than half of the households were recorded without latrine facilities during 2011.

The concentration of households using firewood as a primary source of fuel is high in slum areas such as ward 28 (56.2%) and 38 (63%). The use of firewood in the inner city slums is less common as the firewood's arrangement of firewood is a relatively challenging task in these localities.In the outer wards, the hilly topography and forest area led to the overwhelming use of firewood as a fuel source for cooking meals. The

supply of LPG was also less frequent in these outer wards **(Fig 1c)**. **Fig. 1d** shows that more than 15% of households are not having drainage connectivity in twelve wards. Wards number 64 and 65 (peripheral ward) represent an extreme case where more than 30% of the households were recorded without access to drainage facilities during 2011 **(Fig. 1d)**.

Conclusion :- Inadequate infrastructure and lack of basic household amenities are commonly observed in Indian cities, and Jabalpur is not exceptional. The city is facing the problems of a lack of adequate infrastructural facilities in many households. The fact that above 26% of the city's population resides in slums makes the situation worse. Despite all constraints, it has shown remarkable progress in all indicators during a decade. However, the city's performance is still poor in some key infrastructure facilities. The city's dependency on the open drainage system is one sector that needs immediate attention. The government is already working towards the modification of the current system of open drainage. AMRUT (Atal Mission for Rejuvenation and Urban Transformation) Yojana is devoted to improving drainage system and water supply.

The census data revealed that inadequate infrastructure facilities have found mostly in ward numbers 28, 29, 38 (slum dominated) and 64,65 and 69 (Periphery). The expansion of municipal services in these areas is very poor. The policymakers need to identify the priority areas of inclusive development of the city and reduce the inequalities related to the uneven distribution of urban infrastructure. Development of these identified areas may be the best solution to ensure sustainable development of the city.

References :-

1. Bonnefoy, X. (2007): Inadequate housing and health: an overview. *International Journal of Environment and Pollution*, *30*(3-4), pp.411-429.
2. Census of India, (2001): Tables on Houses, Household Amenities and Assets downloaded from http://censusindia.gov.in/DigitalLibrary/MFTableSeries.aspx (retrieved on 21/07/2019, 19:25 IST)
3. Census of India, (2011): Tables on Houses, Household Amenities and Assets downloaded from http://censusindia.gov.in/DigitalLibrary/MFTableSeries.aspx (retrieved on 21/07/2019, 19:30 IST)
4. City Development Plan, (1991): CDP of Jabalpur City, Town and Country Planning Department, Bhopal, M.P.
5. City Development Plan, (2005): *CDP of Jabalpur for JNNURM.* Jabalpur Municipal Corporation.
6. City Development Plan, (2014): City Development Plan for Jabalpur–2041 (Final Report) supported under Capacity Building for Urban Development (CBUD) Project. Ministry of Urban Development, Govt. of India and World Bank, Delhi.
7. Desai, S., & Dubey, A. (2012): Caste in 21st Century India: Competing narratives. *Economic and political weekly*, *46*(11), 40.
8. Haque, I., Das, D. N., & Patel, P. P. (2018): Spatial segregation in Indian cities: does the city size matter?. *Environment and Urbanization Asia*, *9*(1), 52-68.
9. Jain, G. V., Mahadevia, D., & Ray, C. N. (2005): Urban Governance for Sanitary Waste Management Services in Jabalpur. *Working Paper No. 26* (pp. 1-30). CEPT.Ahmedabad.
10. Laha, M., (2019): Centripetal Forces of Urbanization in Burddhaman Municipality, West Bengal.*Transaction Institute of Indian Geographers*, 41(1), 33-50.
11. Liu, F., Min, M., Zhao, K., & Hu, W. (2020): Spatial-temporal variation in the impacts of urban infrastructure on housing prices in Wuhan, China. *Sustainability*, *12*(3), 1281.
12. Singh, P. O., Dhote, K. K., & Soni, N. (2013): Development of typologies of slum settlements: the case of a million plus city of India. *The Sustainable City VIII (2 Volume Set): Urban Regeneration and Sustainability*, *179*, 1153.
13. Smith, D. A. (1995): The new urban sociology meets the old: Rereading some classical human ecology. *Urban Affairs Quarterly*, *30*(3), 432-457.
14. Tiwari, R. (2017): *Critical Evaluation of SWOT Analysis of Jabalpur City Made in Smart City Project Proposal. Urban Panorama, 16 (1),* 1-15.
15. Tiwari, R., & Singh, J. (2010): A Study of Conditions of Slums in Jabalpur City. *Magadh Geographical Review, 10(1),* 142-156.
16. Tiwari, R., & Singh, J. (2010): Status of Urban Infrastructure in Jabalpur. *Indian Journal of Landscape Systems and Ecological Studies, 33* (1), 37-52.
17. Tiwari, R., & Singh, J. (2015): Measuring Quality of Life: A Case Study of Jabalpur City. *National Geographical Journal of India, 61* (4), 333-348.
18. Tiwari, R., & Singh, J. (2016): Problems of Sanitation and Solid Waste Management in Jabalpur City. *Urban India, 36* (1), 31-49.

Web References :-

1- http://jscljabalpur.org/wp-content/uploads/2019/03/MadhyaPradesh_Jabalpur.pdf (retrieved on 12/09/2019 at19:15IST)
2- https://saubhagya.gov.in/ (retrieved on 30/01/20 at 13.10)
3- https://swachhindia.ndtv.com/indias-top-performer-swachh-rankings-madhya-pradesh-lags-behind-sanitation-coverage-just-21-rural-area-declared-open-defecation-free-11916/ (retrieved on 30/01/20 at 13.10)

The New Future Of Event Management in Post COVID Era

Anup M Gajjar*
Dr. Bhaveshkumar J. Parmar**

Abstract :- In last few decades Event management has evolved in a big scale including all the event types. But due to the COVID global pandemic; it has badly affected all the industries., Organizing, managing event from thereafter is the biggest challenge and opportunity too. this paper is an attempt to evaluate the future of event management.

Keywords : Event Management , Post COVID 19, Future.

Introduction :- According to (Wall Street Journal, 2010) Global Economy as per experts is still recovering, from the experience of the worst economic time since the Great Depression which was commenced from December 2007. Festival and event industry includes one of few business which seem not been affected by this situation. During this period revoking of many public events and reduced scale can be seen as individuals and communities are forced to make difficult lifestyle and budget choices and festivals and events often find themselves high on the list of potential sacrifices. For instance to maintain balance of their budget many government officials have even rescheduled or scaled back numerous festivals celebration and events. Concurrently reducing their staff budgets and corporate sponsors are wary of appearing to support external marketing program budgets in the addition. This contraction reflects on the figures of the festival and event industry's growth graph.

Despite of continuing of economic downturn the festival and event professionals are searching for solutions to not only survive but also thrive. To prepare for future good leaders often utilize their lessons from the past that have learned in challenging times such as these. Factors that influence industry business practices is one way to improve decision making is to gain a better understanding of how experienced professionals prepare and execute similar challenges, and more specifically.

The purpose of this study is two-fold :

(1) From the perspective of event experts to evaluate the impact of the recent COVID19 on the event industry from the and

(2) The principal challenges and event professionals expect and strategies to be analyzed that they will use to overcome an upcoming economic recession.

For the purposes of this study, the researchers sought to find out:

During this outbreak what were the principal challenges and changes identified by event professionals?

The outcome of this study will guide the events leaders and others to better understand the percussion of the current worldwide recession on the event industry, how to better prepare for future economic challenges, and how to best operate the current path to an economic reestablishment within the industry.

Literature Review :- The main analysis in the area of event social impacts and brings together the methods used to study the phenomena of the impacts on communities is the key motive of this literature review synthesises. During a recession most likely to face retrenchment and discretionary components, which helps to explain why the 2007-2009 global economy sinking has had an adverse affect on the events industry. According to Webber et al. (2010) Household consumption was hit by falling asset values, rising

*** Research Scholar, Department of Management, Sankalchand Patel University, Visanagar, Gujarat.**

**** Assistant Professor, Indukaka Ipcowala institute of Management, Charotar University of Science and Technology (CHARUSAT), Changa, Gujarat- 388421.**

Unemployment and tightening of credit conditions. (Smeral, 2010) states that business spending, which is a prime component of the Meetings, Incentives, Conferences and Exhibition (MICE) in order to preserve cash flows market also fell in line with economic activity as firms reduced costs. (Halland Williams 2008; Carlsen ET al.2008). Hyland and Soosay (2008, p. 231) In terms of innovation, there is an extensive literature relating to small enterprises, however, there is little that relates to festivals, with the closest body of work being innovation in tourism enterprises and destinations explain that "innovation is the introduction of new and useful products, services, methods, practices or processes that add value to the organisation". A strategic direction is required which involves learning due to the fact innovation can encompass any or all aspects of an organisation. Statistically estimated the revenue of the events industry has been more than 100 billion Indian rupees in FY 2021 aided with this new digital transformation, up from around 66.1 billion Indian rupees in FY 2018. This rise is a result of all developments brought together including the ones in event organizing, conducting, studies, and training.

Covid-19 and How It's Changing the Event Industry :- "It described by Layla Northern, Global Head of Digital Customer Insights: At the point when the size of the worldwide pandemic began to turn out to be clear toward the beginning of February, there was minimal in the method of formal, equivalent information to help the occasions business comprehend its prompt and longer term sway on our clients, our occasions and our worldwide commercial centre". Among its key findings, the Reed Exhibitions COVID-19 Barometer reveals that:

- COVID-19 is accelerating changes in consumer behaviour. 84% of visitors and exhibitors have tried at least one new digital service since lockdown.
- Acceptance of digital tools is increasing over time. On average, visitors had tried 3.3 new digital services in June, rising to 3.5 by September. Exhibitor adoption increased from 3.2 to 3.6 respectively.
- Consumer willingness to adopt digital is reflected in attitudes towards online events. The number of visitors who say they would like to carry out one or more event activities digitally whilst they are unable or unwilling to attend in person is significant, and has increased consistently, from 91% in June to 94% in September.
- Events after COVID 19 65% of visitors and 57% of exhibitors believe digital will continue to work .Clients are increasing open to the drawing with advanced close by face to face occasions as they return.

HOW DOES THE FUTURE OF EVENTS LOOK LIKE? :- Since mass gatherings are one of the proven transports of spreading any disease, many people will be sceptical about attending conferences soon. It still not promising, as the events industry cannot remain frozen while the virus recovery timeline. Therefore, the immediate future of the industry is the smaller events with a manageable audience. Social Distancing at Event/ Registration Desk Catering / Self-Serving Buffet/ Social Activities

The Hybrid Future :- So far hybrid model is predominating COVID pandemic effects on event management have led businesses worldwide to resort to digital solutions for long-term event planning. Hybrid events are a commingling of live and virtual events where your audience can flawlessly engage with you in-person as well as virtually. A Markletic research shows that alliance is the key to a hybrid event according to 49% of marketers, which is supported by a technologically advanced facility for the participants, fulfils the requirement of your audience, and puts your on-site and off-site audience on the same level. The excellent examples of hybrid events are Trade shows, conferences, and sales kick-offs. With over 80% of the marketers proclaiming that a bigger audience has reach is the largest perk of the virtual shift in Evolution of Events Report, these in-person events with wired components are here to stay. It is unavoidable that the "normal" we're going to face will be unlike the one we knew before.

- Capacity
- Refine your communication plan
- Consider technological risk including Cyber Security
- Breakout rooms
- Indoor vs. Outdoor
- Restrictions / Govt. Regulations.
- Plan for health and safety
- Having digital tools for check-in
- Analyze financial implications
- Monitor your supply chain

The Road Ahead for the Event Management Industry in Post COVID Era :- The pandemic struck the global industry out of nowhere, leaving less time to prepare for the time ahead. Many of strong columns of business had fallen down this time period; Economies were struck hard, impacted many industries, and Education turned outdated. One should be obliged to the digital age innovations that kept the growth curve in the positive quadrant and the business leaders showed the path to all others.

The lockdown period changed the significance of the word 'way of life' since COVID. Such pandemic circumstance has given another mission to occasion the executives business pioneers for example to cut another way for the understudies, students, learners, labourers, and experts so that even in antagonistic circumstances they can hold the stronghold firmly and consistently work to assemble a superior future, for them and the world. Directly from a day by day work meeting to a live streaming workshop with many individuals included, or live virtual shows and shows of stars for a large number of their fans to teachers granting learning in online classes with VR and AR tech; the Media and Event Management industry has come a remote place since the lockdown was first forced. We have demonstrated that - we didn't yield, we have gladly won.

Conclusion :- After this pandemic hosting events would be challenging. The risk component is unbearable and virtual, and hybrid solutions will be part of the new normal for most of the organiser's .Nevertheless Guidelines in place and correct measures and involvement of health and safety experts, Event Managers or organisers will be able to organise, host or attend live events. Virtual conferring was an afterthought due to the need for human interaction before the corona virus pandemic. However, hybrid events are becoming a popular way of conducting events without jeopardising the safety of guests. Through multiple channels a broad audience gets involved and enable a small group to attend a face-to-face discussion in these kinds of hydrid events. They provide global outreach apart from enhancing the experience of virtual conferences. They can also contribute and interact with other invites and guests from around the globe can convene and listen to the round table discussion from experts.

References:-

1. Allen, J., O'Toole, W., McDonnell, I. and Harris, R. (2005), Festival and Special Event Management, 3rd ed., Wiley, Chichester.
2. Anderson, R., Osseichuk, E. and Illingworth, L. (2010), "Rural small businesses in turbulent times", Entrepreneurship and Innovation, Vol. 11 No. 1, pp. 45-56.
3. Carlsen, J., Anderson, T., Ali-Knight, J., Jaeger, K. and Taylor, R. (2010), "Festival management and failure", International Journal of Event and Festival Management, Vol. 1 No. 2, pp. 120-31.
4. Carlsen, J., Andersson, T., Taylor, R., Ali-Knight, J. and Jaeger, K. (2009), "Festival futures", in Carlsen, J., Hughes, M., Holmes, K. and Jones, R. (Eds), Proceedings of the 18th CAUTHE Conference, Promaco Conventions, Perth.
5. International Festivals and Events Association (2010), International Events, Vol. 21 No. 4, pp. 40-5.
6. https://congrex.com/blog/future-of-events-after-covid-19/
7. https://www.who.int/emergencies/diseases/novel-coronavirus-2019/question-and-answers-hub/q-a-detail/coronavirus-disease-covid-19-small-public-gatherings#
8. http://everythingexperiential.businessworld.in/article/The-New-Future-Of-Event-Management-In-Post-Covid-Era/15-03-2021-383854/
9. https://www.hospitalitynet.org/news/4101969.html
10. https://reedexhibitions.com/sites/default/files/pdfs/COVID-19%20and%20How%20it's%20Changing%20the%20Event%20Industry.pdf
11. https://www.ijeast.com/papers/533-535,Tesma503,IJEAST.pdf
12. https://www.zoho.com/backstage/thegreenroom/9-factors-to-consider-when-managing-event-risk-post-covid-19.html
13. https://www.euruni.edu/blog/event-industry-impact-covid-19/

Students' Perception About Celebrity Endorsement : A Study of Karnal Division

Amit Kumar Pahwa*
Dr. Ekta mahajan*

ABSTRACT :- The concept of globalization and the trend of open markets have led to a cut throat competition among the producers for proving their product superior over the others. In this connection, firms have been utilizing various product promotional techniques. This has led to the emergence of celebrity endorsement in the world of advertising. Big giants are always ready to invest hefty amounts on celebrity endorsement provided that it pays back to them in the form of hype in the image and sales of their products. Being an important consumer category, youth is always target for the firms. Hence it is relevant to know how the college goers perceive the concept of celebrity endorsement. Present research was conducted during the month of December, 2020. Since this study includes field work (Survey), hence primary data was collected through a well designed questionnaire from 100 respondents of 2 colleges (1. Dr. B.R.A. Govt (PG) College, Jagdishpura (Kaithal) and 2. Pt. C.L.S. Govt (PG) College, Karnal) situated in Karnal Division (an administrative unit of the state of Haryana in India)

Key Words: Celebrity, Celebrity Endorsement, College Students, Purchase Intension

1.0- INTRODUCTION

Celebrity Endorsement : Celebrities are well-known people with a strong appealing and impressive power to entice the audience by their likeliness, attractiveness, trust, or congruency with the brand, resulting in the construction of a strong brand image and value in the eyes of viewers. (Pornpitakpan, 2004). Celebrity is an individual who has a marked impact of his/her personal image over the minds of public on account of some special skill of a particular field unlike a common people. A celebrity enjoys his/her fame. 'Any individual who enjoys public recognition and who uses this recognition on behalf of a consumer good by appearing with it in an advertisement called celebrity endorser' (McCracken, 1989). When a celebrity acts as a brand ambassador or a spokesperson for some firm then he/ she is called celebrity endorser and the process of endorsing some brand through mass media advertising is called celebrity endorsement. Celebrity endorsement being very important and an economical activity, is needed to be explored thoroughly so that advertiser would know its efficacy which will help them to make their future product promotional strategies.

1.1- Importance of the Study: With the beginning of conventional media advertising, celebrity endorsement has been very favourite way of promoting the products for the advertisers. And still in the era of new media/ internet the trend is going on and on and on and this is an issue which should be taken in to the account and to be investigated thoroughly. Youth is potential buyers for the producers of wardrobes, life style goods, automobiles, electronic gazettes and other many more commodities. So it is very pertinent to assess the perception of students regarding celebrity

* **Research Scholar, Department of Journalism and Mass Communication, I. K. Gujral Punjab Technical University, Kapurthala (India)**
* **Assistant Professor, Department of Journalism and Mass Communication, I. K. Gujral Punjab Technical University, Kapurthala (India)**

endorsement. Hence this study is very significant to identify the mindset of the youth so that the advertisers would be able to frame their marketing strategies in an optimum way and will be able to restrict the wastage of economical resources.

2.0- REVIEW OF LITRATURE

Arora (2011) undertook a research on "Capitalizing on the Power of Celebrity Endorsement" with the objective of exploring different aspects of celebrity endorsement, the researcher concluded that this product promotional technique very helpful in not only building up the brand image but also enhance it. celebrity advertising favours the barnd in many different ways but this not all surety of avoiding the disadvantages associated with celebrity endorsement.

Ahmed and Farooq (2014) revealed in their study on celebrity endorsement that the creditability is the major factor and feature of a celebrity that is most important for the viewers. Advertisers should choose the the celebrities very carefully before planning their advertising campaigns.

Sertoglu et al. (2014) approached the issue of "Examining the Effect of Endorser Credibility on the Consumers' Buying Intentions: An Empirical Study in Turkey" from the angle of testing, if the source tenability alter the purchase intention of consumers and to measure the perceived tenability differences between created spokesperson and celebrity endorser. This study put forth that the purchase intention of consumers has a positive and strong bond with all of the three credibility dimensions for both celebrity endorser and created spokesperson.

Nagdev and Singh (2016) conducted a research on "Impact of Celebrity endorsement on Students' Buying Behaviour: an Indian Perspective" with the objectives to study that how students perceive the celebrity endorsement and how it influence their buying decisions. Researchers concluded that youth perceive the celebrities endorsement are very attractive and film stars from bollywood films influence them a lot. Celebrity endorsement is very helpful in recalling and recognizing the products associated. Celebrity's persona is very helpful in penetrating the consumer class and convinces them to buy products allied. Similarly, this study put forth that celebrity's influence and name and value for money are some crucial elements that sway the buying behavior of the college students.

3.0- **RESEARCH METHODOLY**

This study focuses mainly to know the impact of celebrity endorsement on purchase intension of the college going students of Haryana along with other factors and to know the most preferred celebrities by them. The students' response has been measured and recorded through a pre-designed questionnaire. The sample size for the present study is 100 which was selected on the basis of convenience sampling. These respondents are from various colleges of Karnal Divison (an administrative unit of Haryana state of India). Both types of data i.e. primary as well as secondary data have been used in the present study. Primary data for the current study was accumulated using self-administered questionnaire and the literature sources for secondary data were journals, magazines, textbooks and internet.

3.1- Selected Sample Size: Response of total 100 students has formed the sample size; 100 students were chosen from two colleges situated in Karnal Division 1. Dr. B. R. Ambedkar Govt (PG) College, Jagdishpura (Kaithal) and 2. Pt. C.L.S. Govt (PG) College, Karnal

3.2- Sampling Technique: For the present study, convenience sampling is employed to select the respondents.

3.3- Statistical Tools: - For analysis, interpretation and presentation of data Simple percentage and Cross-tabulation methods have been used. *Data is presented through tables*

3.4- RESEARCH OBJECTIVES

1. To assess how college students perceive the celebrity endorsement?
2. To know the role of celebrity endorsement in brand recognition
3. To investigate the type of celebrity endorsers who influence the students more

DATA ANALYSIS

Table 1: Demographic profile of the respondents (N=100)

Sr. No.	Variables	Category	No of Respondents	Percentage (%)
1	Gender	Male	50	50
		Female	50	50
Total			100	100
2	Age Group	17-20	63	63
		21-24	37	37
Total			100	100
3	Educational Qualification	Under Graduate	81	81
		Post-Graduate	19	19
Total			100	100

Table 1 shows that there is equal contribution of male (50%) and male and female (50%) in this research as respondents. Majority of respondents 63 % are from the age- group of 17-20 years and 37% respondents are from the age group of 21-24 years. 81% respondents are studying in under-graduate and 19% are studying in post graduate classes. Hence this study represents the college going youth

Table 2: Celebrity advertising as an effective technique of product promotion

Sr. No.	Feedback	Frequency	Percentage (%)
1	Yes	76	76
2	No	5	5
3	Can't `Say	19	19
	Total	100	100

Table 2 delineate that majority of the respondents (76%) perceive the celebrity advertising as very effectual for product promotion. Only 5% respondents don't think that this technique is so much productive for promotional activities. A considerably fair number of respondents (19%) are unable to decide the implications of the activity of celebrity endorsement.

Table3: Preference of celebrity endorsed products

Sr. No.	Feedback	Frequency	Percentage (%)
1	Most Likely	35	35
2	Likely	41	41
3	Neutral	5	5
4	Unlikely	12	12
5	Most Unlikely	7	7
	Total	100	100

Table 3 states that the products endorsed by the celebrities is highly likely to be purchased by the respondents. 35% respondents claim that they are most likely to use such products while 41% respondents claim that they are likely to do it. The ones claiming to be neutral (5%), unlikely (12%) or most unlikely (7%) are lesser in number compared to the ones who are likely to use such products.

Table 4: Issue of morality on not self usage of self endorsed product by the celebrity

Sr. No.	Feedback	Frequency	Percentage (%)
1	Strongly Agree	27	27
2	Agree	45	45
3	Neutral	8	8
4	Disagree	12	12
5	Srongly Disagree	8	8
	Total	100	100

Table 4 depicts that Highest number of respondents agree that it is unethical not to use self endorsed products by celebrities. Such respondents constitute 45% of the total respondents. 27 % respondents strongly agree with it. The respondents who are neutral over this constitute 8% of the total respondents while 12% disagree and 8% strongly disagree with it.

Table 5: Easy recognisition of product, if advertised by favourite celebrity

Sr. No.	Feedback	Frequency	Percentage (%)
1	Always	68	68
2	Sometimes	24	24
3	Never	8	8
	Total	100	100

Table 5 reflects that a majority of respondents (68%) are of a notion that their favourite celebrity helps them always to recognize a product at the point of purchase. A high number of respondents (24%) think that celebrity endorsement helps them sometimes to recognize a product while shopping. Only very few respondents (8%) are unable to identify the celebrity endorsed products.

Table 6: Preferred celebrities profession wise

Sr. No.	Feedback	Frequency	Percentage (%)
1	Film Star	29	29
2	Sports	32	32
3	TV Artist	13	13
4	Fashion Model	8	8
5	Singer	12	12
6	Others	6	6
	Total	100	100

Table 6 is about the respondents preferred areas of profession of the celebrities. Highest number of respondents constituting 32% of the total number claimed to like celebrities from sports. While 29% claim that they like film based celebrities. The ones preferring film celebrities form the second highest dominant choice group. TV stars are third more preferred with 13% respondents choosing it. Singer celebrities come after that with 12% of the total respondents opting for it. Fashion models and celebrities from other fields are preferred very less by 7% and 6% respondents respectively.

Conclusion :- Conclusion can be drawn from this study that celebrity endorsement is very effective technique for promoting the products and has a significant impact over the purchase intension and decision of the young college students. Celebrities add value to the endorsed product. Celebrity endorsement improves recall rates as the maximum students report that if their favorite celebrity endorses a product it helps them to recall and recognize a product promptly at the point of purchase while shopping. This study brings in to light that the youth opines celebrity advertising builds and hypes the brand image but along with this they think that it is not ethical and they dislike if celebrities don't use the products endorsed by them. The category of celebrity is also

very influential. A maximum number of the respondents like the celebrity endorsers from the field of sports, a very high number of students are under the influence of film stars followed by the TV stars, singers and fashion models. Respondents are least motivated by the other celebrities (from the field of business and politics).

This study suggests that advertisers should utilize celebrity endorsement for advertising their products. They should carefully frame the product promotional strategies especially while choosing the celebrity, advertisers must carefully study and consider the tendencies of target consumers.

References :-

1. Advertisment. (1927). *The English Replicas. Poetical Sketches*, V-VI.
2. Ahmad, N., & Farooq;, J. I. (2014, 09). Credibility of Celebrity Endorsement and Buying Intentions an Evidence. International Letters of Social and Humanistic Sciences , 1-13.
3. Arora, G. (2011). Capitalizing on the Power of Celebrity Endorsement. Advertising Express. 35-39
4. Bennett, J. (2013). undefined. *Celebrity Studies*, *4*(1), 92-93.
5. Erdogan B. Z. Baker M, Taggs (2000) Selecting Celebrity Endorsers: The Practitioner's Perspective.
6. Erdogan, B. Z. (1999). Celebrity endorsement: A literature review. *Journal of Marketing*
7. Faisal, M. N., & Khan, B. M. (2008). Selecting an advertising agency: A multi-criteria decision making approach. *Vision: The Journal of Business Perspective*, *12*(4), 13-22.
8. Friedman, H. Friedman, L. (1979).Endorser Effectiveness by Product type. Journal of Advertising. Journal of Consumer Research 41: 39-48.
9. Hansen, A. (1998). *Mass communication research methods*. NYU Press.
10. Kothari, C. R. (2004). *Research methodology: Methods and techniques*. New Age International.
11. Kumar, K. J. (2016). Media use: India. *The International Encyclopedia of Media Effects*, 1-9. *Management*, *15*(4), 291-314.
12. McCracken, G. (1989). Who is the celebrity endorser? Cultural foundations of the endorsement process. *Journal of Consumer Research*, 16(3), 310-321.
13. Nagdev, K., & Singh, R. P. (2016). Impact of celebrity endorsement on studentss buying behaviour: An Indian perspective. *SSRN Electronic Journal*. https://doi.org/10.2139/ssrn.2809124
14. Pornpitakpan, C. (2004). Cross-cultural differences in the effect of ad repetition and ad size: Experiments with Americans, Germans, and singaporeans. *Journal of Euromarketing*, *13*(2-3), 49-83.
15. Qureshi, M. M., & Malik, H. (2017). The impact of celebrity endorsement on consumer buying behavior. *Advances in Social Sciences Research Journal*, *4*(3). Research, 19(5), 63-71.
16. Sertoglu, A. E., Catli, O., &Korkmaz, S. (2014). Examining the Effect of Endorser Credibility on the Consumers' Buying Intentions: An Empirical Study in Turkey. *International Review of Management and Marketing*, *4*(1), 66-7.
17. Wimmer, R. D., & Dominick, J. R. (2010). *Mass media research: An introduction*. Cengage Learning.
18. Zhu, Y., Amelina, D., & Yen, D. C. (2020). Celebrity endorsement and impulsive buying intentions in social commerce - The case of Instagram in Indonesia. *Journal of Electronic Commerce in Organizations*, *18*(1), 1-17.

पत्रिका में शोध-लेख/ आलेख प्रकाशन के नियम

1. आपके द्वारा प्रेषित शोध–लेख/ आलेख मौलिक, स्तरीय, प्रकाशन के योग्य एवं अप्रकाशित हो, तथा आपके द्वारा **आलोचन दृष्टि** द्वारा जारी किया गया **लेखक का घोषणा–पत्र** फार्म अवश्य भरा होना चाहिए।

2. अपने शोध–लेख/आलेख (हिन्दी व संस्कृत के Kruti Dev 10 में और अंग्रेजी के O Times New Roman Font में) की वर्ड एवं पीडीएफ फाइल बनाकर सीडी या डीवीडी में हार्ड कॉपी के साथ **आलोचना दृष्टि, कार्यालय** के पते में प्रेषित करें। आपको यदि अपने शोध–लेख/आलेख का **स्वीकृत पत्र** चाहिए तो एक लिफाफे में अपना नाम, पता पिन कोड सहित लिखकर, आवश्यक स्पीड पोस्ट की डाक टिकट लगाकर भेजें और 3–4 महीने तक अनावश्यक कोई कॉल किसी भी **आलोचना दृष्टि** के प्राधिकारी से न करें। यदि किसी पदाधिकारी से बात करने की जरूरत पड़े तो शाम 6.00–8.00 के बीच संपर्क करें।

3. **शोध–लेख/आलेख में मोबाइल नंबर, ई–मेल एवं पता अंकित होना चाहिए।**

4. शोध–लेख/आलेख की जांच **संपादक मंडल** एवं **आलोचन–दृष्टि–परिवार** के द्वारा की जाएगी उसके उपरांत ही शोध–लेखों/आलेखों को प्रकाशित किया जायेगा, जिसमें **संपादक मंडल** का **निर्णय** अंतिम और सर्वमान्य रहेगा।

5. शोध लेख **यूजीसी** के मानक के अनुरूप होने चाहिए और **संदर्भ–सूची** में पुस्तक का नाम, लेखक का नाम, प्रकाशन का नाम, संस्करण–वर्ष एवं पृष्ठ संख्या तथा पत्रिका के संदर्भ हेतु, उसका अंक, वर्ष, पृष्ठ संख्या आदि– निश्चित रूप से अंकित होने चाहिए। ऐसा न होने पर लेख की **संदर्भ–सूची** को भ्रामक माना जाएगा।

6. पत्रिका के प्रकाशन हेतु लेखकों, पाठकों एवं आलोचकों से सदस्यता भी अपेक्षित रह सकती है, क्योंकि पत्रिका को कोई अनुदान या अंशदान नहीं प्राप्त हो रहा।

7. हिन्दी एवं संस्कृत के शोध–लेखों/आलेखों के लिए 2000–3000 और अंग्रेजी के शोध–लेखों/आलेखों के लिए 2000–2500 शब्द–सीमा निर्धारित की गई है, अतः शब्द–सीमा का ध्यान रखें।

8. पत्रिका में सर्वेक्षणात्मक की अपेक्षा वैचारिक शोध–लेखों/आलेखों को वरीयता प्रदान की जायेगी।

संपादक

'आलोचन दृष्टि' परिवार की ओर से प्रो. राम सजन पांडेय को भावभीनी एवं विनम्र श्रद्धांजलि

प्रो. राम सजन पांडेय सर का जन्म उत्तर प्रदेश के बहराइच जनपद में स्थित **सेमरियावाँ** नामक गाँव में **1 जनवरी 1957** को **अँगनू राम पांडेय** एवं **कमला देवी** की छः संतानों में चौथी संतान के रूप में जन्म हुआ। अध्ययन के क्षेत्र में आपकी विशेष रुचि देखते हुए आपके माता–पिता ने आपको पढ़ने एवं बढ़ने का पर्याप्त अवसर प्रदान किया। 1973 में हाईस्कूल, 1975 में इंटरमीडिएट, 1977 में ग्रेजुएशन, 1979 में पोस्ट ग्रेजुएशन, 1983 में 'विद्यापति का सौंदर्यबोध' विषय पर अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद से पीएच.डी. की उपाधि और 1993 में 'भक्तिकालीन हिंदी निर्गुण काव्य का सांस्कृतिक अनुशीलन' विषय पर कानपुर विश्वविद्यालय से डी. लिट. की उपाधि प्राप्त की। आपने 'महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक' एवं 'इंदिरा गांधी यूनिवर्सिटी, मीरपुर–रेवाड़ी' में 3 दशक से अधिक प्राध्यापन कार्य किया, जहाँ समय–समय पर 'विभागाध्यक्ष' एवं 'संकाय प्रमुख' के पद को भी सुशोभित किया। वर्तमान में, 'बाबा मस्तराम विश्वविद्यालय, रोहतक' में कुलपति के रूप में कार्यरत रहे।

'उत्प्रेक्षा की अवधारणा', 'संतो की सांस्कृतिक संसृति', 'संस्कृति और सौंदर्य' सहित आपकी लगभग डेढ़ दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं और लगभग इतनी ही पुस्तकें आपने संपादित भी की। आपने अपने प्राध्यापक–काल में 58 छात्रों को पीएचडी, 88 छात्रों को एम. फिल. और एक शोधार्थी को पी.डी.एफ. कराया। आपने दो मेजर प्रोजेक्ट्स 'स्वातांत्र्योत्तर राम और कृष्ण का कथात्मक प्रबंध काव्यों के अनुसंधान की समालोचना' एवं 'बीसवीं शती के पौराणिक आख्यान–मूलक काव्य में नारी' का कार्य भी पूर्ण किया। आप लगभग दो दर्जन से अधिक विश्वविद्यालयों में मेंबर, अध्यक्ष, सदस्य, विषय–विशेषज्ञ की रूप में कार्यरत रहे। 'राष्ट्रभाषारत्न हिंदी' एवं 'साहित्य महोपाध्याय' सहित आपको लगभग एक दर्जन पुरस्कार एवं सम्मान प्राप्त हुए। आपके छः दर्जन से अधिक साहित्यिक–कार्यक्रमों का प्रसारण रेडियो–स्टेशन और टेलीविजन पर हुआ। आपके अकादमिक योगदान पर कई शोध–कार्य भी हुए हैं। दूसरे की सेवा का हर अवसर तलाश करने वाले प्रो. पांडेय सर अपने समय के उन प्राध्यापकों में हैं, जो केवल उच्च और प्रतिष्ठित पदों में बैठे लोगों से ही सौहार्द का भाव नहीं रखते रहे हैं बल्कि विद्यार्थी, शोधार्थी एवं सामान्य–व्यक्ति भी उनके सहयोग, सौहार्द और अपनत्व का पात्र बनता रहा है। जो उन्हें जानता है, वह उनकी तारीफ ही करता है।

मेरी पहली मुलाकात प्रो. पांडेय सर से 2015 में 'काशी हिंदू विश्वविद्यालय' के 'यूनिवर्सिटी गेस्ट हाउस' में हुई, वहीं से उनके प्रति एक गहरा आत्मिक–लगाव हो गया। 2016 में मैंने 'आलोचन दृष्टि' नाम की शोध–पत्रिका निकालना शुरू किया, जिसमें वे 'संरक्षक और सलाहकार मंडल' के सदस्य के रूप में रहते हुए, पत्रिका को आगे बढ़ाने का मार्गदर्शन ही नहीं दिया बल्कि अपने अनेक सुझाव प्रदान करके मेरे संबल और प्रोत्साहन का आधार बनते रहे। मेरी उनसे एक विशेष निजता रही।... संघर्ष के दिनों में वे मुझसे हमेशा एक बात बोलते थे– 'अपना काम करते रहो, ईश्वर तुम्हारी मदद करेगा।' ईश्वर के प्रति उनकी गहरी–आस्था और अगाध–विश्वास रहा है। महीने–15 दिन में मेरी उनसे जरूर बात होती थी। उनका वाक्य 'कैसे हो मानस और क्या कर रहे हो'– मेरी स्मृति का विशेष हिस्सा आज भी है।...

पाण्डेय सर को जीवन और समाज का बहुत ही गहरा अनुभव था। हर एक बात और विचार की उन्हें जमीनी समझ थी और मनोविज्ञान की गहरी परख भी। एक ही नजर में लोगों को पहचान लेते थे और स्वाभिमानी ऐसे थे कि किसी व्यक्ति से जल्दी सहयोग लेना स्वीकार नहीं करते थे। सरल, सहज, सौम्य एवं अकादमिक व्यक्तित्व के धनी प्राध्यापक पाण्डेय सर, तमाम शारीरिक परेशानियों के बावजूद भी अकादमिक–कार्य करते रहने के पक्षपाती रहे हैं। ऐसी जिजीविषा रखने वाले कर्मठ–व्यक्ति (सर) कोरोना को हराते–हराते, अंततः **7 मई, 2021** को हार जाते हैं। कितनी बड़ी विडंबना और सच्चाई है कि जिस व्यक्ति की जरूरत परिवार और समाज को सबसे अधिक होती है, उसको भगवान भी अपने पास जल्द ही बुला लेता है। आज पांडेय सर की स्मृतियाँ और बातें रह–रह कर याद आ रही है, जिसके विषय में कुछ कह पाना– मेरे लिए बहुत कठिन है...।

मैं गहरे आघात और दुःख के साथ 'आलोचना दृष्टि' परिवार की ओर से सर को भावभीनी एवं अश्रुपूरित श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। ईश्वर उन्हें अपनी शरण में स्थान दें और परितृप्त परिजनों को दुःख सहने का संबल भी प्रदान करें। मैं अच्छी तरह से जानता हूँ कि वह जहाँ भी रहेंगे– अपनी वृत्ति से सबको मोह लेंगे....।

– डॉ. सुनील कुमार मानस

आलोचन दृष्टि
आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद–फतेहपुर, उ0प्र0–212635
ई–मेल : aalochan.p@gmail.com
दूरभाष : 09451949951 / 7376267327